सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७१

(१ दिसम्बर, १९३९ – १५ अप्रैल, १९४०)

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७१

(१ दिसम्बर, १९३९ – १५ अप्रैल, १९४०)

सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

मार्च, १९७९ (चैत्र १९०१)

साढ़े सात रुपये [illegible]

Rs 10.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली–११०००१ द्वारा प्रकाशित और
शान्तिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद–३८००१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें १ दिसम्बर, १९३९ से १५ अप्रैल, १९४० तककी सामग्रीका समावेश है। इस अवधिमें कांग्रेसकी इस माँगपर चर्चा जारी रही कि ब्रिटेनको अपने युद्ध-उद्देश्योंकी घोषणा करनी चाहिए। गांधीजी, अंग्रेज नेताओंकी ईमानदारी पर भरोसा करते हुए, जैसा कि उन्होंने कहा, "उनसे अनुरोध" करते रहे, और साथ ही भारतीय जनतासे भी "अनुरोध" करते रहे कि वह "अपनी शक्ति बढ़ाये"। उन्होंने बतलाया, "अगर संघर्ष अनिवार्य ही हो जाये तो . . . मैं संघर्षकी तैयारी कर रहा हूँ, मगर साथ ही मैं इस बातका भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ कि संघर्षकी नौबत आये ही नहीं" (पृ० ९८)। १० जनवरी, १९४० को वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगोने बम्बईमें एक भाषण दिया, जो देखनेमें सुलहपूर्ण लगता था। उसमें उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकारका "उद्देश्य भारतको पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा प्रदान करनेका है और यह औपनिवेशिक दर्जा वेस्टमिन्स्टर किस्मका होगा . . ." (पृ० ४८७)। वाइसरायके भाषणसे प्रेरित होकर गांधीजी ने उनके सामने मुलाकातका सुझाव रखा (पृ० १२६) और ५ फरवरीको यह मुलाकात सम्पन्न हुई। परन्तु इस मुलाकातसे "कांग्रेसकी माँग और वाइसरायके प्रस्तावके बीच महत्वपूर्ण अन्तर" स्पष्ट हो गये, क्योंकि वाइसरायके प्रस्तावमें "भारतके भाग्यका अन्तिम फैसला ब्रिटिश सरकार द्वारा किये जाने" का विचार था, जबकि कांग्रेसकी माँगमें "अपना संविधान आप बनाने और अपना दर्जा खुद तय करनेके" भारतके अधिकार पर बल था (पृ० २१५-१६)। भारत-मन्त्री लॉर्ड जैटलैंड द्वारा ११ फरवरी, १९४० को 'संडे टाइम्स' को दी गई भेंट-वार्तामें "अल्पसंख्यकोंकी समस्या तथा ऐसी दूसरी समस्याओंके समाधान" का भार राष्ट्रवादियों पर डाला गया, जिससे वाइसराय के भाषणका सुलहपूर्ण प्रभाव खत्म हो गया। गांधीजी के शब्दोंमें, इसका अर्थ राष्ट्रवादियोंके खिलाफ, "जो साम्राज्य-भावनाको नष्ट करनेको कटिबद्ध" थे, "युद्धकी घोषणा" था (पृ० २५०)। कांग्रेसने २० मार्चको रामगढ़में हुए अपने वार्षिक अधिवेशनमें घोषणा की कि ब्रिटेन "युद्ध, मूल रूपसे, अपने साम्राज्यवादी उद्देश्योंकी पूर्ति के लिए और अपने साम्राज्यको कायम रखने और मजबूत बनानेके लिए कर रहा है", और इसलिए कांग्रेस "प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें किसी भी तरह इस युद्धमें हिस्सा नहीं ले सकती . . .।" प्रस्तावमें यह भी कहा गया था कि "भारतके संविधानका निर्माण स्वाधीनता, प्रजातन्त्र तथा राष्ट्रीय एकता पर आधारित होना चाहिए", और उसमें "भारतको विभाजित करने या उसकी राष्ट्रीयता को खण्डित करनेके हर प्रयासकी" भर्त्सना की गई थी (पृ० ४९७-९८)। तीन दिन पश्चात, २३ मार्च, १९४० को लाहौरमें मुस्लिम लीगके वार्षिक अधिवेशनमें एक प्रस्ताव पारित करके इस बातकी माँग की गई कि भारतके उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रोंमें "भौगोलिक रूपसे सटे हुए

घटकों" को "स्वतन्त्र राज्य" बनानेके लिए एकत्र कर देना चाहिए (पृ० ५०२)। अब पूरी तरह गतिरोध पैदा हो गया था।

लॉर्ड लिनलिथगोने १० जनवरीको अपने भाषणमें "अल्पसंख्यक जातियों", विशेषकर मुसलमानों तथा अनुसूचित जातियोंके "पुरजोर दावों"से उत्पन्न कठिनाइयोंका उल्लेख किया और कहा कि अतीतमें उन्हें जो गारंटियाँ प्रदान की गई हैं, वे "पूरी की जानी चाहिए" (पृ० ४८८)। गांधीजी ने लॉर्ड लिनलिथगोको १४ जनवरीको लिखे अपने पत्रमें उनके इस उल्लेख पर नम्रतापूर्वक आपत्ति प्रकट की और उसके फलितार्थोंके बारेमें, विशेषकर "अनुसूचित जातियोंके उल्लेख" पर (पृ० १२६), गम्भीर शंकाएँ व्यक्त कीं। लॉर्ड लिनलिथगोने १२ जनवरीको क० मा० मुन्शीके साथ हुई एक निजी भेंटमें स्पष्ट किया कि "मुझे सिर्फ भारतकी जनतासे ही बात नहीं करनी पड़ती है, बल्कि मेरे सामने इंग्लैंडकी जनता भी है। और आपकी तथा मेरी दोनों ही की दृष्टिसे इंग्लैंडकी जनताकी राय महत्वपूर्ण है। वहाँकी जनताका विचार है कि हिन्दू समुदाय अंग्रेजोंके हितके खिलाफ है" (पृ० ४९१)। भारतमें अंग्रेजोंकी नीतिका निर्देश करनेवाली इस नीयतको गांधीजी पूरी तरह समझ गये थे। लॉर्ड जैटलैंड की इस उक्तिपर कि "शब्दजाल और आदर्शोंके व्यामोहसे उतरकर सत्यके ठोस धरातल पर आनेकी आवश्यकता है" (पृ० २४९), गांधीजी ने एक तीखे जवाबमें अधीरताका आभास देते हुए, जो उनके लिए असामान्य बात थी, कहा कि "वास्तविकताका सामना" करनेसे खुद लॉर्ड जैटलैंड कतरा रहे हैं और अवास्तविकताके जंगलमें भटक रहे हैं, यद्यपि मैं उनपर आदर्शवादका आरोप तो लगा नहीं सकता" (पृ० २५०)।

गांधीजी तथा भारतके राष्ट्रवादियोंने समझ लिया था कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी वास्तविकता यह है कि साम्राज्यका निर्माण चार आधार-स्तम्भों पर किया गया है—"यूरोपीय हित, सेना, देशी नरेश और साम्प्रदायिक विभेद", जिनमें अन्तिम तीन "यूरोपीय हितकी सिद्धिके साधन" हैं (पृ० २४३)। इस प्रकार वे सभी समस्याएँ जो ब्रिटिश प्रवक्ताओंके अनुसार भारतकी आजादीके सामने आ रही हैं, खुद ब्रिटेनकी बनाई हुई हैं। गांधीजी का विश्वास था कि "जब ब्रिटिश सरकारको यह निश्चय हो जायेगा कि वह अब हिन्दुस्तानको अपने कब्जेमें नहीं रख सकती, तब सब कठिनाइयाँ . . . उसी तरह उड़ जायेंगी जैसे प्रभातके समय अंधेरा मिट जाता है" (पृ० ३६४-६५)। उन्हें विश्वास था कि युद्धका निर्णय अन्ततः नैतिक प्रश्नोंके आधार पर ही होगा (पृ० २९)। और "अनेक व्यक्तिगत सम्बन्धोंसे बँधे इंग्लैंडके मित्रकी हैसियतसे" गांधीजी को इस बातकी चिन्ता थी कि "वह [इंग्लैंड] इस युद्धमें विजयी हो, लेकिन वह विजय उसे शस्त्रास्त्रोंके प्रयोगमें दूसरोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण नहीं, बल्कि न्यायके मार्ग पर सदा दृढ़ रहनेकी उसकी टेकके कारण मिले" (पृ० ८)। अतः गांधीजी चाहते थे कि ब्रिटेन "महान प्रयत्न" करके "भारतपर से अपना अनैतिक प्रभुत्व" समाप्त करनेका निर्णय करे (पृ० २२३)। उन्होंने एक अंग्रेज पत्रकारसे कहा, "मैं नहीं चाहता कि ब्रिटेन हर हालतमें जीते, चाहे वह ठीक रास्ते पर हो या गलत रास्ते पर।" अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि

"यदि भारत गलत रास्तेपर हो तो वह जरूर बर्बाद होगा। मैंने अक्सर कहा है कि यदि हिन्दू-धर्म अस्पृश्यताकी प्रथाको जारी रहने देता है तो वह नष्ट हो जायेगा।" "अगर भारत गलती करे तो उसके विनाशके लिए प्रभुसे प्रार्थना तक कर सकता हूँ, जैसे कि स्टेडने बोअर युद्धमें ब्रिटेनकी हारके लिए प्रार्थना की थी" (पृ० ९९)। अतः, गांधीजी ने कहा, यदि ब्रिटिश सैन्यबलकी सफलताका मतलब भारत पर विदेशी प्रभुत्वकी अवधिका और बढ़ना है तो मैं अन्तःकरणसे उसकी विजयकी कामना नहीं कर सकता। "यह आखिरी वाक्य मैं व्यथित हृदयसे लिख रहा हूँ" (पृ० २४५)।

ब्रिटिश साम्राज्यवादके स्वरूपको स्पष्ट रूपसे समझ लेनेके बाद, औपनिवेशिक दर्जे के प्रश्न पर भी गांधीजी का रुख, सम्भवतः जवाहरलाल नेहरूके प्रभावसे, बदल गया। उन्होंने १९३० में एक बार कहा था कि वे "सार रूपमें स्वतन्त्रता" प्राप्त करके सन्तुष्ट हो जायेंगे (पृ० २६)। और बादमें, १९३७ में, हे० सा० लि० पोलकसे कहा था कि "यदि साझेदारीसे अलग होनेके अधिकारके साथ भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाये" तो मैं स्वीकार कर लूंगा। लेकिन उन्होंने कहा कि "उस समयके बाद मुझे जो अनुभव हुआ और मैंने जो गहरा विचार किया, उससे मेरी यह राय बनी कि वेस्टमिन्स्टर कानूनवाला औपनिवेशिक दर्जा भी हिन्दुस्तानके अनुकूल नहीं पड़ेगा", क्योंकि औपनिवेशिक दर्जेके साथ "जो परम्पराएँ जुड़ी हैं, उनसे प्रकट होता है कि यह केवल गोरों पर ही लागू होता है और इसमें गैर-यूरोपीय जातियोंके शोषणका वर्जन नहीं है।" "भारत शोषित राष्ट्रोंमें से है, इसलिए दक्षिण आफ्रिका जैसे किसी राष्ट्रका जोड़ीदार शोषक राष्ट्र बनकर रहना उसे नहीं फबेगा" (पृ० २७ और ३५५)। फिर भी लगता है गांधीजी ब्रिटिश साम्राज्यमें परिवर्तन होनेके लिए आशान्वित थे, क्योंकि उनका विचार था कि यदि स्वतन्त्रता "ग्रेट ब्रिटेन और भारतके बीच हुए किसी सम्मानजनक समझौते" के द्वारा आनेवाली है तो मैं यह कल्पना करता हूँ कि "भारतका ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशोंके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम होगा" (पृ० १७०)। और सम्भवतः इसी कारण उन्होंने सुभाष बोसके इस आरोपको स्वीकार किया कि मैं "ब्रिटेनके साथ समझौता करनेको तैयार हूँ, बशर्ते कि समझौता सम्मानपूर्ण हो" (पृ० १३५)।

किन्तु ब्रिटेनके साथ इस प्रकारके सम्मानजनक समझौतेके द्वारा भारतमें आजादी आनेके कोई आसार नजर नहीं आये। ब्रिटिश नेताओंने भारतीय नेताओंकी एकताको संवैधानिक प्रगतिकी एक पूर्व-शर्त बना दिया था। लेकिन मुस्लिम लीगके नेता कांग्रेस की संविधान-सभाकी माँगका कट्टर विरोध करते दिखाई पड़ते थे। गांधीजी ने स्पष्ट किया कि संविधान-सभाका सुझाव "स्वतन्त्रताका घोषणा-पत्र तैयार करनेके लिए" किया गया है और वह "सम्प्रदायों और वर्गोंके हितोंकी टक्कर रोकनेका साधन होगी" (पृ० ७२)। उन्होंने अल्पसंख्यकोंको आश्वासन दिया कि "अल्पसंख्यक वर्गोंके प्रतिनिधि उनकी रक्षाके लिए खास शर्तें निर्धारित करेंगे" (पृ० ९७)। उन्होंने कहा कि संविधान-सभामें अल्पसंख्यक वर्गोंके प्रतिनिधि "अपनी इच्छानुसार संरक्षात्मक उपायों की व्यवस्था करवा पायेंगे" (पृ० ३७२) और उनका "निर्णय" करेंगे (पृ० ४१३)। लेकिन लगता था कि मुस्लिम लीगके नेताओंकी बहससे और समझा-बुझाकर साम्प्र-

दायिक समस्या हल करनेमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। जिन्नाने २२ दिसम्बरको "मुक्ति-दिवस और कृतज्ञता-ज्ञापन दिवसकी तरह" मनानेका आह्वान दिया। उस दिन "विशाल मुस्लिम आबादी" को कांग्रेसके खिलाफ लगाये गये गम्भीरतम आरोपों को "खुदाके सामने इस तरह दोहराना" था मानो वे पूर्णतः प्रमाणित हों। वे आरोप वाइसराय और गवर्नरोंके सामने पेश किये गये थे, लेकिन उनके निर्णयकी प्रतीक्षा किये बिना, जैसा कि गांधीजी ने कहा, "जिन्ना साहबने वादी और न्यायाधीश दोनों का भारी दायित्व अपने सिर ले लिया था" (पृ० २१-२२)। गांधीजी ने मुसलमानों के प्रति न केवल न्याय बल्कि उदारता भी दिखानेका अनुरोध किया। लेकिन लगता था कि जिन्नाने संयुक्त भारतके ढाँचेके अन्तर्गत कोई भी समझौता न करनेका निश्चय कर लिया था। जब गांधीजी ने उन्हें "कांग्रेसकी नीतियों और राजनीतिके विरोधी दलोंसे समझौता करने" और इस तरह "मुस्लिम लीगको साम्प्रदायिक दलदलसे निकालकर एक राष्ट्रीय स्वरूप देने" के लिए बधाई दी (पृ० १२९), तो जिन्नाने उनकी कार्रवाईका गांधीजी ने जो अर्थ लगाया था उसका तत्काल खण्डन किया और गांधीजी के शब्दोंमें यह दलील दी कि भारत एक ऐसा "महाद्वीप" है "जिसमें धर्म पर आधारित कई राष्ट्रोंका निवास है" (पृ० १५६)। भारतविषयक यही मत तर्कानुसार विभाजनकी माँगका हेतु बना।

गांधीजी को गहरा आघात लगा। उन्होंने कहा, "दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त एक झूठ है।" गांधीजी ने दलील दी कि "भारतके अधिकांश मुसलमान या तो ऐसे हैं जिन्होंने अपना पुराना धर्म छोड़कर इस्लाम ग्रहण किया है या वे इस तरह धर्मान्तरण करनेवाले लोगोंके वंशज हैं। इस्लाम स्वीकार करते ही वे अलग राष्ट्रके लोग तो नहीं हो गये।" गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि "भारतके हिन्दू और मुसल-मान दो राष्ट्रोंके लोग नहीं हैं। जिन्हें ईश्वरने एक बनाया है, उन्हें मनुष्य एक-दूसरे से कभी भी अलग नहीं कर पायेगा।" उन्होंने पूछा कि "और क्या इस्लाम वैसा संकीर्ण धर्म है जैसा उसे कायदे-आजम बनाना चाहते हैं? क्या इस्लाम और हिन्दू-धर्म अथवा किसी अन्य धर्ममें कोई समानता नहीं है? या इस्लाम हिन्दू-धर्मका शत्रु-मात्र है ?" जिन्नाने कहा था कि "एक भारतीय राष्ट्रकी भ्रामक कल्पना" ही "हमारी अधिकांश कठिनाइयोंका कारण है, और अगर हम समय रहते अपनी धारणा बदल नहीं लेते तो यह भारतके विनाशका हेतु बनेगी।" गांधीजी ने चेतावनी दी कि "उनकी तरह सोचनेवाले लोग इस्लामकी सेवा नहीं कर रहे हैं। वे उस सन्देशका गलत अर्थ लगा रहे हैं जो स्वयं इस्लाम शब्दमें निहित है।" गांधीजी ने कहा कि यह चेतावनी देना मेरा कर्तव्य इसलिए है कि उनकी मुसीबतकी घड़ीमें मैंने निष्ठा-पूर्वक उनकी सेवा की है, और इसलिए भी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता मेरे जीवनका लक्ष्य रहा है और है (पृ० ४३७-३९)। अतः गांधीजी भारतके "विभाजनके लिए खुशीसे सहमति" कभी नहीं दे सकते थे, क्योंकि उन्होंने कहा कि "अन्यथा तो सदियों से असंख्य हिन्दू-मुसलमानों द्वारा एक राष्ट्रकी तरह मिल-जुलकर रहनेके लिए किये गये प्रयत्न मिट्टीमें मिल जायेंगे।" गांधीजी की आत्मा यह कतई स्वीकार नहीं कर सकती थी कि हिन्दू-धर्म और इस्लाम दो विरोधी संस्कृतियों और धर्म-सिद्धान्तोंका

प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने कहा कि "'कुरान' का खुदा वही है जो 'गीता' का ईश्वर है, और हम, चाहे किसी भी नामसे पुकारे जायें, उसी ईश्वरकी सन्तान हैं।" इस प्रकार यद्यपि गांधीजी विभाजनकी माँगके खिलाफ थे, लेकिन उन्होंने कहा कि यदि मुसलमान सचमुच ही विभाजनका आग्रह करें तो एक अहिंसकके नाते वे विभाजनको जबरदस्ती नहीं रोक सकते (पृ० ४६४), और न ही कांग्रेस "भारतके मुसलमानोंकी स्पष्ट इच्छा" को जबरदस्ती रोक सकती है (पृ० ३८९)। गांधीजी ने कहा, "अगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके भारी बहुमतको यह लगे कि वे अपने हिन्दू और दूसरे भाइयों सहित एक राष्ट्र नहीं हैं, तो उन्हें कौन रोक सकेगा?" (पृ० ४१९)। लियाकत अली खाँके इस कथनका खण्डन करते हुए कि गांधीजी का उद्देश्य "हिन्दू संस्कृतिको सबपर थोपना है", गांधीजी ने कहा, "मैं सारी संस्कृतियोंका प्रतिनिधि होनेका दावा करता हूँ, क्योंकि मेरा धर्म तो — चाहे उसे जो संज्ञा दी जाये — सारी संस्कृतियोंकी पूर्णता चाहता है। मैं जहाँ भी जाता हूँ वहीं मुझे घर-जैसा लगता है, क्योंकि मैं दूसरे धर्मोंका भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने धर्मका करता हूँ" (पृ० ४६५)।

गांधीजी भारतके आत्म-निर्णयके अधिकारकी माँग पर अटल थे और उन्हें लगता था कि "यह लाचार उपमहाद्वीप रोगी रहकर अपने और जगतके गलेका भार बने, इससे अच्छा तो निःसन्देह स्वयं इस उपमहाद्वीपके लिए, इंग्लैंडके लिए और दुनियाके लिए भी यह है कि यह अपनी खुदमुख्तियारी हासिल करनेके लिए बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाये" (पृ० ३५७)। फिर भी, उतावले कांग्रेसी तत्काल सविनय अवज्ञा शुरू करने के लिए जो दबाव डाल रहे थे, गांधीजी ने उसका विरोध किया (पृ० १३, ५८, ८१-८२, २३३, ३४४-४५, ४३३)। क्योंकि उन्होंने कहा: "सच्ची अहिंसाके बिना पूरी अराजकता फैल जायेगी" और वे ऐसा "संघर्ष" शुरू नहीं करेंगे "जिसका अवश्यम्भावी परिणाम अराजकता और मारकाट हो" (पृ० १३८)। देशमें अहिंसाका अपेक्षित वातावरण पैदा करनेके लिए, गांधीजी ने कांग्रेसियोंसे खादी, साम्प्रदायिक एकता और अस्पृश्यता-निवारणके तीन-सूत्री कार्यक्रम पर अमल करनेका आग्रह किया और इसे उन्होंने "अहिंसाका व्यावहारिक रूप" बतलाया (पृ० ५८)। गांधीजी का विश्वास था कि "अहिंसात्मक प्रतिरोधकी शक्ति केवल रचनात्मक कार्यक्रमपर ईमानदारीसे अमल करनेसे ही प्राप्त हो सकती है", क्योंकि "अहिंसा तभी तक निभ सकती है जब तक कि वह सजग शारीरिक श्रमसे सम्बद्ध हो और अपने पड़ोसियोंके साथ हमारे रोजाना व्यवहारमें व्यक्त हो" (पृ० १५४)। गांधीजी के मतानुसार, "चरखा और सभी आनुषंगिक साधनोंका पुनरुद्धार" "सहयोगका एक महान प्रयास और सही वयस्क-शिक्षा" है और अहिंसाकी स्पष्ट अभिव्यक्ति है (पृ० ४६२)। अतः उन्होंने कहा कि जब तक उन्हें "देश-भरमें सफल खादी-कार्यका निश्चित प्रमाण नहीं मिल जाता", तब तक वे "सीधी कार्रवाई" आरम्भ नहीं करेंगे (पृ० ३४)।

गांधीजी ने १९०९ में 'हिन्द स्वराज्य' में जिस "प्रेमके कार्यक्रम" का प्रतिपादन किया था, चरखा गांधीजी के लिए उसका अंग बन चुका था। तत्कालीन यूरोपकी

वास्तविक हालतको गहराईसे समझते हुए, गांधीजी ने दलील दी कि यह कल्पना की जा सकती है कि "यूरोपके शहरों, उसके बड़े-बड़े कारखानों और विशाल शस्त्रभण्डारोंका आपसमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि ये एक-दूसरेके बिना टिक नहीं सकते।" गांधीजी इस बातमें विश्वास करते थे कि "अहिंसापर आधारित सभ्यता का लगभग सही नमूना भारतका प्राचीन ग्राम-गणतन्त्र है।" यद्यपि उसमें वैसी अहिंसा नही थी जिसकी उन्होंने "परिभाषा या कल्पना" की थी, पर "वहाँ उसका बीज जरूर था", और उसी बीजसे उन्होंने "अहिंसाकी विधि" का विकास किया था (पृ० ११२)। अतः गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि "जिस देशकी संस्कृति अहिंसाके आधार पर खड़ी हो, उसे स्वभावतः यह जरूरी लगेगा कि वहाँका हर घर यथा-सम्भव अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी हो" (पृ० ५)। कुटीर-उद्योगको प्राथमिकता देनेमें गांधीजी का एक सौन्दर्यपरक तर्क भी था। उनका विचार था कि "मनुष्यरूपी यन्त्र सबसे बढ़िया" है। वे चाहते थे कि "हरएक पुरुष और हरएक स्त्री . . . यह समझ ले कि उसके हाथ और बुद्धिमें कितनी कला भरी हुई है" (पृ० २६८)। उन्होंने कहा कि हमें ग्रामीणों को "जानवरकी स्थितिसे उठाकर मनुष्यकी स्थितिमें लाना है, और यह हम केवल बौद्धिकताका शरीरश्रमके साथ सम्मिश्रण करके ही कर सकते हैं", क्योंकि इसी तरह ग्रामीण "काम करनेसे होनेवाली प्रसन्नताको अनुभव कर सकते हैं" (पृ० ३७८)। किन्तु डॉ० राममनोहर लोहियाके एक प्रश्नके जवाबमें गांधीजी ने कहा कि उनकी "भावी समाज-व्यवस्थामें" "बिजली, जहाज-निर्माण, लोहा-उद्योग, मशीन-निर्माण आदि उद्योग" वर्जित नहीं होंगे, लेकिन "उनमें निर्भरताका क्रम बदल जायेगा" और "औद्योगीकरण गाँवों और दस्तकारियोंकी उन्नतिमें सहायक होगा" (पृ० १५२)।

लोकतान्त्रिक और न्यायोचित समाजके बारेमें गांधीजी के विचार पाश्चात्य समाजवादियोंके विचारोंसे मूलतः भिन्न थे। गांधीजी "समाजवादियोंके इस विचारसे सहमत नहीं" थे कि "जिन्दगीकी जरूरतोंके केन्द्रीकरणसे आम लोगोंका भला होगा, बशर्ते कि केन्द्रीकृत उद्योगोंकी योजना सरकार बनाये और वही उनकी मालिक भी हो।" गांधीजी इस बातको तो मानते थे कि पाश्चात्य समाजवादियोंकी और उनकी धारणाओंका उद्देश्य एक ही है — अर्थात् "सारे समाजकी अधिक-से-अधिक भलाई और . . . घोर विषमताओंका अन्त।" फिर भी, गांधीजी का विश्वास था कि "यह उद्देश्य तभी पूरा किया जा सकता है जब दुनियाके मनीषी अहिंसाको न्यायोचित समाज-व्यवस्थाकी स्थापनाका आधार मान लें।" गांधीजी को इस बातका निश्चय था कि "हिंसा द्वारा श्रमिकोंका सत्ता पर अधिकार अन्तमें नाकाम होकर रहेगा", और उन्होंने यह चेतावनी दी कि "जो लोग जनसाधारण की भावनाओंको उभारते है, वे उन्हें और राष्ट्रीय उद्देश्यको हानि पहुँचाते हैं" (पृ० १५२-५३)। गांधीजी न केवल यह मानते थे कि "अहिंसा, पवित्रता आदि गुण किसी कन्दरामें नहीं बल्कि समाजके बीच पालनेके लिए हैं" (पृ० १६), बल्कि उनका यह भी विचार था कि "ऐसा समाज बन सकता है जो मुख्य रूपसे अहिंसक हो" (पृ० २६२)। गांधीजी ने कहा कि उनकी "अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ोंकी है।" उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि सत्य और

अहिंसा "समुदाय, जाति और राष्ट्रकी नीति हो सकती है" (पृ० २९९)। अगर जनताका भारी बहुमत अहिंसक हो, तो देशका प्रशासन तक अहिंसाके आधारपर चलाया जा सकता है। इस तरह "बहुत बड़े जन-समुदाय द्वारा अहिंसाका प्रयोग विश्व-इतिहासमें एक नया परीक्षण है।" गांधीजी ने दावेके साथ कहा कि यदि वे सफल हुए और भारतका विकास अहिंसात्मक रूपसे हुआ, तो "हमारा प्रजातन्त्र विश्वका सबसे अच्छा प्रजातन्त्र होगा" (पृ० ४४८-४९)। लेकिन गांधीजी इतने विनम्रशील थे कि उन्होंने अपने एक आलोचककी इस उक्तिको स्वीकार कर लिया कि वे "लोगोंको विध्वंसात्मक अवज्ञा" सिखानेमें ही सफल हुए हैं और "अहिंसाकी कठिन कला सिखानेमें सर्वथा विफल" रहे हैं। गांधीजी ने कहा: "मैं तो साधारण मर्त्य जन हूँ। अपने प्रयोग और उस प्रयोगमें अपनी ज्यादा-से-ज्यादा लगनमें मेरा विश्वास है। लेकिन हो सकता है कि मेरी मृत्युके बाद मेरे लिए यही स्मृतिलेख योग्य हो: 'उसने प्रयत्न तो किया, किन्तु सर्वथा विफल रहा'" (पृ० ४५४)।

गांधीजी ने गांधी सेवा-संघको अहिंसाके क्षेत्रमें खोज करनेकी सलाह दी कि "हमें चरखा और उसके इर्द-गिर्दकी प्रवृत्तियोंका अनुसन्धान अहिंसासे करना है और आखिर अंजाममें ईश्वरसे करना है" (पृ० २७९, २९९, ३००)। सच्ची अहिंसाके बारेमें गांधीजी एक कविकी दृष्टि रखते थे, जो उसके अमल और अनुभवोंसे धीरे-धीरे और विकसित तथा उजागर होती गई। उन्होंने कहा: "कोई अहिंसाको सिद्धान्त रूपमें नहीं जानता; वह ईश्वरकी भाँति ही व्याख्यातीत है। किन्तु जैसे ईश्वरकी झलक हमें उसके हमारे बीच और हमारे द्वारा कार्य करते हुए मिलती है, वैसे ही हम इसकी झलक इसके आचरणमें पा जाते हैं।" उन्होंने कहा कि संघके सदस्यका कार्य है कि वह अहिंसाके अर्थकी खोज रचनात्मक कार्योंके सन्दर्भमें करनेके "इस कठिन कार्यमें" वैज्ञानिकोंकी तरह अपनी बुद्धि लगाये (पृ० ३३१)। गांधीजी स्वयं भी "सत्याग्रहके विज्ञानकी खोज और विकास . . . अत्यन्त धीरज" के साथ कर रहे थे। वे अपनी इस खोजसे "नित नया ज्ञान और नित नया प्रकाश पा रहे" थे। वे "अहिंसाके नित-नये चमत्कार देख रहे थे" और "रोज नया दर्शन और नये आनन्द" का अनुभव कर रहे थे। (पृ० २८८ और २९९)। 'हरिजन' में गांधीजी ने लिखा कि "यह दिखानेके लिए प्रयोग करनेमें कि द्वेष नहीं बल्कि प्रेम ही जीवनका सर्वोपरि एवं एकमात्र नियम है", उन्हें "अकथनीय आनन्द" प्राप्त होता है (पृ० ४५९-६०)।

गांधीजी अपने अनुभवसे यह जानते थे कि सच्ची अहिंसा कोई यांत्रिक चीज नहीं है। वह तो हृदयमें महसूस होनी चाहिए। उन्होंने कहा, "आपके हृदयमें अन्यायोंके प्रति प्रेम और दयाका उमड़ता हुआ स्रोत होना चाहिए" (पृ० २६१)। केवल इस तरहका "स्नेहरूपी अमृत ही घृणारूपी जहरको नष्ट कर सकता है" (पृ० ३२०)। परन्तु गांधीजी अपने अनुभवसे यह भी जानते थे कि इस तरहकी अहिंसाको अपने अन्दर विकसित करना कितना कठिन है। उन्होंने स्वीकार किया कि स्वयं उनमें "हिंसा भरी हुई है", क्योंकि उन्हें "गुस्सा आ तो सकता है"। उन्हें अभी ब्रह्मचर्यकी उस पूर्णताको प्राप्त करना है जब किसी बातको सोचने मात्रसे ही

वह हो जाती है, उसके लिए बहस नहीं करनी पड़ती (पृ० ११६)। फिर भी, गांधीजी यह जानते थे कि उन्होंने प्रगति की है। अपने पिछले आन्दोलनोंमें उन्होंने भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तककी यात्रा की थी, और उन्हें "दिन-रात भाषण देना पड़ता था और बहस करनी पड़ती थी"; परन्तु अब "यदि कोई लड़ाई हुई तो विश्वास रखिए कि मैं उसका नेतृत्व सेगाँवसे ही करूँगा।" गांधीजी का विश्वास था कि अहिंसक विचारमें ऐसी ही शक्ति होती है (पृ० ११७)।

एक अंग्रेज सज्जनने कहा था कि सत्याग्रह "केवल सभ्य और भद्र लोगोंपर ही प्रभावकारी होता है।" यह दलील गांधीजी के जीवन-कालमें अक्सर दी जाती थी और उसके बाद भी दी जाती रही है। इसका जवाब देते हुए गाधीजी ने कहा, सच्चा सत्याग्रह इस तरहकी "छुईमुई" नही होता और सभ्य व असभ्यके बीचकी विभाजन-रेखा बहुत ही पतली होती है। "आवेशमें आकर दोनों एक-सा व्यवहार करते हैं" (पृ० २३४-३५)।

एक अंग्रेज पत्र-लेखकने लिखा था कि उन्हें "जीवनके बारेमें नाजियोंके वर्तमान दृष्टिकोण" से नफरत है और भय लगता है। गांधीजी ने उन्हें उत्तर देते हुए मानव-स्वभावमें अपनी आस्था फिर दुहराई और कहा, "मेरा खयाल है कि मैं आपके और अपने बीचके अन्तरको समझ पा रहा हूँ। आप, पाश्चात्य होनेके नाते, बुद्धिको श्रद्धाके अधीन नहीं कर सकते। मैं, भारतीय होनेके नाते, यदि चाहूँ तो भी श्रद्धाको बुद्धिके अधीन नहीं कर सकता" (पृ० ४३-४४)। एक और अंग्रेजने गांधीजी से अपील की कि आपको "समस्त विश्वका आह्वान करके यह बताना चाहिए कि मनुष्यके लिए युद्ध और विनाशके इस पागलपन-भरे खेलसे कोई श्रेष्ठतर मार्ग भी है।" गांधीजी ने उन्हें विनम्रताके साथ उत्तर दिया : "लेकिन मैं हूँ कौन? जितनी शक्ति मुझे ईश्वर देता है उसके अतिरिक्त मुझमें और कोई शक्ति नही है . . .। हमें उसका और उसके नियमका एक धुँधला-सा ही बोध है। लेकिन उस नियमकी हलकी-सी झाँकी भी मुझे आनन्द और आशा तथा भविष्यके प्रति आस्थासे भर देनेके लिए पर्याप्त है" (पृ० ११ और १३)। गांधीजी ने एक ईसाई मिशनरीसे कहा, वही नियम हर चीजको शासित कर रहा है, और मनुष्यको जो स्वतन्त्र संकल्प-शक्ति प्राप्त है, वह "किसी खचाखच-भरे जहाजके यात्रियोंकी अपनी इच्छानुसार बरतनेकी स्वतन्त्रतासे भी कम है।" परन्तु उस थोड़ी-सी स्वतन्त्रताकी भी वे कद्र करते थे, क्योंकि उन्होंने "'गीता' की मुख्य शिक्षा" को हृदयंगम कर लिया था कि "मनुष्य अपना भाग्य-निर्माता स्वयं है" और कर्मके फलमें आसक्ति रखे बिना अपना कर्तव्य करते हुए पूर्ण स्वतन्त्रताकी दिशामें प्रगति कर सकता है (पृ० ३६२)।

सी० एफ० एन्ड्रयूजको, जिनका ४ अप्रैलको कलकत्तामें देहान्त हो गया, अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि देते हुए गांधीजी ने कहा : ". . . चार्ली एन्ड्रयूज महानतम और श्रेष्ठतम अंग्रेजोंमें से थे। और चूँकि वे इंग्लैंडके एक अच्छे सपूत थे, इसलिए वे भारतके भी सपूत बन सके। और यह सब उन्होंने मानवताके हित और अपने प्रभु ईसा मसीहकी खातिर किया" (पृ० ४४४)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओंके आभारी हैं:

संस्थाएँ: साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार और नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली; भारत कला भवन, वाराणसी; विश्वभारती पुस्तकालय, कलकत्ता और इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन।

व्यक्ति: श्रीमती अमृत कौर; श्री आनन्द तो० हिंगोरानी, इलाहाबाद; श्री ए० के० सेन, कलकत्ता; श्री कनुभाई मशरूवाला, अकोला; श्री कान्ति गांधी, बम्बई; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण जे० सम्पत; श्री नारायण देसाई, वाराणसी; श्री प्यारेलाल, नई दिल्ली; श्री पृथ्वीसिंह, लालरू, पंजाब; श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, सासवड़; श्री बनारसीलाल बजाज; श्री बालकृष्ण भावे; श्रीमती मनुबहन मशरूवाला, अकोला; श्रीमती मीराबहन, गाडेन, आस्ट्रिया; श्री मुन्नालाल जी० शाह; श्रीमती लीलावती आसर, बम्बई; श्री वल्लभराम वैद्य; श्री वालजी गो० देसाई, पूना; श्रीमती विजया एम० पंचोली; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; श्रीमती शारदाबहन गो० चोखावाला, सूरत और श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर।

पुस्तकें: '(द) इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४०', खण्ड–१; 'गांधीजी और राजस्थान', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो: २–सरदार वल्लभभाईने', 'बापुना पत्रो: ४–मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापूज लेटर्स टु मीरा', 'बापू: मैंने क्या देखा क्या समझा?', 'माई डियर चाइल्ड', 'माई पोलिटिकल मेमोयर्ज़ और ऑटोबायॉग्राफी', 'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', खण्ड–५ और 'रवीन्द्रनाथ ओ सुभाषचन्द्र'।

पत्र-पत्रिकाएँ: 'अमृत बाजार पत्रिका', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हितवाद', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कांउसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान तथा सन्दर्भ विभाग और श्री प्यारेलाल, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, उनका हमने मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है, वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें आवश्यकतानुसार मास तथा वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधार पर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

चित्र-सूची

१. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

सेगाँव, वर्धा
१ दिसम्बर, १९३९

भाई संपूर्णानन्दजी,

आपका खत कल ही पूरा पढ़ सका। इतना कामोमें फस गया हूं।

प्रधानोंके इस्तीफामें मेरा अग्रभाग लेना मेरे लिये बड़ा त्याग था।[1] कई चीजें प्रधान कर रहे थे जिससे देशकी शक्ति बढ रही थी, लेकिन जब स्वतंत्रता खतरेमें पड़ी तो मैंने सब मोह छोड़ दिये। उसमें नयी तालीम थी और उसमें आपका प्रयोग। मेरी [आशा][2] तो [है] कि आप [मन्त्रिमण्डलके] बाहर [भी र][3]हे तो भी प्रयोग ठीक चलता रहेगा। खां साहेब बड़े उत्साही शिक्षक हैं।

हां समाजवादकी बात तो रह ही गई। अब तो मेरे प्रश्न भी मैं भूल सा गया हूं।

आपका,
मो० क० गांधी

मूल पत्रसे : सम्पूर्णानन्द कलेक्शन; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

२. तार : एगथा हैरिसनको

वर्धा
२ दिसम्बर, १९३९

एगथा हैरिसन
२ क्रैनबोर्न कोर्ट
एलबर्ट ब्रिज रोड
लन्दन

यदि गैर-सरकारी तौरपर सही ढंगके लोग आते है तो उन्हें कांग्रेसका पूरा सहयोग मिलेगा। भारी गलतफहमी। साम्राज्यवाद मरा

१. प्रान्तोंके कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके त्यागपत्र-सम्बन्धी कांग्रेस कार्य-समितिके २२ अक्तूबर, १९३९ के प्रस्तावके लिए देखिए खण्ड ७०, परिशिष्ट १३।

२ और ३. मूलमें यहाँ लिखावट मिट गई है।

नही है। स्वतन्त्रताकी स्पष्ट घोषणाके बिना कोई प्रगति सम्भव नही। एन्ड्रचूज[1] यहीं हैं। स्नेह।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१३) से

३. पत्र: अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
सोने जानेसे पहले, २ दिसम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

यह क्या है?[2] इसमें क्या कर सकता हूँ? मगर कोई जवाब तो देना ही है। यह काम तुम करोगी क्या?

तीसरे पहर मैंने एक पत्र लिखा। आशा है, तुम यह उदासी छोड़कर गुनगुनाना शुरू कर दोगी। जरा अपनी नियामतें तो गिनो। गिनने लगोगी तो, मैं तो कहता हूँ, तुमसे गिनी ही नही जायेंगी। असंख्य हैं वे। मेरी बातका यकीन न हो तो गिनने की कोशिश करके देखो।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५२) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ७२६१ से भी

१. सी० एफ० एन्ड्रयूज

२. वाई० डब्ल्यू० सी० ए० (युवा महिला ईसाई संघ) की राष्ट्रीय समितिने गांधीजी से एमिली किनैर्डके नाम पर, जो पिछले पचास वर्षोंसे भारतमें स्त्री-कल्याणके लिए कार्य कर रही थीं, एक जयन्ती-कोष आरम्भ करनेका अनुरोध किया था।

४. पत्र : के० श्रीनिवासनको

सेगाँव, वर्धा
३ दिसम्बर, १९३९

प्रिय श्रीनिवासन[1],

'हिन्दू' की हीरक जयन्तीके अवसरपर मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें। 'हिन्दू' निस्सन्देह भारतके श्रेष्ठतम समाचारपत्रोंमें से है। मेरी यही कामना है कि यह अपने अतीतकी गौरवमय परम्पराको आगे भी कायम रखे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ७-१२-१९३९

५. पत्र : मदालसाको

सेगाँव
३ दिसम्बर, १९३९

चि० मदालसा[2],

तूने छोटा किन्तु सुन्दर पत्र लिखा है। तूने जानकीबहन[3] की चिन्ता करना छोड़ दिया, यह अच्छा हुआ। खूब आनन्दपूर्वक रहते हुए अपना स्वास्थ्य उत्तम बनाना। श्रीमन्[4] जैसे पतिको पाकर तुझे, उसे और जमनालालको गौरवान्वित करना है। बहुत पुण्य (करने)से ही श्रीमन् जैसा पति मिलता है। भगवान तुझे जल्दी स्वस्थ करे।

बापूके आशीर्वाद

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३१८ और ३१९ के बीचकी गुजरातीकी अनुकृतिसे

१. हिन्दू के सम्पादक
२. जमनालाल बजाजकी दूसरी पुत्री
३. मदालसाकी माता
४. श्रीमन्नारायण

६. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेगाँव, वर्धा
३ दिसम्बर, १९३९

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला था। तुम और ५० वर्ष जियो और अपने शुभ संकल्प पूरे करो। निराश कभी मत होना। वहाँ शान्तिपूर्वक रहते हुए अपनी तबियत सुधारना। यहाँ ठीक चल रहा है। कमलनयन[1] आया था, बहुत देर तक बात करता रहा। लगता है रामकृष्णका[2] मन अध्ययनमें लगा हुआ है। ओम[3] मौज कर रही है। श्रीमन्‌का तो पूछना ही क्या? अपने कर्तव्यमें रत रहता है। राजाजी आज आ गये। एन्ड्रयूज यही हैं। डा० जाकिर हुसैन आज आनेवाले हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००६) से

७. इसका मर्म

जो लोग यह मानते हैं कि भारत केवल अहिंसाके बलपर ही स्वतन्त्र हो सकता है, वे निश्चय ही यह भी मानेंगे कि आम जनता सामूहिक रूपसे अहिंसाका पालन तभी कर सकती है जब कि वह देशके निमित्त ज्ञानपूर्वक किसी उपयोगी काममें लगी रहे। वह कौन-सा काम है जिसे हर आदमी बिना किसी खास पूँजीके आसानीसे कर सकता है और जिसे करनेसे मनको शान्ति और शीतलता प्राप्त हो सके? इसका स्पष्ट उत्तर होगा, हाथ-कताई और उससे सम्बन्धित दूसरी पूर्व-क्रियाएँ। और यह है भी अपने देशकी मिट्टीकी चीज। करोड़ों आदमी यह काम आसानीसे कर सकते हैं और इससे होनेवाला उत्पादन चलते सिक्केके समान है। यदि मिलें न हों तो सूत उतना ही कीमती हो जितना कि, उदाहरणके लिए, घी है। सूतके अकालको लोग उतना ही अनुभव करेंगे जितना मुख्य खाद्यान्नोंके अकालको। यदि लोगोंमें इच्छा हो तो वे अपनी जरूरतके कपड़े बिना किसी खास मेहनतके तैयार कर सकते हैं।

१. जमनालालजीके ज्येष्ठ पुत्र
२. जमनालालजीके कनिष्ठ पुत्र
३. उमादेवी, जमनालालजी की सबसे छोटी पुत्री

यूरोपीय देशोंमें, जहाँ युद्ध एक मान्य नियम है, वयस्क पुरुषोंको एक खास अवधिके लिए सैनिक सेवाके लिए अनिवार्य रूपसे भरती किया जाता है। जो देश युद्धकी तैयारीके बिना अपनी रक्षा और अपने जीवन-व्यापारका नियमन करना चाहता है, उसके लोगोंको स्वभावत. किसी उत्पादक राष्ट्रीय सेवामे नियुक्त करना होगा। यदि किसी देशकी अहम जरूरतोंकी चीजें केन्द्रीकृत उद्योग द्वारा तैयार की जाती हैं तो जिस प्रकार पूंजीपति अपने खजानेकी रक्षा करता है उसी प्रकार उस देशको भी उन चीजोंकी रक्षा करना जरूरी मालूम होगा। जिस देशकी संस्कृति अहिंसाके आधारपर खड़ी हो उसे स्वभावतः यह जरूरी लगेगा कि वहाँका हर घर यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्वावलम्बी हो। किसी समय भारतीय समाजका ढाँचा अहिंसाके आधारपर खड़ा था, यद्यपि लोगोंको इस तथ्यका कोई बोध नही था। समय-समयपर बर्बर जातियाँ जो हमले करती रहती थी उनका घरेलू जीवन, अर्थात् ग्राम-जीवनपर कोई असर नही पड़ता था। मेन[1]ने यह दिखाया है कि भारतके गाँव गणतन्त्रोंके समूह थे। उनमें कोई भद्र जन नही थे, या दूसरी तरहसे कहें तो सबके सब भद्र जन ही थे।

यदि कांग्रेसी इस दलीलको स्वीकार नहीं करते तो मैं ऐसी अहिंसाको प्रतिष्ठित करना असम्भव मानता हूँ जिसपर किसी प्रकारके प्रलोभनका कोई असर न हो पाये और जो चाहे जैसी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी अपनी टेकपर कायम रह सके। ऐसी अहिंसाके बिना देश वह मोर्चा नही ले सकता जिसमें न पीछे हटा जाता है और न कभी हार होती है। ऐसी अहिंसाके बिना कांग्रेस अंग्रेजों और दुनिया के सामने अपने अहिंसक इरादे साबित नही कर सकती।

कांग्रेसकी अहिंसा जिस तरह शासकोंके लिए है उसी तरह उन सब लोगोंके लिए भी है जो इस महान सस्थासे डरते है, या इसका अविश्वास करते है, अथवा इससे घृणा करते है। मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नही है कि ऐसी व्यापक अहिंसाके अभावके कारण ही हम साम्प्रदायिक एकता हासिल नही कर पाये है। सच तो यह है कि अपने आपसी व्यवहारमें भी कांग्रेसी उस जीवन्त अहिंसाका परिचय नही दे पाये हैं। और मैं तो अनिवार्यतः इसी निष्कर्षपर पहुँचता हूँ कि जितनी कमी हमारे खादी कार्यक्रममें रह गई है उतनी ही कमी हमारी अहिंसामें भी रह गई है। दोनोंमें से प्रत्येकमे हमारी श्रद्धा अधूरी रही है। मैं दोनोमें पूरी श्रद्धा रखनेका अनुरोध करता हूँ। फिर तो कांग्रेस ऐसी अजेय बन जायेगी कि सम्भव है, भारतकी आजादी हासिल करनेके लिए उसे सविनय अवज्ञाकी आँचमें से न गुजरना पड़े।

अब इस पृष्ठभूमिको ध्यानमें रखकर कांग्रेसी लोग (अन्यत्र दी जा रही) इस तालिकाका[2] सावधानीसे अध्ययन करें। यह तालिका मेरे लिए श्री कृष्णदास

१. सर हेनरी सम्नर मेन, विलेज कम्युनिटीज इन द ईस्ट ऐण्ड वेस्ट पुस्तकके लेखक

२. "खादी फिगर्स" ("खादी-सम्बन्धी आँकड़े") शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित; यहाँ नहीं दी गई है।

गांधी[1] ने तैयार की है, जो उन चन्द खादी-विशेषज्ञोंमें से हैं जिन्होंने खादीके सभी पहलुओंको ध्यानमें रखकर उसका अध्ययन किया है। इन आँकड़ोंका अध्ययन खादी-प्रेमियोंको दिलचस्प लगेगा। ये आँकड़े एक मोटे अन्दाजेसे दिये गये हैं और कृष्णदासके अनुभवपर आधारित हैं। घटिया दर्जेकी कपास होनेपर इनमें अन्तर आयेंगे। लेकिन कामचलाऊ तालिकाके रूपमें आँकड़े काफी अच्छे हैं। जो लोग पूरी तालिका पढ़नेकी तकलीफ उठाना नहीं चाहते वे सिर्फ १४ अंकवाले आँकड़े ही देख लें। इसमें वे देखेंगे कि यज्ञार्थ कातनेवालेकी खादीपर प्रति वर्गगज ३ आनेसे कुछ कम ही खर्च बैठता है। मैं यह मानकर चला हूँ कि प्रत्येक कांग्रेसी प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटे तक तो कताई करेगा ही। एक नौसिखियेको भी ३० मिनटमें १०० गज कात सकना चाहिए। बहुत-से लोग तो इतने ही समयमें २०० गज कात लेते हैं। मान लीजिए यज्ञार्थ कातनेवाले हर आदमीको प्रति वर्ष २० गज कपड़ेकी जरूरत है तो उस हालतमें उसे प्रतिदिन अधिकसे-अधिक एक घंटा कातनेकी जरूरत पड़ेगी। इस प्रकार प्रति व्यक्ति २० गज कपड़ेके हिसाबसे सारे भारतके लोगोंको कपड़ा जुटाना हो तो उसके लिए पर्याप्त सूत तैयार करनेके लिए देशकी आबादीके पंचमांश को प्रतिदिन अधिकसे-अधिक पाँच घंटे कातना होगा। मौजूदा औसत प्रति व्यक्ति १५ गज बताया जाता है। कार्यकुशलता बढ़ाकर कामके घंटोंमें काफी कमी की जा सकती है। मैं मानता हूँ कि खादीके ऐसे बिखरे उत्पादनके लिए बहुत ही कम प्रयत्न और खर्चकी जरूरत है। इसका मतलब है स्वेच्छापर आधारित ऐसा व्यापक सहयोग जैसा आज तक संसारमें कभी कहीं नहीं देखनेमें आया है। यदि अपेक्षित संकल्प हो तो इस योजनाको पूरी तरह क्रियान्वित किया जा सकता है। चाहे जो हो, मैं तो हर कांग्रेसीसे यह आशा रखता हूँ कि उससे जितना बन सके उतना सूत ज्ञानपूर्वक कातनेके लिए पूरी कोशिश करे और साथ ही अपने पड़ोसियोंके बीच खादीकी बिक्रीकी व्यवस्था करनेके लिए भी कुछ उठा नहीं रखे। और उसे यह काम इस विश्वासके साथ करना चाहिए कि इस तरह वह देशके स्वराज्यकी तैयारीमें अपनी ओर से यथेष्ट योगदान कर रहा है।

सेगाँव, ४ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-१२-१९३९

१. छगनलाल गांधीके पुत्र

८. वक्तव्य : 'न्यूज क्रॉनिकल' को[1]

सेगाँव
४ दिसम्बर, १९३९

खबर है, श्री चैम्बरलेन[2] ने कहा है कि "अगर साम्राज्यवादका मतलब अपनी जातीय श्रेष्ठताका रोब जमाना, दूसरे राष्ट्रोंकी राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रताका गला घोटना और अन्य देशोंकी शक्ति और साधनोंका उपयोग अपने लाभके लिए करना है, तो मैं कहता हूँ कि हमारे देशकी ये विशेषताएँ नहीं हैं।" यह बात सुननेमें तो बड़ी मीठी लगती है, लेकिन तथ्योंसे इसका मेल नहीं बैठता। ब्रिटिश उपनिवेश संसारकी तथाकथित असभ्य जातियोंका जो शोषण करते हैं उसको हम अलग रखें तो भी कीनियामें अपनाई गई नीति, जंजीबारमें चल रहे लौंगके व्यापार और ओटावा करारसे ऐसा तो नहीं लगता कि साम्राज्यवादी भावना मिट चुकी है। और खुद भारतका ही उदाहरण लीजिए। भारतीय नरेशोंपर ब्रिटेनकी अधीश्वरी सत्ता क्या साम्राज्यवादके मिटनेका चिह्न है? सच तो यह है कि यह प्रारम्भिक लोकतन्त्रसे भी मेल नहीं खाती। नरेशोंको कोई भारतकी भलाईको दृष्टिमें रखकर बनाया-मिटाया नहीं जाता है। इस अधीश्वरी सत्ताके कारण करोड़ों भारतीयोंको विशुद्ध स्वेच्छाचारी तन्त्रके अधीन जीना पड़ता है।

और यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती कि भारतके विषयमें अंग्रेजोंका इरादा[3] मुसलमानों, हिन्दुओं या किसी अन्य समुदायके मतपर निर्भर क्यों हो। महत्त्व तो दरअसल केवल भारतके मतका है — कांग्रेसके मतका भी नहीं। और भारतका मत क्या है, यह तो केवल यहाँके लोगोंसे स्वतन्त्र रूपसे मतदान कराकर ही जाना जा सकता है। एकमात्र सच्चा और लोकतान्त्रिक तरीका यह है कि वयस्क मताधिकार या इससे मिलती-जुलती जो भी व्यवस्था सम्बन्धित पक्षोंको मंजूर हो उसके आधारपर जनताकी इच्छाका पता लगाया जाये। जहाँ तक कांग्रेसका सम्बन्ध है, वह यह चाहेगी कि देशी राज्योंकी प्रजाके प्रतिनिधि ठीक उसी पद्धतिसे चुने जायें जिस पद्धतिसे ब्रिटिश भारतकी जनताके प्रतिनिधि चुने जायें। मुसलमानों और अन्य स्वीकृत अल्पसंख्यक समुदायोंके प्रतिनिधित्वके लिए जरूरी हो तो पृथक निर्वाचक-मण्डलकी व्यवस्था की जाये और उन्हें प्रतिनिधित्व

१. तारसे लन्दन भेजा गया यह वक्तव्य **हरिजन** में "प्योरली मॉरल इशू" ("विशुद्ध नैतिक प्रश्न") शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

२. नेविल चैम्बरलेन, ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री

३. कांग्रेसकी इस माँगके लिए कि ब्रिटेन अपने युद्धके उद्देश्योंकी, विशेषकर भारतके सन्दर्भमें, घोषणा करे और एक संविधान-सभाकी रचना करे; देखिए खण्ड ७०, परिशिष्ट १० और ११।

अपनी-अपनी संख्याके अनुपातसे मिले। वही तय करेंगे कि उनकी सुरक्षाके लिए क्या-कुछ जरूरी है। जिन बातोंका सम्बन्ध सबके हितोंसे हो उनके सम्बन्धमें मिले-जुले बहुमतके निर्णयको मान्य किया जाये। यदि जनेच्छाको जाननेके लिए संविधान सभा[1]से कोई अधिक अच्छा रास्ता मिल सके तो, जहाँ तक मैं जानता हूँ, कांग्रेस उसे बेहिचक स्वीकार करेगी। न तो देशका विशाल आकार और न जनसाधारणकी निरक्षरता ही वयस्क मताधिकारके रास्तेमें रुकावट होनी चाहिए। चुनाव-अभियानसे ही लोगोंको इस दृष्टिसे काफी शिक्षा मिल जायेगी कि उनके मतोंके आधारपर हम जनताकी इच्छाकी एक मोटी जानकारी पा सकेंगे।

भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश नीतिकी घोषणा एक विशुद्ध नैतिक प्रश्न है, क्योंकि स्वतन्त्रताप्रिय भारतमें सशस्त्र विद्रोह करनेकी न तो इच्छा ही है और न क्षमता ही। फिर भी, अपने बारेमें ब्रिटेनकी इच्छा जाननेका उसे अधिकार है। मैं जानता हूँ कि भारतके साथ एक अधीन राष्ट्रकी तरह व्यवहार करते हुए इंग्लैंड उससे अपने लाभके लिए पैसा और आदमी तो पा सकता है, लेकिन नैतिक समर्थन तो उसे अपनी स्वतन्त्रताके प्रति जागरूक भारतसे ही मिल सकता है। अनेक व्यक्तिगत सम्बन्धो से बँधे इंग्लैंडके एक मित्रकी हैसियतसे, मेरी यह उत्कट इच्छा है कि वह इस युद्धमें विजयी हो, लेकिन वह विजय उसे शस्त्रास्त्रोंके प्रयोगमें दूसरोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण नहीं, बल्कि न्यायके मार्गपर सदा दृढ़ रहनेकी उसकी टेकके कारण मिले। तब उसे संसारके उन करोड़ों लोगोंकी सच्ची मित्रता और सहानुभूति प्राप्त होगी जो कीमती जिन्दगीके मनमाने विनाशसे और दूसरोंपर प्रभुत्व जमानेकी लिप्सा और लालसाको गर्म रखनेके लिए फैलाये जा रहे झूठसे ऊब गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-१२-१९३९, और हिन्दू, ७-१२-१९३९

९. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
४ दिसम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

न कल तुम्हारा कोई पत्र आया और न आज। हमारे यहाँ अब टेलीफोन लग गया है। म[हादेव] कल आया। डा० जाकिर हिन्दू-मुस्लिम समस्याके सम्बन्धमें कल रात आये। मैंने ही उनसे आनेको कहा था।

राजाजी यहीं हैं।

1. देखिए पाद-टिप्पणी ३, पृ० ७।

टैम्पलिन[1] पर लिखा तुम्हारा लेख छापा जा रहा है।

पृथ्वीसिंह कल वर्मा, अपने घर, के लिए रवाना हो गये।

रोगियोंकी हालतमें सुधार है।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६३) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ६४७२ से भी

१०. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

सेगाँव, वर्धा
४ दिसम्बर, १९३९

चि० शान्तिकुमार,

यदि बरामदेका कब्जा खादीके कामके लिए श्री छगनलाल जोशीको दे देया जाये, तो यह मेरे मनकी बात होगी। छगनलाल पुराने आश्रमवासी हैं।

राज्यकी उदासीनता वाला प्रकरण दुःखद है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७३०) से; सौजन्य: शान्तिकुमार मोरारजी

१. "हाई कमाड ऑफ द चर्च इन इंडिया" ने टैम्पलिनपर यह आरोप लगाया था कि उन्ने वह प्रतिज्ञा तोड दी है जो अमेरिकी मिशनरियोंको भारत आनेसे पहले लेनी पडती है और कहा था कि वह भारतसे चला जाये। वाइसरायके नाम लिखे एक खुले पत्रमें उसने साम्राज्यवादकी भर्त्सना की थी तथा भारतीयोंकी स्वतन्त्रताकी आकांक्षाको सही बताया था। मिशनरियोंकी संकीर्ण मनोवृत्तिकी निन्दा करते हुए अमृत कौरने ईसाइयोंसे अपील की थी कि वे सच्ची बात कहनेवाले टैम्पलिनका समर्थन करें। यह अपील "क्रिश्चियन्स ड्यूटी" शीर्षकसे ९-१२-१९३९ के *हरिजन* में प्रकाशित हुई थी।

११. पत्र : सरस्वती गांधीको

सेगाँव, वर्धा
४ दिसम्बर, १९३९

चि० सरु,

तेरा खत मिला। प्रसवके बारेमें हिम्मत रखती होगी। ईश्वर पर आधार रखना। काती[1] मुझको खत नहिं लिखता है। उसकी खबर आती रहती है। ईससे संतोष है। मुझे तो तुमारा दोंनोंका कल्याण ही चाहीये। और क्या? 'बा लक्ष्मी[2] बीमार होनेसे दिल्ली गई है। कनु[3] आज राजकोट जाता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७८) से। सी० डब्ल्यू० ३४५२ से भी; सौजन्य: कान्तिलाल गांधी

१२. ईश्वराधीन

प्रिय मित्र,

मैं आपके लिए अपरिचित हूँ, लेकिन १९३१ में जब आप डार्वेन (लंकाशायर)की ग्रीनफील्ड मिल देखने आये थे उस समय आपके स्वागतका आयोजन करनेवालोंमें मेरी पत्नी और मैं भी शामिल थे और इस तरह हमें लगभग आपका मेजबान होनेका सौभाग्य मिल चुका है। . . .

इस युद्धके प्रारम्भिक दिनोंमें 'हरिजन'[4] में लिखे आपके लेखोंको मैंने बड़ी रुचिसे पढ़ा और काफी प्रेरणा ग्रहण की। इस संकटापन्न समयमें उन्हें पढ़कर मुझे बड़ी सहायता और राहत प्राप्त हुई। आपने लिखा है: "यदि मेरे अपने देशको हिंसाके द्वारा स्वतन्त्रता मिलना सम्भव हो, तो भी मैं स्वयं उसे हिंसासे प्राप्त नहीं करूँगा। 'तलवारसे जो मिलता है, वह तलवारसे लिया भी जाता है' इस सुभाषितमें मेरा अचल विश्वास है।" बहुत

१. हरिलाल गांधीका पुत्र तथा सरस्वती गांधीका पति
२. देवदास गांधीकी पत्नी
३. नारणदास गांधीका छोटा पुत्र
४. देखिए खण्ड ७०, पृ० १४१।

एगथा हैरिसनको अपने विचार बतानेके बाद मैं आपको यह पत्र लिखने और यह बतानेका साहस कर रहा हूँ कि युद्धके इन प्रारम्भिक वेदनाप्रद सप्ताहोंके दौरान मेरे मनमें कैसा तूफान उमड़ता रहा है। . . .

. . . मेरे मनमें अकसर यह विचार आया है कि क्या वह समय नहीं आ गया है जब आप-जैसे जाने-माने आध्यात्मिक महापुरुष और नेताको समस्त विश्वका आह्वान करके यह बताना चाहिए कि मनुष्यके लिए युद्ध और विनाशके इस पागलपन-भरे खेलसे कोई श्रेष्ठतर मार्ग भी है और वह श्रेष्ठतर मार्ग केवल आपसी विवादोंके निबटारेके लिए ही नहीं है, बल्कि वह इससे भी महत्त्वपूर्ण है। उस मार्गको अपनाकर बुराईका भी प्रतिरोध किया जा सकता है और राजनीतिक लक्ष्य भी प्राप्त किये जा सकते हैं। . . . मुझे लगता है कि आप-जैसा आध्यात्मिक पुरुष यदि पीड़ित और दलित व्यक्तियों अथवा राष्ट्रोंके उद्धारके लिए संसारको युद्धसे श्रेष्ठतर मार्गपर अग्रसर होनेको प्रेरित करे तो उससे उन बहुत-से लोगोंको बड़ा बल मिलेगा जो आज एक नैतिक विचिकित्साकी स्थितिमें हैं। इस विचिकित्साकी स्थितिके कारण आज आध्यात्मिक शक्तियाँ पंगु और व्यर्थ बनकर रह गई हैं, या फिर सभ्यता और स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए अथवा हिटलरशाहीके विरुद्ध हिटलरशाही तरीकोंका ही सफल प्रयोग करके उसे नष्ट करनेके नकारात्मक उद्देश्यके लिए चलाये जा रहे धर्मयुद्धमें लोगोंको उत्साह और प्रेरणा देनेके लिए उन शक्तियोंका दुरुपयोग किया जा रहा है। यदि आप आगे बढ़कर दुनियाको वह श्रेष्ठतर मार्ग बतायें तो ये शक्तियाँ इस कैदसे मुक्त हो सकती हैं। . . .

इस युद्ध-जनित व्यथा और निराशामें अपने हृदयका क्रन्दन मैं आपके आगे रख रहा हूँ। मैंने देखा है कि जर्मन जातिमें कितने सद्गुण हैं। वहाँके नौजवानोंकी आत्मोत्सर्गकी भावनासे मुझे प्रेम है। लेकिन मैंने इस जातिकी बुराईको भी उतने ही निकटसे देखा है, क्योंकि मैंने उनसे त्रस्त लोगोंको सहायता देनेकी कोशिश की है। मैंने एक नाजी जेलकी यातना भी देखी है और मैं मानता हूँ कि अपनी इस यातनाके द्वारा जर्मनीके नौजवानों और स्वयं अपने देशको सहायता देनेके एक ऐसे मार्गके दर्शन किये हैं जो लाखों लोगोंको एक दूसरेके प्राणोंके गाहक बना देनेवाले इस मार्गसे जिसका हम अब अनुसरण करनेवाले हैं, अधिक उदात्त और श्रेष्ठ है। मेरे विचारसे, हम आज जिस बुराईके गर्तमें अधिकाधिक धँसते जा रहे हैं उससे निकलनेका मार्ग पानेके लिए आज दुनियाके बहुत-से लोग लालायित हैं। लेकिन अगर हम जल्दी ही नहीं उबरे तो शायद उबरनेका अवसर ही कभी नहीं आ पायेगा।

शायद केवल आप ही इसमें हमारी सहायता कर सकते हैं। मैं बहुत ही चिन्तित भावसे आपको लिख रहा हूँ और आपसे यह बिनती कर रहा हूँ कि आप तनिक विचार करें कि क्या यह दायित्व आपको ही सौंपना उचित नहीं होगा।

आदर और प्रेम-सहित,

आपका सच्चा मित्र,
कॉर्डर कैचपूल

४९, पार्लियामेंट हिल
लन्दन, एन० डब्ल्यू० ३

मैं जानता हूँ कि यह पत्र[1] उन अनेक अंग्रेजोंके रुखको प्रतिबिम्बित करता है जो मुझसे श्रेष्ठतर मार्ग दिखानेकी आशा रखते हैं। मेरी ७०वीं वर्षगाँठपर सर राधाकृष्णन्‌ने मेरी प्रशस्तियोंका जो संग्रह[2] तैयार किया है उससे हजारों शान्ति-प्रेमियों की आशा और भी प्रबल हो उठी है। लेकिन मुझे मालूम है कि इस आशाको पूरा करनेका मैं कैसा अक्षम साधन हूँ। प्रशंसकोंने मुझे ऐसे श्रेय दिये हैं जिनका मैं सचमुच पात्र नहीं हूँ। मैं यह कहनेकी स्थितिमें नहीं हूँ कि भारतने संसारके सामने सबलकी अहिंसाका अच्छा उदाहरण पेश किया है और इसलिए वह अहिंसा आक्रमणकारीके सशस्त्र प्रतिरोधका विकल्प बन सकती है। हाँ, यह सच है कि दुर्बलके हथियारके रूपमें निष्क्रिय अहिंसाकी कार्यसाधक क्षमता भारतने दिखा दी है। यह अहिंसा आतंकवादके विकल्पके रूपमें भले ही उपयोगी हो, लेकिन मैं इसके लिए किसी नवीनता या विशिष्ट गुणका दावा नहीं करता। यह शान्ति-आन्दोलनमें कोई योगदान नहीं है।

यदि कांग्रेसकी माँगका मेरा समर्थन करना पत्र-लेखकको उनके द्वारा उद्धृत मेरे पहलेके लेखके अंशके विरुद्ध जान पड़ता है तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। लेकिन वास्तवमें दोनोंमें कोई पारस्परिक विरोध नहीं है। पहलेकी ही तरह आज भी मैं अहिंसाकी कीमतपर स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं चाहूँगा। इसपर आलोचक यह जवाब दे सकते हैं कि अगर ब्रिटिश सरकार अपेक्षित घोषणा कर दे तब तो मैं मित्र-राष्ट्रोंकी मदद करने लगूँगा, जिसका मतलब हिंसामें हाथ बँटाना होगा। वह जवाब उचित हो सकता है, लेकिन तभी जब इस तथ्यका खयाल न किया जाये कि ब्रिटेन कांग्रेससे जो अतिरिक्त सहायता प्राप्त करेगा वह नैतिक सहायता ही होगी। कांग्रेस न तो पैसेकी मदद देगी और न आदमी की। नैतिक प्रभावका उपयोग शान्तिके पक्षमें किया जायेगा। इन स्तम्भोंमें मैं पहले भी कह चुका हूँ कि मेरी अहिंसा यह मानकर अवश्य चलती है कि हिंसाकी दो अलग-अलग किस्में हैं— रक्षात्मक हिंसा और आक्रामक हिंसा। यह सच है कि अन्तमें यह भेद तिरोहित हो जाता है, लेकिन प्रारम्भवाला गुण तो कायम ही रहता है। अवसर आनेपर अहिंसक आदमीका यह कहना कर्त्तव्य

१. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये गये हैं।
२. इस संग्रहके प्रति गांधीजी के कृतज्ञता-प्रकाशनके लिए देखिए खण्ड ७०, पृ० २४४-५।

होता है कि कौन-सा पक्ष न्यायपर है। उदाहरणके लिए, मैंने अबीसीनियाइयों,[1] स्पेनियों,[2] चेकों,[3] चीनियों[4] और पोलों[5] की सफलताकी कामना की, यद्यपि प्रत्येककी सफलताकी कामना करते हुए मैंने यह अवश्य कहा कि अगर उन्होंने अहिंसात्मक प्रतिरोध किया होता तो अच्छा होता। मौजूदा उदाहरणमें, श्री चैम्बरलेनने जिन ऊँचे सिद्धान्तोंकी दुहाई दी है उनके आधारपर अगर कांग्रेस ब्रिटेनके पक्षका औचित्य दिखा सकती तो स्वतन्त्र घोषित किया गया भारत निश्चय ही अपना नैतिक प्रभाव शान्तिके पक्षमें डालता। मैं जो भूमिका निभा रहा हूँ वह मेरी दृष्टिमें विशुद्ध रूपसे अहिंसक है। कांग्रेसकी माँगके पीछे सौदेबाजीकी कोई भावना नहीं है। उसकी माँग भी अपने-आपमें पूर्णतः नैतिक है। सरकारको परेशान करनेकी उसकी कोई इच्छा नहीं है। अपनी ओरसे वह जानबूझकर सविनय अवज्ञाको न्योता नहीं देने जा रही है। कांग्रेसकी माँगके खिलाफ उठाई गई हर उचित आपत्तिको दूर करने की कोशिश की जा रही है और ग्रेट-ब्रिटेनके सामने अपेक्षित घोषणा करनेके मार्गमें जो कठिनाइयाँ हैं उनको हल करनेका पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। लड़ाईके लिए —अहिंसक लड़ाईके लिए ही सही—उद्यत कांग्रेसियोंपर अधिकसे-अधिक दबाव डाला जा रहा है। मैं तो खुद ही चाहता हूँ कि शान्ति स्थापित करनेमें योग दे सकूँ। अगर भारत वास्तवमें ब्रिटेनका स्वतन्त्र मित्र देश बन जाये—यहाँ मैं कानूनी [illegible] पर स्वतन्त्र होनेकी बात नहीं कहता, क्योंकि वह प्रक्रिया तो युद्धके बाद ही [illegible] हो सकती है—तो मैं शायद इस काममें योग दे सकूँ।

लेकिन मैं हूँ कौन? जितनी शक्ति मुझे ईश्वर देता है उसके अतिरि[illegible] और कोई शक्ति नहीं है। अपने देशवासियोंपर नैतिक अधिकारके अलावा [illegible] कोई अधिकार नहीं है। अगर ईश्वर मुझे आज धरतीपर जिस भयं[illegible] बोलबाला है उसके स्थानपर अहिंसाका प्रसार करनेका साधन मानता है [illegible] मुझे शक्ति भी देगा और रास्ता भी दिखायेगा। मेरा सबसे बड़ा अस्त्र [illegible] है। इसलिए शान्तिका हित-अहित सब ईश्वरके सक्षम हाथोंमें है। [illegible] सनातन नियम है और उस दिव्य और सनातन नियमके रूपमें [illegible] इच्छासे ही जो-कुछ होना होगा, होगा। हमें उसका और उसके निय[illegible] ही बोध है। लेकिन उस नियमकी हलकी-सी झाँकी भी मुझे [illegible] तथा भविष्यके प्रति आस्थासे भर देनेके लिए पर्याप्त है।

सेगाँव, ५ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-१२-१९३९

१. देखिए खण्ड ६१, पृ० ३२५-२६।

२. देखिए खण्ड ६७, पृ० ४७७।

३. देखिए खण्ड ६७, पृ० ४४९-५२।

४. देखिए खण्ड ६७, पृ० २८०-८२।

५. देखिए खण्ड ७०, पृ० १५७ तथा पृ० १८१-८२ [illegible]

१३. सन्देश : एस० सत्यमूर्तिको

[६ दिसम्बर, १९३९ से पूर्व][1]

आपकी प्रदर्शनी[2] पूरी तरह सफल होनी चाहिए। कारण, मैं मानता हूँ कि चरखेपर सूतके तार निकालते हुए हम निश्चय ही स्वराज्यकी मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६-१२-१९३९

१४. पत्र : अमृत कौरको

६ दिसम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

तुम्हारा आजका पत्र सान्त्वना देनेवाला है। बेचारे नायकम[3]का लड़का आनन्द रूप — जिसे लोग प्यारसे टोगावाला कहते थे — नहीं रहा। कल उसे कमेड़े आने लगे थे। माता-पिताने इस दुःखको बहादुरीसे सहा है। ज्यादा लिखनेके लिए समय नहीं है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५३) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२६२ से भी

१. जिस समाचारसे यह सन्देश उद्धृत किया गया है वह दिनांक "मद्रास, ६ दिसम्बर, १९३९" के अन्तर्गत छपा था।

२. मद्रासमें अखिल भारतीय खादी और स्वदेशी प्रदर्शनीका आयोजन किया जानेवाला था।

३. हिन्दुस्तानी तालीमी संघके मन्त्री ई० डब्ल्यू० आर्यनायकम

१५. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
७ दिसम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने मथुरावाले प्रस्ताव[1] नहीं पढ़े हैं और न ही तुम्हारा भाषण।[2] मैं दोनों प्राप्त करना चाहूँगा।

महादेवके नाम पत्रमें तुम्हारी मीठी शिकायतपर मेरा ध्यान गया है। मैं भला क्या करूँ? मैं तो जैसा हूँ वैसा ही तुम्हें स्वीकार करना होगा। मैं जानता हूँ तुम ऐसा ही करते हो। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम मेरे प्रति कितने उदार हो।

क्रिप्सको, तुम जब भी चाहो, यहाँ ले आओ।[3]

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३७; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. २८-२९ नवम्बरको मथुरामें संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ था जिसमें दो प्रस्ताव पास किये गये थे। एक प्रस्ताव देशी रियासतों तथा कारतकारी विधेयकके सम्बन्धमें था और दूसरा रचनात्मक कार्यक्रमके बारेमें था।

२. जवाहरलाल नेहरूने डेढ़ घंटे हिन्दीमें भाषण दिया था। इसमें उन्होंने यूरोपके महायुद्धकी चर्चा करते हुए इस बातपर हर्ष प्रकट किया कि भारतपर उसके प्रभावके फलस्वरूप कांग्रेसके अन्दरूनी मतभेद समाप्त हो गये हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि उनकी स्वराज्यकी माँग तो एक पुरानी माँग है और उसका वर्तमान महायुद्धसे कोई सम्बन्ध नहीं है। कांग्रेस चाहती है कि ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमें महायुद्धके अपने उद्देश्योंका स्पष्टीकरण करे। उन्होंने खेद प्रकट किया कि ब्रिटिश सरकारने उनकी माँगका अत्यन्त असन्तोषजनक उत्तर दिया जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस कार्य-समितिके लिए एक ही विकल्प रह गया कि वह कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंसे पद-त्याग करनेको कहे। उन्होंने भारत के लिए उपयुक्त संविधान बनानेवाली एक संविधान-सभाकी कांग्रेसकी माँगको दोहराया और कहा कि जब तक कांग्रेसकी यह प्रमुख माँग स्वीकार नहीं कर ली जाती तब तक उन्हें ब्रिटिश सरकार और भारतके बीच समझौता होनेकी कोई आशा दिखाई नहीं पड़ती। उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिक समस्या कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं है और यदि भारतके स्वतन्त्र राष्ट्र होनेके अधिकारको मान लिया जाये तो यह सुलझ सकती है। उन्होंने एकत्र श्रोताओंका आह्वान किया कि वे सब कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमका, विशेषत: स्वदेशी तथा खादी-सम्बन्धी कार्यक्रमका पालन करें। अन्तमें पण्डित नेहरूने कहा कि हमें अभी संघर्ष आरम्भ करनेकी कोई हड़बड़ी नहीं है और हम पहल नहीं करेंगे, परन्तु इसके साथ ही हमें अपने-आपको भविष्यकी सभी स्थितियोंके लिए तैयार रखना चाहिए।

३. सर स्टैफर्ड क्रिप्स ११ दिसम्बर, १९३९ को गांधीजीसे वर्धामें मिले थे।

१६. पत्र: अमृत कौरको

७ दिसम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला। यह बात तो बड़ी दुःखद है, लेकिन तुम्हारा इन्दौर जाना[1] अनिवार्य है। हकसर[2] का पत्र मैं तुम्हारे लिए सुरक्षित रखूंगा।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७५४) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ७२६३ से भी

१७. पत्र: सुरेन्द्रको

७ दिसम्बर, १९३९

चि० सुरेन्द्र,

जो वाक्य तुम्हें खटका है, वह शुद्ध सत्य है। गुप्त व्यभिचार करनेकी अपेक्षा कई पत्नियाँ रखना अच्छा है।[3] यह सत्य कड़वा लगता है, किन्तु परिणाममें अमृत-तुल्य सिद्ध होगा। इस कथनमें बहुपत्नी-प्रथाकी जो सापेक्ष स्तुति निहित है, वह पूरी तरह उचित है। मैं जितना गहरे उतरता हूँ, उतना ही मेरी समझमें आता है कि समाजका झूठा डर ही मनुष्यको मारता है। जैसे अहिंसाकी परीक्षा हिंसाका मुकाबला करनेमें होती है, वही बात पवित्रता-अपवित्रताके बारेमें है। अहिंसा, पवित्रता आदि गुण किसी कन्दरामें नहीं बल्कि समाजके बीच पालनेके लिए हैं...[4]। लेकिन मैं भटक गया। बहससे फायदा? मौन ही अच्छा है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

१. प्रजामण्डल और प्रजासंघ, इन दो प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओंके मतभेदोंको दूर करने और राज्यके विरुद्ध उनके संघर्षमें उनका मार्ग-दर्शन करनेके लिए।

२. कर्नल कैलाश नारायण हकसर

३. देखिए खण्ड ७०, पृ० ३४८-५२।

४. साधन-सूत्रमें यह अंश छूटा हुआ है।

१८. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
८ दिसम्बर, १९३९

प्रिय पगली,

मैं कह रहा हूँ कि मैं अपनी ओरसे यह कोष आरम्भ नहीं कर सकता।[1] बेशक, तुम्हें करना चाहिए। मैं नरमीके साथ "नही" कह रहा हूँ।

हो सकता है, मैं तुम्हारी आलमारी तैयार नही करवा पाऊँ। बनी-बनायी ही जुटा लेनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

मैंने तुम्हें यह बताया या नही कि बा लक्ष्मीके कारण दिल्ली गई थी? तुम उनसे मिलना। काशी[2] और कनु आज जा रहे है। राजाजी भी लक्ष्मीके कारण ही आज दिल्ली गये। तुम्हें अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५५) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२६४ से भी

१९. पत्र : भारतन कुमारप्पाको

सेगाँव
८ दिसम्बर, १९३९

प्रिय भारतन,

क्या विद्यार्थीगण अगले बुधवारको सुबह ७ बजे या शामके ४ बजे आ सकते हैं? १०,००० रुपये हस्तान्तरित कर दिये जायेंगे।

तुम्हारा,

बापू

१. देखिए "पत्र : अमृत कौरको", पृ० २।

२. छगनलाल गांधीकी पत्नी

[पुनश्च :]

मेरे पास फोन है, इसलिए तुम भी ले लो, इस सम्बन्धमें तुम्हारा क्या विचार है ?

बा[पू]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५९१) से

२०. पत्र : मनुबहन मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
८ दिसम्बर, १९३९

चि० मनुड़ी,

आखिर तू माँ बन ही गई। तुझे बच्चेका जो नाम रखना हो रख लेना। तूने रामी[1] की लड़कीको जो नाम[2] दिया है, वह तो मुझे बिलकुल अच्छा नही लगा। बहुत बड़ा है। वह लड़की अभी तक मेरे पास आती ही नही। मनोज्ञा[3] का शोभन तो मुझसे तुरन्त हिल गया था। कुँवरजी[4] अब बिलकुल अच्छे हैं। लड़की भी अच्छी होती जा रही हैं। बा दिल्ली गई है। वहाँ लक्ष्मी बीमार है। उसे दिल्ली लिखना।

आशा है तुम तीनों आनन्दपूर्वक होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७४) से; सौजन्य : मनुबहन सु० मशरूवाला

२१. पत्र : देवदास गांधीको

८ दिसम्बर, १९३९

चि० देवदास,

तेरा क्या पथ-प्रदर्शन किया जाये ? तू ऐसा थोड़े ही है जो बा की सेवामें किसी तरहकी ढिलाई बरतेगा ? यदि बा को कुछ हो जाये तो तुझपर कौन तोहमत लगा सकता है ? यदि उसके भाग्यमें मृत्यु लिखी होगी तो कही भी हो जायेगी। कोई किसीकी सार-सँभाल नही करता। भगवान सबकी सार-सँभाल करता

१. मनुबहनकी मौसी
२. नवमल्लिका
३. कृष्णदास गांधीकी पत्नी
४. कुँवरजी पारेख, रामीके पति

है। आशालताके वच्चेकी मृत्युका व्योरा वा से सुनना। वा उस समय उपस्थित थी। गोपालराव[1] का वालक देखते-देखते चला गया। उसे काले बिच्छूने डंक मारा। उसने चीख मारी और गिर पड़ा। हम सब मृत्युके मुँहमें पड़े हुए हैं। वह निगल न जाये तब तक हमें नाचते रहना चाहिए।

ज० ने जिन्नाको पत्र लिखा है। अब तो इसे भी समाप्त समझना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१३६) से

२२. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
८ दिसम्बर, १९३९

चि० विजया,

तेरी शिकायत ठीक है। क्या करूँ? नानाभाई[2] का लम्बा पत्र आया था। उसका जवाब देना था, लेकिन नही दे पाया, और उन्होंने उपवास कर दिया। उनसे कहना, अब बिलकुल न करे। ऐसी बातोंका इलाज उपवास नही है। धीरज, विश्वास और प्रेम ही इलाज है। कोई हर्ज नही अगर एक भी बालक [विद्यालयमें] नही आता। एक आये तो एक ही से चलाया जाये। लेकिन हरिजनोके मामलेमें हमें झुकना नही चाहिए। तुम दोनों जब नानाभाईको आने दे सको, तब वे यहाँ आ जायें, यह अच्छा रहेगा। यदि अवलेह मनुभाई[3] को माफिक आया है, तो उसे जारी रखना चाहिए। मनुभाईको पर्याप्त घी देती रहना। तू तो लेना ही। दोनो शरीरसे स्वस्थ रहोगे, तभी नानाभाईके उत्तराधिकारको सुशोभित कर सकोगे।

वा लक्ष्मीकी खातिर दिल्ली गई है। कृष्णदास आज एक महीनेके लिए राजकोट जा रहा है। शायद पहले भी लौट आये।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती विजयाबहन
आंबला, बरास्ता सोनगढ़

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२१) से। सी० डब्ल्यू० ४६१३ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१. गोपालराव कुलकर्णी, आश्रम विद्यालयके अध्यापक
२. नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट, ग्राम दक्षिणामूर्तिके संस्थापक
३. विजयाबहनके पति

२३. पत्र : एक बिशपको

[८ दिसम्बर, १९३९ के पश्चात्][1]

प्रिय बिशप,

आपके पत्रके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मैंने गलतफहमियाँ दूर करनेके उद्देश्यसे 'हरिजन' में लिखा था। मैं देखता हूँ कि इसमें मैं असफल रहा। मुझे बिलकुल नही मालूम था कि 'कैविल' शब्दका केवल वही अर्थ है जो कि आपने समझाया है।[2] जान-बूझकर मैं कभी भी आपपर छिद्रान्वेषी टीका करनेका दोष नही लगा सकता था। मेरी अपूर्ण भाषा ही आपके प्रति हुए अन्यायकी जिम्मेदार है। कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए।

मैं जिस ढंगसे एम० आर० ए०[3] की सहायता कर सकता हूँ, करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

निश्चय ही आपके प्रति मेरे आदरभावमें हमारे भिन्न दृष्टिकोणोंके कारण कोई अन्तर नही आ सकता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२४. तार : रेहाना तैयबजी[4]को

९ दिसम्बर, १९३९

रेहाना तैयबजी
कैम्प बड़ौदा

अभी-अभी महादेवसे माताजीके विषयमें मालूम हुआ। उन्हें चिन्ता नही करनी चाहिए। ईश्वर उन्हें शक्ति दे। उनकी तबियतमें सुधार के सम्बन्धमें मुझे सूचित करती रहना। सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६९३) से

१. यह पत्र बिशपके दिनांक ८ दिसम्बर, १९३९ के पत्रके उत्तर में लिखा गया था।

२. अपने लेख "दुःखकी बात" में गांधीजी ने लिखा था कि "लेखक महोदय औपनिवेशिक दर्जे से भिन्न स्वाधीनताकी माँगपर गलत आपत्ति करते जान पड़ते हैं"। देखिए खण्ड ७०, पृ० ४३२-३६।

३. मॉरल रिआर्मामेंट आर्मी, जिसका आरम्भ डॉ० फ्रैंक बकमैन ने किया था।

४. अब्बास तैयबजीकी पुत्री

२५. पत्र : अमृत कौरको

सेगांव, वर्धा
९ दिसम्बर, १९३९

प्रिय अमृत,

तुम्हें और तुम्हारे परिवारको गाड़ी-भर प्यार। अभी बस इतना ही। आज तुम्हारा कोई पत्र नही आया।[1]

बापू

श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर
जालन्धर सिटी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५६) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२६५ से भी

२६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

वर्धागंज
९ दिसम्बर, १९३९

जनाब जिन्ना साहबने "अन्ततः कांग्रेसी सरकारोंके समाप्त होनेसे मिली राहत पर खुशी जाहिर करनेके लिए भारत-भरके मुसलमानोंसे शुक्रवार, २२ दिसम्बर मुक्ति-दिवस और कृतज्ञता-ज्ञापन दिवसकी तरह मनानेका" जो आग्रह[2] किया है उसे मैंने पढ़ा। उस दिन कांग्रेसके अन्यायपूर्ण शासनसे छुटकारा पाने पर खुदाकी इबादत की जानी है। इस आग्रहके बाद एक प्रस्तावका पाठ दिया गया है, जो मुस्लिम लीगके तत्वावधानमें होनेवाली सभी सभाओंमें पास किया जायेगा। मैं जिन्ना साहब और उनसे सम्बन्धित मुसलमानोंसे यह प्रस्तावित कदम न उठानेका अनुरोध करना चाहूँगा।

प्रस्तावमें कांग्रेसके खिलाफ अत्यन्त गम्भीर आरोप लगाये गये हैं। विशाल मुस्लिम आबादीको खुदाके सामने उन आरोपोंको इस तरह दोहराना है मानो वे

१. इस वाक्य का अनुवाद **लेटर्स टु राजकुमारी अमृत कौर** नामक पुस्तक के अनुसार सुधारकर किया गया है।

२. ६ दिसम्बर, १९३९ को बम्बईसे जारी किया गया

पूर्णतः प्रमाणित हों और इसलिए उनसे मुक्ति दिलानेके लिए खुदाका शुक्र अदा करना है। साथ ही प्रान्तोंके गवर्नरोंसे इन आरोपोंकी जाँच करके इनका निराकरण करनेका अनुरोध किया जाना है।

क्या यह उचित और सही बात नहीं होगी कि जबतक गवर्नर अपनी राय न दे दें तबतक यह गम्भीर कदम न उठाया जाये? इस कदमको मैं गम्भीर इसलिए कहता हूँ कि जिन मुसलमानोंसे इन आरोपोंमें विश्वास करनेको कहा जायेगा उनमें स्वभावतः उस पुराने राष्ट्रीय संगठनके प्रति दुर्भावना पैदा होगी जो उनका भी उतना ही है जितना अन्य भारतीयोंका। और यह सब ऐसे समयमें किया जानेवाला है जब जिन्ना साहब और पण्डित नेहरू आपसमें बातचीत करने जा रहे हैं और कोई सम्मानजनक समझौता कर सकनेकी आशा कर रहे हैं।[1] कांग्रेसको जितना बुरा इस प्रस्तावमें बताया गया है, यदि वह सचमुच उतनी ही बुरी है तो जाहिर है कि वह ऐसी संस्था नहीं है जिसके साथ कोई बातचीत चलाई जाये।

मेरे जानते तो कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंके खिलाफ जो ठोस आरोप लगाये जा सकते हैं वे सिर्फ वही हैं जो मुस्लिम लीग कमेटी[2] की पीरपुर रिपोर्टके नामसे प्रसिद्ध रिपोर्टमें दिये गये हैं। संयोगसे मुझे मालूम है कि संसदीय उपसमितिने वह रिपोर्ट विभिन्न कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंके पास भेजी थी और मैं यह भी जानता हूँ कि सम्बन्धित मंत्रियोंने सावधानीसे जाँच-पड़ताल करके उपसमितिके पास इस आशयकी रिपोर्ट भेजी थीं[3] कि उनमें से अधिकांश शिकायतें निराधार हैं।

इसलिए मुझे लगता है कि जिन्ना साहबने वादी और न्यायाधीश दोनोंका भारी दायित्व अपने सिर ले लिया है। फिर भी, अगर उन्होंने इन शिकायतोंको भारतके मुसलमानोंके सामने इस तरह पेश न किया होता मानो ये प्रमाणित सत्य हों तो कोई खास बात नहीं थी। जिन्ना साहब और उनके सहयोगियोंसे मैं विनती करता हूँ कि वे उस आदमीके अनुरोधको सुनें जो उनका मित्र होने और साथ ही भारतीय मुसलमानों और इसलिए इस्लामका सेवक[4] होनेका दावा करता है।

गवर्नरोंसे किये गये जिन्ना साहबके इस अनुरोधका मैं हृदयसे अनुमोदन करता हूँ कि उनके सामने जो आरोप पेश किये जायें उन पर वे ध्यानपूर्वक विचार करके अपनी-अपनी राय दें। बाबू राजेन्द्रप्रसादको लिखे अपने पत्रमें[5] जिन्ना साहबने कहा है कि अपने आरोप उन्होंने वाइसराय महोदयके समक्ष प्रस्तुत किये हैं। मुझे आशा है कि वाइसराय महोदय उनपर अपनी राय जल्दी-से-जल्दी देंगे। अब जिन्ना साहबसे इतना अनुरोध करना तो अनुचित नहीं होगा कि जब तक वाइसराय महोदय और

१. नेहरू-जिन्ना बातचीत अन्ततः हुई नहीं।

२. पीरपुरके राजाकी अध्यक्षतामें गठित

३. वाक्यका आगेका अंश *हितवाद* से लिया गया है।

४. यहाँ *हितवाद* में जो मूल अंग्रेजी शब्द "को-सर्वेन्ट" है उसका अनुवाद होगा "उन्हीं की तरह सेवक"।

५. ६ अक्तूबर, १९३९ का पत्र

प्रान्तीय गवर्नर इन गम्भीर आरोपोंपर अपनी-अपनी राय न दे दे तब तक वे मुसलमानोंकी एक बहुत बड़ी संख्याको उन आरोपोंसे सहमति प्रकट करने और कांग्रेसकी भर्त्सना करनेको न कहे

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १०-१२-१९३९, और हितवाद, १०-१२-१९३९

२७. सन्देश : जबलपुर जिला राजनीतिक परिषद्को[1]

[१० दिसम्बर, १९३९ से पूर्व][2]

मैं खादीके पीछे पागल हूँ। मेरा सफलताका मापदण्ड खादी है और जब तक यह सिद्ध नही होता तब तक मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करनेकी हिम्मत नही कर सकता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-१२-१९३९

२८. राजकोट-सुधार[3]

राजकोट राज्यकी सुधार-सम्बन्धी टिप्पणी मैंने पढ़ी है। प्रतिवादका मेरे ऊपर कोई असर नही पड़ा है। अपने कहे हर शब्दपर मैं कायम हूँ।[4] इन सुधारोंका क्या अर्थ है, यह तो बादकी घटनाओंसे मालूम हो ही जायेगा। श्री ढेबर[5] के नामका उल्लेख यद्यपि मैंने अपने लेखमें नही किया था, पर राज्य-टिप्पणीकार नाहक ही उन्हें इसमें घसीट लाया है, ताकि वह उस व्यक्तिके सम्बन्धमें अपनी नाखुशी जाहिर कर सके जिसे मेरे सामने एक सच्चा और बहादुर सुधारक स्वीकार किया गया है। श्री ढेबर ऐसे व्यक्ति है जो अपने ऊपर हुए सभी प्रहारोंके बावजूद अपनी टेकपर कायम रहेंगे। सुधारोंके लिए टिप्पणीमें जैसा दावा किया गया है अगर वे वैसे हुए तो मुझसे ज्यादा खुशी किसीको नही होगी। फिर भी जन्मसे पहले ही मृत्युको प्राप्त हो जानेवाली संविधान समितिके लिए मनोनीत दसमें से छः सदस्यो की सम्मति अधिकारियोंने प्राप्त कर ली, इसके लिए वे बधाईके पात्र है।

१ और २. परिषद्का आयोजन १० दिसम्बर, १९३९ को कटनीमें हुआ था। उसमें प्रस्ताव पास करके प्रत्येक भारतीयसे खादी तथा ग्रामोद्योगोंको प्रोत्साहन देनेका अनुरोध करते हुए हर सम्भावनाके लिए तैयार रहनेका आह्वान किया गया था।

३. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

४. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४११-१२।

५. उ० न० ढेबर

यह सचमुच राज्य परिषद्की और मेरी हार है। यह कलाबाजी काठियावाड़की राजनीतिका एक अच्छा नमूना है। लेकिन मुझे इसकी शिकायत करनेका हक नहीं है। अगर ढेबरभाई-सहित दसों व्यक्तियोंने राजकोट-सुधारोंको मान लिया होता तो भी मेरे विश्लेषणपर, यदि वह तथ्योंपर आधारित है — और मैं मानता हूँ कि वह है — उसका कोई असर नहीं पड़नेका। अलबत्ता जो लोग कुछ चाहते थे यदि वे सबके-सब, जितना उनके पास पहले था, उससे भी कममें सन्तुष्ट हो जायें तो वह विश्लेषण बेकार जरूर होगा। अतः इस दृष्टिसे राजकोटके अधिकारीगण अवश्य जीत गये हैं।

सेगाँव, १० दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-१२-१९३९

२९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा (म० प्रा०)
१० दिसम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

यह कतरन किस विषयमें है? मैं तुम्हारा भाषण[1] देखना चाहूँगा और चाहूँगा कि तुम उस लेखका प्रत्युत्तर भी दो।

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोंके बारेमें जिन्नाने क्या ही अजीबोगरीब फतवा दिया है![2]

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. तात्पर्य शायद जवाहरलाल नेहरूके ४ दिसम्बर, १९३९ को आगरामें दिये गये भाषणसे है। भाषणमें इंडियन सिविल सर्विस तथा ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य विभागोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था कि "हमने तो अपने पत्ते खोलकर सामने रख दिये हैं और अब मुलाकातों, वार्ताओं तथा वक्तव्योंसे तब तक कुछ बननेवाला नहीं है जब तक सरकार कांग्रेस तथा महात्मा गांधी द्वारा व्यक्त किये गये विचारोंको स्वीकार करनेको तैयार नहीं है।"

२. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० २१-२३।

३०. पत्र : जे० जेड० हॉजको

सेगाँव, वर्धा
१० दिसम्बर, १९३९

प्रिय श्री हॉज[१],

साथका पत्र[२] कृपया लेडी हैमिल्टनको भेज दें। नेकदिल सर डैनियल[३] की कमी हमें बराबर खलेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७६) से

३१. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

सेगाँव, वर्धा
१० दिसम्बर, १९३९

चि० रमणीकलाल,

कल रात बलवन्तसिंहने तुम्हारा पत्र मेरे हाथमें दिया। तुम बाल-बाल बच गये। अच्छा हुआ। तुम्हारे व्यवहारमें अहिंसा नहीं थी, लेकिन उसकी चिन्ता मत करना। अहिंसक बननेका प्रयत्न करना। यह निश्चय कर लेना चाहिए कि यदि फिर ऐसा मौका आया तो भागूँगा नहीं। जो तुम्हें मारने आया हो, उसे गले लगाना चाहिए। तारा[४] के लिए भी डरनेकी कोई बात नहीं थी। अहिंसाकी परीक्षा ऐसे समयमें ही होती है। प्रयत्न करनेके बाद भी ऐसे मौकेपर अगर फिर भाग निकलो, तो उसमें भी शर्मिन्दा होनेकी कोई बात नहीं। बार-बार गिरनेके बावजूद निरन्तर प्रयत्न करनेसे ऊपर उठा जा सकता है। अहिंसाकी दृष्टिसे अभी हम बच्चे

१. एक ब्रिटिश मिशनरी
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. सर डैनियल हैमिल्टन बड़े परमार्थी व्यक्ति थे। बंगाल में सहकारिता आन्दोलन के सिलसिलेमें उन्होंने बहुत अच्छा काम किया था। ९ दिसम्बर, १९३९ को स्कॉटलैण्ड में उनका देहावसान हो गया था।
४. रमणीकलालकी पत्नी

ही हैं। अभी हमने अपने पैरोंके बल उठना भी नही सीखा है, फिर सीधे खड़े रहनेकी तो बात ही क्या है?

बापूके आशीर्वाद

रमणीकलाल मोदी
शान्तिनगर
आश्रम रोड, साबरमती

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१८४) से

३२. टिप्पणियाँ

औपनिवेशिक दर्जा या स्वराज्य

एक अंग्रेज मित्रने पत्र लिखकर मुझे सूचित किया है कि मैं अपनी स्थिति बदलकर अब औपनिवेशिक दर्जेके बजाय पूर्ण स्वराज्यकी माँग करने लगा हूँ, यह देखकर उन्हे बड़ा दुःख हुआ है, क्योंकि वे जानते हैं कि मैं वेस्टमिन्स्टर विधानके ढंगके औपनिवेशिक दर्जेसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा, ऐसा विचार मैंने पहले प्रकट किया है। स्थिति बदलनेका आरोप कोई नया नही है। सत्याग्रहकी प्रारम्भिक अवस्थामें दक्षिण आफ्रिकामें मुझपर ऐसा ही आरोप जनरल स्मट्सने भी लगाया था। लेकिन मैंने जो-कुछ किया उसके सम्बन्धमें अन्तमे उन्होंने अपना सन्तोप प्रकट किया। और, जैसा कि पाठक जानते है, उन्हें मैं अपने मित्रोमें गिन सकता हूँ। असलमें मेरे खिलाफ.ऐसे आरोप लगाये जानेके प्रसंग "विरोधीसे झट कोई समाधान कर लेनेके"[1] मेरे समझौतापरक स्वभावके कारण ही उठते हैं। उदाहरणके लिए, जब १९३० में किसी अखबारका प्रतिनिधि मुझसे मिलने यरवडा आया तो मैंने उसके सामने "सार-रूपमें स्वतन्त्रता" इन शब्दोंका प्रयोग किया।[2] ये शब्द वे थे जिनका प्रयोग मैं तब अकसर करता था। मैंने उसे बताया कि जो पकड़में न आये, स्वतन्त्रताकी ऐसी छायाके बजाय मैं उसका सार-तत्व प्राप्त करके सन्तुष्ट हो जाऊँगा। इसी तरह एक मित्रसे मैंने कहा था कि अगर औपनिवेशिक दर्जा दिया जाये तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा और आशा करूँगा कि उसमें भारत मेरे साथ होगा। निश्चय ही यह सब मेरे इस कथनसे असंगत नही है कि जहाँतक युद्ध-लक्ष्योंकी व्याख्याका सम्बन्ध है, मैं तो श्रेष्ठतम दर्जेसे ही सन्तुष्ट होऊँगा। यदि मैं अपना लक्ष्य इससे कम कर दूँ तो देशद्रोही ही माना जाऊँगा। इसलिए अगर औपनिवेशिक दर्जा स्वराज्यसे कम है तो मैं स्वराज्य ही चाहूँगा। अगर यह वही चीज है जो स्वराज्य है, तो यह तय करनेका अधिकार केवल भारतको है कि उसके दर्जेको कौनसी संज्ञा

१. (सेंट मैथ्यू, ५, २५) शब्द बाइबिलसे हैं
२. देखिए खण्ड ४३, पृ० ४३७-३८।

दी जाये। और भारतके दर्जेके रूपमें औपनिवेशिक दर्जेपर विचार करके मैंने यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि यह भारतके उपयुक्त नहीं होगा, क्योंकि औपनिवेशिक दर्जेके साथ जो परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं उनसे प्रकट होता है कि यह केवल गोरोंपर ही लागू होता है और इसमें गैर-यूरोपीय जातियोंके शोषणका वर्जन नहीं है। भारत शोषित राष्ट्रोंमें से है, इसलिए दक्षिण आफ्रिका-जैसे किसी राष्ट्रका जोड़ीदार शोषक राष्ट्र बनकर रहना उसे नहीं फबेगा। स्वतन्त्र भारतका उद्देश्य तो इससे बहुत अधिक ऊँचा होना चाहिए — खासकर यदि वह अन्ततः अहिंसाको युद्धके विकल्पके रूपमें अपना ले।

आन्ध्रमें सूत्र-यज्ञ

चरखा-जयन्ती[1] के सिलसिलेमें आयोजित सूत्र-यज्ञमें अखिल भारतीय चरखा संघकी आन्ध्र शाखाके कार्यकर्त्ताओं और कारीगरों द्वारा स्वेच्छापूर्वक यज्ञार्थ दिये गये सूत और नकद राशियोंके आँकड़े निम्न प्रकार हैं:

गजोंमें कुल सूत	९४,३९,७५०
सूतकी कीमत	रु० ५९०-०-०
नकद	रु० २७७-४-१०
कुल नकद मूल्य	रु० ८६७-४-१०

इससे कार्यकर्त्ताओंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अगली जयन्तीके लिए शरीरसे स्वस्थ सभी लोगोंको वर्ष-भर प्रतिदिन १६० गज सूत कातना है।

पेशेवर डाक्टर और सट्टा

कीनियासे एक पेशेवर डाक्टरने पूछा है कि क्या डाक्टरी धन्धेवाले लोग साहूकारी या सट्टेबाजी कर सकते हैं? मैं तो दीर्घ कालसे ऐसी राय रखता आया हूँ कि पेशेवर लोगोंको — चाहे वे डाक्टर हों या वकील या किसी अन्य पेशेके लोग — सट्टेबाजी या किसी अन्य धन्धेमें अपनी आय बढ़ानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। इससे वे अपने खास काममें लापरवाही बरतने लगें, ऐसी सम्भावना है। पैसेके लालचमें अन्य धन्धोंमें पड़कर अपनी साख खो बैठनेवाले डाक्टरों और वकीलोंके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

सेगाँव, ११ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-१२-१९३९

१. गुजराती पंचांगके अनुसार गांधीजीका जन्म-दिवस

३३. देशी नरेश

लोग अन्यथा जो कहें, लेकिन मैं तो देशी नरेशोंका मित्र और शुभेच्छु होनेका दावा करूँगा ही। कारण, स्वतन्त्र भारतकी जो तस्वीर मेरे मनमें है उसमें उनका एक निश्चित स्थान है। और यही कारण है कि आज उनकी जो स्थिति है, उसकी कमजोरीकी ओर मैं ध्यान दिलाता रहता हूँ। छोटे नरेशोंके लिए तो उस सत्ताका त्याग ही कर देना श्रेयस्कर है जो उन्हें कभी प्राप्त ही नहीं होनी चाहिए थी, और बड़े नरेशोंकी सत्ता नियमबद्ध कर दी जानी चाहिए। इस सम्बन्धमें जो न्यूनतम आवश्यकता है, वह भी सुझानेकी मैंने धृष्टता की है।[1]

ऐसा तो कोई सपनेमें भी नही सोचता कि देशी राज्योंकी जनता आज जिस स्थितिमें है उसीमें वह सदा रहेगी। वह अपने अधिकारोंके लिए लड़ेगी अवश्य, चाहे वह हिंसात्मक ढंगसे हो या अहिंसात्मक ढंगसे। जो भी हो, अपनी शक्तिके प्रति — चाहे वह शक्ति आत्मिक हो या शारीरिक — जागरूक लाखों-करोड़ोंके खिलाफ देशी नरेश टिक नही सकते।

यदि देशी नरेश समयके संकेतको पहचाननेसे इनकार करते हैं तो जिस अधीश्वरी सत्ताने उन्हें 'उबारा' है या 'सिरजा' है उसका देशी राज्योंकी प्रजाके प्रति क्या कोई कर्त्तव्य नही है? श्री प्यारेलालने इस प्रश्नका अध्ययन किया है और जैसा कि पाठक इसी अंकमें अन्यत्र देखेंगे[2], उन्होंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि देशी नरेशोंके साथ किया गया कोई भी कौल-करार उसे उनकी प्रजाको कुशासनसे बचानेके कर्तव्यसे मुक्त नही करता और न उसे देशी नरेशोंको अपने ऐसे समकक्षी माननेको बाध्य करता है जिनपर वह कोई नियन्त्रण रख ही नहीं सकती। "अधीश्वरत्व" शब्दमें ही यह बात निहित है कि अधीश्वरी सत्ताके पास ही अन्तिम रूपसे सब अधिकार हैं। ये तथाकथित सन्धियाँ दो समान पक्षोंकी सन्धियाँ नही है, बल्कि ये तो ऐसी शर्तें और प्रतिबन्ध हैं जो उन लोगोंपर थोपे गये हैं जिन्हें ऐसी सन्धियाँ करनेको मजबूर होना पड़ा है। ये सन्धियाँ तो अधीश्वरत्वको सुदृढ़ करनेके लिए दिये गये एक प्रकारके अनुदान या जागीरें हैं। इसमें सन्देह नही कि ऐसे बहुत-से वकील मिल जायेंगे जो कहेंगे कि ये सन्धियाँ अधीश्वरी सत्ताकी ओरसे दिये गये गम्भीर वचन हैं, जिनपर देशी नरेश जब चाहें अमल करवा सकते है। क्या दैत्यके सामने बौना आदमी अपने अधिकारों पर सफलतापूर्वक आग्रह कर सकता है?

जो लोग कहते हैं कि आज जब इंग्लैड जीवन-मरणके संघर्षमें जुटा है तब कांग्रेस उसके साथ सौदेबाजी कर रही है, वे यह नही जानते कि दरअसल वे क्या

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४३७-४०।

२. "द ऐसिड टेस्ट" शीर्षकके अन्तर्गत

कह रहे हैं। जो भी हो, सौदेवाजीमें मेरा तो कोई हाथ नही हो सकता। यह मेरे स्वभावके प्रतिकूल है। भारतके जन्मसिद्ध अधिकारको आज भले ही स्वीकार न किया जाये, लेकिन समय आने पर अवश्य स्वीकार किया जायेगा। किन्तु, असली मुद्देको साफ-साफ समझ लेना जरूरी है।

मैं मानता हूँ कि स्थिति ऐसी है कि देशी नरेशोंके साथ सीधी बातचीत चलाना कांग्रेसके लिए असम्भव है। जब समय आयेगा तो हम देखेंगे कि अन्ततः उनकी ओरसे अधीश्वरी सत्ता ही कांग्रेस या जो कोई भी पक्ष दायित्व निभानेके योग्य होगा उससे बातचीत चलायेगी। जिस प्रकार ब्रिटेन द्वारा खड़े किये गये भारतीय सिविल अफसरोके वर्गको स्वतन्त्रताकी मंजिलकी ओर भारतके कूचमें बाधा नही बनने दिया जा सकता, उसी प्रकार देशी नरेशोका उपयोग भी इसमें बाधा डालनेके लिए नही किया जाना चाहिए और न उन्हे ही ऐसा करने देना चाहिए। दोनो साम्राज्यके दुर्ग हैं, और जब भारत स्वतन्त्र होगा तो हम देखेंगे कि या तो ये दोनो वर्ग स्वेच्छापूर्वक उसकी सेवा कर रहे होंगे या अपना अस्तित्व ही खो बैठे होंगे। यह बात मैं उन्हें चोट पहुँचानेके लिए नही कह रहा हूँ। यह एक कठोर सत्य है। जब ब्रिटेन साम्राज्यवादका त्याग कर देगा — कमसे-कम भारतकी हदतक — तो हमें पता चलेगा कि साम्राज्यवादके ये दो हाथ ब्रिटेनके सही कदम उठानेके मार्गमें सचमुच बाधक नही थे।

विश्व-युद्धको मैं अभी जिस रूपमें देख पा रहा हूँ उससे लगता है कि अब तक यह अपनी पूरी भीषणता पर नही पहुँचा है। दोनों पक्ष विनाशके नये-नये तरीकोंकी खोज-ईजाद कर रहे हैं। लेकिन मैं समझता हूँ कि दोनोंकी किसी गम्भीर टक्करसे जो भयकर नर-संहार हो सकता है उससे दोनों बचनेकी कोशिश कर रहे हैं। जहाजोको अन्धाधुन्ध डुबाया जा रहा है, जिसमें हजारों जानोंका नुकसान हो रहा है। यह चीज अपने-आपमें भयावह है, लेकिन जब युद्ध अपनी पूरी भीषणताके साथ फूट पड़ेगा तबकी स्थितिकी तुलनामें यह कुछ नही है। इस बीच दोनों पक्ष चाहें या न चाहें, किन्तु उनके सम्बन्धमें नैतिक प्रश्नोंके निर्णयका सिलसिला जारी है। देखता हूँ, ब्रिटेनके राजनयिक अब अपने युद्ध-लक्ष्योंको यूरोपीय राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता तक सीमित करने लगे हैं। यदि युद्ध अचानक समाप्त नही हो जाता तो वे पायेंगे कि लोकतन्त्रके हितमें विश्वकी रक्षा करनेके अपने मूल लक्ष्यको फिरसे अपनाना उनके लिए आवश्यक हो गया है। यह युद्ध और इसके लिए आवश्यक भारी तैयारियाँ सम्बन्धित पक्षोको, जितना उन्होने शायद सोच रखा है, उससे बहुत अधिक विस्तृत नैतिक आधार पर खड़े होनेको मजबूर करेंगी। इसलिए हो सकता है कि इस युद्धका निर्णय अन्ततः नैतिक प्रश्नोंके आधार पर ही हो। जो भी हो, कांग्रेसने तो स्वेच्छासे अपनेको नि.शस्त्र बनाकर शान्ति या अहिंसाका मार्ग अपनाया है और वह नैतिक प्रश्नको सर्वोपरि महत्त्व दिलानेके प्रयत्नमें लगी हुई है। और अगर उसने धैर्यसे काम लिया तो सम्भव है कि वह नैतिक प्रश्न पर अपने आग्रह मात्रके जोरसे आसन्न सर्वनाशको रोकनेमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके। देशी नरेशोंकी समस्याका स्पष्ट बोध नैतिक प्रश्नका एक बहुत बड़ा हिस्सा

है। मैं देशी नरेशों तथा उनके सलाहकारोंको और उसी तरह ब्रिटिश राजनयिकोंको पुराने पूर्वग्रहका त्याग करके शुद्ध मनसे इस प्रश्न पर विचार करनेको आमन्त्रित करता हूँ।

सेगाँव, ११ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-१२-१९३९

३४. "स्वराज्यके लिए कातो"

अभी हालमें कुछ लड़के-लड़कियाँ मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे मेरे हस्ताक्षर माँगे। हस्ताक्षरके अलावा वे कुछ सन्देश भी चाहते थे। उन सबको मैंने यही सन्देश दिया: "स्वराज्यके लिए कातो।" कारण, अभी तो मेरे दिमागमें कताई और स्वराज्यके अलावा और कोई बात है ही नहीं। मैंने यह आशा की थी कि इस बातसे वे लोग बड़े खिन्न होंगे, क्योंकि मैंने उन्हें कोई सिद्धान्त-वाक्य देनेके बजाय कुछ पैदा करने, कुछ बनानेका सन्देश दिया था और सो भी कताई-जैसा नीरस कार्य। लेकिन पूछनेपर उन्होंने बताया कि वे कातेंगे। श्री सीताराम शास्त्रीसे मालूम हुआ है कि लोग चरखे आदिकी माँग कर रहे हैं। एक और भाई, जो पुराने जेल-यात्री हैं, कहते हैं कि मुझे केवल कताईके काम और खादीको सार्वत्रिक बनानेके लिए एक सालका समय देना चाहिए। लेकिन इसके ठीक उलटा दृष्टिकोण पेश करते हुए बम्बईके एक वकीलने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है:

> **संयुक्त प्रान्तके कांग्रेसियोंको अपनी बात बताते हुए आपने कहा: "आप मेरी हँसी न उड़ायें तो मैं बिना संकोच कहूँगा कि सब लोग कातें, यही कार्यक्रम है।"[1] आपके ही अनुसार, उन कांग्रेसियोंमें कुछ ऐसे भी थे "जो चरखे और अहिंसाकी हँसी उड़ा चुके थे।" लेकिन जब आपने देखा कि "वे दोनों चीजोंपर राजी हो गये, तो मेरे अचरजका ठिकाना न रहा।" यह स्थिति, जैसा कि आपने खुद कहा है, आपको चकरा देती है।**
>
> **आपका कहना है कि "अगर करोड़ों लोग स्वराज्यकी खातिर और अहिंसाकी भावनासे कातने लगें तो शायद सविनय अवज्ञाकी जरूरत ही न पड़े"।[2] साथ ही आप मन, वचन और कर्मसे अहिंसाका पालन करनेका आग्रह करते रहे हैं, यद्यपि लोग जानते हैं कि अहिंसाका ऐसा पालन असम्भव है और खुद आपकी स्वीकारोक्तिके अनुसार, उस स्थितिको आप भी प्राप्त नहीं कर पाये हैं। मैं संयुक्त प्रान्तके कांग्रेसियोंकी ओरसे बोलनेका दावा नहीं करता,**

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४२३।
२. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४३६-३८।

फिर भी मैं आपको यह बताना चाहूँगा कि आपका जो कथन यहाँ उद्धृत किया है उसका और उसी तरहकी दूसरी बातोका तथा अहिंसापर आपके इस आग्रहका अधिकांश कांग्रेसी सक्रिय विरोध क्यों नहीं करते। इस रवैये का सीधा-सादा कारण यह है कि आप कांग्रेसकी शक्तिके प्रतीक बन गये हैं, और आम लोगोंके लिए 'गांधी' और 'कांग्रेस' एक-दूसरेके पर्याय हो गये हैं; और इसलिए कांग्रेसी आजादीकी लड़ाईकी इस परिपक्व अवस्थामें ऐसा जोरदार हथियार अपने हाथोंसे निकलने देना नहीं चाहते। गांधीके बिना कांग्रेस आजकी तुलनामें आधी शक्तिशाली भी नहीं रह जायेगी। इस तथ्यको सब महसूस करते हैं और इसीलिए वे अपनी मर्जीसे आपको कांग्रेससे अलग नहीं होने देना चाहते, भले ही इसके लिए उन्हें, आपके ही शब्दोंमें, "श्रद्धा बिना ही आज्ञापालन" क्यों न करना पड़े। बेशक, यह बुनियादी वजह है, लेकिन इसके अलावा भी कांग्रेस तंत्र तरह-तरहकी जटिलतासे भरा हुआ है। इसमें कुछ लोग 'दक्षिणपंथी' हैं तो कुछ 'वामपंथी'। इसी तरह और भी कई विचारधाराओंके लोग इसमें शरीक हैं। 'दक्षिणपंथी' सदस्य 'वामपंथियों' और उनके समाजवादी सिद्धान्तोंसे बुरी तरह आतंकित हैं। वे आपके नामकी शक्तिसे अवगत हैं और वामपंथी आम जनताके सामने जिस आर्थिक नजरियेको लेकर जाते हैं उसके खिलाफ वे आपके नामके इस जादूका उपयोग करते हैं। कैसी विचित्र बात है कि आज हम सर्वथा सामान्य मानवोचित भावनाओंसे परिचालित लोगोंको भी अपने हितोंके विरुद्ध काम करते देख रहे हैं। कपड़ेकी मिलोंके मालिकोंका खादी-समर्थन, इसी कोटिका कार्य है। इसका कारण क्या है? एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्रीने जिसके प्रति आपके विचार भी बड़े अच्छे हैं, एक बार मुझे बताया कि आप पूंजीपतियोंकी अन्तिम आशा हैं। वे भलीभाँति जानते हैं कि खादी कभी भी इतनी सस्ती नहीं हो पायेगी कि वह आम जनता तक पहुँच सके और इसलिए उनके हितोंको इससे कोई खतरा नहीं है। इसके विपरीत, आपके खादी और अहिंसाके सिद्धान्तोंसे जबानी हमदर्दी जताकर वे आपके 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्तका लाभ मजदूरोंसे पेश आनेमें उठा सकते हैं और ऐसे सभी मजदूर संघोंका काम करना असम्भव कर सकते हैं जो अहमदाबाद मिल-मजदूर संघके ढंग पर गठित नहीं किये गये हैं। पूंजीपति, जमींदार, बल्कि कुछ देशी नरेश भी 'सत्य', 'अहिंसा' आदि शब्दोका प्रयोग बार-बार करते हैं — अलबत्ता वहीं तक जहाँ तक ऐसा करना उनके लिए सुविधाजनक है। जहाँ तक 'वामपंथियों' का सम्बन्ध है, वे भी 'दक्षिणपंथियों' से किसी तरह पीछे नहीं हैं। जनसाधारणके पास जानेके लिए वे भी आपके नामका इस्तेमाल करना चाहते हैं। यही कारण

है कि वे झुण्ड बाँधकर कांग्रेसमें शामिल हो रहे हैं। एक नीतिकी तरह वे अहिंसा पर एतराज नहीं करते और आपको बहलानेके लिए वे यह भी कह सकते हैं कि उन्हें यह चीज रुचती भी है। मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि बहुत-से कांग्रेसी आपके सिद्धान्तके सच्चे भक्त भी होंगे, लेकिन अधिकांशको तो अपने ही स्वार्थ साधने हैं।

मैं यह कहनेका साहस नहीं कर सकता कि मैं कांग्रेसियोंको आपकी बनिस्बत ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन अगर वास्तविक स्थिति यह नहीं हो कि, जैसा कि आप स्वयं कहते हैं, आपके "सेगाँवमें पड़े रहनेके कारण" आपका "जनताके साथ सीधा सम्पर्क नहीं रहता" तो आपके "अचरजका ठिकाना न रहने" और "चकरा जाने" पर मुझे स्वयं भी बड़ा आश्चर्य होगा। तो प्रिय गांधीजी, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अगर आप साधारण, बल्कि साधारणसे अधिक ऊँची कोटिके मनुष्यके भी (और कांग्रेसी भी तो मनुष्य ही हैं) कार्य-व्यापारको परिचालित करनेवाले प्राथमिक हेतुओंको ध्यानमें रखकर विचार करें तो आपका "अचरज" और आपकी "चकराहट" उसी तरह समाप्त हो जायेगी जैसे सूर्यकी प्रखर किरणोंके सामने सुबहका कुहासा।

इस बातसे मैं इनकार नहीं कर सकता कि पत्र-लेखककी दलील जोरदार है। लेकिन मैं तो अपनी जिन्दगी-भर अपने साथी कार्यकर्त्ताओंके शब्दोंको सच मानकर ही स्वीकार करता रहा हूँ। हाँ, यदि किसीकी बेईमानी साफ दिख गई हो तब तो वैसा मानना ही पड़ा है। और विश्वास करनेकी अपनी इस आदतसे मुझे कभी नुकसान नहीं उठाना पड़ा है। दूसरी ओर, मैं ऐसे बहुत-से लोगोंके उदाहरण दे सकता हूँ जो आरम्भमें तो अनमने थे, लेकिन अन्तमें बहुत उत्साही बन गये। जिस काममें बहुत-से पुरुषों और स्त्रियोंसे वास्ता पड़ता हो वहाँ आरम्भ अविश्वाससे ही करना गलत नीति है।

जो मिल-मालिक मुझे चरखेके लिए भी पैसा देते हैं वे मुझसे साफ कहते हैं कि उन्हें चरखेकी प्रतियोगिताका भय नहीं है। उनका जो भी हेतु है, स्पष्ट है। कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। अगर चरखेका अर्थशास्त्र गलत है तो वह अपनी मौत ही मर जायेगा। लेकिन अगर उसके पीछे राष्ट्रके संकल्पका बल हो तो चरखा तब भी चलता रहेगा जब एक-एक मिल बन्द हो जायेगी। मिलोंके कपड़ेके मुकाबलेमें खादी महँगी है। लेकिन अगर यह भारतके करोड़ों लोगोंको आंशिक तौर पर और लाभदायक रोजगार देती है — जो यह निश्चय ही देती है — तो यह मिलके कपड़ेके मुकाबले सस्ती ही है।

बम्बईके इन वकील भाईकी बात अगर सच है तो फिर जन-साधारण मुझसे चिपका हुआ क्यों है और क्यों मैं कांग्रेसकी शक्तिका मूर्त रूप हूँ? मैं विशुद्ध अहिंसाका प्रतिनिधित्व करता हूँ, क्या इस ज्वलन्त तथ्यसे इस प्रश्नका स्पष्ट उत्तर

नहीं मिल जाता? भोली-भाली आम जनताने अनजाने और सहज ही मुझे अपने मित्र, मार्गदर्शक और सेवककी तरह अपना लिया है। उसके साथ तादात्म्य अनुभव करनेमें मुझे और मेरे साथ तादात्म्य अनुभव करनेमें उसे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। उसे अपनी ओर खींचनेके लिए मुझे कभी कोई कोशिश नहीं करनी पड़ी — न यहाँ और न दक्षिण आफ्रिकामें। इस बन्धनका मुझे तो सिवाय प्रेमकी शक्तिके और कोई सूत्र दिखाई नहीं देता।

मुझे यह स्वीकार करनेमें किसी प्रकारकी लज्जा अनुभव नहीं होती कि बहुत-से पूंजीपति मेरे प्रति मित्र-भाव रखते हैं और उन्हें मुझसे कोई डर नहीं लगता। उन्हें मालूम है कि पूंजीवादको समाप्त करनेकी मेरी भी यदि बिलकुल उतनी नहीं तो लगभग उतनी इच्छा तो है ही जितनी कि किसी पक्के समाजवादी की, बल्कि कहिए साम्यवादीकी है। लेकिन हमारे तरीके अलग-अलग हैं। हमारी भाषाएँ अलग-अलग हैं। मेरा 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त कोई कामचलाऊ चीज नहीं है — किसी तरहका भ्रम-जाल तो यह बिलकुल नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह अन्य सभी सिद्धान्तोंसे अधिक दीर्घायु होगा। इसके पीछे दर्शन और धर्मका बल है। सम्पत्तिशाली लोगोंका आचरण इस सिद्धान्तकी ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाया है, यह कोई इस सिद्धान्तके गलत होनेका सबूत नहीं है; यदि इससे कुछ सिद्ध होता है तो धनाढ्य लोगोंकी कमजोरी। अन्य किसी सिद्धान्तकी संगति अहिंसासे नहीं बैठती। अहिंसात्मक तरीकेमें होता यह है कि अगर अन्यायी अपने अन्यायका मार्जन नहीं करता तो वह अपनी कब्र आप खोदता है। क्योंकि, इसके अधीन या तो अहिंसात्मक असहयोगके द्वारा उसे उसकी गलती दिखाई जाती है और वह उसे देखता है, या फिर वह अपने-आपको शेष समाजसे बिलकुल कटा हुआ पाता है। इसलिए जब इस दिशामें कदम उठानेका समय आयेगा तब समझदार समाजवादियों और वामपंथियोंके मेरे रास्तेमें आनेकी सम्भावना नहीं है। वे जानते हैं कि अगर मेरा तरीका सफल होता है तो गरीब और दलित लोग सुखी होंगे। वे अपने तरीकेसे कार्रवाई करनेको अभी तैयार नहीं हैं; और दूसरी ओर वे इतने देश-भक्त हैं कि जब तक मेरी ईमानदारी और देशप्रेममें उन्हें विश्वास है तब तक वे मेरी कोशिशोंमें अड़चन डालनेवाले नहीं हैं।

फिर भी मुझे पाखण्डसे सावधान रहना है। चरखा मेरी कसौटी है। ऐसी कोई सीधी कसौटी नहीं है जिससे मैं जान सकूं कि किसी कांग्रेसीने साम्प्रदायिक एकता या अस्पृश्यता-निवारणके लिए कितना काम किया है। लेकिन मैं यह तो आसानीसे जान सकता हूँ कि उसने कितना काता है और किसी क्षेत्र विशेषमें कहाँ तक खादीका चलन हुआ है। इसलिए मैंने उस मित्रकी सलाह भी स्वीकार नहीं की है जिसकी इच्छा है कि मैं एक निश्चित अवधि केवल खादी-कार्यके लिए ही अलग कर दूं। मेरा इरादा परिणामके आधारपर कुल प्रयत्नका जायजा लेनेका है। यह बात तो मैंने गणितका हिसाब लगाकर निर्णायक रूपसे सिद्ध कर दी है कि यथार्थ कताईके बलपर खादी इतनी सस्ती हो सकती है कि उसे निर्धनतम ग्रामवासी भी पहन सके। कम-से-कम पूंजीगत लागत और संगठनात्मक प्रयत्नसे

अधिक-से-अधिक ग्रामवासियोंकी जेबोंमें इतना पैसा पहुँचानेकी जितनी क्षमता कताई और उसके सहायक धन्धोंमें है उतनी गाँवोंकी और किसी भी कारीगरी और दस्तकारीमें नहीं है।

कांग्रेसी भाई यह जान लें कि अन्य कठिनाइयाँ दूर हो जानेपर भी जब तक मुझे भारत-भरमें सफल खादी-कार्यका निश्चित प्रमाण नही मिल जाता तब तक मुझे अपने-आपपर और कांग्रेसियोंपर इतना भरोसा नही हो सकेगा कि मैं सीधी कार्रवाई आरम्भ करूँ। और जब तक कांग्रेसियोंका विशाल समूह गम्भीरता, लगन और समझ-दारीके साथ प्रयत्न नही करता तब तक देश-भरमें सफल खादी-कार्य हो पाना अस-म्भव है। इसीलिए मैं कहता हूँ:

"स्वराज्यके लिए कातो।"

सेगाँव, ११ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-१२-१९३९

३५. गीता-जयन्ती

पूनाके 'केसरी' वाले श्री गजानन केतकर लिखते हैं:[1]

अब तक मैं श्री केतकरका आग्रह टालता रहा। मैं कह नहीं सकता कि इस तरहकी जयन्तियाँ जिन उद्देश्योंसे मनाई जाती हैं वे उद्देश्य इनसे फलित होते हैं या नही। आध्यात्मिक विषयोंमें विज्ञापनके सामान्य तरीकेके उपयोगकी गुंजाइश नही होती। आध्यात्मिक विषयोंका सबसे अच्छा विज्ञापन तदनुसार आचरण है। मैं मानता हूँ कि सभी आध्यात्मिक कृतियोंके प्रभावका रहस्य प्रथमतः तो इस बातमें छिपा है कि वे रचयिताके अनुभवोंका सच्चा दर्पण हैं और दूसरे, इस बातमें कि भगवद्भक्त उनमें निहित शिक्षाको स्वयं अपने जीवनमें यथासम्भव आचरित करके दिखाते हैं। इस प्रकार रचनाकार अपनी कृतियोंमें प्राण फूंकते हैं और उनके अनुयायी उनके अनुसार अपने आचरणको ढालकर उन्हें शक्तिसम्पन्न करते हैं। मेरी समझसे 'गीता', तुलसीकृत 'रामायण' तथा ऐसे ही अन्य ग्रन्थोंका करोड़ों लोगोंपर जो प्रभाव है उसका रहस्य यही है। इसलिए श्री केतकरके आग्रहको स्वीकार करते हुए मैं आशा कर रहा हूँ कि आगामी जयन्तीमें[2] जो लोग भाग लेंगे वे सही भावनासे और उस दिव्य काव्यके सन्देशको जीवनमें आचरित करनेके निश्चित संकल्पके साथ भाग लेंगे। मैंने यह दिखानेकी कोशिश की

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। गजानन केतकरने गांधीजी से अनुरोध किया था कि वे गीता-जयन्ती पर लिखें और यह बतायें कि वे गीता के "दूसरे और तीसरे अध्यायों को आधार-रूप क्यों मानते हैं"।

२. २२ दिसम्बर को

है कि 'गीता' का सन्देश फलासक्तिके बिना अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। 'गीता' की विषय-वस्तु दूसरे अध्यायमें[1] निहित है और उस सन्देशको आचरित करनेकी पद्धतिका निरूपण तीसरे अध्यायमें[2] किया गया है। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य अध्यायोंका महत्त्व कुछ कम है। सच तो यह है कि उनमें से प्रत्येकका अपना अलग महत्त्व है। विनोबाने 'गीता' को 'गीताई'[3] कहा है। उन्होंने बड़ी ही प्रांजल और भव्य मराठीमें उसका समश्लोकी अनुवाद किया है। अनुवादके छन्द वही है जो मूलके है। हजारो लोगोंके लिए यह सच्ची माता है, क्योंकि कठिनाइयोंकी घड़ीमें यह उन्हें सान्त्वनाका पयपान कराती है। इसे मैंने अपना आध्यात्मिक कोश कहा है, क्योंकि संकटके समय इसने कभी भी मुझे निराश नही किया। इसके अलावा यह साम्प्रदायिकता और मतान्धतासे मुक्त है। इसकी शिक्षा देश-कालातीत है। 'गीता' को मै कोई दुरूह ग्रन्थ नही मानता। वैसे पण्डित लोग तो हर चीजमें दुरूहता देख सकते है। लेकिन मेरी रायमें, किसी सामान्य समझवाले आदमीको 'गीता' का सन्देश ग्रहण करनेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। इसकी संस्कृत तो अत्यन्त सरल है। मैंने इसके कई अंग्रेजी अनुवाद पढे है, लेकिन एडविन आर्नल्ड द्वारा किया गया इसका काव्यानुवाद तो बेजोड़ है। अनूदित कृतिको उन्होंने 'सांग सिलेस्टियल' की सुन्दर और सटीक संज्ञा दी है।

सेगांव, ११ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-१२-१९३९

३६. तार: अमृत कौरको

वर्धागंज
११ दिसम्बर, १९३९

राजकुमारी अमृत कौर
जालन्धर सिटी

इदौर मत जाओ।[4] दूसरा काम खत्म करके सीधी यही आ जाओ। पुस्तकें और दूसरी चीजें साथ ले आओ। सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५७) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ७२६६ से भी

१. 'सांख्य योग'
२. 'कर्मयोग'
३. गीता-माता
४. देखिए "पत्र: अमृत कौरको", पृ० १६।

३७. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
११ दिसम्बर, १९३९

प्रिय मूर्तिमन्त मूर्खता,

तुमने कैसे सोचा कि मैं नाराज हूँ? मैंने तो सर्वथा भोले भावसे और प्रेमसे लिखा था।[1] यदि बच्चेको किसी चीजकी जरूरत होती है और माता-पिता उससे धीरज रखनेको कहते हैं तो इसका मतलब क्या यह है कि वे उससे रुष्ट हैं? मैं कितने यत्नसे अच्छी आलमारीकी तलाशमें हूँ, इस ओर तो तुम्हारा ध्यान जाता नहीं। लेकिन तुम ऐसी तुनकमिजाज, ऐसी मूर्ख हो कि झट गलतफहमीमें पड़ जाती हो। जो भी हो, तुम पुस्तकें और अपनी जरूरतकी दूसरी चीजें अवश्य ले आना। नहीं लाओगी तो मुझे दुःख होगा। आनेकी तिथि तारसे सूचित करना।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५८) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ७२६७ से भी

३८. पत्र : भारतन कुमारप्पाको

सेगाँव
११ दिसम्बर, १९३९

प्रिय भारतन,

बुधवारको दिनके ४ बजे मैं विद्यार्थियोंकी प्रतीक्षा करूँगा।

हाँ, वह पुर्जा तुम्हारे पास गलती से चला गया। पता नही किसका था। फोन लगवानेपर कितना खर्च बैठेगा, इसका पता करो तो अच्छा।[2]

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५९०) से

१. देखिए पृ० १७।

२. देखिए "पत्र: भारतन कुमारप्पाको", पृ० १७।

३९. अमेरिकाको क्रिसमस सन्देश

[११ दिसम्बर, १९३९ के पश्चात्][1]

ऐसा समझा जाता है कि क्रिसमसके दिन ईसाई जगत उस व्यक्तिके जन्मपर आनन्द मनाता है जिसे कि वे लोग शान्तिका राजकुमार कहनेमे सुख मानते हैं। मेरी बड़ी कामना है कि ईसाई देश अमेरिका इस अवसरके योग्य सिद्ध हो और युद्धरत राष्ट्रोको शान्तिका सन्देश दे।

मूल अंग्रेजीसे . प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

४०. पत्र : एगथा हैरिसनको

सेगाँव, वर्धा
१२ दिसम्बर, १९३९

प्रिय एगथा,

लगता भले हो कि मैं तुम्हारी उपेक्षा कर रहा हूँ, लेकिन ऐसा है नही। यहींके काममें सारा समय निकल जाता है। और फिर आम तौरपर मुझे जितना मैं 'हरिजन' में लिख देता हूँ उससे अधिक कुछ कहना भी नही होता। सब-कुछ तो इतना साफ है। मैं चाहूँगा कि तुम चिन्ता न करो। करनेवाला तो ईश्वर ही है, हम नही। सब-कुछ अहिंसक दृष्टिसे किया जा रहा है। इसमें मेरी सारी शक्ति लग जाती है। एन्ड्रयूज रविवारको कलकत्ता गये।

साथका पत्र[2] पोलक[3] को दे देना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१४) से

१. इंटरनेशनल न्यूज सर्विसके संवाददाताने प्यारेलालको लिखे अपने ११ दिसम्बर, १९३९ के पत्रमें उनसे कहा था कि वह गांधीजी से अमेरिकाके लिए क्रिसमसके अवसरपर कोई सन्देश देनेका अनुरोध करें।

२. यह उपलब्ध नहीं है

३. हेनरी सॉलोमन लियन पोलक

४१. पत्र : द० बा० कालेलकरको

सेगाँव
१३ दिसम्बर, १९३९

चि० काका,

अगर न जाना ही ज्यादा ठीक लगता हो और जैसे तुम बता रहे हो वैसे बचा जा सकता हो, तो उन्हें साफ-साफ लिख दो। अथवा कहो कि आया तो हिन्दीमें ही बोलूँगा। जैसा उचित समझो, करो। दोनों प्रकारसे कोई हर्ज नहीं होगा। लखनऊ जाना अगर सीधेसे टल सकता हो, तो तुम्हारे स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वह मुझे अच्छा लगेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७४०) से

४२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

मगनवाड़ी, वर्धा
१३ दिसम्बर, १९३९

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा खत मिला है। शारीरिक प्रकृति जहा अच्छी हो सके वही रहना। तुम्हारे संकल्प-पालनमें मैं बाधा डालना नही चाहता हू। जो धर्म्य माना जाय वही करो। रामनारायण[1] इस वक्त तो यहाँ हैं। उसके पास मैं 'हरिजनसेवक' का काम लेता हूं। ध्यान और खत[2] से करते हैं। खादीका काम सीख रहे है। मीराबहनको हिन्दी सिखाते हैं। कहते तो हैं उनके दिलका काफी परिवर्तन हुआ है। यह बात असंभवित तो नहीं है। यहाँ सरलतासे रहते हैं। मुझे इस बारेमे दौरना [सुझाना]। मैं अंधा हूँ। जैसा चाहूं ऐसा करनेको कहते हैं। 'नवज्योति'[3] इत्यादि छोड़ना उचित समझू तो छोड़नेको तैयार हैं। मैं ही आस्ते चल रहा हूँ।

तुमारा कांग्रेस कमिटीमें न पड़नेका निश्चय ठीक ही है। दूसरोंको बताते रहो।

१. रामनारायण चौधरी
२. लगन
३. हिन्दी साप्ताहिक

इन्दौर, ग्वालियरकी स्थिति कुछ अच्छी नहीं लगती है। जिन्होंने अकालके लिए काता उन्होंने कितने घंटे दिये? प्रश्नका उद्देश्य तो समझा होगा।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४३. पत्र : जी० बी० गुर्जले[1]को

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

प्रिय भिक्षु,

आपके तारके उत्तरमें मैंने जो तार भेजा वह पता नहीं आपको मिला भी या नहीं। पिछले पत्रोंको निबटानेके क्रममें आपका पत्र हाथ लगा। प्रतिज्ञासे मुक्त होनेकी बात मत सोचिए। जो काम हाथमें हो, करते रहिए। मन्दिर-प्रवेशका कार्य कैसा चल रहा है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३९०) से

४४. पत्र : परीक्षितलाल मजमूदारको

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

चि० परीक्षितलाल,

मेरे खातेमें जमा रकममें से १००० रुपये डॉ० चन्दुलालके लिए निकाल लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९६४) से

१. भिक्षु निर्मलानन्द

४५. पत्र : धरमशी भा० खाजाको

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

चि० धरमशी,

तुम्हारा पत्र उत्तम है। मैंने जो लिखा है, ठीक ही लिखा है। छिपे-छिपे व्यभिचार करनेकी अपेक्षा अधिक स्त्रियाँ रखना ज्यादा अच्छा है,[1] इस सम्बन्धमें सन्देह करनेकी गुंजाइश ही नही है। अतः मेरा कथन निरर्थक नही है। शुद्ध ब्रह्मचर्य तभी सिद्ध हुआ माना जा सकता है, जब स्त्रीके शरीरका स्पर्श होनेके बाद भी मनुष्य निर्विकार रह सके। ऐसे दृष्टान्त तो सारे ससारमें देखनेमें आते हैं। हाँ, वे विरले होते है, यह ठीक है।

बापूकी दुआएँ

खाजा धरमशी भानजी
वीछीआ
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० १९८५७) से

४६. पत्र : कंचन मु० शाहको

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

चि० कंचन,

तेरा पत्र मिला। तू वहाँ क्या कर रही है? पूरी तरह स्वस्थ होकर आना। अभी तो मुन्नालाल[2] नही लौटे। रसोई अमतुस्सलाम सँभाल रही है। जोहरा[3] उसकी मदद करती है। बा दिल्ली गई है। कनु राजकोट गया है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती कंचनबहन
मार्फत सुधाबाई
लेडी बटलर हास्पिटल, खंडवा

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८७) से। सी० डब्ल्यू० ७०६५ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० २४८-५२।
२. मुन्नालाल जी० शाह, कंचनके पति
३. डॉ० मु० अ० अंसारीकी पुत्री

४७. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला। अब तुझे मैं लिखूँ क्या? एक मिनटकी भी फुर्सत नहीं है। महादेव तो मुझसे अभी हालमें मिलकर गया है। इस समय वह मैसूरमें है। रविवारको गया है। शायद रविवारको लौटे। बाबलो[1] साथ गया है। बा अभी दिल्लीमें ही है। लक्ष्मी अब अच्छी है। सभी बीमार अच्छे होते जा रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

छुट्टियोंमें मन लगाकर अध्ययन करना और पास होना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३७८) से

४८. पत्र : रुक्मिणी बजाजको

सेगाँव, वर्धा
१४ दिसम्बर, १९३९

चि० रुक्मिणी[2],

तेरा पत्र मिला था। फिर कल राधिका[3] का भी मिला। उससे और भी अधिक जानकारी मिली। भगवान करे, प्रसव सकुशल निबट जाये।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती रुक्मिणीबहन
मार्फत श्री बनारसी बजाज
ठठेरी बाजार
बनारस सिटी

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८२९) से; सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

१. महादेव देसाईका पुत्र, नारायण
२. मगनलाल गांधीकी पुत्री, जिसका विवाह बनारसीलाल बजाजसे हुआ था
३. रुक्मिणीकी छोटी बहन

४९. नैतिक प्रश्न

मेरे और एक पाश्चात्य मित्रके बीच हुआ पत्र-व्यवहार[1], जो जन-साधारणकी दिलचस्पीका है, नीचे दे रहा हूँ।

. . . कांग्रेसका वह प्रस्ताव[2] मुझे बहुत अच्छा लगा जिसमें ब्रिटिश सरकारसे माँग की गई है कि वह अपने उद्देश्योंको—खासकर साम्राज्यके मातहत देशों और उनमें भी विशेषतः भारतके विषयमें अपने उद्देश्योंको —स्पष्ट करे। प्रस्तावने साम्राज्य-सरकारके सामने नैतिक प्रश्न खोलकर रख दिये हैं और आजके इस दूषित वातावरणमें, जबकि राजनीतिज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके संचालनमें स्वार्थपूर्ण और आदर्श-विहीन इष्ट-साधनासे ही शासित प्रतीत होते हैं, भारतको निराली शानसे सिर ऊँचा किये खड़ा दिखलाया है। . . .

मैं कांग्रेसके रवैये और कार्यवाहीसे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। परन्तु कुछ और ऐसी बातें हैं जिनसे मैं अपने-आपको पूर्णतः सहमत नहीं पा रहा हूँ। . . .

पहली बात तो यह कि मुझे लगता है कि इस सवालको ऐसा माननेकी कुछ प्रवृत्ति रही है गोया यह महज अंग्रेजोंकी "मदद करनेका" ही सवाल हो, और अगर अंग्रेज भारतकी मदद चाहते हों तो भारतकी उचित माँगें स्वीकार करके उसकी मदद हासिल करना उनका काम है। इसका यह भी अर्थ निकलता प्रतीत होता है कि जर्मनोंकी विजय न होने देना ऐसी बात है जिसका वास्ता अंग्रेजोंसे ही है, और यदि भारत सच्चे दिलसे मदद करता है तो वह एक तरहसे भारतकी "मेहरबानी" होगी, जो तभी की जायेगी जब अंग्रेजोंको इसका सत्पात्र समझा जायेगा, और उन्हें इस देशके साथ अपने सम्बन्धोंमें नेक-नीयतीका सबूत देकर अपनी "सत्पात्रता" प्रमाणित करनी होगी। . . .

. . . मैं समझता हूँ कि हमें उनकी "सत्पात्रता" की राह नहीं देखनी चाहिए और यदि उनमें इसका अभाव हो तो भी संकटकी इस घड़ीमें पाश्चात्य "लोकतन्त्रों" की यथासम्भव सहायता करनेसे तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए। . . .

१. पत्र-लेखकके पत्रके कुछ अंश ही यहाँ दिये गये हैं।

२. १४ सितम्बर, १९३९ का; देखिए खण्ड ७०, परिशिष्ट १०।

. . . सवाल जर्मनीपर विजय पानेमें अंग्रेजोंकी मदद करके उनपर मेहरबानी करनेका नहीं है; सवाल तो दूसरोंके साथ मिलकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेका है कि नाजी जर्मनी उन राष्ट्रोंको हराकर विश्व साम्राज्य प्राप्त न कर पाये जिनमें ही, जहाँ तक हम देख सकते हैं, केवल उसे वैसा करनेसे रोकनेकी कुछ सामर्थ्य है। हम, अर्थात् इस समय दुनियाके शोषित और पराधीन लोग, जर्मनीको जीत जाने दें, यह हमारे लिए कल्याणकर नहीं होगा। और मुझे डर है कि यदि इस समय, उसकी विजयको रोकनेमें दूसरोंका हाथ बँटानेसे हमारे इनकारके फलस्वरूप, जर्मनी जीतता है तो विश्वके लिए और खासकर सैनिक दृष्टिसे कमजोर एशिया और आफ्रिकाके गैर-यूरोपीय लोगोंके लिए उसके जो परिणाम होंगे, उनकी नैतिक जिम्मेदारीसे हम बच नहीं पायेंगे, बावजूद इस बातके कि युद्धकी कारणभूत स्थिति हमारी पैदा की हुई नहीं है।

आज मैंने 'न्यूज क्रॉनिकल' के नाम आपका पत्र[1] देखा है। आपने विवाद-विषयोंको कितने अद्भुत ढंगसे उजागर किया है और यह कितना जरूरी है कि ये विषय पाश्चात्य देशोंके समक्ष निरन्तर उपस्थित रहें! फिर भी मैं महसूस करता हूँ कि भविष्य हमसे माँग कर रहा है कि हम संकटकी इस घड़ीमें निष्क्रिय न बैठे रहें — इस बातकी प्रतीक्षा न करें कि अंग्रेज हमारी न्यायपूर्ण माँगें स्वीकार कर लें। युद्धका परिणाम शायद इसी बातपर निर्भर हो कि यह देश इस समय क्या रवैया अख्तियार करता है, इस पर नहीं कि यह अन्ततोगत्वा क्या रुख अपनाता है।

मैं जर्मनोंसे बिलकुल भी घृणा नहीं करता; इसके विपरीत मैं उनसे गहरी हमदर्दी रखता हूँ। . . . परन्तु जीवनके बारेमें नाजियोंके वर्तमान दृष्टिकोणसे मुझे निश्चय ही घृणा और भय है, खासकर इसलिए कि वह दृष्टिकोण उन जातियोंके साथ उनके सम्बन्धको प्रभावित करता है जिन्हें वे "निकृष्ट जातियाँ" समझते हैं। . . . जर्मन दृष्टिकोण हम सबके लिए घोर अनिष्टका सूचक है और मैं समझता हूँ कि इस विषयमें 'जो होगा देखा जायेगा', वाला रुख अपनाना पागलपन होगा।

इस बीच कीमती दिन और घंटे बीतते जा रहे हैं, और यह देखकर कि भारतने अंग्रेजोंकी परेशानीका कारण न बननेका अब तक कोई निश्चित सबूत नहीं दिया है, दुनिया-भरमें ऐसी शक्तियोंको प्रोत्साहन और बल मिल सकता है जो नाजीवादको उभारती हैं। मुझे तो नहीं लगता कि यह गैर-यूरोपीय लोगों अथवा दुनियाके हितकी बात होगी।

१. देखिए पृ० ७–८।

इसका मैंने निम्नलिखित जवाब दिया:

मै एक पुराने अन्धविश्वाससे — यदि उसे अन्धविश्वास कहा जा सकता हो — चिपका हुआ हूँ। जब मुझे किसी ऐसे मामलेमें शक होता है जिसमें कोई भी पक्ष लेनेमे अनैतिकता न हो, तो मै सिक्का उछालता हूँ और उसका जो भी फल होता है उसे वस्तुतः ईश्वरीय मार्गदर्शन समझता हूँ। ऐसे मामलोंमें फैसला करनेका मेरे पास कोई और वैज्ञानिक आधार नही है। जहाँ दुनियावी शक्ति और समझदारीका बस नही चले, वहाँ सब कुछ ईश्वरके हाथोंमें छोड़ देना मै वैज्ञानिक पद्धति मानता हूँ। वर्तमान संकटमें भी मैंने एक तरहसे सिक्का ही उछाला है। यदि मेरा बस चलता तो आप जानते है कि क्या होता। मगर वह होना नही था। कांग्रेस द्वारा अपनाया गया रास्ता अनैतिक नही था, इतना ही नही, उसके लिए तो वही एकमात्र नैतिक रास्ता था। अतः मैंने काग्रेसका साथ दिया।[1] मेरा उद्देश्य अहिंसाके तरीकेको बढ़ावा देना था और अब भी है और यही बात मेरे अपने प्रस्तावमें थी। कांग्रेसके रुखमें इस बातकी गुंजाइश थी कि कोई इसका वैसा अर्थ लगा सकता है जैसाकि आपने लगाया है। परन्तु मै इसे कोई शर्त नही समझता। यह तो सिक्का उछालकर किया गया निर्णय है। काग्रेसने कहा है कि यदि अंग्रेजोंकी नीयत साफ है, तो हम कूद पड़नेको तैयार है। उनकी नीयत को परखनेका तरीका यह है कि भारतके बारेमें उनके इरादेका पता लगाया जाये। यदि उनका इरादा नेक है तो यह स्पष्ट है कि ईश्वर चाहता है कि काग्रेस अपना सारा जोर ब्रिटेनके पक्षमे लगा दे, जिससे कि अन्ततः विजय सबसे शक्तिशाली शस्त्रोंकी न होकर सबसे सही उद्देश्यकी हो। जो आप चाहते है वह तो ब्रिटेनको पहले से ही सुलभ है। वह लड़ाईमें लगानेके लिए यहाँसे बेरोक-टोक आदमी और पैसा हासिल कर रहा है। उसे यह सब तब तक मिलता रहेगा जब तक कि हिंसा नही भड़क उठती। काग्रेस हिंसाको सहन नही करेगी — ऐसा हमें मान लेना चाहिए। तब फिर ब्रिटेनको कांग्रेससे हिंसा-जैसी किसी चीजका डर नही होना चाहिए। और मै समझता हूँ कि यदि अहिंसाके दृष्टिकोणसे विचार किया जाये — जोकि मेरे मतानुसार विचार करने योग्य एकमात्र दृष्टिकोण है — तो कांग्रेसके लिए ब्रिटेनका नैतिक समर्थन करना तब तक अनैतिक होगा जब तक कि ब्रिटेनकी नैतिक स्थिति स्पष्ट नहीं हो जाती।

मै आपकी तरह नाजीवादके बारेमें कोई नियम निर्धारित नही कर रहा। जर्मन लोग भी उसी तरह मनुष्य है जैसे कि आप और मै। नाजीवाद और "वादो"की तरह आजका खिलौना है। इसका भी वही हाल होगा जोकि दूसरे "वादो" का हुआ है।

मेरा खयाल है कि मै आपके और अपने बीचके अन्तरको समझ पा रहा हूँ। आप, पाश्चात्य होनेके नाते, बुद्धिको श्रद्धाके अधीन नही कर सकते। मै, भारतीय होनेके नाते, यदि चाहूँ तो भी श्रद्धाको बुद्धिके अधीन नही कर सकता। आप अपनी

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० १२५-२७।

बुद्धिसे ईश्वरको चुनौती देते हैं, मैं नहीं दूंगा।। जैसाकि 'गीता' में कहा है, "दैवं चैवात्र पंचमम्[1]", भगवान ही पाँचवाँ अथवा अज्ञात निर्णायक तत्त्व है।

हमारे बीच बौद्धिक भेदोंके बावजूद, हमारे दिल सदा एक रहे हैं और एक रहेंगे।

मेगांव, १५ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-१२-१९३९

५०. पत्र : दिलखुश दीवानजीको

सेगांव, वर्धा
१५ दिसम्बर, १९३९

भाई दिलखुश,

तुम्हारा काम इतना अच्छा लगता है कि मन करता है ऐसा कर दूं कि तुम्हें पैसेकी कमी बिलकुल न रहे। लेकिन फिर मुझे लगता है कि शायद यह ज्यादा अच्छा होगा कि पैसेकी कमीके बावजूद तुम आगे बढ़ो। लक्ष्मीदास तो तुम्हारी बगलमें है ही।

तुम्हारा बुनाईका काम वहीं होना चाहिए, इस सम्बन्धमें मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है। आदमी तैयार होनेमें कितनी देर लगती है? खादीकी अन्तिम सफलताके लिए यह आवश्यक है कि आदिसे अन्त तक सभी प्रक्रियाएँ सम्बन्धित गाँवमें ही हों।

बापूके आशीर्वाद

श्री दिलखुश दीवानजी
गांधी कुटीर
कराडी, बरास्ता नवसारी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४४) से

१. अध्याय १८, श्लोक १४

५१. पुर्जा : अ० ब० को

१५ दिसम्बर, १९३९

वह टूटी है और है भी रा० कु०[1] की। तुझे क्या हक है उसको इस्तेमाल करनेका ?

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३२) से

५२. मेरी कठिनाई[2]

पता नही, अंग्रेजीमें लिखनेवाले सभी पत्रकारोको मेरी ही तरह कठिनाई महसूस होती है या नही। मेरे मनमें यह सवाल इसलिए उठ रहा है कि एक विद्वान अंग्रेजके पत्रपर, जिसे २ दिसम्बरके 'हरिजन' में अंशत. उद्धृत किया गया है, टिप्पणी लिखते हुए मै क्रिया 'कैविल' का बड़ा मूर्खतापूर्ण प्रयोग कर गया।[3] अपनी टिप्पणीमें मैंने कहा था : "लेखक महोदय औपनिवेशिक दर्जेसे भिन्न स्वाधीनता की माँगपर गलत आपत्ति करते जान पड़ते है।" विद्वान पत्र-लेखकने मेरा ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित किया है कि 'कैविल' शब्दका अर्थ तो छिद्रान्वेषी आलोचना होता है और ऐसी कोई आलोचना करनेका तो उनका कोई खयाल नही था। अंग्रेजी के शब्दोंके प्रयोगमें मै बड़ी सावधानी बरतता हूँ। लेकिन लाख सावधानी बरतनेके बावजूद मै एक विदेशी भाषाके अपने अपूर्ण ज्ञानका क्या कर सकता हूँ ? इस शब्दका कोशमें क्या अर्थ है, यह मुझे कभी मालूम नही था। इसे मैंने पढते-सुनते ही ग्रहण किया होगा। अब तक मै इसका एक निर्दोष अर्थ—अर्थात् कड़ी आपत्ति—लगाता आ रहा था। मै पत्र-लेखकको जानता हूँ और उनके बारेमें मेरी जो जानकारी है उसके अनुसार मैं कभी भी यह नही सोच सकता था कि वे छिद्रान्वेषी आलोचना भी कर सकते है। अनजानेमें हुई इस भूलके लिए मैंने उनसे माफी माँगी है।[4] मेरा ध्यान इस ओर दिलाकर उन्होंने बहुत अच्छा किया। भगवान ही जानता होगा कि अंग्रेजी भाषा तथा उसके सूक्ष्म मुहावरों और प्रयोगोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण ही मैंने कितने लोगोंका जी—अनजाने ही—दुखाया होगा। भाषा अपने बोलनेवालोंके विकासके

१. सम्भवत: राजकुमारी अमृत कौर
२. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
३. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४३२-३६।
४. देखिए "पत्र: एक विशपको", पृ० २०।

साथ विकसित होती चली जाती है। मैं तो अपने तई अधिक-से-अधिक कोशिश ही कर सकता हूँ। बाकी तो मुझे अपने अंग्रेजी पढ़नेवाले पाठकोंकी क्षमाशीलताके आसरे ही चलना होगा। मेरी मर्यादाओंको जानते हुए उन्हें मानना चाहिए कि जहाँ मेरी भाषासे उन्हें चोट पहुँचती है वहाँ मेरा इरादा चोट पहुँचानेका बिलकुल नहीं होता।

सेगाँव, १६ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-१२-१९३९

५३. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
१६ दिसम्बर, १९३९

चि० बबुड़ी,

कैसी शर्मकी बात है! दमेका दौरा क्यों होने दिया? और अगर हुआ ही था, तो डर क्यों गई? आखिर तूने शकरीबहन[1] के कार्यक्रममें विघ्न उपस्थित किया न? टोंटीदार केतली घरमें रखनी चाहिए, साथमें जितनी जरूरी हो उतनी लम्बी ट्यूब, तो काम चल जाता है। केतली पीतल या ताँबे की लेनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००१९) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

५४. पत्र : कंचन मु० शाहको

सेगाँव, वर्धा
१६ दिसम्बर, १९३९

चि० कंचन,

लौटती डाकसे तुझे जवाब भेज रहा हूँ। तू जहाँ जाना चाहेगी वहाँ जा सकेगी। लेकिन केवल अध्ययन करना हो, तो वह तो विट्ठल कन्या विद्यालयमें ही हो सकेगा। जब तक जरूरत हो, तब तक वहाँ रहना। जब आनेका मन हो चली आना। स्वास्थ्य मत बिगड़ने देना। मेरा बारडोली जाना तो अभी रद्द हुआ समझना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८६) से। सी० डब्ल्यू० ७०६६ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. शारदाकी माता

५५. पत्र : कनु गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१६ दिसम्बर, १९३९

चि० कनैयो,

राधाबहनने तेरे समाचार दिये। अच्छा हुआ न कि वह हाजिर थी? तुझे क्या बहुत कष्ट हुआ? उतावली मत करना। कल तक तो 'रामायण' और भजनका कार्यक्रम आशादेवीने चलाया, दिलरुबाके साथ। आज वह दस-एक दिनके लिए बाहर गई है, इसलिए शामको शायद उसकी कमी महसूस हो। कृष्णो तानपूरा छेड़ सके तो काम चल जायेगा। सबेरेका गीता-पाठ और भजन सु० बहन चलाती है।

पिछली बार 'हरिजन' का सब काम मंगलवारको पूरा हो गया था। प्यारेलालने टाइप किया था। यह तो तुझे मालूम ही होगा। टाइपराइटर काकासाहबके पास पड़ा था, इसलिए कोई अड़चन नहीं हुई। हो सकता है, राजकुमारी बहनको अभी कुछ समय लगे। महादेवभाईको इतवार या सोमवारको लौटना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से

५६. पत्र : रेहाना तैयबजीको

सेगाँव, वर्धा
१६ दिसम्बर, १९३९

बेटी रेहाना,

तूने कैसी खुशी खबर भेजी है। जब मैंने अम्माजानकी बीमारीका सुना मैं डर गया था। ईश्वरने बड़ी कृपा की। तुझे भी अच्छा रहता होगा। सरोज[1] को कहो कैसे शरमकी बात कि वर्धामें बीमार हो गई।

वापुकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६७६) से

१. सरोजिनी नानावटी

५७. पत्र-लेखकों और सन्देश चाहनेवालोंसे[1]

इन स्तम्भोंमें मैंने अकसर कहा है कि मैं सभी पत्रोंको पढ़ने या उनकी प्राप्ति सूचित करने अथवा देशमें हमेशा चलनेवाले विभिन्न समारोहों या उत्सवोंके लिए सन्देश देनेकी स्थितिमें नही हूँ। इस कामके लिए मेरे पास न समय है और न शक्ति। प्रतिदिन जितने पत्र आते हैं, उन्हे मेरे सहायक भी नही निवटा सकते। अकसर पत्रोंके साथ अंग्रेजीके अलावा विभिन्न भारतीय भाषाओंमें लिखी पुस्तिकाएँ और रिपोर्टें भी आती है। नतीजा यह होता है कि मेरे सामने केवल वही पत्र रखे जाते है जिन्हे देखना मेरे लिए बिलकुल आवश्यक होता है। शेष पत्र महादेव देसाई, प्यारेलाल और, यदि यहाँ हुई तो, राजकुमारी अमृत कौर या, यदि उसे डाक्टरी कामकाजसे फुरसत मिली और पत्रोंकी ज्यादा भरमार रही तो, डॉ० सुशीला नय्यर निवटाती हैं। इस हालतमें मैं तो पत्र-लेखकोंसे यही कहूँगा कि वे मुझे बख्श दें। एक समय ऐसा था जब मैं हर पत्र पढ जाता था और जितने पत्र आते थे उनमें से अधिकांशके जवाब भी देता था। उससे मैं भारतके मानसको इतनी अच्छी तरह समझ सका जितनी अच्छी तरह और किसी रीतिसे नही समझ सकता था। लेकिन तब मैं जवान था और मेरा स्वास्थ्य अच्छा था। अब बुढ़ापेने मुझे आ घेरा है और मुझे अपने स्वास्थ्यकी देखरेख बड़ी सावधानीसे करनी पडती है। लेकिन दूसरी ओर पत्रोंकी संख्या और समस्याएँ बढ़ती ही गई है। मैं लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि वे मुझे तभी लिखें जब उन्हे लगे कि उनके पास कहनेको कोई ऐसी बात है जिसके सम्बन्धमें केवल मैं ही कुछ कह या कर सकता हूँ। लेकिन इससे भी ज्यादा जरूरत तो इस बातकी है कि वे मेरे प्रति धैर्य और क्षमावृत्तिसे काम ले। यदि उन्हें उनके पत्रोंके उत्तर या प्राप्तिकी सूचनाएँ न मिलें तो इसका वे कोई गलत अर्थ न लगायें। मुझे एक बहुत रोष-भरा पत्र मिला है, जिससे मैं यह सब लिखनेको प्रेरित हुआ हूँ। पत्र-लेखकने अपने पहले पत्रके साथ एक पुस्तिका भेजी थी। उसके सम्बन्धमें मैं कुछ कर नही पाया। उसके बारेमें मुझे कुछ नया कहना भी नही था। इसके अलावा, मुझे मालूम था कि उसमें जिस विषयकी चर्चा है, उसके सम्बन्धमें पण्डित नेहरू कार्रवाई कर रहे हैं। इसलिए अपनी शक्ति बचानेके खयालसे मैंने उस विषयमें कुछ नहीं किया। अकसर मेरे पास ऐसे पत्र भी भेज दिये जाते हैं जो वास्तवमें कार्य-समितिके सदस्योंके लिए होते हैं। लोगोंको मालूम है कि मैं कार्य-समितिका सदस्य नही हूँ। उन्हे यह भी जान लेना चाहिए कि उसके रोजमर्राके कामोंमें मैं कोई रस नहीं लेता। जिस काममें समितिको मेरी सलाहकी जरूरत होती है, उसका वही काम मेरे पास आता है। इसलिए सबसे अच्छा तो यही होगा कि जिस बातके

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

सम्बन्धमें कार्य-समिति खुद ही कारंवाई कर सकती है और करती है उसके सम्बन्धमें मुझे न लिखा जाये। पत्र-लेखकोंको अपने पत्रोंकी प्राप्तिकी सूचना न मिले तो वे मुझे क्षमा कर दें। मैं केवल अपनी असमर्थताके कारण ही सभी पत्रोंको नही निबटाता। जहाँ तक सन्देशोंका सम्बन्ध है, लोग यह समझ लें कि मैं सन्देश भेजने लायक नही हूँ। वे ऐसा मानकर चलें कि सभी सत्कार्योंके लिए मेरी शुभकामनाएँ तो प्राप्त ही हैं। ईश्वर मुझसे जो काम करवाना चाहता है उसे करनेके लिए मैं अपनी बची-खुची शक्ति संचित रख सकूँ, इसमें मित्रगण मेरी सहायता करें।

सेगाँव, १७ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-१२-१९३९

५८. स्वतन्त्रता

एक सज्जनके पत्रसे मैं निम्नलिखित अंश यहाँ दे रहा हूँ:

> **भारतकी स्वतन्त्रताकी आप माँग तो करते हैं, लेकिन बदलेमें कुछ देनेकी बात नहीं करते। क्या आप नहीं समझते कि सक्रिय साझेदारीका वचन देनेसे आदान-प्रदानकी भावनाका परिचय मिलेगा और इसलिए ऐसा वचन देना अच्छा रहेगा? सहयोग और पारस्परिक निर्भरता जीवनका नियम है। यदि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त कर भी ले तो वह उसे कायम रख सकनेकी स्थितिमें नहीं है। इंग्लैंड और भारतकी साझेदारीमें ही हमारा सबसे अधिक हित है, और व्यापक मताधिकारके आधारपर निर्वाचित 'संविधान सभा' से तो स्थिति और भी बिगड़ेगी। इस कामको तो चन्द सयाने लोग ही ठीकसे कर सकते हैं।**

पहली बात तो यह है कि कांग्रेसने स्वतन्त्रताकी माँग ही नही की है। उसने तो सिर्फ यह माँग की है कि ब्रिटेन अपने युद्ध-लक्ष्योंकी घोषणा करे। दूसरे, स्वतन्त्रता जब मिलेगी तो इसलिए मिलेगी कि भारत उसके योग्य हो चुका होगा। इसलिए उसके बदलेमें कुछ देनेका सवाल ही नही उठता। स्वतन्त्रता कोई खरीद-बिक्रीकी चीज नही है। वह तो एक स्थिति है। मगर इसका मतलब कूपमण्डूकता भी नहीं होता। ब्रिटेनके साथ मैत्रीकी सन्धि हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। मैं तो आशा करता हूँ कि होगी। जब तक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके प्रयत्नोंमें मेरा हाथ रहेगा, तब तक तो उसे अहिंसात्मक उपायोंसे ही प्राप्त किया जायेगा। उस हालतमें वह स्वभावतः ब्रिटेनके साथ किसी सम्मानजनक सन्धि या समझौतेका ही परिणाम होगी।

पत्र-लेखकके इस विचारसे मुझे असहमत होना ही पड़ेगा कि "यदि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त कर भी ले तो वह उसे कायम रख सकनेकी स्थितिमें नहीं है।"

इस कथनमें निश्चय ही अन्तर्विरोध है। यह अन्तर्विरोधपूर्ण बात वे इसलिए कह गये क्योंकि वे मानते हैं कि स्वतन्त्रता किसीसे उपहारकी तरह भी मिल सकती है। सच्चाई यह है कि जब तक भारत सारी दुनियाके भी खिलाफ खड़ा होकर अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं कर लेगा तब तक वह इसे मिलेगी ही नहीं। इंग्लैण्डके साथ जो सन्धि होगी वह भारतकी रक्षाके निमित्त नहीं, बल्कि पारस्परिक लाभके लिए होगी। जब तक उसे, चाहे जिस कारणसे भी हो, इंग्लैण्डके संरक्षणकी आवश्यकता रहेगी तब तक उसका दर्जा स्वतन्त्र राष्ट्रके दर्जेसे कम ही रहेगा। आज हम यूरोपके छोटे राष्ट्रोंमें स्वतन्त्रताका उपहास होते ही तो देख रहे हैं। उनकी स्वतन्त्रता बड़े राष्ट्रोंकी कृपापर आश्रित है। ऐसी स्वतन्त्रताको मैं कोई महत्व नहीं देता। जब तक समाजका आधार पशु-बल है तब तक छोटे राष्ट्रोंकी स्थिति बड़ोंकी कृपाकी मोहताज रहेगी ही। मैं नहीं चाहूँगा कि भारत भी ऐसी स्थितिमें रहे। और भारत कोई छोटा राष्ट्र नहीं है। भारतने अपने लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया है उससे कम पर वह सन्तुष्ट हो जाये, इसकी अपेक्षा तो मैं यह चाहूँगा कि वह भले ही अपनी स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके निमित्त अनन्तकाल तक अहिंसात्मक संघर्ष करता रहे। वह तो शान्त होकर तभी बैठ सकता है जब उसे ऐसी स्वतन्त्रता मिल जाये जिसकी रक्षा वह दुनियाके किसी भी शक्ति-गुटके खिलाफ कर सके। और यह चीज केवल अहिंसाके आधार पर ही सम्भव है। हो सकता है, वह दिन अभी दूर हो। सम्भव है, यह स्वप्न मेरी जिन्दगीमें साकार न हो। शायद इसमें कई पीढ़ियोंका समय लग जाये। मुझमें प्रतीक्षा करनेका धैर्य है। सच्चा आनन्द तो संघर्ष करने, प्रयत्न करने, संघर्षके दौरान सामने आनेवाले कष्टोंको सहनेमें है; स्वयं विजय-प्राप्तिमें नहीं है। क्योंकि, विजय तो ऐसे प्रयत्नमें ही समाई रहती है।

और व्यापक मताधिकारके आधारपर निर्वाचित संविधान सभामें मुझे तो कोई कठिनाई दिखाई नहीं देती। अलबत्ता, सयानोंकी सभामें जरूर कठिनाई दिखाई देती है। कहाँ है वे सयाने लोग? और उनके सयानेपनका प्रमाणपत्र कौन देगा?

सेगाँव, १७ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-१२-१९३९

५९. श्रद्धा बनाम बुद्धि

परिस्थितिवश मैं यहाँ कुछ 'अति-आधुनिक' और 'बुद्धिवादी' नौजवान अफसरोंके बीच पड़ गया हूँ। ये आधुनिक नौजवान मेरा उपहास करते हैं, मुझे दुतकारते हैं, निरा बुद्धू मानते हैं — यह सब इसलिए कि मैं उनके कदमसे-कदम मिलाकर नहीं चलता, मैं यह नहीं मानता कि 'अच्छाई-बुराई', 'गुण-दोष' ऐसी बातें है जिनका सम्बन्ध केवल सामाजिक उपयोगिता है। मेरे अन्दरसे कोई मुझसे कहता है कि मैं सही हूँ और वे गलत हैं। मैं अब भी मानता हूँ कि 'परम श्रेय'-जैसी किसी चीजपर आधारित कोई नैतिक सिद्धान्त तो है ही। अपनी बात मेरे गले उतारनेके लिए दलीलके तौरपर मेरे मित्र यह कहते हैं कि चाय या काफी पीना उतनाही बुरा है जितना कि शराब पीना। उनका कहना है कि कोई क्या खाता-पीता है, इससे नैतिकताका कोई सम्बन्ध नहीं है।

फिर, वे कहते हैं — और मुख्यतः उनकी इसी बातके सम्बन्धमें मैं आपसे सलाह माँगता हूँ — कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धके बारेमें जो प्रतिबन्ध लगे हुए हैं वे केवल सामाजिक व्यवस्थाकी रक्षाके लिए हैं। उनका कहना है कि संभोगसे किसीका कोई नुकसान न होता हो और किसी प्रकारका झगड़ा न खड़ा होता हो तो वह सर्वथा स्वाभाविक है और इसलिए नैतिक भी। उनके अनुसार अधिक विषय-भोग जरूरतसे ज्यादा खानेकी तरह ही बुरा है — लेकिन बस इतना ही, इससे अधिक कुछ नहीं। जो सिद्धान्त स्व-पत्नीके सम्बन्धमें सही है वह पर-स्त्रीके सन्दर्भमें अपने-आपमें अनैतिक नहीं हो सकता। सब-कुछ परिस्थितिपर निर्भर है और असली सवाल सदा कम-ज्यादाका ही होता है। शाश्वत नैतिक नियम-जैसी कोई चीज नहीं है।

यद्यपि यह सब सुनकर मेरी श्रद्धाको आघात पहुँचता है और उनकी दलीलमें मुझे किसी तरहकी कमीका आभास मिलता है, फिर भी बहसमें तो वे मेरा मुँह बराबर बन्द कर देते हैं, और तब मुझे अपनी छठी इंद्रियकी शरण लेनी पड़ती है, जिसे वे अन्ध-मान्यता कहते हैं।

सच तो यह है कि उन्होंने इस विषयमें मेरे बौद्धिक आकलनको बिलकुल क्षत-विक्षत कर दिया है और मेरे मनमें अपनी स्थितिके ठीक होनेके बारेमें शंकाएँ उठने लगी हैं। फिर भी मैंने उनसे कहा कि मैं

उन-जैसोंकी राह चलकर स्वर्गका साम्राज्य भोगनेके बजाय आप-जैसे लोगोंके मार्ग पर चलकर नरककी यातना भोगना अधिक पसन्द करूँगा।

इसलिए, महात्माजी, इस विषयमें कृपया अपना विचार बताकर आप मुझे इस बौद्धिक और आत्मिक सन्तापसे बचाइए। मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे।

यह एक नौजवान अफसरका लगभग पूराका-पूरा पत्र है। यह इसी तरहके और भी बहुत-से मामलोंका एक उदाहरण है। जिन लोगोंने मेरे प्रयोगोंकी कथा[1] पढ़ी है वे जानते हैं कि किस तरह मुझे भी ऐसे ही दौरसे गुजरना पड़ा था। जिन लोगोंके सामने इस पत्र-लेखककी जैसी समस्या उपस्थित हो उन सबसे मैं अपनी 'आत्मकथा' के इस विषयसे सम्बन्धित अध्याय पढ़नेको कहूँगा। प्रलोभनोंके बीच बुद्धिका कुछ नहीं चलता। उस अवस्थामें तो हमें श्रद्धा ही उबार सकती है। बुद्धि तो मनचाहे मद्यपान और विषय-भोगकी ही तरफदारी करती जान पड़ती है। सच्चाई तो यह है कि बुद्धि ऐसे मौकोंपर मलिन हो जाती है। वह उधर ही जाती है जिधर मनुष्यका सहज मन जाता है। जब दो विपक्षी वकील अदालतमें बहस करने लगते हैं तब क्या प्रत्येक ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं कर देता जिससे लगता है कि न्याय तो उसीके पक्षमें है? इसके बावजूद सच्चाई यही है कि उनमें से कोई एक अवश्य ही गलत होता है या शायद दोनों ही गलत होते हैं। इसलिए अपनी नैतिक स्थितिके सही होनेकी आस्था ही बुद्धिके आक्रमणके खिलाफ मनुष्यका एकमात्र दुर्ग होती है।

इस पत्र-लेखकको बहकानेवाले लोगों द्वारा दी गई दलीलें सुननेमें सही जान पड़ती हैं। सभी युगोंके लिए समीचीन शाश्वत नैतिकता-जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन सापेक्ष नैतिकता-जैसी चीज तो अवश्य है और हम अपूर्ण मर्त्य प्राणियोंके लिए वह पर्याप्त शाश्वत भी है। इसलिए ओषधिके रूपमें, चिकित्सककी सलाहके अधीन, ओषधिकी मात्रामें ली गई शराबके अलावा और किसी भी रूपमें शराब पीना अनैतिक है। इसी तरह अपनी पत्नीके अतिरिक्त किसी भी स्त्रीको वासनामय दृष्टिसे देखना बिलकुल गलत है। ये दोनों बातें ठेठ बुद्धिके द्वारा सिद्ध की जा चुकी हैं। इसके खिलाफ दलीलें तो हमेशा से दी जाती रही हैं। वे तो ईश्वरके अस्तित्वके विरुद्ध भी दी गई हैं जो सभी चराचरका सार है। बुद्धिकी सीमाओंसे मुक्त श्रद्धा ही हमारा असली शरण-स्थल है। जैसी कठिनाई इस नौजवान अफसरके सामने उपस्थित है वैसी कठिनाईका सामना करनेवाले सभी लोगोंके आगे मैं इसी श्रद्धाको प्रस्तुत करता हूँ। मेरी श्रद्धाने ही मुझे पतनके गढ्ढोंमें गिरनेसे रोका है और आज भी रोक रही है। इसने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है। किसीको कभी दिया हो, ऐसा भी नहीं सुना गया है।

सेगाँव, १८ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-१२-१९३९

१. तात्पर्य गांधीजीकी सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा से है; देखिए खण्ड ३९।

६०. एक उपयोगी पुस्तक[1]

श्री आर्यनायकमने मुझे अभी एक पुस्तक दी है, जिसका नाम है 'टीचर्स हैंड-बुक ऑफ बेसिक एडुकेशन थ्रू कार्डबोर्ड मॉडलिंग'। इसके लेखक हैं श्री लक्ष्मीश्वर सिन्हा, जिन्होंने यूरोपमें इस विषयका अनुभव प्राप्त किया है। वे शान्तिनिकेतनमें काम करते थे और उन्होंने प्रशिक्षणशालामें गत्तेकी आकृतियाँ बनानेकी शिक्षा शुरू करनेके लिए वर्धा आनेकी भी कृपा की थी। कताईपर लिखी श्री विनोबाकी पुस्तक[2] की तरह यह कृति भी एक मौलिक देन है। श्री विनोबाकी मूल पुस्तक मराठीमें है। उसका हिन्दी अनुवाद भी हुआ है।[3] उसमें शायद ही ऐसा कोई शब्द हो जिसके विषयमें कहा जा सकता हो कि इसके बिना भी काम चल सकता था। अभी मेरे सामने जो पुस्तक है यह एक भिन्न शैलीमें लिखी गई है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि यह कुछ कम आकर्षक और शिक्षाप्रद है। इसमें पाँच अध्याय और दो परिशिष्ट हैं। दूसरे परिशिष्टमें प्रारम्भिक आकृतियोंके विषयमें सम्बद्ध पाठ दिये गये हैं। नमूनेके तौरपर मैं नीचे "क्यूबिक बॉक्स" ("घनाकार बक्सा") शीर्षक पाठ दे रहा हूँ।[4]

इन अध्यायोंमें अन्य बातोंके अलावा "सामग्री", "अध्ययन-कक्ष और उपकरण", "बुनियादी तक्नीक", "परस्पर सम्बद्ध शिक्षणके विषयमें कुछ सुझाव" और "बच्चोंके साथ कैसे काम किया जाये", इन विषयोंकी चर्चा की गई है। पुस्तक चित्रोंसे भर-पूर है। कीमत सिर्फ १२ आने है। यह पुस्तक न केवल "नई तालीम" योजनाके अन्तर्गत काम करनेवाले हर शिक्षकके हाथमें होनी चाहिए, बल्कि ऐसे सभी शिक्षकों के पास भी होनी चाहिए जो चाहते हों कि उनके विद्यार्थी इस सरल-सी कारीगरीको सीखें। बड़ी कक्षाओंके विद्यार्थीके लिए इसमें एक ऐसा शौक जुटाया गया है जो उपयोगी भी है और शिक्षाप्रद भी और जिसे वह खुद ही सीख भी सकता है।

सेगाँव, १८ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-१२-१९३९

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. मूल उद्योग — कंताने
३. मूल उद्योग — कातना
४. यहाँ नहीं दिया गया है।

६१. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

सोमवार, १८ दिसम्बर, १९३९

वाल्जीभाईको मालीशकी आवश्यकता है। आजकल नही मिलता है। आध घटा उस सेवाके लिए निकालना।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३३) से

६२. सनातनी कौन?

सत्यं दमस्तपः शौचं संतोषः ह्रीः क्षमार्जवम्।
ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः।।
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।[1]

—महाभारत, शान्तिपर्व

सनातनी वह है जो सनातन धर्मका पालन करता है। 'महाभारत' के अनुसार इसका मतलव है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और आत्मसंयमका पालन करना। मैं यथाशक्ति इन नियमोंका अनुसरण करनेकी कोशिश करता रहा हूँ, इसलिए मुझे अपनेको सनातनी कहनेमे कभी कोई सकोच नही हुआ है। लेकिन अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके दिनोमें मेरे विरोधियोंको यह वात वहुत वुरी लगती थी कि मैं अपनेको सनातनी कहता हूँ। सनातनी तो वे अपनेको वताते थे। लेकिन नामको लेकर मैं कभी झगड़ेमें नही पड़ा। निदान मैं अपने विरोधियोंके लिए उसी नामका प्रयोग करता रहा हूँ जो उन्होंने अपने लिए खुद चुना है। लेकिन अव एक भाईने पंजावकी सनातन धर्म प्रतिनिधि सभाकी ओरसे एक पत्र भेजा है। इसमें उन्होंने इस वातपर आपत्ति की है कि मैं अपने विरोधियोंके लिए सनातनी शब्दका प्रयोग करता हूँ। उनका कहना है कि इसका मतलव तो यह होगा कि सभी सनातनी अस्पृश्यतामें विश्वास करते है और मुझे एक वहुत वुरे आदमीके रूपमें चित्रित करनेमें आनन्दका अनुभव करते है। पत्रमें आगे कहा गया है:

१. सत्य, आत्मसंयम, तप, शौच, सन्तोष, नम्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शान्ति, दया, ध्यान— यह सनातन धर्म है।

मन, वचन और कर्ममें भूतमात्रके प्रति अद्रोह, अनुग्रह और दान — यह सज्जनोंका सनातन धर्म है।

सच पूछिए तो इस बातसे हमें बहुत दुःख पहुँचा है और हमें ऐसी आशंका है कि इससे पंजाबमें हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्यमें बाधा पड़ेगी। महात्माजी, दक्षिणके अधिक निकट होनेके कारण आप हम उत्तरके सनातनियोंकी अपेक्षा दक्षिणके सनातनियोंको ही अधिक जानते हैं। यहाँ पंजाबमें तो हम बराबर हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेश और उन्हें अन्य सुविधाएँ दिये जानेकी हिमायत करते रहे हैं। अखिल भारतीय सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा परिषद्से हमने इस आशयकी व्यवस्थाएँ भी प्राप्त की हैं। अपनी ६०० शाखाओं और ३०० महावीर दलोंके जरिये खुद हमारी संस्थाने इस उद्देश्यके लिए काम किया है। इस प्रान्तमें ऐसे मन्दिर बहुत कम हैं जिनके महन्त और पुजारी हरिजनोंको देवदर्शनकी अनुमति नहीं देते। इस हालतमें आप खुद ही समझ सकते हैं कि आपके लेख[1] का हमारे कामपर कैसा प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। दोनों तरहके सनातनियोंके बीचका भेद समझ पानेमें असमर्थ आम जनता हमें आपका विरोधी मानती है। हमारे वक्तव्यों और प्रतिवादोंका कोई असर नहीं होता। आपके एक शब्दका असर हमारे सैकड़ों व्याख्यानोंसे अधिक होता है। हम लोग पण्डित मदनमोहन मालवीय और गोस्वामी गणेश दत्तजीके मार्गदर्शनमें हरिजनोद्धारका काम कर रहे हैं और करते रहे हैं। मेरा निवेदन है कि हरिजन आन्दोलनका विरोध करनेवालोंके लिए आप कोई और संज्ञा ढूँढ़ लीजिए। 'सनातनी' शब्द ठीक नहीं बैठता।

पत्र-लेखक भाई का ऐसा सोचना गलत है कि मैं उत्तरके सनातनियोंको नहीं जानता। अगर काशीको उत्तर भारतमें गिना जाये तो वहाँ तो इस सुधारके बड़े प्रबल विरोधी हुए हैं। पत्र-लेखकने जो-कुछ कहा है वह अगर वे पंजाबके बारेमें कहें तो उनकी बातमें शायद अधिक तथ्य हो। मुझे ऐसा सोचनेका कोई कारण दिखाई नहीं दिया कि जिस मर्यादित अर्थमें मैं इस शब्दका प्रयोग कर रहा था उसे समझनेमें किसीको मुश्किल भी पड़ सकती थी। उम्मीद तो यही करता हूँ कि सुधार-विरोधियोंके लिए मेरे सनातनी शब्दका प्रयोग करनेसे जो नुकसान हुआ होगा, उसे पत्र-लेखकने अति-रंजित रूपमें पेश किया है। फिर, पंजाब के सनातनियोंको तो अपनी स्थिति स्पष्ट करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। जो भी हो, वे इस लेखका उपयोग तो अपने समर्थनमें कर ही सकते हैं। मगर सच तो यह है कि दक्षिण भारतमें भी सभी सनातनी सुधारके या मेरे विरोधी नहीं हैं। हरिजन कार्यके निमित्त मैंने जो दौरा किया,[2] उसमें मैं जहाँ भी गया, यही देखा कि विरोधियोंकी संख्या बहुत ही कम थी और तबसे लेकर आज तक उस संख्यामें और भी कमी आई है। यदि

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० २०१-३।

२. १९३३-३४ में

हिन्दुओंका प्रबल बहुमत साथ न होता तो राजाजी अपना मन्दिर-प्रवेश विधेयक[1] पास नहीं करवा पाते। इसी तरह यदि विरोध तनिक भी व्यापक होता तो दक्षिण के बड़े-बड़े मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए नहीं खुलवाये जा सकते थे। इसलिए जब भी मैं सनातनी विरोधियोंकी बात करता हूँ तो तात्पर्य उन मुट्ठी-भर लोगोंसे ही हो सकता है जो अपनेको सनातनी कहकर खुश होते हैं और जिनका धन्धा है अस्पृश्यता-निवारणके निमित्त किये जानेवाले सुधारोंका विरोध करना और मुझे बदनाम करना। मैं तो प्रभुसे यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि किसी दिन उनकी आँखें खुलें और वे सुधारके पक्षमें खड़े हो जायें, क्योंकि यह कोई मामूली सुधार नहीं, बल्कि हिन्दू धर्मको अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त करनेका पुनीत प्रयास है।

सेगाँव, १९ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-१२-१९३९

६३. पत्र : नलिनी रंजन सरकारको

[१९ दिसम्बर, १९३९ के पश्चात्][2]

मौलाना साहबने बताया कि आपने बंगाल मन्त्रि-परिषद्से त्यागपत्र दे दिया है। इसे मैं देशभक्तिका कार्य मानता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-१२-१९३९

६४. तार : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको[3]

२२ दिसम्बर, १९३९

कार्य समितिने आपके तार पर विचार किया। उसको जितना-कुछ ज्ञात है उसे देखते वह प्रतिबन्ध[4] हटानेमें असमर्थ है। मेरी निजी

१. टेम्पल-एन्ट्री ऑथोराइजेशन एण्ड इंडेमिनिटी बिल, जो मद्रास विधान-परिषद्में ७ अगस्त, १९३९ को पास हुआ था।

२. १९ दिसम्बर, १९३९ को नलिनी रंजन सरकारने बंगालके वित्त-मन्त्रीका पद त्याग दिया था।

३. यह रवीन्द्रनाथ ठाकुरके २० दिसम्बर, १९३९ के निम्नलिखित तार के उत्तरमें भेजा गया था: "यह देखते हुए कि भारत-भर में, और विशेषकर बंगालमें, परिस्थिति बहुत गम्भीर हो गई है, कांग्रेस कार्य-समिति से अनुरोध करता हूँ कि वह सुभाषपर लगा प्रतिबन्ध तुरन्त हटा ले और राष्ट्रीय एकताके सर्वोच्च हितकी दृष्टि से उन्हें हार्दिक सहयोग देनेको आमन्त्रित करे।"

४. एक प्रस्ताव द्वारा सुभाष चन्द्र बोसको किसी भी निर्वाचित पदके लिए तीन वर्षके लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया था; प्रस्तावके पाठके लिए देखिए खण्ड ७०, पृ० ९४-९५।

राय यह है कि प्रतिबन्ध हटवानेके लिए आप सुभाष बाबूको अनुशासन स्वीकार करने की सलाह दें। आशा है आप स्वस्थ-प्रसन्न होंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

रवीन्द्रनाथ ओ सुभाष चन्द्र, पृ० १९५

६५. प्रतिज्ञा

आशा है, कांग्रेस-जन अगली २६ जनवरीकी प्रतिज्ञावाले कार्य-समितिके प्रस्ताव[2] को केवल स्मृतिमें संजोकर ही नही रखेंगे, बल्कि उसे कण्ठस्थ कर लेगे। यह प्रतिज्ञा पहली बार १९३०[3] में की गई थी। दस बरस कोई थोड़ा समय नही होता। यदि कांग्रेस-जन १९२० के रचनात्मक कार्यक्रमपर ईमानदारीसे अमल करते तो आज पूर्ण स्वराज्य मिल गया होता। साम्प्रदायिक मेल-मिलाप होता, हिन्दू-धर्म शुद्ध हो गया होता और भारतके गाँवोंमें मुस्कराते हुए चेहरे दिखाई देते। ये सब बातें मिलकर इतना जोर पैदा करती कि स्वतन्त्रता देनेसे इनकार करना असम्भव होता।

परन्तु यह दुःखद तथ्य मानना ही होगा कि कांग्रेस-जनोंने कार्यक्रम पर, जैसा चाहिए था, वैसा अमल नही किया। इस बातमें उनका विश्वास नहीं रहा है कि तीन-सूत्री कार्यक्रम अहिंसाका व्यावहारिक रूप है। उनका यह विश्वास नही रहा है कि इस कार्यक्रमको पूरा किये बिना सविनय अवज्ञा आन्दोलन सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

इसलिए मैंने इन स्तम्भोंमें यह कहनेमें संकोच नही किया है कि हमारी अहिंसा तो नपुंसकतापर आधारित अहिंसात्मक आचरण सिद्ध हुई है। इसलिए हमारे सामने यह स्वीकार करनेका दुःखद प्रसंग आया है कि कमजोरोंकी यह अहिंसा हमें अंग्रेजी शासनसे आजादी तो दिला सकती है, लेकिन यह हमें विदेशियोंके हमलेका मुकाबला करनेके योग्य नहीं बना सकती। इस तथ्यसे — और यह तथ्य ही है — पता चलता है कि यदि अंग्रेज कमजोरोंकी अहिंसाके आगे — वास्तवमें इस अहिंसाको अहिंसा कहना ही गलत है — झुक जाते हैं तो इससे यह साबित होगा कि उन्होंने सत्ता सौंप देनेका इरादा लगभग कर ही लिया था और वे त्रास फैलानेवाली नीतिके बलपर सत्तासे चिपके नही रहना चाहते थे। इसलिए जब तक मेरे मनको इस बातका विश्वास नहीं हो जाता कि कांग्रेसियोंने अहिंसाका पूरा-पूरा मतलब समझ लिया है और वे तीन-सूत्री कार्यक्रमपर उसी जोशसे अमल कर रहे हैं जिस जोशसे वे तथाकथित सविनय अवज्ञा करेंगे, तब तक यदि मैं सविनय अवज्ञाकी घोषणा

१. देखिए "पत्र: सी० एफ० एन्ड्र्यूजको", १५-१-१९४० भी।

२. देखिए परिशिष्ट १।

३. देखिए खण्ड ४२, पृ० ४४०-४२।

न करूँ तो उन्हें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। शायद वे अब समझ जायेंगे कि मैं कार्यक्रमके तीन सूत्रोंको अहिंसाके आवश्यक अंग क्यों कहता हूँ।

साम्प्रदायिक भाईचारेसे मेरा क्या मतलब है? जब जिन्ना-नेहरू वार्ता असफल रही है तो भाईचारा कैसे हो सकता है? उसके असफल या सफल होनेका कोई महत्त्व नहीं था। समझौते बड़े लोगोंके लिए होते हैं। आम लोगोंपर, पिसते हुए लाखों-करोड़ों लोगोंपर, उनका कोई असर नहीं पड़ता। ऐसे लोगोंके बीच भाईचारा पैदा करनेके लिए लिखित समझौतोंकी जरूरत नहीं होती। क्या कांग्रेस-जन राजनीतिक मतलबके बिना सबके साथ सद्भावनामय व्यवहार करते हैं? भाईचारेकी यह भावना स्वाभाविक होनी चाहिए, भय के कारण या मतलब निकालनेके लिए नहीं। जिस तरह सगे भाइयोंके भाईचारेके पीछे कोई स्वार्थमय उद्देश्य नहीं होनेके कारण वह स्वाभाविक और स्थायी होता है, वैसा ही कांग्रेसियोंका भी भाईचारा होना चाहिए। यह भाईचारा केवल हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ही नहीं बरता जाना चाहिए। इसे तो सर्वव्यापी होना चाहिए। हमारे बीच जो मामूलीसे मामूली आदमी है उसके साथ भी ऐसा बरताव करना चाहिए। अंग्रेजोंके लिए भी और राजनीतिक विरोधियों के प्रति भी यही भावना होनी चाहिए। इसके अलावा, अस्पृश्यता-निवारण भी बहुत महत्त्व रखता है। हिन्दुओं के बीच छोटे-बड़ेके विचार-मात्रको हटा देना चाहिए। जात-पाँतकी एकताके बजाय राष्ट्रीय एकता होनी चाहिए। कांग्रेस-जनोंके बीच इस प्रकारके भेदोंका नाम-निशान तक नहीं रहना चाहिए।

और फिर चरखा। यह लगभग बीस वर्षोंसे खादीके बने राष्ट्रीय झंडेकी शोभा बढ़ा रहा है। फिर भी खादी सार्वत्रिक नहीं हो पाई है। चूँकि कांग्रेसने खादीको अपनाया है, इसलिए कांग्रेस-जनोंको तब तक चैन नहीं लेना चाहिए जब तक कि खादी भारतके सुदूर इलाकोंमें भी घर-घरमें न पहुँच जाये। ऐसा होने पर ही वह स्वैच्छिक सहयोग और एक ही उद्देश्यकी शक्तिशाली प्रतीक बनेगी। खादी देशके गरीब-से-गरीब लोगोंसे अपने तादात्म्यकी प्रतीक है। अभी तक तो कांग्रेस-जन खादीसे खिलवाड़ ही करते रहे हैं। उन्होंने इसके मर्मको नहीं समझा है। बहुतोंने अनिच्छासे इसका इस्तेमाल किया है — महज दिखावेके लिए। इसे एक असलियत बनना चाहिए, तभी सच्ची अहिंसा हममें व्यापेगी।

कांग्रेस-जनोंको कार्य-समितिके प्रतिज्ञा-सम्बन्धी प्रस्तावकी भूमिकापर ध्यान देना चाहिए। जो उसमें विश्वास नहीं रखते उनके लिए प्रतिज्ञा करना जरूरी नहीं है। वस्तुतः जिनका विश्वास न हो उनके लिए जरूरी है कि वे प्रतिज्ञा न करें। कारण, इस बार प्रतिज्ञा करनेका एक खास उद्देश्य होगा। मेरे कन्धों पर एक भारी जिम्मेवारी आ पड़ी है। जब तक मैं आदेश न दूँ तब तक कांग्रेस-जैसा यह विशाल संगठन सविनय अवज्ञाकी दिशामें कदम नहीं उठायेगा। मेरे लिए यह कोई गर्व या खुशीकी बात नहीं है। यदि मुझे इस बातका एहसास न होता कि मैं कुछ नहीं हूँ तो मैं इस जिम्मेवारीके बोझ तले दबकर मर जाता। कांग्रेस-जनोंका मेरी निर्णय-शक्तिमें विश्वास है। मेरी यह निर्णय-शक्ति सत्य और प्रेमके

नियमकी या, दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो, ईश्वरके आदेशकी अनुगामी है। ईश्वरका आदेश स्त्री-पुरुषोंके आचरणमें व्यक्त होता है। इस प्रसंगमें कांग्रेसी स्त्री-पुरुषोंका आचरण उसे व्यक्त करेगा।

सेगाँव, २४ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१२-१९३९

६६. तटस्थता क्या है?

एक अमेरिकी मिशनरी बन्धु लिखते हैं:[1]

> . . . क्या आप और कांग्रेस इस विषयमें तटस्थ हैं कि कोई व्यक्ति किस धर्मका अनुयायी है? मेरा खयाल है कि कांग्रेस तटस्थ होनेका दावा करती है, मगर मेरे विचारसे वह तटस्थ नहीं है।
>
> आपके मित्र, मद्रासके भूतपूर्व प्रधान मन्त्रीने हिन्दू-धर्म ग्रहण करनेवाले ईसाइयोंको बधाईका तार भेजा। क्या यह तटस्थता है? और कुछ ही दिन पहले यहाँ बम्बईके पास थाना जिलेमें जब कोई पचास पहाड़ी लोगोंने पुनः हिन्दू-धर्म स्वीकार किया तो उन्हें हिन्दू बनानेवालोंके अगुआ थाना जिलेके कांग्रेसी नेता थे। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेसी नेता हिन्दू-धर्मका पक्ष लेते हैं।
>
> ऐसी सरकारके शासनमें अल्पसंख्यक ईसाइयोंके छोटे-से वर्गके लिए क्या आशा हो सकती है? कारण, जब पूर्ण स्वराज्य मिलेगा तो बहुसंख्यक हिन्दू सरकारपर अपना एकाधिकार जमा लेंगे। . . . क्या ईसाइयोंको ईसाई-विरोधी नेताओंकी दयापर छोड़ देना होगा? क्या कांग्रेस सरकारके लिए ब्रिटिश सरकारकी भाँति धार्मिक मामलोंमें निष्पक्ष और तटस्थ रहना सम्भव होगा? यदि नहीं, तो हम उसका वरदानकी भाँति स्वागत नहीं करेंगे।

मुझे मालूम नहीं है कि श्री राजगोपालाचारीने क्या कहा। उनके बारेमें जो कुछ कहा गया है, उसका जवाब देनेमें तो वे खुद ही पूर्णतः समर्थ हैं। परन्तु मैं तटस्थताके बारेमें अपने विचार बता सकता हूँ। उम्मीद की जाती है कि स्वतन्त्र भारतमें हर धर्म समानताके आधारपर, फूले-फलेगा — इस तरह नहीं जिस तरह आज हो रहा है। ईसाई-धर्म चूँकि कहनेको शासकोंका धर्म है, इसलिए उसे ऐसी रियायतें मिलती हैं जैसी किसी और धर्मको नहीं मिलती। जो सरकार जनताके प्रति

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

जिम्मेवार हो वह एक धर्मके मुकाबले दूसरे धर्मको रियायतें देनेकी हिम्मत नही कर सकती। परन्तु यदि कोई हिन्दू उन लोगोंको बधाई दे जो अपने धर्मसे अलग होनेके बाद फिर अपने धर्ममें आ गये हो, तो मैं इसमें कोई बुराई नही समझता। मान लीजिए अमेरिकामें कोई हिन्दू धर्म-प्रचारक काम करता है और उसके प्रभावमें आकर गन्दी बस्तीमें — मतलब यह कि अगर वहाँ कोई गन्दी बस्ती हो तो उसमें — रहनेवाले अमेरिकी कुछ समयके लिए अपनेको हिन्दू कहने लगते हैं। अब यदि ये अमेरिकी फिर अपने पैतृक ईसाई धर्ममें वापस आ जाते है तो मैं समझता हूँ कि स्वतन्त्र अमेरिकाके निवासी निश्चय ही इसपर खुशी मनायेंगे। कुछ मिशनरियोने अबोध लोगो को उनके पुरखोके धर्मसे अलग करनेके लिए जिन तरीकोसे काम लिया है, उनके बारेमें मैं पहले ही शिकायत कर चुका हूँ। जो कोई अपनी मर्जीसे कोई धर्म ग्रहण करना चाहे उसे उस धर्मका उपदेश देना एक बात है, परन्तु जन-साधारणको धर्मान्तरणके लिए फुसलाना दूसरी बात है। इस तरह फुसलाये गये लोग आँखें खुलनेपर यदि अपने पुराने धर्ममें वापस आ जायें, तो उनके लौटनेसे उन लोगोंको स्वाभाविक खुशी होगी जिनसे वे पहले अलग हुए थे। मिशनरी मित्र कांग्रेसको एक हिन्दू सगठन समझनेमें गलती कर रहे हैं। इसकी सदस्य-सूची में शायद तीस लाख स्त्री-पुरुष होंगे। इसके रजिस्टरको हर कोई देख सकता है। वास्तवमें कांग्रेसमें सभी धर्मोके मानने वाले मर्द और औरतें हैं। कोई कारण नही कि ईसाई या मुसलमान कांग्रेस पर अधिकार न कर सकें। यह सच है कि राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक सरकारमें कुल मिलाकर बहुसख्यक हिन्दू मतदाताओके प्रतिनिधि ज्यादा होंगे। परन्तु विभिन्न प्रान्तोमें आबादीके असमान वितरणके कारण, बंगाल, पंजाब, सीमा-प्रान्त और सिन्धमें मुसलमानोकी बहुलता हैं, जैसे कि दूसरे प्रान्तोमें हिन्दुओकी।

मेरे विचारमें इस सवालको तंग साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे देखना गलत है। एकमात्र सही दृष्टिकोण राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही है। इसलिए मुझे लगता हैं कि अमेरिकी मिशनरी बन्धु तीन गलतियाँ कर रहे हैं — एक स्वाभाविक खुशीको तटस्थताका अभाव माननेकी गलती, कांग्रेसको हिन्दू-संगठन समझनेकी गलती, और भारतको धार्मिक दृष्टिसे परस्पर विरोधी और एक-दूसरे पर शक करनेवाले हिस्सोमें बँटा हुआ मानने की गलती। परन्तु सभी समुदायोकी आर्थिक और राजनीतिक आकांक्षाएँ निश्चय ही एक-सी हैं। हाँ, यह बात जरूर है कि विशेषाधिकार-प्राप्त लोग देखेंगे कि स्वतन्त्रताके सूर्यके प्रकाशमें उनके विशेषाधिकार ओसकी बूँदोकी तरह लुप्त हो जायेंगे। राजनीतिक चर्चामें धार्मिक भेदोका सवाल उठाया जाना मुझे बहुत अनुचित लगता है। जो सबपर लागू हो, ऐसा सामान्य कानून किसी भी अन्यायको रोक सकता है।

सेगांव, २४ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१२-१९३९

६७. भारतमें कवायद

प्रो० माणिकराव[1] ने कवायद और कसरतके सम्बन्धमें लगनपूर्वक जितना काम किया है, मैं नहीं समझता कि उतना और किसीने किया है। उनका सदासे यह आग्रह रहा है कि सारे भारतमें कवायद-सम्बन्धी शब्द एक समान ही हों। लोग बहुधा अंग्रेजी शब्दोंकी खिचड़ी प्रयोगमें लाते देखे जाते हैं। प्रो० माणिकरावने उसे छोड़कर अपनी पारिभाषिक शब्दावली बनाई है। अब उन्होंने उसे गुजराती स्पष्टीकरण सहित प्रकाशित कर दिया है। जो लोग कवायद और कसरतमें रुचि रखते हैं, उनके लिए यह पुस्तक पढ़ने और विचार करनेके लायक है। पुस्तककी कीमत बारह आने है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २४-१२-१९३९

६८. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको

सेगाँव, वर्धा
२४ दिसम्बर, १९३९

चि० मनुड़ी,

उर्मि नाम मुझे पसन्द है, लेकिन नाम वह रखना जो मौसियोंको पसन्द हो। वैसे सच्ची पसन्दगी तो तुम दोनोंकी मानी जायेगी।

रामीबहनका मन फिलहाल यहाँ रम गया है। उसकी छोटी लड़की भी गोलमटोल होती जा रही है। रामी कहती है, यहाँसे वह तभी जायेगी जब कुँवरजी बिलकुल चंगे हो जायेंगे। ठीक तो है, वह यहीं रहे। तू भी जहाँ पानीकी तंगी है वहाँ उस तंगीको और बढ़ाने क्यों जा रही है? लेकिन मौसियोंको समझाये कौन? दया-धर्मका यह तकाजा है कि तुझे राजकोट तभी जाना चाहिए जब जाये बिना न चले।

दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मनुबहन मशरूवाला
बालकिरण, साउथ एवेन्यू
सान्ताक्रूज
बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २६७६) से; सौजन्य : मनुबहन सु० मशरूवाला

१. बड़ौदाके राजरत्न गजानन यशवन्त ताम्हाणे।

६९. चरखा बनाम कपड़ा-मिल

इन स्तम्भोमें मैं बराबर चरखा और खादी-सम्बन्धी तरह-तरहकी बातोकी भरमार करता रहता हूँ, इससे कांग्रेसियोको ऊबना नही चाहिए। देशके विभिन्न समुदायोंके बीच हार्दिक एकताकी स्थापना और हर घरमें चरखेको फिरसे दाखिल कर देना, यही मेरी राजनीति है। कारण, मैं खूनी क्रान्तिके बजाय इन्ही साधनोके बलपर देशको राजनीतिक और आर्थिक गुलामीसे छुटकारा दिलानेकी आशा करता हूँ।

हर कांग्रेसीके सामने असली समस्या यही है कि मिलके कपड़ेके स्थानपर — चाहे वह विदेशी मिलका हो या स्वदेशी मिलका — खादीको कैसे प्रतिष्ठित किया जाये। कांग्रेसी हलकोंमें अक्सर ऐसा माना जाता है कि स्वदेशी मिलोके कपड़े उतने ही श्रेयस्कर हैं जितनी खादी, बल्कि अपने सस्तेपनके कारण मिलोंके कपड़े शायद बेहतर भी हैं। करोड़ो कारीगरोके सन्दर्भमें सस्तेपनके सिद्धान्तका खोखलापन तो मालूम हो चुका है। इन करोड़ों लोगोंके लिए मिलके कते सूतसे बना कपड़ा हाथके कते सूतके कपड़ेसे कही ज्यादा महँगा है। मिलके कते सूतके कपड़ेका मतलब होता है, उनका बेरोजगार होना। जरा सोचिए कि विदेशी गेहूँके सस्ता होनेके कारण अगर देशके गेहूँ-उत्पादकोका रोजगार खत्म कर दिया जाये तो वह कैसी भयावह स्थिति होगी।

यदि गाँवोके कतैयो और बुनकरोंको अपना वाजिब हक पाना है और जल्दी पाना है तो हर कांग्रेसीको एक कुशल कतैया और सधा हुआ बुनकर बनना होगा। उसे बेचारे ग्रामीण लोगोंको इस कलाकी शिक्षा देने और उनका मार्ग-दर्शन करने लायक बनना चाहिए। उसे खादी-शास्त्रका पण्डित बनना है। उसे देशकी खातिर सूत कातना है। मैं यह तो दिखा ही चुका हूँ कि खादी तब तक इतनी सस्ती नही बनाई जा सकती कि उसे मध्यम वर्गके लोग खरीद सकें जब तक कि यज्ञार्थ काता सूत पर्याप्त मात्रामें प्राप्त नही होने लगता, या जब तक कतैयो को आठ घंटेकी कड़ी कताईके लिए एक पैसेसे एक आने तककी वही बेगारवाली मजदूरी फिर नही दी जाने लगती।

जिस कांग्रेसीके अन्दर ऐसी श्रद्धा नही जगती कि स्वदेशी कपड़ा-मिलोंके स्थान पर चरखे और करघेको प्रतिष्ठित करना है और उन्हें प्रतिष्ठित किया जा सकता है, वह खादीके लिए अपेक्षित परिमाणमें श्रम और कौशलका प्रदर्शन नही कर सकता।

यदि कांग्रेसियोंमें ऐसी श्रद्धा हो तो कांग्रेसकी सभी शाखाएँ कताई और बुनाई की कुशल शालाएँ बन जायेंगी। मुझे याद है, किस प्रकार सन् १९२१ में कांग्रेस-कार्यालय बेमनसे काता सूत इकट्ठा किया करते थे और यह अपेक्षा रखते थे कि जैसे भी हो, वह बुन लिया जाये। वह एक भारी बर्बादी थी। किसीको पता नही

था कि इस समस्यासे कैसे निबटा जाये या अच्छी कताईकी व्यवस्था किस प्रकारकी जाये। अब स्थिति बदल चुकी है। अ० भा० चरखा संघ ने काफी ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लिया है। कुछ साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। गाँवोंके सगठनके लिए हर कांग्रेस-कार्यालयको एक आदर्श प्रयोगशाला और कताई तथा बुनाईका केन्द्र बन जाना चाहिए। और जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ, खादी वह धुरी है जिसके गिर्द घूमते हुए तमाम दूसरे ग्रामोद्योगोंको अपने सगठन और विकासकी मंजिले तय करनी चाहिए। तब कांग्रेसियोंको पता लगेगा कि इस तरहकी सेवा कैसी जबरदस्त सम्भावनाओंसे भरी है। गाँवोंके सफल संगठनमें जो विलम्ब हो रहा है उसका मुख्य कारण मानसिक जड़ता है। मेरा कहना है कि अगर भारतको अहिंसात्मक पद्धतिसे अपना विकास करना है तो उसे बहुत-सी चीजोंका विकेन्द्रीकरण करना होगा। पर्याप्त भौतिक शक्तिके बिना केन्द्रीकृत व्यवस्था कायम नही रखी जा सकती और उसकी रक्षा नही की जा सकती। जहाँ उठा ले जाने लायक कुछ होता ही नही, ऐसी मामूली कुटियोंके लिए भला पुलिसकी क्या जरूरत हो सकती है? लेकिन अमीरोंके महलोंको डकैतीसे बचानेके लिए पहरेदारोंकी कड़ी व्यवस्था की जरूरत होती है। यही बात बड़े-बड़े कारखानों पर भी लागू होती है। जल, थल और वायु-सेनाओंसे भली-भाँति सुसज्जित शहरी सभ्यतावाले भारतकी अपेक्षा ग्राम्य सभ्यताके आधारपर संगठित भारतको विदेशी हमलेका कम खतरा रहेगा।

अब अगर यह मान लें कि कांग्रेसियोंने चरखेके अर्थ और गूढ़ार्थको अच्छी तरह समझ लिया है, तो ऐसी अपेक्षा करना स्वाभाविक ही होगा कि वे इस कार्यको ठीकसे कर सकनेकी योग्यता प्राप्त करनेमें अविलम्ब जुट जायेंगे। यह भी मान लें कि अभी वे नौसिखिये हैं। उस हालतमें वे कुछ कपास प्राप्त करेंगे, जो अगर उनके अपने ही गाँवों, तालुकों या जिलोंकी पैदा की हुई हो तो अच्छा है। अब इस कपासको उन्हें हाथसे या बहुत हुआ तो किसी तख्तेपर एक छड़की सहायता से ओट लेना चाहिए। बीज अपने पास रखने चाहिए और जब वे काफी मात्रामें इकट्ठे हो जायें तो उन्हें या तो बेच देना चाहिए या अगर उनके पास अपने मवेशी हों तो उनके चारेके लिए प्रयुक्त करना चाहिए। वे हाथ-धुनकीसे रुईको धुनें। धुनकीपर उन्हें नही के बराबर खर्च करना पडेगा। चाहें तो वे खुद भी धुनकी बना सकते हैं। इस धुनी हुई रुईकी पूनियाँ बना लेनी चाहिए। इन पूनियोंको तकली पर काता जाये। जब वे इन सभी क्रियाओंमें काफी हदतक कुशलता प्राप्त कर लें तो वे ऐसी क्रियाओंको शुरू कर सकते हैं जिनसे काम ज्यादा शीघ्रतासे निबटता है। उन्हें खादीके उपयोगके बारेमें भी अपने और अपने परिवारवालोंमें नियमितता लानी होगी। उन्हें अपनी दैनिक प्रगतिका ठीक हिसाब रखना होगा और सूतके गणितको समझना होगा।

अ० भा० चरखा संघकी स्थानीय शाखाओंकी सहायतासे कांग्रेस कमेटियोंको अपने कार्यालयोंका पुनर्गठन करके उन्हें कताई और बुनाई के केन्द्रोंमें बदल देना चाहिए। कांग्रेसियोंको मैं आगाह कर देता हूँ कि अपने सूतको बुनाईके

लिए दूर-दूरके केन्द्रोंको भेजना एक भारी भूल है। खादीके अर्थशास्त्रका तकाजा यह है कि कपासकी खेतीसे लेकर खादी तैयार करने और उसे बाजारमें खपाने तककी सारी क्रियाएँ, जहाँ तक सम्भव हो, सम्बन्धित गाँव या केन्द्रमें ही सम्पन्न होनी चाहिए। उदाहरणके लिए, पंजाबमें कते सूतको बम्बईमें बुनवाना और तैयार खादीको मलाबारमें बेचना गलत है। यदि कांग्रेस-जन और कांग्रेस कमेटियाँ खादी-कार्य आरम्भ करते समय इस सरल-से नियमका खयाल रखें तो इस कार्यकी कठिनाइयाँ उन्हें संत्रस्त नहीं करेंगी। यदि वे अपने जिलेमें सफल हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि शेष २४९ जिलोंमें भी खादीका सफल संगठन न किया जा सके। यदि हम गाँवोंको ही इकाइयाँ मानकर चलें तो भी यह तर्क पूरी तरह लागू होता है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि आज तक हमारे पास इस ढंगसे संगठित एक भी गाँव नहीं है। कम-से-कम सेगाँव तो इस तरह संगठित नहीं ही है, यद्यपि माना जाता है कि मैं यहीं रहता हूँ। लेकिन जो कार्यकर्ता अपने गाँवके संगठनको अपना एकमात्र कार्य बना लेनेको तैयार हो उसे मेरी विफलतासे निराश होनेकी जरूरत नहीं है।

सेगाँव, २५ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-१२-१९३९

७०. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय आचार्य रामदेवजी

आचार्य रामदेवके निधनसे एक उल्लेखनीय आर्य समाजी नेता और कार्यकर्ता हमारे बीचसे उठ गया है। यदि स्वामी श्रद्धानन्दके बाद गुरुकुल काँगड़ीके निर्माणमें किसीका सबसे अधिक योग था तो वे आचार्य रामदेव ही थे। जहाँ तक मुझे मालूम है, वे स्वामीजीके दाहिना हाथ थे। शिक्षकके रूपमें वे बड़े लोकप्रिय थे। इधर कुछ दिनोंसे अपनी अनोखी शक्तिका उपयोग वे देहरादूनके कन्या गुरुकुलके संचालनमें कर रहे थे और इस संस्थाको चलानेवाली कुमारी श्री विद्यावतीके मार्ग-दर्शक और आधार-स्तम्भ बने हुए थे। अपने जीवन-कालमें वे उनकी संस्थाके लिए द्रव्य एकत्र करने-वाले एकमात्र व्यक्ति थे। कुमारी श्री विद्यावतीको अपनी संस्थाके आर्थिक पक्षकी कोई चिन्ता ही नहीं करनी पड़ती थी। उनके निधनसे उनकी और उनकी संस्थाकी कैसी अपूरणीय क्षति हुई है, इसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजीको जानते थे, जो स्त्री-शिक्षाका महत्त्व समझते हैं और जो कुमारी विद्यावती तथा उनकी संस्थाका मूल्य पहचानते हैं उनका धर्म है कि वे गुरुकुलको आर्थिक तंगी में न रहने दें। इस उद्देश्यसे कोष संग्रह करना दिवंगत आचार्यका सबसे उपयुक्त स्मारक होगा।

बिहारसे बुरी खबर

बिहारसे मुझे एक तार मिला है। उसमें कहा गया है कि आज तक तो हरिजनोंको कांग्रेसियोंके खिलाफ कोई शिकायत करनेका मौका नहीं मिला था, लेकिन हालमें स्थानिक निकायोंके जो चुनाव हुए उनमें कांग्रेसने जितनी चाहिए थी उतनी संख्यामें हरिजन उम्मीदवार खड़े नही किये और जो हरिजन खुद सामने आये उनके साथ भी न्यायपूर्ण व्यवहार नही किया गया। तारमें यह शिकायत भी की गई है कि यह बात श्री राजेन्द्रबाबूके ध्यानमें लाई गई और उन्होंने इसमें काफी रुचि भी ली, लेकिन उनकी किसीने सुनी नही। ऐसा लगता है कि लगभग यही बात मुसलमानोंके बारेमें भी कही जा सकती है। हाँ, कुछ उल्लेखनीय अपवाद जरूर थे। शिकायत यह है कि कांग्रेसने जो आशाएँ बँधाई थीं उन्हें पूरा करनेमें वह निष्फल रही है। कांग्रेसियोंका दावा है कि वे राष्ट्रीय मानसवाले और निष्पक्ष लोग हैं। अपने इस दावेको सही सिद्ध करनेके लिए उन्हे खास प्रयत्न करना है। ऐसे सीधे-सादे मामलेमें श्री राजेन्द्रबाबूको तकलीफ नही देनी चाहिए। अपना हेतु साधनेवाले स्वार्थी लोगोंके लिए इस राष्ट्रीय संस्थामें कोई स्थान नही होना चाहिए। कांग्रेसके लिए हमेशा श्रेयस्कर यही है कि वह ऐसे लोगोंके प्रभावसे मुक्त रहकर ही अपना काम चलाये। मेरा तो सुझाव है कि अगर इस शिकायतमें सार है तो बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी योग्य मुसलमानो और हरिजनोंको अवसर देनेके लिए अपने कुछ सदस्यों से त्यागपत्र दिलवाकर अब भी अन्यायका निराकरण कर सकती है। न्यायका आचरण कभी भी किया जाये, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अब तो उसका अवसर ही नहीं रह गया है।

सेगाँव, २५ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-१२-१९३९

७१. सहायताका पात्र[1]

आयात किये गये लोहेकी होड़के कारण भारतके अनेक हिस्सोंमें लोहा शोधनेका प्राचीन ग्रामोद्योग मिट गया है। उदाहरणके लिए, चित्तूर इलाकेके थेत्तुपल्ली गाँवमें, जहाँ पचास साल पहले बहुत-से लोहार अपने धन्धेमें लगे हुए थे, लोहा गलानेकी क्षतिग्रस्त भट्टियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। मैसूर राज्यमें बाजारू लोहेने सलाहुआ बक्कलु जातिके लोगों द्वारा गाँवोंमें तैयार किये गये लोहेसे सफल होड़ ली है और तेलुगु कम्मारोंके लोहा शोधनेके धन्धेको तो मिटा ही दिया है। मध्य प्रान्तमें अगरिया गोंडोंके छोटे-से कबीलेका भी यही हाल होनेका खतरा दिखाई देता है।

१. यहाँ वेरियर एलविनके लेखके कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

अगरिया गोंड एक आदिवासी जाति है जिसका धन्धा है लकड़ीका कोयला तैयार करना, लोहा गलाना और लोहारीका काम करना। ये लोग मुख्यतः माण्डला और बिलासपुरकी मैकल पहाड़ियोंपर रहते हैं जहाँ धरतीकी ऊपरी सतहपर बढ़िया किस्मका कच्चा लोहा प्राप्त होता है। लेकिन इन लोगोंका (अगरिया गोंडोंका) किसी समय फूलता-फलता उद्योग जो लगभग नष्ट हो गया उसका कारण आयात होनेवाले विदेशी लोहेकी होड़ नहीं, बल्कि यह है कि सरकारने मूढ़तावश इनपर अत्यधिक कर लगा दिया है। करके इस भारी बोझसे न केवल इनका उद्योग चौपट हो गया है बल्कि उससे सम्बन्धित अन्य धन्धे भी नष्टप्राय हो गये हैं। १८६७ में अगरिया लोग करके रूपमें प्रति भट्ठी चार आना देते थे, परन्तु आज उन्हें दस रुपया देना पड़ता है, अर्थात् चालीस गुना अधिक। . . .

ये लोग दुनियाके सबसे निर्धन लोगोंमें से हैं। सम्पत्तिहीन, आधा पेट खानेवाले और मलेरियाके मारे हुए ये लोग इतना भारी कर दे ही नहीं सकते।...

यह सब इस जातिके आर्थिक जीवनके ही लिए नाशकारी नहीं है, बल्कि इसका इनके धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजोंपर भी गहरा असर पड़ा है। कारण, ये भट्ठियाँ अगरिया लोगोंके धर्म और उनकी परम्पराओंका जीता-जागता प्रतीक रही हैं। . . . भट्ठियोंका विलोप होनेका असर यह हुआ है कि इनके जीवनमें निराशा उत्पन्न हुई है, और इनका समाज छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो न केवल एक उपयोगी ग्रामीण उद्योग खत्म हो जायेगा बल्कि एक पूरी जाति ही नष्ट हो जायेगी।

सरकार ग्रामोद्धार और ग्रामोद्योगोंके पुनर्गठनपर भारी रकमें खर्च कर रही है। यह एक उद्योग तो मौजूद ही है जिसे तुरन्त और बहुत ही मामूली खर्चपर पुनरुज्जीवित किया जा सकता है।. . . चूँकि केवल लगभग एक सौ ही लोहेकी भट्ठियाँ हैं, अतः इस करके घटाये जानेपर सरकारको ५०० रुपयेसे भी कमका घाटा होगा। एक समूची जातिको पुनर्जीवन प्रदान करनेके लिए यह कीमत किसी भी लिहाजसे ज्यादा नहीं है।

. . . आजके समयमें, जब कि संसारमें मनुष्य जातिके विनाशके हेतु शस्त्रास्त्रोंके निर्माणपर प्रतिदिन करोड़ोंका लोहा इस्तेमाल किया जा रहा है, हम लोहेका काम करनेवाले इन गरीब और सीधे-सादे लोगोंके प्रति उदारतासे काम लें। ये सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि इन्हें शान्तिसे रहने दिया जाये।

मुझे उम्मीद है कि जरूरी सहायता तुरन्त दी जायेगी और अगरिया गोंडोंको इस आसन्न विनाशसे बचा लिया जायेगा।

सेगाँव, २५ दिसम्बर, १९३९

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-१-१९४०

७२. पत्र : नलिनी रंजन सरकारको

सेगाँव
२५ दिसम्बर, १९३९

प्रिय नलिनी बाबू,

मुझे आपका भाषण[1] पसन्द आया। आप जब भी जरूरी समझें, आ जाइए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

७३. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

सेगाँव, वर्धा
२५ दिसम्बर, १९३९

भाई जेठालाल,

३ अक्तूबरको भेजा तुम्हारा लेख आज ही ध्यानपूर्वक पढ़ पाया। तर्क ठीक है, लेकिन इसमें ऐसा कुछ नहीं है जो 'हरिजनबन्धु' में लिया जा सके। ऐसा है कि (तुम्हारे) तर्कोंके उत्तर दिये जा सकते हैं। एक तर्क समझमें नहीं आया। तुम कहते हो यदि मिलका कपड़ा बाहर न भेजा जाये, तो यहाँके लोग उसे खरीद नहीं सकेंगे। वे उसकी कीमत कहाँसे देंगे? यह क्या बात हुई? बचतका अनाज देकर कपड़ा लेंगे। लेख वापस भेज रहा हूँ। तुम्हारा कैसा चल रहा है? घी बनाते हो क्या? खर्च कैसे चलता है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९८६८) से; सौजन्य : नारायण जेठालाल सम्पत

१. नलिनी रंजन सरकारने अपने पद-त्यागके सम्बन्धमें विधान-सभामें जो वक्तव्य दिया था उसकी एक प्रति गांधीजी को भेजी थी; देखिए "पत्र : नलिनी रंजन सरकारको", पृ० ५७।

७४. पत्र : लक्ष्मी गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२५ दिसम्बर, १९३९

चि० लक्ष्मी,

तू कैसी है? बीमार हुआ करती है और सबको चिंता कराती है। अब खूब आराम लेकर अच्छी हो ले। यहाँ आयेगी तो आजकल हवा बहुत अच्छी मिलेगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २१३५) से

७५. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२५ दिसम्बर, १९३९

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला है। पजाबके प्रस्ताव पढ़ गया और प्लानिंग कमिटीका भी पढा। कमिटीका पढकर कुछ दु.ख हुआ। समझदार ओरत इस प्रवाहमे नही चली जायगी तो सब ठीक होगा। बाकी समजा हूं।

मुझे लिखा करो। तुमारी तबीयत अच्छी होगी।

महादेव मद्रास गया है। अब वापस आना चाहिये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९८९) से

७६. पत्र : जी० वी० गुर्जलेको

सेगाँव, वर्धा
२६ दिसम्बर, १९३९

प्रिय भिक्षु,

सर्दीका मौसम खत्म होनेके बाद यहाँ जरा भी जगह हो पाई तो श्रीमती गुर्जले यहाँ आ सकती है। अभी तो यहाँ बड़ी भीड़ है।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३९१) से

७७. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
२६ दिसम्बर, १९३९

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। जब तू बार-बार ऐसा करती है, तब तुझे पत्र क्या लिखे जायें? तूने तार भेजनेको कहा, तो तार भेजा। २ तारीखको कोई तुझे लेने स्टेशन आयेगा। अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। बा अभी दिल्लीमें है। बाकी यहाँ कुशल है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३०) से

७८. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

सेगाँव, वर्धा
२६ दिसम्बर, १९३९

भाई वल्लभराम,

तुम्हारा पत्र बहुत देरसे मिला। लेकिन यह तो बहाना है। उसके बाद भी इतना समय तो था ही कि मेरा सन्देश तुम तक पहुँच जाता, लेकिन तुमने 'हरिजन' में पढ़ा होगा कि जहाँ तक बने पत्र लिखना तथा सन्देश भेजना मैंने बन्द कर दिया है।[1] जहाँ भेजे बिना काम चल ही नहीं सकता, वहाँ तो अब भी भेजता हूँ। लेकिन वह भी किसी दिन तो बन्द होगा ही न? कुष्ठके रोगीका हाल अभी तो ठीक है। कभी आओ तो देखना। लक्ष्मीपतिके बारेमें भी जब आओगे तब बताऊँगा।

श्री वल्लभराम वैद्य
धन्वन्तरि भवन
आकासेठ कुएँकी पोल
अहमदाबाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९०८) से, सौजन्य : वल्लभराम वैद्य

७९. बातचीत : नागपुरके कांग्रेस-कार्यकर्ताओंके साथ[2]

वर्धा
२७ दिसम्बर, १९३९

[नागपुरके कांग्रेस जनोंको] जो बातें चिन्तित करती प्रतीत होती थीं उनमें एक यह थी कि यदि मुश्किलमें फँसे विरोधीके खिलाफ सत्याग्रह करना गलत हो तो हम कभी भी ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कैसे सत्याग्रह कर सकेंगे, क्योंकि जब तक वर्तमान युद्ध चलेगा, वह अवश्य ही मुश्किलमें फँसी रहेगी।

१. देखिए पृ० ४९-५०।

२. यह और अगला शीर्षक दोनों महादेव देसाई द्वारा तैयार किये गये संक्षिप्त विवरणसे उद्धृत हैं। वह विवरण इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था: "वर्धामें आस-पास की जगहों से आनेवाले कांग्रेस-जनोंके साथ गांधीजी की जो बातचीत हुई, उसे प्रकाशित करनेका इरादा नहीं था। परन्तु चूँकि बातचीतके अपूर्ण और गलत विवरण अखबार में छपे हैं, अतः यह संक्षिप्त विवरण प्रकाशित करना जरूरी समझा गया है।"

[गांधीजी :] सत्याग्रह एक सर्वव्यापी सिद्धान्त है और उसके जो अनेक प्रयोग हो सकते हैं, सविनय अवज्ञा उनमें से एक है। विरोधी मुश्किलमें हो या न हो, सत्याग्रह जारी रहता है, क्योंकि सत्याग्रह यदि ठीक भावनासे किया जाये तो उससे विरोधीको हमेशा लाभ ही होता है। जरूरी बात यह है कि हमें मुश्किलमें फँसे विरोधीको परेशान नही करना चाहिए और उसकी मुश्किलको अपने लिए सुअवसर नही समझना चाहिए। इसीलिए सविनय अवज्ञा, जो खास हालतों और परिस्थितियोंमें ही की जा सकती है, मुश्किलमें फँसे विरोधीके खिलाफ नही की जानी चाहिए। सविनय अवज्ञा जीवनका नियम नही है; सत्याग्रह है। अत. सत्याग्रह कभी नही रुकता; सविनय अवज्ञाका जब मौका न रहे तो वह रुक सकती है और रुक जानी चाहिए। और फिर सविनय अवज्ञा दो तरहकी होती है — आक्रामक और रक्षात्मक। जब कोई विरोधी हमें अपमानित या जलील करता है, तब रक्षात्मक सविनय अवज्ञा कर्तव्य हो जाती है। यह कर्तव्य निभाना ही पड़ता है, विरोधी चाहे मुश्किलमें हो चाहे न हो। मुश्किलमें फँसे विरोधीको यह आशा नही करनी चाहिए कि लोग अन्यायपूर्ण और अपमानजनक कानूनों या आदेशोंका पालन करेंगे। आक्रामक सविनय अवज्ञासे विरोधी परेशान होता है, चाहे हमारा इरादा उसे परेशान करनेका हो या न हो। बिना टिकट गाड़ीमें सफर करना — यदि क्षण-भरके लिए इसे सविनय अवज्ञा मान लिया जाये, हालांकि यह सविनय अवज्ञा है नही — निषिद्ध होगा, क्योंकि ऐसा करना विरोधीको केवल परेशान करनेके लिए ही होगा। सारांश यह कि कोई बात जो साधारणतया उचित और स्वराज्य-प्राप्तिमें सहायक हो, निषिद्ध नही होगी, भले ही वह विरोधीको परेशान करनेवाली जान पड़ती हो। जो चीज नैतिक दृष्टिसे आवश्यक और लाभदायक हो उसका करना तो कर्तव्य है, परन्तु जो बात नैतिक दृष्टिसे अनुचित न होते हुए भी मुश्किलमें फँसे विरोधीको तंग और परेशान करनेके लिए ही की जाये वह बिलकुल दूसरी चीज है। उसकी मुश्किलको अपने लिए सुअवसर समझना किसी भी हालतमें उचित नहीं ठहराया जा सकता।

आपका यह कहनेसे क्या अभिप्राय है कि सीधी कार्रवाई संविधान-सभाके लिए तैयारी होगी?

गांधीजी : मुझे याद नही पड़ता कि मैंने ऐसी बात कही या लिखी हो। शायद आप किसी बातको उसके प्रकरणसे अलग करके पेश कर रहे हैं। मैंने जो कुछ कहा है यही है कि भारतकी आजादी हासिल करनेके लिए हमें शायद सविनय अवज्ञाकी आगमें से गुजरना पड़े। वैसे मैं इसे भी टालनेके लिए अपना सारा जोर लगा रहा हूँ। संविधान-सभा स्वतन्त्रताकी भूमिका है और एक स्वाभाविक भूमिका है। इसका सुझाव इसलिए दिया गया है कि यह सम्प्रदायों और वर्गोंके हितोंकी टक्करको रोकनेका साधन होगी। इसका मुख्य काम स्वतन्त्रताका घोषणा-पत्र तैयार करना है। सीधी कार्रवाईकी जरूरत तब होगी जब स्वतन्त्रताकी दिशामें प्रगति बिलकुल असम्भव हो जायेगी और सरकारके साथ सारी बातचीत बेकार हो जायेगी।

अब जब कि विधान-सभाओंके सदस्य कुछ काम नहीं कर रहे, वे अपना मासिक भत्ता क्यों स्वीकार करें?

गांधीजी . मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि उन्हें भत्ता नही लेना चाहिए। हमारा यह कहना बेकार है कि यह पैसा सरकारका है। सरकारकी तो कोई चीज नही है। ऐसे लोग भी हैं जो जेल जाने पर हर तरहकी माँगे करते हैं और जेल-सम्पत्तिका दुरुपयोग करते हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि जेले हमारी हैं और वहाँकी सब चीजे हमारी हैं और हमें उन चीजोंका किफायतसे इस्तेमाल करना चाहिए, जैसे कि हम उन चीजोंका करते हैं जिन्हे हम अपनी कहते हैं। इसलिए मुझे इस विषयमें कोई शक नही है कि भत्ता नही लेना चाहिए और यदि लेना ही हो तो लेकर कांग्रेस-कार्यालयमें दे देना चाहिए। वस्तुतः यह एक नैतिक प्रश्न है, जिसपर हर कांग्रेसीको विचार करना चाहिए। यदि हम भत्ता न लेनेका फैसला करें तो इससे हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मैंने अब तक इस बारेमें अपनी राय जाहिर करनेसे परहेज किया है, क्योंकि मेरा खयाल था कि शायद मेरी राय कांग्रेसकी आम रायके खिलाफ हो। परन्तु अब चूंकि आपने यह सवाल उठाया है, मैं आपसे कहूँगा कि आप कांग्रेस-प्रधान और कार्य-समितिके सामने अपनी बात रखें।

इन प्रश्नोंका उत्तर दे चुकनेपर गांधीजी ने कहा :

अब मैं अपने मन-पसन्द विषयपर आता हूँ। पहले साम्प्रदायिक एकताके सवालको लेता हूँ। इसका सार यह है कि सब सम्प्रदायोको, उनके माँगे या संघर्ष किये बिना, उनका हक दिया जाये। जैसा कि मैंने कहा है, सत्याग्रह जीवनका नियम है। सत्याग्रह अपने हक जतलानेसे नही, बल्कि अपने पड़ोसियोंके हकोंको ठीक तरहसे मान्य करनेसे शुरू होता है। जहाँ तक हरिजनोंका सवाल है, यदि वे मुझे लातें मारना चाहें या उससे भी बदतर सलूक करना चाहें तो भी मैं उसे बरदाश्त करनेको तैयार हूँ। क्योकि उन्हें यह एहसास करानेमें देर लगेगी कि सदियो तक उनके साथ बुरा बरताव करनेके बाद अब हम उनके साथ सगे भाइयों-जैसा बरताव करेंगे।

अब चरखे पर आता हूँ, जो कि मेरा पुराना खब्त है। इस सम्बन्धमें मुझे तब तक सन्तोष नही होगा जब तक कि आप सच्चे दिलसे काम नही करेंगे। जब मैं आ रहा था मैंने आपको इस बारेमें झगड़ते सुना कि ६४० गज चाहिए या ६४० तार (अर्थात् ८४० गज)। इससे नही चलेगा। हमें ऐसा करना है जिससे घर-घरमें चरखा गूंज उठे और सब खादीको अपना लें। कताईके सार्वत्रिक होनेका पक्का सबूत यही होगा कि खादी चालू सिक्का बन जाये। मैं इस बातका गुत्र करता हूँ कि देश सविनय अवज्ञा करनेका तब तक खयाल नही करेगा जब तक कि मैं सेनापतिकी हैसियतसे इसके लिए इशारा न करूँ। मैं तब तक इशारा नहीं करूँगा जब तक कि मेरी शर्तें पूरी नहीं होंगी। हमें २०० करोड़ रुपयेकी खादीकी जरूरत है। आज हम अपने चरखों और करघोंपर कितनी खादी तैयार

करते हैं? एक करोड़ रुपयेसे अधिककी नहीं। तो फिर मैं १०० या २०० गज भी रोज कातनेके आपके वादेसे कैसे सन्तुष्ट हो सकता हूँ?

यदि लोग केवल खादी ही पहननेका आग्रह रखें, तो उन्हें ज्यादा खादी न मिलनेपर लंगोटीसे भी सन्तोष हो जायेगा। यदि हम अपनी जरूरत-भरका सारा कपड़ा न तैयार कर पायें तो मैं ऐसी स्थितिसे भी सन्तुष्ट हो जाऊँगा। लेकिन मुझे विश्वास है कि यदि माँग होगी तो अपने-आप उसकी पूर्ति होगी। यदि हम सच्चे दिलसे काम करें तो सब लोग खादीको अपना लेंगे। मगर बात यह है कि जो लोग खादीमें विश्वास रखनेका दावा करते हैं वे उसके लिए काम नहीं करना चाहते। मौलाना मुहम्मद अलीने जब यह ऐलान किया था कि हमारी सूतकी गुण्डियाँ ऐसी गोलियाँ हैं जिनसे हम स्वराज्य हासिल करेंगे, तब उन्होंने एक बड़ी सचाई कह डाली थी और अहिंसासे स्वराज्य प्राप्त करनेका मतलब सदाके लिए स्पष्ट कर दिया था।[1] मुझमें जब तक प्राण रहेंगे, मैं खादी-मन्त्रका उच्चारण करता रहूँगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि इससे हमें आजादी मिलेगी।

तो मेरा कहना यह है कि आप अपने आन्तरिक झगड़े मिटाकर संगठित हो जायें और खादी, साम्प्रदायिक एकता और हरिजन-सेवाके रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करनेमें जुट जायें।

उपस्थित स्त्रियोंको सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा:

खादीमें एकता स्थापित करनेकी शक्ति है। सो बहनो, आप इस काममें जुट जायें, क्योंकि स्वराज्यकी कुंजी आपके ही हाथमें है।

शराबकी दुकानोंपर पिकेटिंग करनेके सवालपर उन्होंने कहा कि इस काममें हिंसाका प्रयोग नहीं होना चाहिए। उन्होंने उनसे कहा कि आप शराबकी दुकानोंपर निगाह रखें, शराबियोंके पास जायें, उनके परिवेशका अध्ययन करें और उन्हें यह बुराई त्यागनेके लिए प्रेरित करें।

मैं सेनापति हूँ, परन्तु साथ ही कड़ा काम लेनेवाला भी हूँ। इसलिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप रचनात्मक कार्यक्रममें पूरी तरह जुट जायें। इसके पूरा होनेपर मैं लड़ाईका बिगुल बजाऊँगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-१-१९४०, और हिन्दू, २८-१२-१९३९

१. इसके बादका अंश *हिन्दू* से लिया गया है।

८०. बातचीत : नागपुरके कांग्रेस-कार्यकर्ताओंके साथ

सेगाँव

[२७ दिसम्बर, १९३९ या उसके पश्चात्][1]

गांधीजी ने उन लोगोंसे व्यक्तिगत रूपसे पूछा कि उनमें कितने लोग कताई जानते हैं, कितने नियमित रूपसे कातनेवाले हैं, आदि, और कहा :

ये तमाम सवाल मैं आपसे इसलिए पूछ रहा हूँ कि मैं चाहता हूँ, आप सब ईमानदारीका व्यवहार करें। हम इतने वर्षोंसे कहते आये हैं कि हम कताईमें विश्वास करते हैं। हर जगह निर्धारित तिथियोंको झण्डा समारोह होता है। झण्डा खादीका बना हुआ है और चरखा उसके केन्द्रमें स्थित है। जब तक हम चरखेके सन्देशको फैलानेके लिए प्राणपणसे कोशिश नहीं करते तब तक यही माना जायेगा कि हम अपने झण्डे के प्रति गैर-वफादार हैं। अब हमें ठोस काम करके अपनी वफादारी साबित करनी है। हिंसक सेनाका सेनापति इस बातका आग्रह रखता है कि उसके सिपाही कुछ शर्तें तो अवश्य पूरी करें। क्या मैं — इस अहिंसक सेनाका सेनापति — इस बातका आग्रह न रखूं कि मेरे सिपाही अपने धर्मके प्रति ईमानदार बनें? मैं तो यही कहूँगा कि अगर आप सब अपने धर्मके प्रति ईमानदार बन जायेंगे तो फिर खादी भण्डारोंमें फालतू खादी नहीं पड़ी रहेगी, लोगोंके बीच बेरोजगारी नहीं रहेगी और न देशी अथवा विदेशी मिलके कपड़ेका ही चलन रहेगा। आप और कुछ कहनेकी आशा तो मुझसे नहीं करते न?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-१-१९४०

८१. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा

२८ दिसम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। चीनसे आया पत्र मैं सुरक्षित रखूँगा।[2]

मुक्ति-दिवससे सम्बन्धित वक्तव्य[3] को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने पूरे पृष्ठमें छापा है। लेकिन सचाई यह है कि इसका कहीं कोई असर हुआ नहीं जान पड़ता।

१. महादेव देसाईके अनुसार वर्धाके बाद यह बातचीत सेगाँवमें हुई थी; देखिए पिछला शीर्षक।

२. जवाहरलाल नेहरूने अपने २७ दिसम्बरके पत्रमें च्यांग-काई-शेकके पत्रको मगनवाड़ीमें सुरक्षित रखनेका सुझाव दिया था। देखिए "पत्र : च्यांग-काई-शेकको", ७-१-१९४०।

३. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० २१-२३।

फजलुल हकका आरोप[1] तुमने पढ़ा क्या? क्या उसके सम्बन्धमें कुछ भी कहना या करना नहीं चाहिए?

कुमारप्पा[2] के जिन पत्रोंपर तुमने कड़ी आपत्ति की थी, वे तुमने अभी तक नहीं भेजे हैं। वह यहीं है। मैंने उससे पूछा तो उसने बताया कि हालमें तो कुछ नहीं भेजा है। तुम्हारे पास जो भी पत्र हों, भेज दो।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

८२. पत्र : एन० एस० हर्डीकरको

सेगाँव, वर्धा
२८ दिसम्बर, १९३९

प्रिय डॉ० हर्डीकर[3],

मेरे विचारमें आपने सही कदम उठाया है। परन्तु मुझे आपकी भाषा पसन्द नहीं आई। अंकित अंश पढ़ लीजिएगा। उनसे क्रोध और द्वेष प्रकट होता है, जिससे पद-त्यागकी शोभा काफी घट गई है।

आशा करता हूँ कि मैसूरके मित्रगण आपको वहाँकी घटनाओंसे अवगत कराते रहते होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे: एन० एस० हर्डीकर पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. तात्पर्य शायद १८ दिसम्बरको बंगालके मुख्य मन्त्री द्वारा विधान-सभामें दिये गये भाषणसे है। भाषणमें उन्होंने यह आरोप लगाया था कि भारतकी राजनीतिक प्रगतिके मार्गमें बहुसंख्यक दल अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही बाधा बनी रही है। "वे बड़े स्वार्थी और बेईमान लोग हैं।"

२. जे० सी० कुमारप्पा, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघके मन्त्री

३. कांग्रेस सेवा दलके प्रधान

८३. पत्र : नानाभाई इ० मशरूवालाको

सेगांव, वर्धा
२८ दिसम्बर, १९३९

भाई नानाभाई[1],

तुम्हारे पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनेके बहाने यह पत्र लिख रहा हूँ। यद्यपि मैं यहां-वहांसे पूछताछ करके तुम्हारे समाचार प्राप्त करता रहता हूँ, तथापि तुम्हें कभी पत्र नही लिखता। इसीलिए आज इतना घसीटे दे रहा हूँ। तुम बिलकुल अच्छे हो जाओ तो कितना अच्छा हो!

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६९२) से। सी० डब्ल्यू० ४३३७ से भी; सौजन्य : कनुभाई ना० मशरूवाला

८४. पत्र : कनु गांधीको

सेगांव, वर्धा
२८ दिसम्बर, १९३९

चि० कनैयो,

पत्र लिखनेमें तू सचमुच आलसी है। तू जानता है कि इस समय मुझे तेरे पत्रोंकी प्रतीक्षा रहती है। राधाके दो पत्रोंके बाद फिर उसकी ओरसे भी कोई समाचार नही है।

तूने अपने गलेसे काम लेनेमें जल्दी की, ऐसा कहा जा सकता है न? यदि हम डॉक्टरोंके पास जायें तो जब तक वे धर्मके विरुद्ध कोई बात नही कहते, हमें उनकी बात माननी चाहिए। अब मुझे ब्योरेवार लिखना। क्या अब तू गलेसे पूरा काम ले सकता है? अथवा बोलने या गानेमें तकलीफ होती है? वहां पानी वगैरहकी तंगी हो तो जिनकी वहां जरूरत न हो उन्हें वहांसे चल

1. मणिलाल गांधीके ससुर

देना चाहिए, यह ध्यानमें रखना। मुझे खयाल नही रहा, नही तो शायद मैं तुझे राजकोट जानेसे रोकता। अब वहाँ रहनेमें इस बातका खयाल रखना।

पता लगाना कि मंजुला[1] कैसी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

८५. पत्र : कनु गांधीको

[२८ दिसम्बर, १९३९ के पश्चात्][2]

चि० कनैयो,

कुछ लिखता ही नही। यह उचित नही है। मंजुला कैसी है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

८६. सन्देश : अखिल भारतीय उर्दू सम्मेलनको[3]

[२९ दिसम्बर, १९३९ से पूर्व][4]

देशकी भलाई चाहनेवाले हर हिन्दूको उर्दू और हर मुसलमानको हिन्दी सीखनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १-१-१९४०

१. ब्रजलाल गांधीकी पुत्री, जो बीमार थी
२. लगता है यह पिछले शीर्षकके बाद किसी समय लिखा गया होगा।
३. मूल सन्देश उर्दूमें था, जो उपलब्ध नहीं है।
४. सम्मेलन २९ दिसम्बरको आरम्भ हुआ था।

८७. पत्र : जमनालाल बजाजको

२९ दिसम्बर, १९३९

चि० जमनालाल,

मैंने शास्त्रीजीसे बातें की हैं। कुछ संशोधन किये हैं।

मदालसा[1] के बारेमें टेलीफोन किया है। भगवान करे सो ठीक। . . .

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००७) से

८८. पत्र : मदालसाको

२९ दिसम्बर, १९३९

चि० मदालसा,

तू कौन-से करिश्मे दिखा रही है? जो होना हो, सो हो। चिन्ता मत करना। इतने अभंग[3] तूने याद किये हैं और विनोबासे जो इतना ज्ञान प्राप्त किया है उस सबका समुचित उपयोग करना। डॉक्टर जैसा कहें वैसा करना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३१९

१. वह बीमार थी और उसके पहले प्रसवका समय निकट था।

२. इसके बादका अंश उपलब्ध नहीं है।

३. भक्तिपरक मराठी पद

८९. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

सेगाँव, वर्धा
२९ दिसम्बर, १९३९

भाई संपूर्णानन्दजी,

[१९] ३० की प्रतिज्ञा[1] है उसमें तो कुछ फरक नहीं किया गया है। जो हूआ है सो मूलमें वृद्धि[2] की गई। और जो वृद्धि की गई है वह भी प्रस्तुत है। उसमें परिवर्तन हो भी सकता है, कई बार आवश्यक हो जाता है। मूलमें परिवर्तन करनेका अधिकार भी कमिटी[3] को कहाँ है? आप ऐसा तो नहीं कहेंगे कि मूल वस्तुको मदद देनेके कारण भी सूचनाएँ नहीं दी जा सकती है? सूचनाकी उपयोगिताके बारेमें मतभेद हो सकता है। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि सूचना देना आवश्यक था।

आपका,

मो० क० गांधी

मूल पत्र से : सम्पूर्णानन्द कलेक्शन; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

९०. सन्देश : 'खादीर कथा' को

[१९३९][4]

'खादीर कथा'[5] को आजकी अनावश्यक मासिक पत्रिकाओंकी गिनतीमें वृद्धि करनेवाली मात्र एक सामान्य पत्रिका नहीं बनना चाहिए। उसमें तो प्रतिमास होनेवाले खादी कार्यका सच्चा लेखा-जोखा होना चाहिए। यदि कार्यमें कोई ह्रास हो तो वह उसके कारणोंकी जाँच-पड़ताल करे और वह सब खादी कार्यकर्ताओंको निकट

१. स्वतन्त्रता दिवसकी प्रतिज्ञा; देखिए खण्ड ४२, पृ० ४४०-४२; देखिए "बहुमत-विरोधी", १६-१-१९४० भी।

२. देखिए परिशिष्ट १।

३. कांग्रेस कार्य-समिति

४. साधन-सूत्र में इसे १९३९ की फाइलमें रखा गया है।

५. खादीकी कथा

चलानेका काम करे। यदि वे लोग एकरूप होकर कार्य नहीं कर सकते तो चरखेका सार्वभौमिक प्रचलन भी एक स्वप्न मात्र रह जायेगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

९१. चरखा अमर है

बड़ौदासे एक कॉलेज-विद्यार्थी लिखता है कि बड़ौदाके हाईस्कूल और कॉलेजके विद्यार्थी बहुत कम खादी पहनते हैं। शायद ही कोई कताई करता होगा। बरारसे एक उत्साही कार्यकर्ता लिखते हैं : "क्या आप नहीं सोचते कि अगर आपकी खादीवाली शर्तको सचमुच लागू करना हो तो स्वराज्यका मिलना असम्भव है। भाईचारेके बारेमें आपकी दूसरी शर्तका पालन करना भी उतना ही असम्भव लगता है।" ये मित्र स्वयं खादीप्रेमी हैं, नियमपूर्वक कातते हैं और हर किसीसे भाईचारा रखते हैं। परन्तु उनके मनमें एक सच्चा सन्देह है, जो ऊपर व्यक्त किया गया है। ये मित्र चरखेके अलावा अहिंसाके बारेमें भी वही बात उतने ही जोरसे कह सकते थे। शायद उन्हें इस बारेमें कोई सन्देह नहीं था कि चरखा और भाईचारा अहिंसाके बाहरी और भीतरी चिह्न हैं। कॉलेज-विद्यार्थी और बरारवाले मित्र दोनोंको मेरा एक ही जवाब है। जो वे कहते हैं उससे मैं बेखबर नहीं हूँ। अभिष्ट काल-सीमाके अन्दर इन शर्तोंको पूरा करनेकी कठिनाई मैं समझता हूँ। मैं लाचार हूँ। मैं जिद्दी नहीं हूँ। दूसरी और अधिक व्यवहार्य शर्तें रखना यदि सम्भव होता, तो और किसी बातके लिए नहीं तो कम-से-कम अपनी साख बनाये रखनेके लिए ही मैं वैसी शर्तें जरूर रखता। परन्तु जैसे दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजनका मिश्रण पानी बनानेकी अनिवार्य शर्त है, वैसे ही चरखा और भाईचारा अहिंसाकी शर्तें और चिह्न हैं। चूंकि मेरा ऐसा निश्चित विचार है, मुझे इन दो शर्तोंके पूरा होनेका आग्रह रखना ही है। इनके पूरा किये जाने पर ही मैं कुछ भरोसेके साथ सार्वजनिक सविनय अवज्ञाकी घोषणा कर सकता हूँ।

मेरी आस्था ईश्वरमें है और इसलिए जनतामें भी है। यदि ईश्वर चाहता है कि मैं एक और लड़ाई लड़ूं तो वह लोगोंके हृदयोंमें परिवर्तन लायेगा। मैंने जो शर्तें रखी हैं वे असम्भव नहीं हैं। यदि लोगोंकी मर्जी हो तो वे आजसे कताईमें लग सकते हैं और खादीको अपना सकते हैं। यदि उनकी मर्जी हो तो वे मनुष्य-मात्रके साथ अच्छा बरताव कर सकते हैं। चमत्कारोंका युग बीत नहीं गया है। लेकिन फर्ज कीजिए कि शर्तें पूरी नहीं होतीं, तब मैं खुशी-खुशी [illegible] और दुनियाका उपहास-पात्र बनूंगा और सेनापतिके आसनसे उतर

आऊँगा। मुझे इस बातसे परम सन्तोष होगा कि मैं अपने सिद्धान्तों पर जमा रहा। जाहिरा नाकामयाबीको मैं इस बातका ईश्वरीय संकेत मानूँगा कि ये शर्तें देशको बरबादीके रास्तेसे बचानेके लिए ईश्वरकी रची मृग-मरीचिका थीं। यदि शुद्ध व्यावहारिक दृष्टिसे विचार किया जाये और मेरी शर्तोंका खयाल न भी किया जाये, तो भी कहना होगा कि कांग्रेस संग्रठनमें विघटनके आसार दिखाई दे रहे हैं। बंगाल समिति खुल्लमखुल्ला विद्रोही हो उठी है। उड़ीसा दो दलोंमें बँट गया है। कर्नाटकमें हालत इससे बेहतर नही है। केरलके एक पत्र-लेखकका कहना है कि प्रान्तीय समितिको वर्तमान नीति और वर्तमान कमानमें विश्वास नही है और वह कार्य-समितिके कार्यक्रमका मजाक उड़ाकर उसके प्रभावको घटानेकी हर तरहसे कोशिश कर रही है। पंजाबमें भी स्थिति कोई आशाजनक नही है। तो भी मैं जानता हूँ कि हालत इतनी खराब नही है कि सुधर न सके। मैं उम्मीद लगाये बैठा हूँ कि हालत अपने-आप सुधर जायेगी। परन्तु यदि वह नही सुधरती तो मैं एक अनुशासनहीन सेनाको लेकर विजय-पथ पर नही बढ़ सकता। मैं इस सरल सिद्धान्तको बिलकुल नही मान सकता कि ज्योंही मैं 'जंग' का ऐलान करूँगा त्योंही हर चीज ठीक-ठाक हो जायेगी और हर आदमी ठीकसे काम करने लगेगा।

एक और दृष्टिकोण पेश किया गया है। अगर इतने ज्यादा प्रान्तोंमें अनुशासनहीनता है तो क्या इसका यह मतलब नही हो सकता कि कसूर हाईकमानका है, न कि विभिन्न कमेटियोंका। मैं इस दृष्टिकोणको आनन-फानन अस्वीकार कर देनेके लिए तैयार नही हूँ। मगर हाईकमान क्या करे? उससे जितना बन पड़ता है, वह करती है। जब तक एक बहुत बड़ा बहुमत उसमें विश्वास रखता है, तब तक वह पद-त्याग नही कर सकती। असहयोग आन्दोलनके शुरू-शुरूके दिनोंमें मैंने पद-त्यागका सुझाव दिया, तो मौलाना मुहम्मद अलीने कहा, "अगर लोग हमें चाहते हैं, तो हम पद-त्याग कैसे कर सकते हैं? पद-त्याग तो कायरपन होगा। धक्के मार-मारकर बाहर निकाल दिया जाना हमारे लिए बहादुरी होगी।" मैं उस समय उनसे पूरी तरह सहमत नही था, आज भी नही हूँ। परन्तु उनकी उस दलीलमें बहुत जोर है। जिनके हाथोंमें काग्रेसकी कमान हो उन्हें उसपर अपनी पकड़ हलकी ही रखनी चाहिए, उससे चिपटे नही रहना चाहिए। पदपर बने रहनेके लिए तिकड़म लड़ाना या किसी तरहकी कोशिश करना ठीक नही है। मिनट-भरके नोटिस पर कमानसे अलग होनेके लिए तैयार रहना चाहिए। काग्रेस कमान कोई सरदारी नही है। यह तो सेवाका काम है। काग्रेस-प्रधान प्रथम सेवक होता है। जहाँ तक मैं कार्य-समितिके सदस्योंको जानता हूँ, मेरा खयाल है कि वे इस जिम्मेवारीसे मुक्त कर दिये जाने पर खुश ही होंगे। नये चुनाव हो ही रहे हैं। काग्रेसजन किसीको भी चुननेको स्वतन्त्र हैं। जवान लोग जिम्मेवारी सँभालनेके लिए आगे आयें। परन्तु यदि वे आगे नही आते और पुरानी टीमको ही रहने देते हैं, तो उन्हें उसकी आज्ञाका पालन

निर्विवाद रूपसे करना चाहिए। देशकी खतरनाक हालतका तकाजा है कि उससे दिलेरीके साथ और निर्णयात्मक ढगसे निपटा जाये।

सेगांव, १ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-१-१९४०

९२. सिन्धकी दुःखद घटना

मेरे सामने सिन्धसे आये कई पत्र है और सक्खर और शिकारपुरके हालके दंगोंके बारेमे डॉ० चोइथराम[2] की भेजी हुई एक लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट है। सिन्धके हिन्दुओंको याद रखना चाहिए कि सिन्धमें राष्ट्रीय सरकार है। हालांकि संक्षेपकी खातिर मैंने इसे अक्सर कांग्रेस सरकार कहा है, फिर भी जिस विदेशी नौकरशाही सरकारका स्थान इसने लिया है उससे इसका भेद स्पष्ट करनेके लिए इसे राष्ट्रीय लोकतन्त्री सरकार कहना ही ठीक है। घरेलू मतभेदो और दलगत राजनीतिकी चर्चा करनेमें हमें कांग्रेस सरकार और मुस्लिम लीग सरकार कहना पड़ता है, परन्तु जब इनका उल्लेख अन्य प्रयोजनोसे करना हो तब तो इन सरकारोको राष्ट्रीय सरकारे ही समझना और कहना चाहिए। और इसलिए जिन्हे कोई शिकायत हो उन्हें चाहिए कि अपनी प्रान्तीय राष्ट्रीय सरकारोसे अपील करे और न्याय और सार्वजनिक शान्तिके पक्षमें जनमत तैयार करे। हमेशा साम्प्रदायिक दृष्टिसे सोचना गलत होगा। मैं जानता हूँ कि हम कठोर तथ्योंकी ओरसे अपनी आँख बन्द नही कर सकते। परन्तु हर चीजको साम्प्रदायिकता के मत्थे मढना हीन भावनाका चिह्न है। ऐसा करनेसे सम्भव है कि राष्ट्रीय जीवनको अभी तक जो अस्थायी रोग है वह स्थायी हो जाये।

लेकिन जैसा कि मैंने पहले भी संकेत किया है,[1] राष्ट्रीय सरकारे जिन लोगों के नामपर और जिनकी सद्भावना प्राप्त होनेपर ही शासन कर सकती है, उनके प्रति जिम्मेवार होनेके कारण कार्रवाई करनेमें गैर-जिम्मेवार नौकरशाही की अपेक्षा कमजोर सिद्ध होंगी। इसलिए वे जुर्मोसे तो कमोवेश कामयाबीके साथ निपट सकती है, मगर साम्प्रदायिक दंगों-जैसी सार्वजनिक उथल-पुथलसे निपटनेमें असमर्थ पाई जायेंगी। ब्रिटिश फौजी मदद उन्हे हमेशा नहीं मिल सकेगी। राष्ट्रीय सरकारोको अगर ब्रिटिश फौजी मदद पर ही निर्भर रहना पड़े तो वे राष्ट्रीय सरकारे नही रहेंगी। इसके अलावा यह बात भी है कि यदि सब पार्टियां कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिको अपना ले, तब फौज तो क्या, पुलिसकी मदद

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४३९-४०।
२. सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके उपाध्यक्ष डॉ० चोइथराम गिदवानी

लेना भी निषिद्ध हो जायेगा। लेकिन दूसरी पार्टियोंसे अहिंसाको अपनानेकी आशा की जाये, इसके लिए यह जरूरी है कि पहले कांग्रेसजन अपने दैनिक आचरणमें अहिंसाका पर्याप्त परिचय दें। खैर, जो भी हो, मैं तो सिन्धके विपद्ग्रस्त लोगोंको अहिंसाकी दृष्टिसे ही सलाह दे सकता हूँ।

सिन्धका सवाल हिन्दू-मुस्लिम सवाल नही है। वास्तवमें यह तो कमजोर और ताकतवरका सवाल है। मुसलमान आपसमें उतनी ही बुरी तरह लड़ते हैं जितनी कि हिन्दुओंके साथ। हिन्दू भी आपसमें लड़ते देखे गये हैं। बहुशतको सोनेके तराजू पर तोलना गलत बात होगी।

हिन्दू-धर्म कमजोरीका पर्याय बन गया है और इस्लाम शारीरिक बलका। हालाँकि हिन्दुओंको अहिंसामे विश्वास करना सिखाया गया है, फिर भी उन्होंने सामूहिक रूपसे अहिंसाका बल प्रदर्शित नही किया है और शारीरिक बलके मुकाबलेमें उसकी श्रेष्ठता कभी प्रमाणित नही की है। मेरी रायमें अहिंसाकी असलियत इस बातमें समाई हुई है कि वह जबरदस्तसे-जबरदस्त शारीरिक बलसे श्रेष्ठ है। और मेरी यह भी राय है कि ऐसी अहिंसाका पालन अलग-अलग व्यक्ति भी उसी तरह कर सकते है जिस तरह कि लोगोंका विशाल जन-समुदाय। प्रयोग अभी चल ही रहा है। पिछले बीस वर्षोमें इस बातका काफी सबूत मिला है कि यह प्रयोग करने लायक है। प्रयोग जारी रखनेसे कोई नुकसान नही हो सकता। हाँ, एक जरूरी शर्त यह है कि अहिंसा सच्चे स्तरकी हो।

मेरे देखनेमें ऐसी कोई बात नहीं आई जिससे पता चले कि सक्खर या शिकारपुरमें एक भी ऐसा आदमी था जिसका बलवानकी अहिंसामें विश्वास रहा हो या जिसने उसपर अमल किया हो। यदि एक भी होता तो अवश्य ही हम उसे जान पाते, जैसे कि हम गणेश शंकर विद्यार्थी[1] को जानते है। एक ओर एक ऐसा अहिंसावादी हो, और दूसरी ओर हथियारोंसे पूरी तरह लैस एक हिंसावादी हो, तो अहिंसावादी हिंसावादीकी तुलनामें सदा बीस रहेगा।

सक्खर और शिकारपुरमें बहुत-से कांग्रेसजन हैं, परन्तु वे अहिंसाके तरीके पर संगठित नही हैं। यह उनका कसूर नही है। उन्हे किसी बेहतर चीजका भान ही नही है। जैसा कि मैं आजकल बारबार कह रहा हूँ, हमारी अहिंसा बलवानकी अहिंसा नही रही हैं। कमजोर लोगोंमें ऐसी अहिंसा एकदम नही आ सकती। लेकिन मेरी पेटीमें कोई और दवा नही हैं। मैं वही दवा दे सकता हूँ जो मेरे पास है और जो अचूक सिद्ध हुई है। इसलिए मैं यही कह सकता हूँ कि तब तक बराबर कोशिश करते जाओ जब तक कि तुम सफल नही हो जाते। सच्चे बहादुरोंमें तो स्वभावतः न द्वेष होना चाहिए, न क्रोध, न अविश्वास, न मृत्यु या शारीरिक चोट का डर। अहिंसा वस्तुतः उन लोगोंके लिए नही है जिनमें ये

१. जो २६/२७ मार्च, १९३१ को कानपुरके हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें मारे गये थे; देखिए खण्ड ४५, पृ० ३७५-७६, ३९६ और ४२७।

आवश्यक गुण न हों। जहाँ भी ऐसे लोग हों वे कमजोर लोगोंका बचाव कर सकते हैं, बशर्ते कि कमजोर लोग अपनी मदद करनेवालोंकी बात सुनें।

कमजोरोंको सशस्त्र सहायताका कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। ऐसी मदद उनको और कमजोर कर देगी। यदि उनमें अहिंसात्मक मुकाबलेकी क्षमता न हो, तो उन्हें अपनी रक्षा करनेकी कला सीखनी चाहिए। इसके लिए बलिष्ठ शरीरकी नहीं, मजबूत दिलकी जरूरत है। आफ्रिकाके हब्शी इतने आतंकित हैं, या २५ वर्ष पहले इतने आतंकित थे कि वे गोरी जातिके एक बालकका — जो कि भीमकाय हब्शियोंके सामने बौना ही था — मुकाबला नहीं कर पाते थे। गोरे बच्चोंको बचपनमें ही सिखाया जाता था कि हब्शियोंसे न डरें। इसलिए जो लोग अपना बचाव करना सीखना चाहते हों, उनके लिए पहला सबक यह है कि चोट लगने या मारे जानेका भय दिलसे निकाल दें। मैं चाहूँगा कि वे लड़ाईके नियमोंका पालन करें। जैसे कि चोरोंमें भी आपसी व्यवहारमें एक प्रकारकी ईमानदारी बरतनेका नियम होता है, उसी तरह लड़नेवालोंमें भी उचित-अनुचित का विचार होना चाहिए। बहुत बार सुननेमें आता है कि बच्चों और बूढ़ोंकी निर्दयतापूर्वक हत्या की गई है, औरतोंके साथ बलात्कार किया गया है। यदि मनुष्यके लिए पशु बनना जरूरी ही हो तो भी उसके व्यवहारमें कुछ शिष्टता तो रह ही सकती है। मजहब के नामपर अत्याचार करना मजहबका अपमान करना है। इस अभागे देशमें लगभग सभी दंगे मजहबके नामपर होते हैं, भले ही उनकी तहमें कोई राजनीतिक उद्देश्य ही क्यों न छिपा हो। मेरे कहनेका असल मतलब यह है कि मौजूदा हालत बरदाश्त नहीं की जा सकती। राष्ट्रीय शब्द-कोशमें कायरताके लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

मैंने हिज्रतका सुझाव दिया है। यही सुझाव मैं दोहराता हूँ। हिज्रत अव्यावहारिक नहीं है। लोग इसकी उपयोगिता नहीं जानते। महान और बलवान लोगोंने पहले भी इसका आश्रय लिया है, यह हम जानते हैं। योजनाबद्ध हिज्रत के लिए दिलेरी और दूरदर्शिताकी जरूरत होती है। ओल्ड टेस्टामेंट की दूसरी किताबका नाम 'एक्सोडस' (हिज्रत) है। इसमें इजराइलियोंके योजनाबद्ध प्रयाणका वर्णन है। प्रवासके दौरान उन्होंने सैनिक जीवनकी तैयारी की। आधुनिक युगमें अत्याचारके कारण दूखोबोर लोगोंके रूससे भाग जानेका उदाहरण हमारे सामने है। उन्होंने सैनिक जीवन नहीं अपनाया। इसके विपरीत वे अहिंसावादी थे। सारांश यह कि अपनी मर्जीसे अपने गाँव-इलाकेको छोड़कर चले जानेमें कोई बुराई, अपमान या कायरताकी बात नहीं है। भारत एक विशाल देश है। गरीब होनेके बावजूद उसमें इस बातकी पूरी गुंजाइश है कि लोग — खासकर समर्थ, परिश्रमी और ईमानदार लोग — एक भागसे दूसरे भागमें जाकर बस सकें। सक्खर और शिकारपुरके लोगोंमें उपर्युक्त तीनों गुण हैं। उन्हें सरकारसे अपील करनी चाहिए। यह बात जरूर है कि सरकार भी थोड़ी ही मदद दे सकती है। राजनीतिक समझौते करनेके अलावा हिन्दुओं

और मुसलमानोंके स्थानीय नेता एक-दूसरेसे बातचीत करे, जिससे दोनों पक्षोंका फायदा ही होगा। आपसी मार-काटके लिए उकसाने और वर्तमान द्वेषको और भी बढ़ानेसे किसी व्यक्ति या पार्टीको फायदा नही हो सकता। परन्तु यदि स्थानीय तौरपर कोई समझौता नही होता और यदि स्थानीय निवासी अपनी, अपने परिवारों की और अपनी जायदादकी अहिंसात्मक या हिंसात्मक ढंगसे रक्षा करनेमें अपने-आपको असमर्थ अनुभव करते है, तो मेरा यह स्पष्ट मत है कि उन्हें उन जगहोंको छोड़कर चले जाना चाहिए जहाँ उन्हें अपनी जान और अपनी औरतोंकी इज्जतका सदा खतरा बना रहता है।

सेगाँव, १ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-१-१९४०

९३. तार : इस्मत इनोनू[1]को

[२ जनवरी, १९४० या उससे पूर्व][2]

इस घोर विपत्तिमे[3] मेरी पूरी सहानुभूति आपके साथ है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-१-१९४०

९४. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव, वर्धा
३ जनवरी, १९४०

चि० लीला,

तेरा पत्र मिला था। जब तेरा काम पूरा हो जाये, तब जरूर आ जाना। जो काम हाथमें लिया हो, उसे पूरा जरूर करना चाहिए। महादेव बारामतीमें

१. १९३८ से १९५० तक तुर्कीके राष्ट्रपति

२. यह दिनांक "वर्धा, २ जनवरी, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३. २७ दिसम्बर, १९३९ को तुर्कीमें एक जबर्दस्त भूचाल आया था जिसमें ३०,००० लोग मारे गये थे। पन्द्रह शहर और नब्बे गाँव धराशायी हो गये थे। देखिए "टिप्पणियाँ", उपशीर्षक "विपद्ग्रस्त तुर्की", पृ० १०२-३।

है। पाँच-एक दिनमें आयेगा। दुर्गा सूरत गई है। शारदाको लड़का हुआ है। कंचन बाहर गई थी, अब आ गई है। बीमार सब अच्छे हो रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती लीलावतीबहन आसर
न्यू इरा स्कूल
ह्यूजेज रोड, बम्बई-७

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९९३४) से; सौजन्य : लीलावती आसर

९५. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
३ जनवरी, १९४०

चि० बबुडी,

आखिर तू 'माँ' बन गई। गोवर्धनदासका तार तो मेरे हाथ पड़ा ही नही। आज पत्र मिलनेपर मालूम हुआ। तार आया था, लेकिन प्यारेलालने यह समझकर दिया नही कि मुझे मालूम हो गया होगा। तार आखिर कल मिला। यह पत्र मिलते तक तो तू पत्र लिखने लायक हो गई होगी। खान-पानमें सावधानी बरतते हुए तू स्वयं चंगी रहना और बच्चेको भी चंगा रखना। लगता है दुर्गाबहन ठीक वक्त पर पहुँची। यहाँ तो मैं खासा अस्पताल ही खोल बैठा हूँ।

तुम तीनोंको,

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२४) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

९६. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेगाँव, वर्धा
३ जनवरी, १९४०

चि० ब्रजकृष्ण,

बापा[1] इ० को योग्य लगे तो हरिजन निवासमें मकान बनाओ। बाकी समजा हूं। जैसा अच्छा माना जाय सो करो। कातनेका समजा। कांग्रेसके कातनेके कार्यक्रमका कुछ असर खादी पर पड़ा है क्या?

मेरा अच्छा है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४८२) से

९७. पत्र : डॉ० बैरेटोको

सेगाँव, वर्धा
४ जनवरी, १९४०

प्रिय डॉ० बैरेटो[2],

मैंने आपको यह सन्देशा भिजवाया था कि आशा देवी चूंकि देशके लिए झोली फैलानेवाले मेरे बढ़ते परिवारकी सदस्या हैं, इसलिए वे आपको कोई फीस नहीं देंगी। लेकिन मुझे पता चला है कि आपसे मुफ्त काम कराना आपके साथ अन्याय होगा। इसलिए जितनी फीस गरीब आदमी दे सकता है — बशर्ते कि आपने गरीबों और अमीरोंसे फीस लेनेके अलग-अलग मान बना रखे हों — उतनी फीसके लिए आप मुझे जिम्मेदार मानिएगा। अब तक तो मैं ऐसा मान रहा था कि आप उन डॉक्टरोंमें से हैं जो याचक रोगी भेजने पर उलटे मुझ-जैसे लोगोंको कुछ दिया ही करते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३२) से

१. अमृतलाल वि० ठक्कर, हरिजन सेवक संघके मन्त्री
२. एक दन्त-चिकित्सक

९८. तार : उदयपुरके प्रधान मन्त्रीको

सेगाँव
५ जनवरी, १९४०

प्रधान मन्त्री
उदयपुर

मारवाड प्रजा मण्डलके मन्त्री माणिकलाल वर्माकी पत्नी[1] का कहना है कि उनके पतिका, जो राजनीतिक कैदी हैं, स्वास्थ्य गम्भीर रूपसे बिगड़ता जा रहा है। यदि रिहाईमें कोई बड़ी आपत्ति न हो, तो मैं बन्दीकी रिहाई का अनुरोध करता हूँ।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

९९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव
५ जनवरी, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मन दुःखी हो गया है।[2] तुमने गुस्सेमें कहा कि कुमारप्पा बिलकुल बेकार आदमी हैं, और यह बात तुमने कही भी बहुत ही कमजोर प्रमाणोंके आधार पर। मैंने तुमसे पत्र-व्यवहारकी माँग की तो तुमने कहा कि अभी तो पासमें नहीं है, लेकिन बादमें भेज दूँगा। अब देखता हूँ कि तुम तो दूसरोंके निकाले अर्थको ही ठीक मानकर चले। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने जो अर्थ लगाया, वह गलत है। मेरा मतलब यह है कि अपने साथी

१. नारायणी देवी

२. अपने ३ जनवरी, १९४० के पत्रमें जवाहरलाल नेहरूने लिखा था: "योजना समितिके साथ कुमारप्पाके पत्र-व्यवहारके सम्बन्धमें, अम्बालाल और डॉ० नजीर अहमदने मुझे बताया कि उन्होंने कुटीर उद्योगोंके बारेमें उनसे कुछ जानकारी माँगी थी और इन उद्योगोंसे सम्बद्ध कुछ अन्य बातोंके विषयमें उनसे सहयोग देनेका भी अनुरोध किया था। लेकिन कुमारप्पाने जो उत्तर दिया उससे उन दोनोंको बहुत चोट पहुँची। उनके उत्तरसे उन्हें यह ध्वनि लगी कि वह उन्हें किसी प्रकारकी सहायता या सहयोग देनेको तैयार नहीं हैं।"

कार्यकर्ताके बारेमें ऐसी सुनी-सुनाई बातोंके आधार पर कोई धारणा बनाकर तुमने गलती की। मैं तो यही कहूँगा कि तुम वह पत्र-व्यवहार प्राप्त करके मुझे भेजो।

जनरलिसिमोको लिखा मेरा पत्र[1] साथ में है। उनका लिखा पत्र मैंने प्रकाशित नहीं किया है। तुम्हें जरूरी लगे तो तुम प्रकाशित कर देना।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३९; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१००. पत्र: च्यांग काई-शेकको

सेगाँव, वर्धा
५ जनवरी, १९४०

प्रिय जनरलिसिमो,

आपके कृपापूर्ण निमन्त्रणके लिए अनेक धन्यवाद। यदि मैं उसे स्वीकार कर पाता तो अपनी एक चिरपोषित इच्छा ही पूरी करता। किन्तु इस समय मेरे सामने जो कार्य है वह मुझे आपका निमन्त्रण स्वीकार करनेसे रोक रहा है।

पुन: अनेक शुभेच्छाओं सहित,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

हिज एक्सेलेसी च्यांग काई-शेक

अंग्रेजीकी नकलसे: जवाहरलाल नेहरू पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए अगला शीर्षक।

१०१. पत्र : मदालसाको

सेगांव
५ जनवरी, १९४०

चि० मदालसा,

तू कैसी पागल है! अब तो श्रीमन् आ रहा है, इसलिए जल्दी अच्छी हो जाना। रामनाम हृदयमें धारण करना। वह सब ठीक ही करेगा। हिम्मत मत हारना। पत्रका जवाब तू मत देना, जवाब श्रीमन् देगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३१९

१०२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

[५ जनवरी, १९४० के पश्चात्][1]

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गलतफहमियोंकी सम्भावना है, यह मैं जानता हूँ। इस प्रकारकी तथा अज्ञानवश अथवा स्वार्थवशकी गई आलोचनाएँ मुझे कभी प्रभावित नहीं करतीं। मैं जानता हूँ कि यदि अन्दरूनी रूपसे हम मजबूत हों तो सब ठीक ही होगा। विदेशी मामलोंमें तुम मेरे मार्ग-दर्शक हो। इसलिए तुम्हारे पत्रसे मुझे सहायता मिली है।

तुमने कुमारप्पाके बारेमें अपने विचारोंमें काफी परिवर्तन किया है। तुम उनका पत्र देखना चाहोगे। उसे पढ़नेके बाद तुम चाहो तो नष्ट कर सकते हो। हाँ, उनके जैसे कार्यकर्ता हमारे पास इने-गिने ही हैं।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजीसे जवाहरलाल नेहरू पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. कुमारप्पाके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र जवाहरलाल नेहरूको लिखे ५ जनवरी, १९४० के पत्रके बाद लिखा गया था; देखिए पृ० ८९-९०।

१०३. बातचीत : ईसाई मिशनरियोंके साथ[1]

[६ जनवरी, १९४० से पूर्व][2]

[एक प्रोफेसर :] . . . क्या स्वराज्यमें भी आप ईसाइयोंको स्वधर्म-प्रचार कार्य बेरोक-टोक करने देंगे?

[गांधीजी :] किसी ईसाई या अपने धर्म-सिद्धान्तका प्रचार करनेवाले किसी भी व्यक्तिके रास्तेमें कानूनी रुकावट नही खड़ी की जा सकती।

मुलाकाती जानना चाहता था कि क्या अंग्रेजी राजमें उन्हें मिली आजादी राष्ट्रीय सरकारके शासनमें भी निर्बाध रूपसे मिलती रहेगी।

मैं इस प्रश्नका दो टूक जवाब नही दे सकता, क्योंकि मुझे मालूम नही है कि आज अंग्रेजी राजमें किस-किस बातकी इजाजत है और किस-किस बातकी नही है। यह कानूनी सवाल है। इसके अलावा यह बात भी है कि जिस चीजकी इजाजत दी गई है, जरूरी नही कि वह वही चीज हो जिसकी कि कानून इजाजत देता है। इसलिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि कानून आपको आज जिस-जिस बातकी इजाजत देता हो, वह सब आजादी आपको मिलनी चाहिए।

हममें से कई लोगोंको इस बातकी आशंका है कि सम्भव है, आगे चलकर उनपर . . . प्रतिबन्ध लगा दिये जायें। क्या इस बातकी कोई गारन्टी है कि ऐसी बात नहीं होगी।

जैसा कि मैंने 'हरिजन' में लिखा था,[3] आप यह बात नही समझ रहे कि आज ईसाइयोंको महज इसीलिए विशेषाधिकार मिले हुए हैं कि वे ईसाई है। यहाँ ज्योंही कोई आदमी ईसाई बनता है, त्योंही वह साहब बन जाता है। वह अपनी राष्ट्रीयता बदल-सी लेता है। उसे ऐसी नौकरी और ऐसा पद मिल जाता है जिसे वह किसी और तरहसे हासिल न कर पाता। वह विदेशी पोशाक और विदेशी रहन-सहन अपना लेता है। वह अपने ही लोगोसे अपने-आपको अलग-थलग कर लेता है और अपने को शासक वर्गका अग समझने लगता है। अत. ईसाइयो को डर अधिकारोसे वंचित हो जानेका नही है, वल्कि नियम-विरुद्ध विशेषाधिकार छिन जानेका है।

१ और २. ६ जनवरी, १९४० को लिखे प्यारेलालके "ए टॉक विद क्रिश्चियन फ्रेंड्स" शीर्षक लेख से उद्धृत

३. देखिए "तटस्थता क्या है?", पृ० ६०-६१।

मुलाकातीने गांधीजीके कथनकी सत्यताको स्वीकार किया, परन्तु उन्हें विश्वास दिलाया कि अतीतमें चाहे कुछ भी हुआ हो, अब ईसाई लोग एक वर्गके रूपमें किन्हीं असाधारण विशेषाधिकारोंसे चिपटे रहना नहीं चाहते।

एक और मिशनरी मित्र लोगोंके धर्म बदलनेकी प्रचलित कार्रवाइयोंके प्रति गांधीजी की आपत्तिको याद करके बोल उठा: "ईसा-विषयक जिस आत्मानुभवने मुझे अनिर्वचनीय शान्ति प्रदान की है, उसका सहभागी मैं औरोंको क्यों न बनाऊँ?"

क्योंकि आप यह नहीं कह सकते कि जो आपके लिए अच्छा है वह सबके लिए अच्छा है। हो सकता है कि आपकी बीमारीमें कुनीन ही जान बचानेका एकमात्र साधन हो, परन्तु किसी औरकी बीमारीमें वह खतरनाक जहर साबित हो सकती है। और फिर यह कहना कि आध्यात्मिक आनन्द और शान्तिकी कुंजी सिर्फ आपके पास है और किसी दूसरे मतका अनुयायी अपने धर्म-ग्रन्थोंके अध्ययन से वैसा और उतना ही आनन्द और शान्ति नहीं हासिल कर सकता—क्या यह बिल्कुल बेजा दावा नहीं है? मैं ऐसी आध्यात्मिक शान्ति और आत्मस्थितिका उपभोग करता हूँ जिससे कि बहुतेरे ईसाई मित्रोंको ईर्ष्या होती है। इनकी प्राप्ति मुझे मुख्यत: 'गीता' से हुई है।

आपकी दिक्कत यह है कि आपके विचारमें दूसरे धर्म झूठे हैं या उनमें इतनी मिलावट है कि वे लगभग झूठे हैं। दूसरे धर्मोंमें चमकनेवाली सच्चाईको, जो कि उनके अनुयायियोंको उतना ही आनन्द और शान्ति देती है, आप जान-बूझकर नहीं देख रहे हैं। इसलिए मैंने अपने ईसाई मित्रोंसे यह सिफारिश करनेमें संकोच नहीं किया कि वे विनय और सहानुभूतिकी भावनासे दुनियाके दूसरे धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन करें। मैं अपनी ओरसे यह तुच्छ साक्ष्य दे सकता हूँ कि दूसरे धर्मोंके ग्रन्थोंके अध्ययनके फलस्वरूप मैं उनका उतना ही आदर करता हूँ जितना कि अपने धर्मका; साथ ही मेरी अपनी धर्म-श्रद्धा और अधिक समृद्ध हुई है और मेरा दृष्टि-क्षितिज विस्तृत हुआ है।

प्रश्नकर्ता चुप हो गया। अन्तमें प्रोफेसरने पूछा: "मुझ-जैसे और मेरे साथियों जैसे ईसाइयोंको आपका क्या सन्देश है?"

अपने-आपको ईसामसीहके 'गिरि-प्रवचन' के सन्देशके योग्य बनाइए और कताई ब्रिगेडमें शामिल हो जाइए।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-१-१९४०

१. प्रोफेसर गांधीजीके लिए एक खादीका गाउन लाये थे, जो कि उनकी पत्नी और शिष्यों द्वारा काते गये सूतसे बना था। इस उपहारको गांधीजीने बहुत पसन्द किया।

१०४. निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए[1]

६ जनवरी, १९४०

मेरे पास ब्रह्मदत्तने प्रेमसे कहा है कि हमारे यहां कोई लोग कामकी चोरी करते है। इस बारेमें उनकी बात सब विनयसे समझ ले। उनके कहनेका कोई बूरा न माने। यह संभव है कि आश्रमका सब व्यवहार अच्छी तरह नहि जानता है इसलिये कुछ गलतफहमी हो गई है। ऐसा हो तो उसे दूर करना चाहिये।

२. मेरी सलाह है कि सब नियमपूर्वक सूती यज्ञ करें। इस बातमें हमारे बहूत सावधान रहना चाहिये।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

१०५. पत्र : याकूब हसनको

सेगाँव, वर्धा
६ जनवरी, १९४०

प्रिय याकूब हसन[2],

आपके दोनों पत्रोंसे पता चलता है कि आपको एकताकी कितनी अधिक चिन्ता है। मैं अपने ढंगसे एकताके लिए कार्य कर रहा हूँ। यह समस्या इतनी जटिल हो चुकी है कि आसानीसे हल नही हो सकती। जो-कुछ भी हो, यदि आपके पास कुछ सुझाव हों तो अवश्य भेजिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

याकूब हसन
रटलैंड गेट, (कैथीड्रल डाक खाना)
मद्रास

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. ये निर्देश गांधीजीकी "आश्रम पुस्तिका" (नोट बुक) से लिये गये हैं जो "सेगाँवके कार्यकर्ताओंके लिए" थी। गांधीजी को जब भी कार्यकर्ताओंके लिए कोई निर्देश सूझता था, वे उसे इस पुस्तिकामें लिख लिया करते थे।

२. मद्रासके भूतपूर्व सार्वजनिक निर्माण-कार्य मन्त्री

१०६. पत्र : हरि विष्णु कामथको

सेगाँव, बरास्ता वर्धा (सी० पी०)
६ जनवरी, १९४०

प्रिय कामथ,

तुमने जल्दबाजीसे काम लिया है और तुम्हारा रुख बहुत सख्त है। जल्दबाजी इसलिए कि तुमने प्रतिज्ञा[1] को ध्यानसे नहीं पढ़ा। कताई नियमित रूपसे करने की जरूरत बताई गई है, न कि हर रोज करनेकी[2]। और तुम्हारे रुखको सख्त इसलिए कह रहा हूँ कि [एवजी तौर पर] दूसरोंके कातनेमें कोई बुराई नहीं है। इस बार असली कसौटी यह रहेगी कि खादी चालू सिक्का बन गई है या नहीं।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्री हरि विष्णु कामथ,
मेहराबाद
संगठन मन्त्री, फॉरवर्ड ब्लॉक
वरली, बम्बई

महात्मा, खण्ड ५, (१९६२ संस्करण), पृष्ठ १७६ और १७७ के बीच की अंग्रेजीकी अनुकृतिसे

१०७. पत्र : प्रभावतीको

६ जनवरी, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। तू आरामसे पहुँच गई, मेरे लिए इतना काफी है। जब भगवानकी इच्छा होगी, हम फिर मिलेंगे। निश्चिंत होकर काम करती रहना। राजेन्द्रबाबूकी तबीयत कैसी है? सुशीला चली गई। राजकुमारी आ गई है। ९ को मद्रास लौट जायेगी। १५ को फिर आयेगी। बा की तबीयत ठीक है। मेरी तो ठीक है ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४०) से

१. देखिए परिशिष्ट १।
२. देखिए हरि विष्णु कामथ को लिखा ३० जनवरी, १९४० का पत्र।

१०८. भेंट : एक अंग्रेज संवाददाताको[1]

सेगाँव
[७ जनवरी, १९४० से पूर्व][2]

[संवाददाता :] लगता है कि गतिरोध अगर पैदा नहीं हो सका है तो — पैदा होनेवाला है। क्या हम किसी तरहका सर्वसम्मत समाधान प्राप्त करनेके लिए नामजद लोगोंकी एक वस्तुतः प्रातिनिधिक मंडलीकी सेवासे लाभ नहीं उठा सकते ?

गांधीजी : नामजद लोगोंकी वस्तुतः प्रातिनिधिक मंडली एक अन्तर्विरोधपूर्ण शब्दावली है। ऐसी मंडली नामजद करनेवालेका ही प्रतिनिधित्व कर सकती है। बातचीतके लिए किसीको नामजद करनेवाला आखिरकार वाइसराय ही होगा। ऐसी मंडलीको आप वस्तुत. प्रातिनिधिक तो नही कहेंगे। अगर आपका तात्पर्य यह हो कि प्रतिनिधियोंकी संख्या कम हो, तो खुद मैं तो इस बातके लिए भी तैयार हूँ कि एक ही प्रतिनिधि हो — मिसालके तौरपर जिन्ना साहब, बशर्ते कि वे लाखों-करोड़ोंके स्वतन्त्र मतसे चुने जायें, जैसे कि, उदाहरणत., अमेरिकाका राष्ट्रपति चुना जाता है।

संवाददाता : क्या आप सचमुच स्वीकार कर लेंगे ?

गांधीजी : क्यों नहीं ? क्या इस कथनमें कोई त्रुटि है ? मैं आधुनिक युगका सबसे बड़ा लोकतन्त्रवादी होनेका दावा करता हूँ। मेरी श्रद्धा अहिंसा पर आधारित है और इसीलिए मुझे मानव-स्वभावमें आस्था है।

संवाददाता : लेकिन जब अल्पसंख्यक वर्ग संविधान-सभा बुलानेका तीव्र विरोध कर रहे हैं तब क्या आप उन्हें इस प्रकारका प्रतिनिधित्व देने का सुझाव इस आशासे रख सकते हैं कि वे इसे स्वीकार कर लेंगे ?

गांधीजी : जो कोई ठीक बातपर आपत्ति करता है, वह अपने-आपको गलत स्थितिमें डालता है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने यह खयाल पैदा कर दिया है कि वे साम्राज्यवादी पद्धतिका अन्त करना चाहते हैं और अपने अधीन लोगोके साथ स्वतन्त्र लोगों-जैसा व्यवहार करना चाहते है। चूंकि यह खयाल पैदा किया गया था, इसलिए कांग्रेस स्वभावतः इसकी सच्चाई परखना चाहती थी। अतः इसका

१ और २. राजकुमारी अमृत कौर द्वारा लिखी गई यह रिपोर्ट दिनांक "सेगाँव, ७ जनवरी, १९४०" के अन्तर्गत "वर्ल्ड कॉन्शन्स द सुप्रिम आरबिटर" शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी।

जवाब देनेमें इस बातका बिलकुल खयाल नहीं रखा जाना चाहिए कि भारत क्या चाहता है या क्या नहीं चाहता। अब यह सवाल उठता है कि जवाब किसको दिया जाना है। यदि कोई विद्रोही शक्ति शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेनेकी कोशिश कर रही होती तो जवाब उस विद्रोही शक्तिको दिया जाना होता। परन्तु यहाँ तो कोई विद्रोह नहीं हो रहा। कांग्रेस मुख्य संगठन है। परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि चूँकि विरोधी संगठन भी हैं, इसलिए सत्ता कांग्रेसको नहीं सौंपी जा सकती। तब अगर ब्रिटेनको अपनी घोषणाका पालन करना है तो वह निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी संविधान-सभाका अधिवेशन बुलाकर और उसके द्वारा रचे गये संविधानको लागू करके आसानीसे ऐसा कर सकता है। अल्पसंख्यक वर्गोंके प्रतिनिधि उनकी रक्षाके लिए खास शर्तें निर्धारित करेंगे। मुमकिन है कि प्रतिनिधि भी अल्पसंख्यक वर्गोंके संरक्षणकी व्यवस्थासे युक्त जो संविधान बनायें वह बहुत बड़े बहुमतको स्वीकार न हो। यदि ऐसी बात हो तो भी ब्रिटेनकी नेकनीयती साबित हो जायेगी। मगर मैं तो यह मानता हूँ कि उचित ढंगसे निर्वाचित संविधान-सभा निश्चय ही अमल करने लायक संविधान तैयार कर लेगी।

संवाददाता : फर्ज कीजिए कि जनमत-संग्रह किया जाता है और पता चलता है कि लोग संविधान-सभा नहीं चाहते, तो क्या आप यह निर्णय स्वीकार कर लेंगे?

गांधीजी : निस्सन्देह।

संवाददाता : यदि नामजद व्यक्ति ऐसी कोई योजना तैयार करते हैं जो आमतौर पर स्वीकार करने लायक हो, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे? या क्या आपको नामजदगी पर ही आपत्ति है?

गांधीजी : मेरे स्वीकार करने या न करनेका कोई मतलब नहीं है। स्वीकृति तभी वैध हो सकती है जब वह उचित ढंगसे निर्वाचित सभा द्वारा दी जाये। कारण, आखिर में तो ऐसी सभा ही मौजूदा सरकारका या उसके नामजद व्यक्ति या व्यक्तियोंका स्थान लेगी।

संवाददाता : फर्ज कीजिए कि आपको एक नामजद सभाके जरिये लोकतन्त्र हासिल करनेका विश्वास हो जाये, तो क्या आप ऐसी सभा को नामंजूर करेंगे? क्यों न इंतजार करके देखा जाये कि किस तरहकी नामजदगीका प्रस्ताव रखा जाता है?

गांधीजी : मैं नामजदगी पर सदा सन्देह करूँगा, क्योंकि इससे कभी भी सब सन्तुष्ट नहीं हो सकते। चुनाव एकमात्र सन्तोषजनक तरीका है। कांग्रेसके दावे और डींगके बावजूद, वह ३० करोड़ लोगोंमें से केवल ३० लाख मतदाताओंका प्रतिनिधित्व करनेवाला संगठन है। अतः भारत-मन्त्रीका यह कहना उचित ही होगा कि कांग्रेस सारे देशका प्रतिनिधित्व नहीं करती। अतः कांग्रेस सबसे ललकारकर कहती है कि जनताके पास चलो। देशी नरेश भी व्यक्तिगत हैसियतसे ऐसा कर

सकते हैं और भारतमें बसे यूरोपीय भी। अगर वे ऐसा नही करते तो यह हमारा कसूर नही है।

संवाददाता : लोकतन्त्री भारतमें आप नरेशोंको क्या स्थान देंगे?

गांधीजी : प्रजाके न्यासियोंके रूपमें उन्हें मैं एक खासा कमीशन दूँगा। अलबत्ता मैं उनसे कहूँगा कि कमीशनके एवजमें उन्हें काम करना होगा। उन्हें वही अधिकार और सुविधाएँ मिलेंगी जो ब्रिटेनके बादशाहको प्राप्त हैं। आखिर वे भी उसीके अधीन हैं। वे उससे बड़े नही हो सकते। इंग्लैंडका बादशाह किसीको फाँसी नही दे सकता। वह जो-कुछ कर सकता है, निर्धारित नियमोंके अधीन ही कर सकता है। देशके और लोगोंकी तरह ही वह एक नागरिक है; हाँ, नागरिकके बीच सर्वोच्च नागरिक जरूर है। अगर मुझे कभी बादशाहत अच्छी लग सकती है तो वह इंग्लैंडकी तरह की मर्यादित बादशाहत ही हो सकती है। रियासतोंकी जनता क्या चाहती है, इसका फैसला उसे ही क्यों न करने दिया जाये। जहाँ तक जनताके लिए न्यायका सवाल है, मैं पहले ही कह चुका हूँ[1] कि रियासतोके सर्वोच्च न्यायालय भारतके उच्च न्यायालयके अधीन होने चाहिए।

संवाददाता : क्या यह नहीं हो सकता कि अंग्रेजी ढंगका लोकतन्त्र भारतके लिए अनुपयुक्त हो?

गांधीजी : इसका फैसला करना संविधान-सभाका काम है। वह जमाना लद गया जब नामजद या अपने-आपको प्रतिनिधि कहनेवाले व्यक्ति भारतकी ओरसे कुछ फैसला कर सकते थे।

संवाददाता : क्या आपके खयालमें सभा आर्थिक दृष्टिसे भी अभीष्ट लोक-तन्त्रका सुझाव देगी?

गांधीजी : मैं मानता हूँ कि जो सभा बुलाई जायेगी उसमें यथेष्ट समझ-दारी होगी। जहाँ तक मैं समझता हूँ, यही सबसे अच्छा तरीका है। किन्तु यदि कोई इससे भी अच्छा तरीका पेश किया जाये, तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा।

संवाददाता : क्या यह बात नहीं हो सकती कि ब्रिटेनकी नीयत साफ होने पर भी देरी युद्धकी उस भयंकर स्थितिके कारण हो रही हो जिसमें वह आज अपने-आपको पाता है?

गांधीजी : ब्रिटेनकी नेकनीयतीमें मेरा विश्वास खत्म नहीं हो गया है और इसीलिए मैं अब भी उससे अनुरोध कर रहा हूँ। मैं अपने लोगोंसे भी अनुरोध कर रहा हूँ कि वे अपनी शक्ति बढ़ायें। अगर संघर्ष अनिवार्य ही हो जाये तो उस स्थितिको ध्यानमें रखकर मैं संघर्षकी तैयारी कर रहा हूँ, मगर साथ ही मैं इस बातका भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ कि संघर्षकी नौबत आये ही नहीं।

१. देखिए खण्ड ६९, पृ० ४३७-४०।

मैं समझता हूँ कि ब्रिटेनका अतीत तमाम वर्तमान मतभेदोंकी जड़ है।

संवाददाता : यदि ब्रिटेन युद्धमें हार गया तो क्या होगा?

गांधीजी : यदि ब्रिटेन हार गया तो मुझे अफसोस होगा। मगर मैं अपने-आपको असहाय नहीं महसूस करूँगा। फर्ज कीजिए कि रूस, जर्मनी, इटली और जापान भारतपर कब्जा करनेके लिए एक हो जायें, तब भी मुझे घबराहट नहीं होगी, बशर्ते कि समूचे भारतने अहिंसाको अपनी निश्चित नीति बना लिया हो। असहयोग द्वारा भारत किसी भी गुटका मुकाबला कर सकता है। अतः आप देख सकते हैं कि ब्रिटेनके प्रति मेरी सहानुभूति निःस्वार्थ है। अगर ब्रिटेन सचमुच ठीक रास्ते पर है, तो ईश्वर उसे भारतके विषयमें ऐलान करने और भारत के साथ अपने सम्बन्ध ठीक करनेकी प्रेरणा देगा। मैं नहीं चाहता कि ब्रिटेन हर हालतमें जीते, चाहे वह ठीक रास्ते पर हो या गलत रास्ते पर। यदि भारत गलत रास्ते पर हो तो वह जरूर ही बरबाद होगा। मैंने अकसर कहा है कि यदि हिन्दू-धर्म अस्पृश्यताकी प्रथाको जारी रहने देता है, तो वह नष्ट हो जायेगा। अगर भारत गलती करे तो मैं उसके विनाशके लिए प्रभुसे प्रार्थना तक कर सकता हूँ, जैसे कि स्टेड[1] ने बोअर युद्धमें ब्रिटेनकी हारके लिए प्रार्थना की थी। बहुत साधन-सम्पन्न होने पर भी ब्रिटेनके लिए यह गलत बात होगी कि वह अपनी ताकतपर बहुत अधिक भरोसा करे। मुझे इस बातकी खुशी है कि ब्रिटेन अब भी बारूदके देवतासे नहीं, बल्कि प्रेमरूप परमेश्वर से प्रार्थना करता है, और इसलिए मुझे अब भी आशा है कि वह स्वतन्त्र भारतके नैतिक समर्थनको प्राप्त करनेकी कोशिश करेगा। वह आज भारतसे साज-सामानकी मदद इसलिए हासिल कर रहा है कि भारत उसके अधीन है। मैं यह चाहता हूँ कि ब्रिटेन भारतका नैतिक समर्थन प्राप्त करे और जीत जाये। ईश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि युद्धकी समाप्ति नैतिक प्रश्नपर हो और विश्व के अन्तःकरणकी आवाज ही अन्तिम निर्णायक हो! बहरहाल मेरी तो यही राय है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-१-१९४०

१. एक अंग्रेज पत्रकार जिसने सार्वजनिक रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की थी तथा दूसरोंसे भी प्रार्थना करनेको कहा था कि बोअर युद्धमें अंग्रेजों की हार हो; देखिए खण्ड २९, पृ० १६-१७।

१०९. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

७ जनवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

मुझे तुमसे असन्तोष नही है। वल्कि तुम यहाँ न रहो, तो मुझे अच्छा नही लगेगा। मुझे तुम्हारे गुणोंका भान है, लेकिन मैं तुम्हारे दोष निकाल वाहर करनेको अधीर हो रहा हूँ। उन्हें निकाल दो। मेरी आलोचनामें विनोद था, क्योंकि मैंने तो नौ घटे कहा था न? तुमने जो विवरण दिया है, वह ठीक है।

अब दूसरे पत्रके बारेमें। किताबें खराब हो गई है, इसकी मैं जाँच करूँगा। यह बहुत खराब बात है। पैसोंकी बात भी भयानक है, उसकी भी जाँच करूँगा। अव्यवस्था तो है ही। इसमें पहला दोष मेरा है। यह शुद्ध सत्य है। जो अव्यवस्था तुम देखते हो, सब मेरी है। लेकिन मैं देखूँगा। जरा तुम स्वस्थ हो जाओ, तो मुझे वहुत मदद मिले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५५) से। सी० डब्ल्यू० ७०७० से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

११०. पत्र : जमना गांधीको

७ जनवरी, १९४०

चि० जमना,[1]

कनैयो अगर वहाँ अपनी खुशीसे और रहना चाहता है, तो उसे मेरी अनुमति है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

१. नारणदास गांधीकी पत्नी

१११. पत्र : कनु गांधीको

[७ जनवरी, १९४०][1]

चि० कनैयो,

अगर बड़े-बूढ़ोंको तेरे जल्दी लौटनेसे कष्ट होता हो और तेरा भी मन हो, तो तू कुछ समयके लिए और रुक जाना। लेकिन फिर पानीकी कमीका क्या होगा? तुझे तो पानी पीना और खाना भी बन्द करना पड़ेगा न? क्योंकि रसोई बनानेके लिए भी तो पानीकी जरूरत पड़ती है। फिर अगर तू बिलकुल न खाये तो एक अन्य लाभ यह होगा कि नारणदासको अपनी दुकानमें मदद मिलेगी। [अर्थात् वे दुर्भिक्ष-निवारण कोषमें पैसा दे सकेंगे]।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

११२. एक तार

[८ जनवरी, १९४० या उससे पूर्व][2]

बहुत दुःख हुआ। लाला शामलाल[3] के परिवारको मेरी ओरसे समवेदना कहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ९-१-१९४०

१. यह पत्र और पिछला पत्र, दोनों एक ही कागज पर लिखे हुए हैं।
२. यह दिनांक "लाहौर, ८ जनवरी, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
३. पंजाबके कांग्रेसी नेता

११३. सन्देश : हृदयनाथ कुंजरू[1] को

[८ जनवरी, १९४० या उससे पूर्व][2]

वेंकटसुब्बैया पर मेरा बड़ा स्नेह था। उनकी मृत्यु देशकी एक भारी क्षति है। वे जिससे भी मिलते थे, तुरन्त उसीके प्रेमभाजन बन जाते थे। उनसे अधिक निरहंकार आदमी मैंने देखा नही। उनके कुटुम्वी जनोंसे मेरी हार्दिक समवेदना कहनेकी कृपा करें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १५-१-१९४०

११४. टिप्पणियाँ

एक और हरिजन सेवकका देहावसान

बड़े दुःखके साथ सूचित करता हूँ कि श्री वेंकटसुब्बैया नही रहे। वे सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके एक पुराने सदस्य थे। मद्रास हरिजन मण्डलके वे मन्त्री थे। वे अत्यन्त निरभिमान और ईमानदार कार्यकर्ता थे। उन्होने जिस कामको भी हाथमें लिया, उसे करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा दी। वे भीड़-भाड़से दूर रहनेवाले सकोची स्वभावके व्यक्ति थे। अपने अस्पृश्यता-विरोधमें वे अटल थे। उनके निधनसे हरिजन-कार्यको स्पष्ट हानि हुई है। दिवंगत सुधारकके परिवारके प्रति मैं हार्दिक समवेदना प्रकट करता हूँ।

विपद्ग्रस्त तुर्की

तुर्की पर जो त्रिविध विपत्ति[3] पड़ी है, उसके प्रति सारी दुनियाने सहानुभूति दिखाई है। भारतसे जो असंख्य सहानुभूति सन्देश[4] भेजे गये हैं, उनकी आभारोक्ति राष्ट्रपति इनोनूने बड़े सुन्दर शब्दोंमें भेजी है। डॉ० राजेन्द्र प्रसादने पीड़ितोंके लिए चन्दा देनेकी अपील जारी की है। आशा करनी चाहिए कि लोग इस अपीलके उत्तरमें उत्साहपूर्वक चन्दा देंगे। एक पत्र-लेखकका सुझाव है कि विपद्ग्रस्त तुर्कोंके कष्ट दूर करनेके लिए डॉक्टरोंका एक मण्डल तुर्की

१. सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के अध्यक्ष
२. देखिए अगला शीर्षक
३. भूकम्प, वर्षा और हिमपात
४. देखिए "तार: इस्मत इनोनूको", पृ० ८६।

भेजा जाये। सुझाव विचारणीय है। यदि ऐसा कोई सहायता-मण्डल भेजना ही हो तो साम्प्रदायिक नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आधारपर गठित होना चाहिए। इस त्रिविध विपत्तिके सामने सभी धार्मिक मतभेदोंको भुला देना चाहिए। मनुष्य पर जब विपत्ति आती है तो वह कोई भेद-भाव नहीं करती। तुर्की पर जैसी अभूतपूर्व विपत्ति आई है वैसी विपत्तियाँ आदमीको मानव-परिवारकी एकताका बोध कराती हैं। इस संकटसे हमें नम्र बनना चाहिए और सँभलना चाहिए। इससे हिन्दुओं और मुसलमानोंको अपने आपसी मतभेद भूलनेकी सुबुद्धि आनी चाहिए और यह समझ सकना चाहिए कि अलग-अलग धर्मोंके अनुयायी होते हुए भी वे एक ही परमेश्वरकी सन्तान हैं और उसकी सन्तानके रूपमें आपसमें भाई-भाईकी तरह मिल-जुलकर रहना उनका कर्तव्य है।

एक बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय

हैदराबाद राज्य कांग्रेसको अपना काम-काज चलानेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी। वैसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे उसका सम्बन्ध नहीं था, फिर भी हैदराबादकी सरकार उसे तब तक वैध संस्था माननेको तैयार नहीं थी, जब तक कि वह अपने लिए कांग्रेस संज्ञाका प्रयोग कर रही थी। शब्दपर किसीकी इजारेदारी नहीं होती। यह तो एक सामान्य-सा शब्द है, जिसका प्रयोग संसारकी अनेक संस्थाएँ करती हैं। लेकिन पता नहीं क्यों, राष्ट्रीय कांग्रेससे कई राज्योंको चिढ़ हो गई है। इसलिए हैदराबादमें इस शब्दको ही सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाने लगा है। राज्य कांग्रेसके नेताओंने यह बात मेरे सामने रखी, जिसपर मैंने निस्संकोच यह सलाह दी कि अगर अन्य किसी वजहसे कांग्रेसकी प्रवृत्तियोंमें कोई बाधा नहीं डाली जाती तो सिर्फ नामको लेकर झगड़ा करना बेकार है। अधिकारियोंसे लिखा-पढ़ी करनेके बाद नेताओंने मेरी सलाहपर अमल करते हुए अपनी संस्थाको नया नाम दे दिया है — हैदराबाद राष्ट्रीय परिषद्। इस तरह अन्त भला तो सब भला। मैं उम्मीद करता हूँ कि अब परिषद् जनसाधारणके उत्थान और जागृतिके लिए आवश्यक तथा समाजको सबल बनानेवाली विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियोंमें जुट जायेगी। और आशा करनी चाहिए कि ऐसे कार्योंमें सत्ताधारी भी उसके साथ हृदयसे सहयोग करेंगे। महाविभव निजाम साहब की छत्रछायामें उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाका उनका लक्ष्य पूर्ववत् कायम है। मुझे भरोसा है कि ऐसी हर प्रवृत्ति जिससे लोगोंमें सहयोग बढ़े, शिक्षाका प्रसार हो और उनका आर्थिक तथा सामाजिक उत्थान हो, परिषद्को अधिकसे-अधिक कारगर रीतिसे अपने लक्ष्यके निकट ले जायेगी।

तीन बातें

कुछ समयसे हरिजन सेवक संघ एक मासिक परिपत्र प्रकाशित कर रहा है, जिसमें उसकी प्रवृत्तियोंका संक्षिप्त हवाला दिया जाता है। संघके मन्त्री बापाकी तरह यह परिपत्र भी बिलकुल कारोबारी ढंगका है। नवम्बर और दिसम्बरके दिलचस्प परिपत्रमें से मैं निम्नलिखित तीन बातें उद्धृत कर रहा हूँ :

१. नन्दप्रयागके पास मुन्याली नामक एक हरिजन गाँवमें इतिहासमें एक नया पृष्ठ जुड़ा है। वहाँ स्थानीय सवर्ण हिन्दुओंकी सहमतिसे पहले-पहल एक हरिजन नववधुको डाँडीमें बैठाकर ले जाया गया।

२. खबर है कि पिछली कांग्रेसी सरकारने भंगियोंकी मजदूरी और रहन-सहनकी परिस्थितियोंकी जाँचके लिए जो समिति नियुक्त की थी उसका काम गवर्नरकी वर्तमान सरकार द्वारा स्थगित कर दिया गया है।

३. मध्य प्रान्तकी सरकारने १९३८ में श्री अ० वि० ठक्करकी अध्यक्षता में जो नगरपालिका भंगी जाँच समिति नियुक्त की थी उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। उसकी मुख्य सिफारिशोंमें से कुछ इस प्रकार हैं: (१) प्रतिदिन कम-से-कम ४ आनेकी मजदूरी मिलनी चाहिए; (२) कार्य-दिवस आठ घंटेका होना चाहिए; (३) बड़ी-बड़ी नगरपालिकाओंमें मजदूर-कल्याण अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए; और (४) अर्जित अवकाश, आकस्मिक अवकाश, बीमारीकी छुट्टियों तथा सप्ताहान्तमें आधे दिनकी छुट्टीकी व्यवस्था होनी चाहिए। भंगियोंकी आवास-व्यवस्थाके सम्बन्धमें समितिने निम्नलिखित सिफारिशें की हैं:

१. भंगियोंके लिए रिहाइशी मकानोंकी व्यवस्था करना नगरपालिकाओं का कर्तव्य होना चाहिए। २. सरकारको इस कामके लिए नजूल[1] जमीन देनी चाहिए। रिपोर्टकी कीमत १ रुपया है और इसे सरकारी प्रेस, नागपुरसे प्राप्त किया जा सकता है।

अस्पृश्यताके समूल विनाशके लक्ष्यसे हम अभी कितने दूर हैं, इसका अन्दाजा इसी बातसे लग जाता है कि किसी हरिजन नववधुका डाँडीमें बिठाया जाना भी इतिहासमें एक नया पृष्ठ जुड़ जाना माना जाता है। तथाकथित सवर्ण हिन्दुओंने मानवताके प्रति जो अन्याय किया है उसके प्रायश्चित्तके लिए उन्हें चाहिए कि भारत-भरके गाँवोंमें जहाँ भी हरिजन नववधुओंको डाँडियोंमें ले जाना हो, वे स्वयं उनके वाहक बनें।

मैं तो यही आशा करूँगा कि दूसरी बातमें जो खबर है वह या तो गलत है, या यदि सच है तो जाँचका काम स्थगित करनेके पक्षमें अवश्य कोई ठोस कारण रहा होगा। लोगोंको आशा तो यही थी कि अन्तरिम सरकारें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा प्रारम्भ की गई किसी भी वैध प्रवृत्तिको बन्द नहीं करेंगी।

(मध्य प्रान्त) नगरपालिका भंगी जाँच समितिकी सिफारिशें इतनी मर्यादित और वाजिब हैं कि उन्हें पूरी तरह अमलमें लानेमें कोई विलम्ब नहीं होना चाहिए। इस रिपोर्टका वह हश्र नहीं होना चाहिए जो इस तरहकी बहुत-सी रिपोर्टोंका

१. सरकारी

होता है — अर्थात् इसे उठाकर ताकपर नही रख देना चाहिए। ध्यान रहे कि ठक्कर बापाने यह काम प्रेम और शुद्ध सेवा-भावसे किया है। वे किसी काममें प्रशंसा या प्रदर्शनके लिए नही पड़ते।

सेगाँव, ८ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-१-१९४०

११५. विधान-सभाके कांग्रेसी सदस्य और उनका भत्ता

संयुक्त प्रान्त विधान-सभाके एक सदस्यने मुझे एक पत्र भेजा है। उसे संक्षिप्त रूपमें नीचे दे रहा हूँ:

> संयुक्त प्रान्तमें हमे ७५ रुपये महीना भत्ता मिलता है। कांग्रेसकी सत्ता ढाई साल रही। इस अरसेमे विधान-सभाके अधिवेशन कभी-कभी तो सिर्फ छः दिनमें खत्म हो गये और कभी कुछ महीने चले। इसके सिवा प्रवर, विशेष और नियमित समितियोंकी भी बैठकें हुईं। इनमें से कुछ समितियाँ अब भी काम कर रही हैं और उनमें हमारा बहुत समय लगता है। साथ ही, यह भी पता नही रहता कि विधान-सभा फिर कब बुला ली जाये। अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रोंका दौरा करनेमें भी प्रति-वर्ष हमारे दो सौ रुपये खर्च हो जाते है। ऐसे भी निर्वाचन क्षेत्र है, जो लखनऊसे २०० मीलसे भी दूर हैं। सालमें तीन दौरोंका औसत मान लें तो हर सदस्यको इस काममें छः सप्ताह लगाने पड़ते है। सदस्य जब लखनऊमें रहते हैं तब उन्हें अपने-अपने चुनाव क्षेत्रोंसे आनेवाले लोगोंकी आवभगत भी करनी पड़ती है। हर सदस्यको अपने विधान-सभाई कांग्रेस दल और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको ४ रुपये माहवार देना पड़ता है। ऐसी दशामें व्यापार-धन्धा तो छूट ही जाता है और जाहिर है कि किसी सदस्यके पास आमदनीका अगर कोई निजी जरिया न हो तो बिना कुछ भत्ता लिये अपना सारा समय देना उसके लिए बिलकुल नामुमकिन है। संयुक्त प्रान्त विधान-सभाके सदस्योंके सामने यह प्रश्न कई बार आ चुका है। हममें से बहुतोको लगता है कि या तो भत्ता बढ़ाया जाये, अन्यथा हममें जो गरीब हैं उन्हे धनवानोंके लिए मैदान छोड़कर निकल जाना पड़ेगा। आपको तो यह जानकर दु:ख हुआ कि विधान-सभाके कुछ सदस्य भत्तेका उपयोग अपने लिए कर रहे हैं,[1] मगर मैंने आपके सामने तस्वीरका दूसरा पहलू भी रखा है, जिससे आप हमें रास्ता

१. देखिए "बातचीत: नागपुरके कांग्रेस-कार्यकर्ताओंके साथ", पृ० ७१-७४।

दिखा सकें। यह भी याद रखनेकी बात है कि कांग्रेसकी आज्ञा मानकर हमने जो चुनाव लड़े उसमें बहुतोंको कर्ज लेना पड़ा था।

जिस दूसरी बातकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, वह है कांग्रेसमें फैले भ्रष्टाचारका सवाल। इसके और तो कारण हैं ही, पर विधान-सभाकी सदस्यताका लालच भी कांग्रेसके औसत कार्यकर्ताओंमें बहुत प्रबल है। इससे लोग मौजूदा सदस्योंको हटाकर उनकी जगह खुद आनेकी कोशिश करते हैं और इसके लिए अकसर बुरे उपाय काममें लाते हैं। अगर ऐसी कुछ व्यवस्था हो जाये कि जिन सदस्योंने अच्छा काम किया है उन्हीको फिर खड़ा किया जायेगा तो अच्छी बात होगी। ऐसी नीतिसे विधान-सभाओंके कामके लिए कार्यकर्ताओंका एक प्रशिक्षित समूह तैयार हो जायेगा। फिर, सदस्य यह भी समझ जायेंगे कि विधान-सभाओंके बाहर उन्हें रचनात्मक कार्य भी करना है।

तीसरी बात, जिसपर प्रकाश डालनेकी आपसे नम्र प्रार्थना है, यह है कि बड़ेसे-बड़े कांग्रेसियोंका भी पश्चिमी ढंगके रहन-सहन, विचार और संस्कृतिकी तरफ जबरदस्त झुकाव हो रहा है। खद्दर पहनते हुए भी उनमें से बहुतेरे अपनी देशी संस्कृतिसे बिलकुल दूर रहते हैं, और उन्हें जो भी प्रकाश मिलता है पश्चिमसे मिलता है।

जहाँ तक भत्तेका सम्बन्ध है, इसके पक्षमें दी हुई दलीलोंसे मैं कायल नहीं हुआ हूँ। बेशक, ऐसे लोगोंके कुछ-न-कुछ उदाहरण तो सभी जगह मिलेंगे जिन्हें किसी नियम या परिस्थितिके कारण कठिनाई होती है। मगर, ऐसे उदाहरणोंके आधारपर ठीक नियम नहीं बनते। याद रहे कि विधान-सभाओं पर कांग्रेसकी इजारेदारी नहीं है। वहाँ कई दलोंके प्रतिनिधि होते हैं। इसलिए सिर्फ कांग्रेसकी सुविधाका ही लिहाज नहीं रखा जा सकता। पत्र-लेखक भाई यह मानकर चले हैं कि हर सदस्य अपना सारा समय, राष्ट्रसेवाके विशेष अंगके रूपमें, विधान-सभाकी प्रवृत्तिमें लगाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि विधान-सभाओंके सदस्य पेशेवर राजनीतिज्ञ बन जाते हैं और विधान-सभाएँ उनके विशेष क्षेत्र बन जाती हैं। मेरा बस चले तो मैं ये बातें दलोंकी मार्फत ही करा लूँ। मैं जानता हूँ कि इस सवालमें कठिनाइयाँ भरी हैं और इसपर पूरी तरह और शान्तिके साथ चर्चा करनेकी जरूरत है। पर मैंने जो बात उठाई है वह बिलकुल छोटी-सी है। जब विधान-सभाओंका काम एक तरहसे बन्द रहता है उस समय सदस्य कुछ भी भत्ता क्यों ले? सदस्योंके विषयमें अगर जाँच-पड़ताल की जाये तो पता चलेगा कि बहुत-से सदस्य विधान-सभाओंमें चुने जानेसे पहले इतना नहीं कमा रहे थे जितना कि अब कमा रहे हैं। विधान-सभाओंको अपने बाजारभावसे अधिक कमाईका साधन बनाना खतरनाक बात है। प्रान्तोंके जिम्मेदार लोगोंको मिलकर इसपर सोचना चाहिए और कोई ऐसा निर्णय करना चाहिए जिससे कांग्रेसकी और जिस उद्देश्यको लेकर वे चल रहे हैं, उस उद्देश्यकी भी शोभा बढ़े।

पत्र-लेखकने मौजूदा सदस्योंको स्थायी उम्मीदवार बना देनेका जो सवाल उठाया है, वह मेरी समझसे बाहर है। इस मामलेमें मुझे कोई अनुभव नही है। इसकी गहराईमें जाना कार्य-समितिका काम है।

रही बात पश्चिमसे प्रकाश लेनेकी आदतकी, तो अगर मेरे सारे जीवनसे किसीको कोई रास्ता न मिला हो तो मैं अब और क्या रास्ता बता सकता हूँ? पहले तो प्रकाश पूर्वसे ही निकलकर फैला करता था। अगर पूर्वका भण्डार खाली हो गया है तो स्वाभाविक ही है कि पूर्वको पश्चिमसे उधार लेना पड़ेगा। प्रकाश अगर प्रकाश ही है, कोई दुर्गन्ध नही है, तो उसका भण्डार कैसे चुक सकता है, यह मेरी समझमें नही आता। मैंने बचपनमें पढा था कि प्रकाश, अर्थात् ज्ञान, देनेसे बढ़ता है। कुछ भी हो, मैंने तो इसी विश्वासपर अमल किया है और इसलिए बाप-दादोकी पूंजी पर ही अपना व्यापार चलाया है। इसने मुझे कभी धोखा नही दिया। लेकिन इसका मतलब यह नही कि मैं कुएँका मेंढक बन जाऊँ। अगर प्रकाश पश्चिमसे आये तो कोई कारण नही कि मैं उसका लाभ न उठाऊँ। मुझे इतनी सावधानी जरूर रखनी चाहिए कि उसकी चकाचौंधसे मैं अभिभूत न हो जाऊँ। मुझे चकाचौंधको ही सच्चा प्रकाश नही समझ लेना चाहिए। सच्चा प्रकाश हमें जीवन देता है, और चकाचौंध हमें मौतके मुंहमें ले जाती है।

सेगाँव, ८ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-१-१९४०

११६. घी में मिलावट[1]

श्री पन्नालाल[2] साबरमतीके पुराने आश्रमवासी है। उन्हें मवेशियोसे बड़ा प्रेम है। बरसोसे वे किसान और ग्वालेका काम कर रहे है। उन्होने मवेशियोके सवाल-का अध्ययन करनेकी कोशिश की है। इस बातको बहुत कम लोग समझते है कि भारतके पशुधनकी रक्षाका सवाल पेचीदगियोसे भरी हुई एक बड़ी आर्थिक समस्या है। इनमें से एक पेचीदगी जो बराबर परेशानीका कारण बनी रही है, वह घी की मिलावट है। पिछले कुछ बरसोंसे यह खतरा बढता जा रहा है। इसका कारण देशमें सस्ते वनस्पति-तेलका आयात है। इस तेलको घीका गलत नाम दे दिया गया — सो सिर्फ इसलिए कि इसे जमाकर और दूसरी क्रियाओके जरिये ऐसा रूप दे दिया जाता है जिससे यह घी-जैसा दिखता है। श्री पन्नालाल का

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. पन्नालाल झवेरी

कहना है कि घी-दूधके व्यापारी और दलाल असली घी में खूब मिलावट करके किसान या ग्वालेसे सस्ता बेच लेते हैं। उनका यह भी कहना है कि यदि यह शरारत बहुत दिन तक चलती रही, तो किसानोका इस स्पर्धामें टिकना नामुमकिन हो जायेगा। इसका खास कारण यह है कि वनस्पति 'घी' बम्बई और दूसरे स्थानोंमें बडे पैमानेपर तैयार किया जा रहा है। श्री पन्नालाल ठीक ही कहते हैं कि असली घी बाजारमें से जाता रहा तो दुग्ध-व्यवसाय समाप्त हो जायेगा और दुग्ध-व्यवसाय समाप्त होनेपर हल तथा गाड़ी खीचनेवाले जानवर तैयार करनेका जरिया — पशु-पालन — भी नष्ट हो जायेगा। और इस सबके परिणामस्वरूप खेती करना असम्भव हो जायेगा। सचमुच दुग्ध-व्यवसाय समाप्त हो जानेपर पशु-पालन कमाईका जरिया न रहकर शौककी ही चीज बन जायेगा। इसलिए श्री पन्नालालका सुझाव है कि घी में मिलावट रोकनेके लिए सख्त कदम उठाये जाने चाहिए। मैं इस सुझावका हृदयसे समर्थन करता हूँ। मिलावटके खिलाफ जनताकी ओरसे एक सुनियोजित आन्दोलन चलाया जाना चाहिए और जरूरत हो तो मिलावटको रोकनेके लिए कानून भी बनाये जाने चाहिए। मिलावट की समस्याका आर्थिक पहलू तो है ही, साथ ही इसका एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पहलू भी है, जो आर्थिक पहलूसे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। यह हमें अच्छी तरह मालूम है कि वनस्पति 'घी' में असली घीके मुकाबले शरीरकी रक्षा करनेवाले तत्त्व बहुत थोड़े हैं। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे डॉक्टरोंका कहना है कि वनस्पति घी असली घीकी जगह हरगिज नही ले सकता। इसलिए यह एक ऐसा सवाल है जिसके हल के लिए नगर-निगमो, डॉक्टरो और मानव-कल्याणके कार्य करनेवाली संस्थाओको तुरन्त प्रयत्न शुरु कर देना चाहिए। नगर-निगमोंको काफी अधिकार न हो तो ऐसे अधिकार उन्हे मिलने चाहिए। श्री पन्नालाल कहते हैं :[1]

> यह बात तो बिलकुल व्यावहारिक है कि वनस्पति-घी चाहे देशमें बना हो या उसका आयात किया गया हो, उसके हर टिनमें कोई खाने लायक रंग या सुगन्ध मिलाना कानूनन लाजिमी कर दिया जाये। इससे वनस्पति-घी और असली घीका फर्क तुरन्त नजर आ जायेगा और मिलावटका पता लगाना आसान हो जायेगा।

सेगाँव, ८ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१. केवल एक अंश ही दिया गया है।

११७. पत्र : निर्मला और रामदास गांधीको

८ जनवरी, १९४०

चि० नीमु,

तू भी भला कैसी लड़की है! अब घर मिल गया तो सेगाँवको क्या बिलकुल भूल ही गई? मुझे यही मान लेना पड़ेगा न कि सप्ताह-भरमें तुझे एक मिनटका भी समय नहीं मिलता?

चि० रामा,

तू कैसा निष्ठुर बन गया है। बा दिल्लीमें पड़ी है, लक्ष्मी बीमार है। यहाँ तो मैं मानो अस्पताल ही खोल बैठा हूँ। वालजीभाई, कुँवरजी, जयरामदास, किशोरलालभाई और कृष्णदास, इनको तो तू जानता ही है। पासके गाँवकी एक महिलाको भी दाखिल कर लिया है। और परचुरे शास्त्रीकी सिफारिशपर एक और व्यक्ति है। सबकी दशा सुधर रही है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे : निर्मला गांधी पेपर्स, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

११८. चरखा

आँधीके समक्ष पूर्वने मस्तक झुका दिया —
धीर और गंभीर उपेक्षासे —
गरजते लश्करको निकल जाने दिया
और फिर विचारमग्न हो गया।[1]

मैं समाजवादियों, रायके अनुयायियों[2] और दूसरे लोगोंको बधाई देता हूँ जिन्होंने कताईके बारेमें अपने विचार खुलकर कह दिये हैं। देशके सामने आज अत्यन्त गम्भीर स्थिति उपस्थित है। यदि सविनय अवज्ञाकी गम्भीरतापूर्वक घोषणा की जाती है, तो उसे तब तक बन्द नहीं करना चाहिए जब तक कि कोई उचित निपटारा हो जाये। इसका मतलब यह है कि यदि संघर्षको अहिंसात्मक ढंगसे चलाना हो, तो अहिंसा शुद्ध अहिंसा होनी चाहिए। जिस-जिस बातकी जरूरत है वह सब मुझे

१. मैथ्यू आर्नोल्डकी कविताकी चार पंक्तियोंका भावानुवाद
२. मानवेन्द्र नाथ रायकी रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टीके सदस्यों

बहुत स्पष्ट शब्दोंमें कह देनी चाहिए। यदि मैं संकोच करूँ तो मैं राष्ट्रीय हितको हानि पहुँचाऊँगा। मैं ऐसी सेनाका नेतृत्व करनेका साहस नहीं कर सकता जिसमें वे गुण न हों जिन्हें मैं सफलताके लिए आवश्यक मानता हूँ।

ढुलमुल वफादारीसे काम नहीं चलेगा। बँटी हुई वफादारी विनाशकारी सिद्ध होगी। आलोचकोंको यह जानना चाहिए कि मैंने अपने-आपको कांग्रेसपर लादा नहीं है। मैं कोई तानाशाह नहीं हूँ, हालाँकि अनुदार मित्रोंने मुझे यह उपनाम दिया है। मुझे अपनी इच्छाको किसीपर थोपनेका अधिकार नहीं मिला है। इसलिए मैं अपनेको लोगोंका सेवक ठीक ही कहता हूँ। जनताको मालूम होना चाहिए कि मैं विधिवत 'जनरलिसिमो' (सेनापति) भी नियुक्त नहीं हुआ हूँ। यह बात नहीं कि कार्यसमिति मेरी विधिवत् नियुक्ति करनेको तैयार नहीं थी। पर मैंने कहा कि इसकी कोई जरूरत नहीं है और सदस्योंने कहा कि ठीक है। अतः यदि कभी किसी सेनापति और उसके सिपाहियोंके बीच शुद्ध स्नेह और विश्वासका सम्बन्ध हो सकता है तो वह हमारे बीच है। कांग्रेस मेरी उपेक्षा कर अपनी इच्छासे कोई प्रस्ताव पास करना चाहे, तो उसे रोकनेवाली कोई चीज नहीं है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, किसी व्यक्ति, प्रान्त या जिलेको अपनी जिम्मेवारीपर सविनय अवज्ञाकी घोषणा करनेसे रोकनेवाली कोई चीज नहीं है। वे कांग्रेस-अनुशासनका उल्लंघन करनेके अपराधी जरूर होंगे। मगर ऐसे उल्लंघनके विषयमें मैं कुछ नहीं कर सकता।

इसलिए कताईके पक्षमें दलीलें पेश करना मेरे लिए अनावश्यक है। इतना कहना काफी है कि यह शर्त हर सत्याग्रहीको पूरी करनी ही होगी।

परन्तु मैं तब तक दलीलें पेश करता रहूँगा जब तक कि विरोधियोंको सहमत न कर लूँ या स्वयं हार न मान लूँ। क्योंकि मेरे जीवनका व्रत तो हर हिन्दुस्तानीको — चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान अथवा कोई और — बल्कि अंग्रेजों तकको और अन्तमें दुनियाको भी इस बातके पक्षमें करना है कि हमें अपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा धार्मिक सम्बन्धोंका नियमन करनेके लिए अहिंसाका तरीका अपनाना चाहिए। यदि मुझपर बहुत महत्वाकांक्षी होनेका इलजाम लगाया जाये, तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। यदि मुझसे कहा जाये कि मेरा सपना कभी सच नहीं हो सकता तो मैं जवाब दूँगा कि 'हो सकता है', और अपना रास्ता पकड़ूँगा। मैं अहिंसाका अनुभवी सिपाही हूँ और अपनी आस्थाको बनाये रखनेके लिए मेरे पास पर्याप्त प्रमाण है। इसलिए मेरा चाहे एक साथी हो, चाहे अधिक हों, चाहे कोई भी न हो, मैं अपना प्रयोग जरूर जारी रखूँगा।

पहली बात जो मैं अपने साथियोंको समझाना चाहता हूँ, यह है कि मेरे दिलमें एक भी अंग्रेजके लिए घृणा नहीं है। उसे भारतसे निकाल बाहर करनेमें मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं यही चाहता हूँ कि वह भारतका सेवक बन जाये, बजाय इसके कि वह एक शासक या शासक जातिका सदस्य रहे या अपने-आपको ऐसा समझता रहे। उसके प्रति मेरी भावना बिलकुल वैसी ही है जैसी कि

किसी भी धर्मको माननेवाले एक भारतीयके प्रति। अतः जिन लोगोंमें मेरी तरह यह प्राथमिक गुण नहीं है वे मेरे सह-सत्याग्रही नहीं बन सकते।

अंग्रेजोंके प्रति मेरा स्नेह औपचारिक स्नेह नहीं है। उनके साम्राज्यवादका जितना भयानक चित्र मैंने खींचा है उतना शायद किसी औरने नहीं खींचा। लेकिन ऐसे ही भयानक चित्र मैंने अपने घरेलू और राजनीतिक क्षेत्रोंके भी खींचे हैं। मैं जिसे प्रेम कहता हूँ वह यदि गुलाबकी पंखुड़ीके समान कोमल है तो वज्र से अधिक कठोर भी हो सकता है। मेरी पत्नीको उसके कठोर रूपका अनुभव करना पड़ा है। मेरा सबसे बड़ा लड़का इस प्रकारके प्रेमका अब भी अनुभव कर रहा है। मैं सोचता था कि सुभाष बाबू सदाके लिए मेरे पुत्र बन गये हैं। पर मैं उनका प्रेम-भाजन नहीं रह गया हूँ। उनपर प्रतिबन्ध लगानेके काममें मुझे बड़े दु:खके साथ पूरी तरह सम्मिलित होना पड़ा।[1] एक समय था जब डॉ० खरे और वीर नरीमन कहा करते थे कि मेरा आदेश उनके लिए कानून है। लेकिन अफसोस, अब मैं ऐसा अधिकार रखनेका दावा नहीं कर सकता। उनके खिलाफ जो अनुशासनकी कार्रवाई की गई, उसमें मैं भी शामिल था।[2] मेरा कहना यह है कि मैंने उनके प्रति वैसा ही आचरण किया जैसा कि उन लोगोंके प्रति जो मेरे अत्यन्त निकट और अत्यन्त प्रिय समझे जाते हैं। मेरे सभी व्यवहार प्रेमकी भावनासे प्रेरित रहे हैं। इसी तरहका व्यवहार मैंने अंग्रेजोंके प्रति भी किया है। इसमें सन्देह नहीं कि जब भी मैंने उनका विरोध किया है, उन्होंने मुझे बुरा-भला कहा है। मेरे विषयमें उनकी कड़ी आलोचनाका मुझपर उतना ही प्रभाव पड़ा जितना कि उनकी प्रशंसाका। मैं यह सब-कुछ अपनी अच्छाईके प्रमाण-पत्रका दावा करने या उसे पानेकी आशासे नहीं कह रहा हूँ। मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि मैंने अंग्रेजोंके शासन और तरीकों के बारेमें कठोर बातें कही हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि मुझपर अंग्रेजोंके प्रति द्वेष रखनेका आरोप लगाया जाये। अतः जिनके दिलोंमें उनके प्रति द्वेष भरा है, वे अपने साथीके रूपमें अन्तमें मुझे एक अनुपयुक्त व्यक्ति ही पायेंगे।

मैं यहाँ नये विचारोंका प्रतिपादन नहीं कर रहा। ये सब विचार 'हिन्द स्वराज्य' में दिये गये हैं। यह पुस्तक १९०८[3] में लिखी गई थी जब कि सत्याग्रहकी विधि रची जा रही थी। चरखा प्रेमके इस कार्यक्रमका अंग बन चुका था। अहिंसा पर आधारित जीवनकी कल्पना करते हुए मैंने समझ लिया कि ऐसा जीवन उच्च विचारोंके अनुकूल सादासे-सादा जीवन होना चाहिए। रोटी और कपड़ा सदा ही जीवनकी मुख्य आवश्यकताएँ रहेंगे। यदि इन दो चीजोंकी निश्चित व्यवस्था न हो

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ९४-९५।

२. के० एफ० नरीमनको नवम्बर १९३७ में और डॉ० एन० बी० खरेको जुलाई १९३८ में कांग्रेस संगठनमें कोई भरोसे या जिम्मेदारीका पद ग्रहण करने से वर्जित कर दिया गया था।

३. वस्तुतः १९०९ में; देखिए खण्ड १०, पृ० ६-६९।

तो जीवन ही असम्भव हो जाता है। इसलिए अहिंसात्मक प्रतिरक्षाके लिए समाजका गठन ऐसा होना चाहिए कि बाहरी हमला या भीतरी गड़बड़ होने पर लोग यथासम्भव अपनी सँभाल आप कर सकें। ऐसी परिस्थितिमें जिस प्रकार घरकी रसोईमें काम करना सबसे आसान है, उसी प्रकार तकली या अधिकसे-अधिक चरखा और करघा कपड़ा तैयार करनेके सरलतम साधन हैं। अहिंसापर आधारित समाज ऐसे गाँवोंमें बसनेवाले समुदायोंसे ही बना हो सकता है जहाँ स्वेच्छासे सहयोग करना सम्मानपूर्ण और शान्तिपूर्ण जीवन की आवश्यक शर्त हो। जो समाज हिंसक हमलेको सम्भव मानकर हिंसासे हिंसाका मुकाबला करनेकी तैयारी करेगा, वह या तो एक संकटपूर्ण जीवन बितायेगा या प्रतिरक्षाके लिए बड़े-बड़े शहर और बारूदखाने बनायेगा। यूरोपकी हालत देखकर यह कल्पना करना अनुचित नहीं है कि यूरोपके शहरों, उसके बड़े-बड़े कारखानों और विशाल शस्त्र-भण्डारोंका आपसमें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि ये एक-दूसरेके बिना टिक नहीं सकते। अहिंसा पर आधारित सभ्यताका लगभग सही नमूना भारतका प्राचीन ग्राम-गणतन्त्र है। मैं मानता हूँ कि वह बिलकुल अधकचरा गणतन्त्र था। मैं जानता हूँ कि उसमें वैसी अहिंसा नहीं थी जिसकी मैंने परिभाषा या कल्पना की है, पर वहाँ उसका बीज जरूर था। जो-कुछ मैंने कहा है, वह कोरी मूर्खताकी बात हो सकती है। लेकिन देशका वफादार सेवक होनेके नाते मेरे लिए यही ठीक है कि मैं अपनी मूर्खताको न छिपाऊँ। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे यहाँ एक बड़ा परिवर्तन होनेवाला है। मैं आशा करता हूँ कि यह परिवर्तन हमारी भलाईके लिए होगा, लेकिन यह भी हो सकता है कि इससे नुकसान ही हो। मुझमें यह साहस होना चाहिए कि मैं अपने सहयोगियोंको अपने आन्तरिक विचारोंसे अवगत करा दूँ, चाहे ऐसा करनेमें उनके सहयोगसे वंचित हो जानेका खतरा ही क्यों न हो।

अब फिर अपनी दलीलपर आता हूँ। उस बीजसे मैंने अहिंसाकी विधिका विकास किया है। यदि चरखेका वह विस्तृत अर्थ लगाया जा सके जो कि मैं लगाता हूँ, तो मानना होगा कि वह सत्याग्रहके शस्त्रागारका सबसे कारगर शस्त्र है। चरखेपर काता गया कच्चा धागा लाखों-करोड़ोंको अटूट बन्धनमें बाँध देता है। एक गज धागा चाहे किसी कामका न हो, मगर लोगों द्वारा खुशीसे और होशियारीसे काते गये लाखों-करोड़ों अन्तहीन धागोंसे ऐसी मजबूत रस्सी बनेगी जो बड़ेसे-बड़े बोझ सँभाल लेगी। लेकिन यह विचार १९०८ और १९१४ के बीच मेरे अन्दर सुप्तावस्थामें ही विद्यमान रहा। सारी योजनाकी कल्पना भारतके लिए की गई थी। फिर भी इसकी भावनापर अमल दक्षिण आफ्रिकामें ही हुआ। वहाँ सत्याग्रहियोंका जीवन सादासे-सादा बना दिया गया। बैरिस्टर हों या कोई और, सबने शारीरिक श्रमके गौरवको समझा। उन्होंने स्वेच्छासे गरीबीकी हालतमें रहना स्वीकार किया और गरीबोंके साथ तादात्म्य स्थापित किया। भारतमें आकर मैंने अकेले ही चरखेके पुन.प्रचलनके लिए काम करना शुरू किया। १९२१ में खादी कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमका एक प्रधान अंग

बन गई। चरखेको, जिसका अहिंसासे अटूट और महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध था, कांग्रेसी झण्डेके ठीक मध्यमें स्थान दिया गया। अतः आज मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, वह कोई नई बात नहीं है। मगर जैसा कि अक्सर हुआ है, लोग मेरी बातकी तब तक उपेक्षा करते रहे हैं जब तक कि वे कार्रवाई करनेके लिए मजबूर ही नहीं हो गये हैं।

जो साथी चरखे और उसके अभिप्रायके विरुद्ध लिखते आ रहे हैं, उन सबके लिए मेरे हृदयमें बहुत आदर है। वे अपनी समझके अनुसार देशका पथ-प्रदर्शन करके एक सेवा कर रहे हैं। मैं नही चाहता कि वे मेरी शर्तोंको आँख मूँदकर स्वीकार कर लें। मै उनकी स्वीकृति अवश्य प्राप्त करता, यदि उससे कोई राष्ट्रीय उद्देश्य सिद्ध होता, परन्तु मुझे मालूम है कि उससे कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता।

अब मैं 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को लिखे सर चिमनलाल सीतलवाडके पत्र[1] पर विचार करना जरूरी समझता हूँ। मुझे मालूम है कि १९१५ में जब मैं भारत लौटा, लगभग तभीसे हमारे बीच राजनीतिक मतभेद रहे हैं। वे चोटीके वकील हैं। परन्तु वकील होनेसे जैसे उन्हें आधुनिक युद्धमें पैदल सेनाकी उपयोगिताके विषयमें मत व्यक्त करने का अधिकार नही मिल जाता, वैसे ही वे चरखेकी अर्थव्यवस्था पर प्रामाणिक मत देनेका अधिकार नही रखते। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे चरखेसे सम्बन्धित विशाल साहित्यको पढ़ें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि चरखेकी सम्भावनाके विषयमें उनकी राय बदल जायेगी। मैं उन्हें यह भी याद दिला दूँ कि मेरे दोस्तोंमें से बहुत-से मिल-मालिक हैं और वे मिलोंके बारेमें मेरे विचार जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि विदेशी मिलोके मुकाबले देसी मिलोंकी समृद्धि बढ़ानेमें मेरा हाथ रहा है। सर चिमनलालको यह भी मालूम होना चाहिए कि मैं भारतके सबसे बड़े और सबसे प्रभावशाली मजदूर-

१. हरिजन में छपे गांधीजी के 'चरखा बनाम मिलें' शीर्षक लेखकी चर्चा करते हुए चिमनलाल सीतलवाडने लिखा था: "गांधीजी की इस घोषणापर हमें अत्यन्त आश्चर्य होता है, क्योंकि इसका आशय यह निकलता है कि यदि गांधीजी का-बस चले तो इस देशमें मशीनोंसे चलनेवाले कपड़ा उद्योग का खात्मा ही कर दिया जायेगा ताकि गाँवके कतैयों और बुनकरोंको पहले जैसा स्थान प्राप्त हो सके। इस तरह तो गांधीजी बैलगाड़ियोंको फिर से चालू करनेकी खातिर रेलवे, हवाई जहाजों, मोटरोंको मिटा देनेकी वकालत भी कर सकते हैं। भारत आत्म-निर्भर बन जाये, इसके लिए कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बड़े पैमानेके उद्योगोंके विकासके सम्बन्धमें बार-बार चिन्ता व्यक्त करते रहे हैं और जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षता में एक समिति इसे देशके औद्योगिक तथा आर्थिक विकासकी योजना बनानेका काम भी कर रही है। हम जानना चाहेंगे कि गांधीजी की इस अन्तिम घोषणापर कांग्रेसी नेताओंका क्या मत है। कमसे-कम कपड़ा-मिल-उद्योग में लगे लोगोंको, जो इस समय भारतका प्रमुख उद्योग है और विशेष रूपसे इस प्रान्तका तो है ही, यह जाननेका अधिकार है कि यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल पुनः सत्तारूढ़ हो जायें तो क्या वे गांधीजी द्वारा प्रतिपादित देशी मिल-उद्योगके नाशके लक्ष्यकी दिशामें काम करेंगे? क्या बम्बईके कोई भूतपूर्व मन्त्री इस बातका जवाब देंगे?"

संघ[1] का नीति-निर्देश करता हूँ। मिलोंके विरोधके मामलेमें मैं न झुकनेवाला हूँ, न समझौता ही करनेवाला हूँ। मगर मेरा विरोध पूरी तरह अहिंसात्मक है, और मैं दावेसे कह सकता हूँ कि इस बातका प्रमाण-पत्र मुझे मिल-मालिक ही सबसे पहले देंगे। मिलोंके साथ मेरा सम्बन्ध अहिंसात्मक प्रतिरोधका उपयुक्त और सम्पूर्ण उदाहरण है। किसीको मुझसे यह कहनेकी जरूरत नही है कि उन्होंने मुझे इसलिए सिर पर चढ़ा रखा है क्योंकि वे जानते हैं कि मेरी कार्रवाइयोंसे उन्हें कोई हानि नही पहुँच सकती। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उन्हें वस्तुस्थितिकी ज्यादा ठीक जानकारी है। वे जानते है कि मिलोंके बारेमें मेरे दृढ़ विचारोंके रहते यदि मेरे इरादे हिंसात्मक होते तो मेरी कार्रवाइयोंसे इतनी गड़बड़ हो सकती थी कि वे मुझे अपना दुश्मन समझते और मेरे खिलाफ कानूनकी मदद लेने पर मजबूर हो जाते।

किन्तु भूतपूर्व मन्त्रियोंके लिए सर चिमनलालकी चुनौती मुझे पसन्द आई है। वे इसका जवाब दें।

सेगाँव, ९ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-१-१९४०

११९. पत्र : जमनालाल बजाजको

९ जनवरी, १९४०

चि० जमनालाल,

फिलहाल इलाज बन्द करके तुम जयपुर नही जा सकते। महाराजाको पत्र लिख देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००८) से

१. मजूर महाजन संघ — अहमदाबाद की कपड़ा-मिलों का मजदूर संघ

१२०. बातचीत : भाई परमानन्दके साथ[1]

सेगाँव
[९/१० जनवरी, १९४०][2]

[गांधीजी :] अपने जीवनमें मैं बहुतेरे क्रान्तिकारियोंसे मिला हूँ। जब मैंने 'हिन्द स्वराज्य' लिखा और मेरे इंग्लैण्ड प्रवासके दौरान जब कर्जन वाइलीकी हत्या हुई,[3] तबसे ही मैं क्रान्तिकारियोंके साथ चर्चा करता रहा हूँ। वे यह जानकर मेरे पास आते हैं कि मैं उनकी बातें धीरजके साथ सुनूँगा और यह कि मैं उनका एक ऐसा विश्वस्त मित्र हूँ जिसे वे अपने रहस्य बता सकते हैं। इसके फलस्वरूप आज उनमें से बहुतेरे ऐसे हैं जो मेरे विचारोंके कायल होकर मेरे सहयोगी बन गये हैं। सो पृथ्वीसिंह[4] ऐसा पहला क्रान्तिकारी नहीं था जिसने विचार-परिवर्तनके परिणामस्वरूप अहिंसाको अपनाया हो और मुझे उम्मीद है कि वह अन्तिम भी नहीं होगा।

यदि हम यह मान लें कि हिन्दू-धर्म हिंसाकी इजाजत देता है तब भी यह कहना होगा कि दुनियाको हिन्दू-धर्मकी एक बड़ी देन है वर्णाश्रम धर्म (मेरा मतलब वर्णाश्रम धर्मकी उस विडम्बनासे नहीं है जो हम आज देखते हैं), जिसके अनुसार शस्त्रोंका प्रयोग केवल क्षत्रियोंके लिए ही विहित है। अतः ३५ करोड़ लोगोंको तलवार चलाना सिखाना एक बहुत बड़ा, लगभग असम्भव काम है; और यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं कि यह चीज अपने-आपमें भी बहुत ही गलत और भयावह है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए व्यापक हिंसाका तरीका मेरे तरीकेसे आसान नहीं है; क्योंकि, जैसा आप खुद कहते हैं, मेरा तरीका भारतका परम्परागत और स्वाभाविक तरीका है। इसके अलावा, जीवनका नियम एक-दूसरेका गला काटना नहीं, बल्कि एक-दूसरेकी मदद करना है। यदि परस्पर-हत्या ही नियम होता तो समाज बच न पाता।

[भाई परमानन्द :] परन्तु एक निर्णायक युद्धमें यथासम्भव अधिकसे-अधिक लोगोंको क्यों न शामिल किया जाये?

१. "टॉक विद ए रिवोल्यूशनरी" शीर्षकके अन्तर्गत इस बातचीतका विवरण देते हुए महादेव देसाई लिखते हैं: "बातचीतसे स्पष्ट हो गया कि दीर्घ और एकान्त कारावास लोगोंपर कितना भयंकर प्रभाव डालता है और उनका उत्साह भंग करनेके बजाय उन्हें और उग्र विरोधी बना देता है।"

२. तारीख और भेंटकर्ताकी पहचान महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे की गई है।

३. २ जुलाई, १९०९ को; देखिए खण्ड ९, पृ० ३००-१।

४. देखिए खण्ड ६७, पृ० ९९-१००।

ठीक है। यदि हम लड़ें तो यह मेरी अन्तिम लड़ाई होनी चाहिए। हर स्थितिमें यह अन्तिम लड़ाई होगी। इसलिए यह और भी जरूरी है कि मैं तब तक लड़ाई शुरू न करूँ जब तक कि मुझे विश्वास न हो जाये कि मेरी सेना बिलकुल अहिंसात्मक ढंगसे उस अग्नि-परीक्षासे गुजरनेके लायक है। जरा सोचिए कि यदि संयुक्त प्रान्तके सारे-के-सारे १७ लाख सदस्य कताई करने और खादी पहननेके मेरे आसान-से इम्तहानमें पास हो जाते हैं, तो क्या होगा?

मगर वे ऐसा क्यों मानें कि खादीसे स्वराज्य मिलेगा? वे तो इसीलिए कातेंगे कि वे आपका सेनापतित्व चाहते हैं और आपकी आज्ञाका पालन करना उनके लिए जरूरी है।

यदि वे सेनापतिकी आज्ञाका पूरी तरह पालन करते हैं, तो उन्हें सेनापति की भाँति यह मानना चाहिए कि खादीसे स्वराज्य मिलेगा। वह परिणाम जिससे मुझे उनकी आज्ञाकारिताकी परीक्षा करनी होगी — अर्थात् खादी भंडारोंका खाली हो जाना और बेकारीका दूर होना — केवल यान्त्रिक कार्रवाईसे उपलब्ध नही होगा। चरखेमें विश्वास किये बिना यह बात नही हो सकती। यदि ऐसा विश्वास न हो तो मैं उनकी आज्ञाकारिताको सच्ची आज्ञाकारिता नही कहूँगा। यदि मैं उनमें विश्वास न पैदा कर सकूँ, तो मैं उन्हें नही, बल्कि अपने-आपको दोष दूँगा। सारा दोष मेरी अधूरी अहिंसाका ही होगा। जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, यदि एक भी सच्चा सत्याग्रही हो, तो वह काफी होगा। मैं स्वयं वह सच्चा सत्याग्रही बननेकी कोशिश कर रहा हूँ। ऐसे सत्याग्रहीका एक भी विचार व्यर्थ नहीं जायेगा। मैं जानता हूँ कि मेरे बहुत-से विचार व्यर्थ नही जाते, परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि मैंने खादीके बारेमें जो-कुछ सोचा है और कहा है, उसका पूरा असर नही हुआ है। इसका कारण मुझे मालूम है। मुझमें हिंसा भरी हुई है। यद्यपि मैं अपने गुस्सेको दबा सकता हूँ, फिर भी यह सच है कि मुझे गुस्सा आ तो सकता है। १९०६ से मैं सावधानीसे और लगनके साथ ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन कर रहा हूँ, परन्तु मैं वैसा पूर्ण ब्रह्मचारी नही बन पाया हूँ जैसा कि मैं बनना चाहता हूँ। मेरे विचारमें पूर्ण ब्रह्मचर्यका अर्थ है काम-वासनासे रहित होना। उसका अर्थ नपुंसकता नही, बल्कि ऊर्ध्वरेताकी अवस्था है, जिसमें वीर्य अध्यात्म-तेजमें परिणत हो जाता है। यदि मैं उस निर्विकार अवस्थाको पहुँच जाता, तो मैं जिस बातका खयाल करता वह हो जाती। तब मुझे तर्क-वितर्क करनेकी जरूरत न होती।

परन्तु ईश्वर निर्विकार — सब विकारोंसे रहित है। वह हमसे वैसे कार्य क्यों नहीं करवाता जैसे कि हमें करने चाहिए? वह तो सर्वशक्तिमान है।

हम कैसे जानते हैं कि वह कुछ नही करता? परन्तु इस चर्चामें ईश्वरका नाम न लीजिए। वह सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसासे बेलाग है।

मगर उसके प्रभावसे ही हमारे अन्दर विकार हैं। यदि विकारमय होनेमें कोई दोष होता, तो वह हमें विकारोंसे न भरता।

जी, हाँ! उसने हमें यह सब दिया है, परन्तु साथ ही उचित और अनुचित में भेद करनेकी बुद्धि दी है और उचित और अनुचितमें से, अच्छे और बुरेमें से एकको चुननेकी कुछ हद तक स्वतन्त्रता भी दी है।

परन्तु जहाँ तक हम जान पाते हैं, आप विकारोंसे रहित हैं और अपेक्षाकृत सिद्ध हैं?

नहीं, मुझे अपनी त्रुटियोंका स्वयं अन्दाजा लगाने दिया जाये। अगर मैं सिद्ध होता तो, जैसा कि मैंने आपसे कहा है, मुझे आपके साथ तर्क करनेकी जरूरत न होती। मेरा चिन्तन-मात्र ही काफी होता। मैंने कई लड़ाइयाँ लड़ी हैं। और जहाँ तक उन दिनों मेरी अपनी अवस्थाका सम्बन्ध है, निश्चय ही तब मैं आजकी अपेक्षा कम सिद्ध था। उस समय मुझे भारत-भरमें घूमना पड़ता था — उत्तरसे दक्षिण तक और पूर्वसे पश्चिम तक। मुझे दिन-रात भाषण देना पड़ता था और बहस करनी पड़ती थी। अब यदि कोई लड़ाई हुई तो विश्वास रखिए कि मैं उसका नेतृत्व सेगाँवसे ही करूँगा। मैं पहलेसे बहुत कम बहस करता हूँ। फिर भी यह सच है कि मैं अपने आदर्शसे अभी बहुत दूर हूँ।[1]

यदि इतने ज्यादा स्वयंसेवक तैयार हैं, तो इतने दंगे क्यों हुए हैं?

इसीलिए कि तीसरा पक्ष लोगोंको दंगोंके लिए भड़काता है।

यह ठीक जवाब नहीं है। यदि हम मान लें कि दंगे शरारतन करवाये जाते हैं, तब भी अहिंसावादी स्वयंसेवकोंको उन्हें रोक सकना चाहिए। परन्तु आपने क्या किया? मैंने आपके बारेमें ऐसी बातें सुनी है जो आपके लिए कदापि गौरवका कारण नहीं हो सकतीं।

मैंने अपने जीवनमें कभी भी, सक्रिय क्रान्तिकारी होनेके जमानेमें भी, हिंसाका अनुमोदन नहीं किया। कोई साबित करके दिखाये कि मैंने किसीको पुलिस या सरकारी कर्मचारियोंको मारने-पीटनेकी सलाह तो हो। वास्तवमें मैं ऐसी सब कारंवाइयों और कोशिशोंकी निन्दा किया करता था।

सच?

हाँ।

क्या आप बाबा रामचन्द्रको जानते हैं?

क्यों नहीं जानता?

अच्छा, आप जानते हैं। तो क्या यह भी जानते हैं कि बाबा रामचन्द्र किसीसे किसीकी हत्या करनेको नहीं कहेंगे? किन्तु उनका यह भी खयाल था

१. इसके आगेकी बातचीत अगले दिन हुई। महादेव देसाई लिखते हैं: "...इनके [भाई परमानन्दके] मनमें यही खयाल उमड़-घुमड़ रहा था कि आज हजारों सत्याग्रही, चाहे अहिंसक लड़ाईके लिए ही क्यों न हों, रणोद्यत हैं। कताईकी कसौटीके अलावा गांधीजी ने इनके सामने एक और कसौटी रखी।"

कि किसीके गलेमें उबलता हुआ पानी उंडेल देना हिंसा नही है। हो सकता है कि आपने भी इसी तरहकी अहिंसाका प्रचार किया हो।

नहीं, किन्तु मैंने लोगोंको 'गीता' के उपदेशका अर्थ समझाया। मैंने उन्हें बताया कि स्वयं भगवान कृष्णने कहा है कि न मारनेवाला मारता है, न मरनेवाला मरता है।[1]

अच्छा, तो आपने बस इतना ही कहा है।

उस मित्रको अहिंसाके विषयमें अपने दावेके बेतुकेपन पर हँसी आ गई। तो भी वह बोला, "क्या भगवान कृष्णने ऐसा नहीं कहा?"

इसका यह मतलब नही है कि आप या मैं ऐसा कह सकते है। अगर मैं किसी आदमीको मारूँ तो मुझे फाँसी मिलनी चाहिए। मेरा यह कहना कि 'मैंने नही मारा', मुझे नही बचा सकता।

मगर यदि आप चाहते हों कि हम 'गीता' का उपदेश भूल जायें, तो हमसे साफ कह दीजिए। तब हम 'गीता' का नाम नहीं लेंगे और किसी दूसरी शिक्षा पर चलेंगे।

नही, कोई दूसरी शिक्षा नहीं है, जिसपर आप चलें। आपको 'गीता' फिरसे पढ़नी चाहिए। इतने वर्षों तक आप उसका गलत अर्थ समझते रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१२१. पत्र : अमृत कौरको

१० जनवरी, १९४०

प्रिय अमृत,

वहाँसे स्वस्थ-प्रसन्न और यहाँके कामोंमें हाथ बँटाने योग्य बनकर लौटो।[2]

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६४) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ६४७३ से भी

१. भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक १९
२. अमृत कौर इन्दौर गई थीं।

१२२. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

१० जनवरी, १९४०

बा,

तेरा पत्र मिला। प्रभाने अपने पत्रमें सब समाचार लिखे हैं। देवदाससे कहना कि उसका बीमार पड़ना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। बात यह है, वह ठीक चलता-फिरता नही है। यदि वह चलता-फिरता रहे और समय पर भोजन करे, तो बीमार न पड़े। वहाँ तेरी जब तक जरूरत हो तब तक बनी रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१२३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

१२ जनवरी, १९४०

चि० मणिलाल, सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। मैं तुम्हें लिखनेका प्रयत्न तो करता रहता हूँ, लेकिन रोज इतना काम रहता है कि कुछ-न-कुछ बाकी बच ही जाता है।

तुम्हारे संघर्षके बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूँ। फुरसत मिली तो और भी लिखूंगा। मेढ[1] का पत्र मेरे पास पड़ा है। विशेष तो कुछ लिखनेको है नहीं। अन्तिम उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।

किशोरलाल भाई इन दिनों यहीं हैं। उनके स्वस्थ हो जानेकी आशा है। जयरामदास भी यही है। वे पहलेसे बहुत अच्छे है। कुँवरजीका वजन तो तेजीसे बढ़ रहा है। इस तरह आजकल सेगाँव अस्पताल बन गया है। मैं यहाँ जल्दी संघर्ष छेड़ूंगा, ऐसी कोई बात नही है।

बा दिल्लीमें है। लक्ष्मी बहुत कमजोर हो गई है, लेकिन ठीक होती जा रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०७) से

१. सुरेन्द्र मेढ

१२४. पत्र : भारतन कुमारप्पाको

१४ जनवरी, १९४०

प्रिय भारतन,

हालाँकि वह दवा सम्भवतः, या निश्चय ही, खुद मुझे ही दी गई थी, लेकिन अब मुझे मिल नहीं रही है। इसलिए दूसरा नमूना और साहित्य हासिल करो।

प्रस्तावका मसविदा मैं तैयार नहीं कर सकता। मैंने मसविदा तैयार करना शुरू तो कर दिया था, लेकिन फिर पाया कि यह बात ऐसी नहीं है जिसपर अ० भा० ग्रामोद्योग संघ को कोई प्रस्ताव पास करना चाहिए, बल्कि इसपर तो मुझे 'हरिजन' में लिखना चाहिए। सो यह तो मैं कर दूँगा।[1]

पैसा मुझे मिल गया है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५८९) से

१२५. खादी ही क्यों?[2]

प्रोफेसर कुमारप्पाको मुझसे शिकायत है कि यद्यपि मैं अ० भा० ग्रामोद्योग संघका जनक और मार्गदर्शक हूँ तथापि ऐसा लगता है कि उसे मैं सौतेला लड़का समझता हूँ। मैंने उन्हें जवाबमें कहा है कि यह शिकायत गहरा विचार न करनेके कारण है। मगर वे यों ही हार मान लेनेवाले थोड़े ही हैं। इसलिए वे बार-बार मुझपर यही इल्जाम लगाते रहते हैं। उन्हें तब तक सन्तोष नहीं होगा जब तक मैं दुनियाके सामने यह घोषणा न कर दूं कि दूसरे ग्रामोद्योगोंका भी वही दर्जा है जो खादीका है। मेरे लिए तो यह बात इतनी साफ है कि इसे खोलकर समझानेकी मैं कोई जरूरत नहीं समझता। मगर जहाँ तक उसपर अमलका सवाल है, श्री कुमारप्पाकी बात सही है। जन-साधारणका व्यवहार सिद्धान्तकी लीक पकड़कर नहीं चलता। मसलन, हालमें ही कई लोगोंने मुझसे शिकायत की है कि हमारे बीच ऐसे लोग भी हैं जो खादी तो इस्तेमाल करते हैं, पर गाँवोंकी

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

बनी दूसरी चीजें काममें नहीं लाते। उनका खयाल यह मालूम होता है कि बहुत-से कांग्रेसी खादी तो इसलिए पहन लेते हैं कि विधानके अनुसार यह जरूरी है, मगर खादीमें चूंकि उनका विश्वास नहीं है, इसलिए जहाँ तक दूसरी चीजोंका सम्बन्ध है, वे अपनी सुविधाके सिवाय और किसी बातका खयाल नहीं करते। इसे मैं शब्दका पालन और भावनाका हनन कहता हूँ। और जहाँ भावना मर गई वहाँ शब्द उतना ही बेकार है जितना बेकार प्राण-पखेरू उड़ जाने पर यह शरीर हो जाता है। मैंने अक्सर कहा है कि खादी केंद्रमें स्थित सूर्य है और दूसरे ग्रामोद्योग ग्रहोंकी तरह उसके चारों तरफ घूमते हैं। उनकी कोई स्वतन्त्र हस्ती नहीं है। साथ ही खादी भी दूसरे ग्रामोद्योगोंके बिना जी नहीं सकती। ये सब पूरी तरह एक-दूसरे पर निर्भर हैं। सच तो यह है कि हमें गाँवोंवाला भारत या शहरोंवाला भारत, इनमें से एकको चुनना है। गाँव यहाँ उसी समयसे हैं जबसे यह देश है। शहरोंको विदेशी आधिपत्यने बनाया है। आज गाँवोंपर शहरोंका प्रभुत्व कायम है और वे उनका शोषण कर रहे हैं। नतीजा यह है कि गाँव नष्ट होते जा रहे हैं। मेरी खादी-वृत्ति मुझसे कहती है कि विदेशी सत्ताकी समाप्तिके साथ शहर भी गाँवोंकी सेवाके साधन बनने चाहिए। गाँवोंका शोषण खुद संगठित हिंसा है। अगर हमें स्वराज्यकी रचना अहिंसाके पाये पर करनी है, तो हमें गाँवोंको उनका वाजिब स्थान देना पड़ेगा। यह तब तक नहीं होगा जब तक हम शहरी कारखानोंमें —— चाहे वे कारखाने देशी हों या विदेशी —— बनी चीजोंके बजाय गाँवोंकी बनी चीजें इस्तेमाल करके ग्रामोद्योगोंको फिरसे जीवित नहीं कर देंगे। शायद अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि मैं खादी और अहिंसाको एक ही चीज क्यों कहता हूँ। खादी गाँवकी मुख्य दस्तकारी है। खादी नष्ट हुई कि उसके साथ ही गाँव और अहिंसा दोनों नष्ट हुए। यह मैं आँकडोंसे प्रमाणित नहीं कर सकता। प्रमाण तो खुद हमारी आँखोंके सामने है।

सेगाँव, १४ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१२६. किसीको दबाया नहीं जा रहा है

इसी सप्ताह एक बंगाली सज्जन मुझसे मिलने आये और कहने लगे कि बंगाल तो लड़ाईके लिए तैयार है, मगर कार्य-समिति और खास तौरपर आप उसे दबाकर देश-कार्यको धक्का पहुँचा रहे हैं। यह आरोप गम्भीर है। कार्य-समितिको इसके जवाबमें जो-कुछ कहना होगा, खुद कहेगी। जहाँ तक मुझे मालूम है, उसने किसी प्रान्त या व्यक्तिको नही दबाया। सत्याग्रह-शास्त्रके अधिकारी व्याख्याताकी हैसियतसे मै कह सकता हूँ कि मैंने किसी भी व्यक्ति या संस्थाको कभी नहीं दबाया। सत्याग्रहमें इस तरह दबानेकी गुंजाइश ही नही है। उदाहरणके तौर पर, भले ही अनजान लोगोंने मुझपर राजकोटके लोगोंको दबानेका इल्जाम लगाया है, मगर मैंने उन्हें कभी नही दबाया। उन्हें सत्ताके खिलाफ सविनय-अवज्ञा करनेकी पूरी आजादी थी और आज भी है। किसीको दृढ़ विश्वास होता तो वह अकेला भी सत्याग्रह छेड़ सकता था। अगर वह गलती पर होगा तो वह अपना ही नुकसान करेगा, अपने विरोधीका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। इसी कारण मैंने सत्याग्रहको जहाँ अन्यायका सबसे शक्तिशाली निराकरण कहा है, वहाँ उसे सबसे निर्दोष उपाय भी माना है।

लेकिन राजकोटमें मैंने जो-कुछ किया वह इतना ही था कि सत्याग्रहियोंने मुझे जो अधिकार दिया था, उसे मैंने सविनय प्रतिरोध स्थगित करनेमें इस्तेमाल किया।[1] वे चाहते तो मेरी सलाहको — जिसे आदेश कहना तो उचित नहीं ही होगा — अस्वीकार कर सकते थे। अगर मेरी बात न मानकर वे उत्तरदायी शासन हासिल कर लेते तो मै उन्हें बधाई ही देता।

कुछ पाठकोंको यह याद होगा कि कार्य-समितिने चिरला पेरला[2] में सविनय-प्रतिरोध करनेकी अनुमति देनेसे तो इनकार कर दिया था, लेकिन वहाँके लोगोंको इस बातकी पूरी छूट दी थी कि अगर वे चाहें तो अपनी जिम्मेदारी पर सविनय प्रतिरोधकी घोषणा कर सकते हैं। इसी तरह बंगाल और दूसरे किसी भी प्रान्तकी इच्छा हो तो वह अपनी पहल और जिम्मेदारी पर सविनय प्रतिरोध कर सकता है। उसे अगर कुछ नही मिल सकता तो वह है मेरी सहमति या समर्थन। और अगर बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी कार्य-समितिकी सत्ताको माननेसे बिलकुल इनकार कर दे तब तो वह जो करना चाहे उसे और भी जोरदार ढंगसे तथा और अधिक औचित्यपूर्वक कर सकेगी। अगर वह अपने प्रयत्नमें सफल रहती है तो उससे उसकी कीर्ति बढ़ेगी, वर्त्तमान नेतृत्वको वह उलट देगी और कांग्रेसपर

१. देखिए खण्ड ६९।
२. देखिए खण्ड २१, पृ० १६-१८।

हुकूमत करनेकी योग्य पात्र साबित होगी और उसपर हुकूमत करेगी भी। मैंने सफल सविनय प्रतिरोधकी शर्तें तो बता ही दी है। लेकिन अगर बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी यह समझती हो कि आम मुसलमान कांग्रेसके साथ है, अगर वह यह मानती हो कि हिन्दू और मुसलमान दोनों संघर्षके लिए तैयार है, यदि उसकी दृष्टिमें न तो अहिंसा और न चरखा ही जरूरी है या यह कि चरखेसे अहिंसाका कोई सम्बन्ध नही है—और इस सबके बावजूद वह लड़ाई नही छेड़ती तो वह खुद अपने प्रति और देशके प्रति भी बेईमान मानी जायेगी। जो बात मैंने कही है वह भारतके हर प्रान्त, हर हिस्सेपर लागू होती है। लेकिन सबसे अधिक अनुभवी सत्याग्रहीके नाते मैं सबको इतनी चेतावनी जरूर दूंगा कि जो भी उचित प्रशिक्षण और सत्याग्रहकी शर्तोंकी ठीक समझके बिना सविनय प्रतिरोधकी घोषणा करेगा, वह अभीष्ट कार्यका सत्यानाश करने-वाला ही साबित हो सकता है।

सेगाँव, १४ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-१-१९४०

१२७. ऐच्छिक श्रम-कर

यदि कांग्रेसके सभी प्राथमिक सदस्य स्वराज्य-यज्ञके निमित्त कातने लगें तो उसका खादी पर क्या असर होगा? यह प्रश्न मैंने श्री कृष्णदास गांधीसे पूछा था। उत्तरमें उन्होने निम्नलिखित आँकड़े प्रस्तुत किये है .

१. प्राथमिक सदस्योंकी संख्या .. ४० लाख

२. प्रति सदस्य सालाना १२००० गज सूतके हिसाबसे उनके योगदानका मूल्य प्रति व्यक्ति १ रुपया २ आने हुआ। बढ़ाकर अनुमान लगाने की गलती न हो जाये, इसलिए इस मूल्यको हम प्रति व्यक्ति १ रुपया ही रखें तो इस हिसाबसे कुल सालाना मूल्य हुआ .. ४० लाख रुपये

३. योगदानमें दिये गये सूतसे तैयार की गई खादी का मूल्य .. ४८ लाख रुपये

१९३९ में खादीकी अनुमानित वार्षिक बिक्रीका मूल्य .. ७५ लाख रुपये

इसलिए अ० भा० चरखा संघ की खादीका कुल मूल्य (७५ लाख रुपये + ४८ लाख रुपये) .. १२३ लाख रुपये

अ० भा० चरखा संघ का लागत-मूल्य (१२३ लाख रुपये – ४० लाख रुपये) .. ८३ लाख रुपये

इसका मतलब होगा खादी-उत्पादनमें वृद्धि .. ८४%
या खादीके बिक्री-मूल्यमें कमी की सम्भावना .. ३२.५%
या दूसरी तरहसे देखें तो कतैयोंकी मज-
दूरीमें वृद्धिकी सम्भावना .. ८०% से १००%

२. अ० भा० च० सं० के नियमोंमें एक ऐसी व्यवस्था है जिसके मुताबिक कोई सदस्य चाहे तो योगदानमें दिया अपना सूत वापस ले सकता है, जिसके लिए उसे कपासकी कीमत काटकर सूतका बाकी मूल्य, अर्थात् १ रु०–५ आना = ११ आना, चुकाना पड़ता है।

यदि इस सुविधाका लाभ सभी सदस्य उठाते हैं तो
अ० भा० च० सं० को प्राप्त होंगे नकद .. २७.५ लाख रुपये
फलतः
अ० भा० च० सं० के पास जो खादी बच
जायेगी उसका लागत-मूल्य होगा (७५ लाख
रुपये – २७.५ लाख रुपये) .. ४७.५ लाख रुपये
इस तरह संघ चाहे तो बिक्री-मूल्यमें पहले
हिसाबमें बताये गये ३२.५%के बजाय कमी कर सकेगा
लगभग .. ३७%

यदि योगदानमें दिया गया सूत कुल ४० लाख रुपयेका हो तो एक सदस्यको प्रति वर्ष ८ आनेसे अधिक अपनी जेब से नहीं देना पड़ेगा। यह ८ आना अगर सदस्य पिंजाई नहीं करता तो कपासका और पिंजाईका मूल्य होगा। यदि वह पिंजाई खुद करे, जैसी कि उससे अपेक्षा की जाती है, तो उसे अपने पाससे और भी कम देना पड़ेगा। ध्यान रहे कि सूतका अंक जितना ही अधिक होगा, कपासका खर्च उतना ही कम और श्रमके रूपमें दिया जानेवाला योगदान उतना ही ज्यादा होगा।

जिन लोगोंके मनमें खादीके खिलाफ कोई पूर्वग्रह नहीं बन गया है उन्हें उपर्युक्त आँकड़ोंसे सोचनेको काफी मसाला मिलेगा। यदि सभी खादी पहनने लगें और सभी मात्र ३३ गज नहीं, बल्कि कमसे-कम १०० गज प्रतिदिन कातने लगें तो परिणाम क्या होगा, इसका हिसाब लोग खुद ही लगाकर देख लें। अ० भा० चरखा संघ को इतना सूत देकर खादीकी कीमत कम की जा सकती है; या फिर गरीब लोग अपनी जरूरतके कपड़ेके लिए खुद कातने लगें। इन दोनों बातोंमें परिणामकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। सूतका ऐसा दान एक प्रकारका ऐच्छिक श्रम-कर होगा।

सेगाँव, १४ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१२८. भारतके संघर्षपर अंग्रेजोंकी राय

एक मित्रने 'कैम्ब्रिज रिव्यू' से दो कतरनें भेजी हैं, जो नीचे दे रहा हूँ।[1] इनपर हस्ताक्षर करनेवाले स्त्री और पुरुष जाने-माने विद्वान हैं। इन कतरनोंको मैं यह दिखानेके लिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि चिन्तनशील अंग्रेज स्त्रियाँ और पुरुष जहाँ पहले भारतके प्रति उदासीन थे, वहाँ अब वे भारतकी समस्याका अध्ययन कर रहे हैं और भारतके स्वातन्त्र्य-संघर्ष को खुले दिलसे अपना समर्थन दे रहे हैं।

सेगाँव, १४ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१. "वर्णनातीत गरीबी और सामन्तवादी विसंगतियोंके विरुद्ध" भारतके लोग जो संघर्ष कर रहे थे उसमें उनके प्रति एलीन पावर, सुसन स्टेबिंग, एम० एच० डॉब, डेविड हार्डमैन, एच० एल० एल्विन, हैरल्ड जे० लास्की, जोसेफ नीधम और जे० रॉबिन्सनने एक पत्रमें अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट की थी तथा उनको अपना सक्रिय सहयोग देनेकी इच्छा व्यक्त की थी। भारतके सम्बन्धमें सूचना देने तथा कांग्रेसकी नीतिकी व्याख्या और हिमायत करनेके उद्देश्यसे कैम्ब्रिजमें भारतीय स्वातन्त्र्य समितिकी स्थापनाका उन्होंने स्वागत किया था।

एक दूसरे पत्रमें आर० आर० पिट्म और एम० जे० सी० हॉजर्ट ने राष्ट्रीय सरकार की भारत-सम्बन्धी नीतिका विरोध किया था। उन्होंने लिखा था: "भारतके लोग स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रकी माँग राजनैतिक और आर्थिक पिछड़ापन दूर करनेके लिए कर रहे हैं। १५० वर्षकी विदेशी सत्ताने इसके लिए बहुत ही कम अथवा कुछ भी नहीं किया है। इन चीजोंको न देनेवाला कोई भी समझौता सन्तोष-प्रद नहीं हो सकता और उसका परिणाम संघर्ष और अव्यवस्थाके सिवाय दूसरा कुछ नहीं हो सकता।" वयस्क मताधिकार लागू करनेके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रस्तावकी हिमायत करते हुए इन लेखकोंने लिखा था: "स्वतन्त्रतामें सच्ची आस्था रखनेवाला कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय इस प्रस्तावका विरोध नहीं कर सकता, और यह एक ऐसी माँग है जिसके साथ ब्रिटिश लोगोंकी पूरी सहानुभूति है।" उनकी रायमें औपनिवेशिक दर्जा भी अर्थहीन था, क्योंकि ब्रिटेनके साथ भारतीय लोगोंका कोई भी सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा जातीय सम्बन्ध नहीं है।"

१२९. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेगाँव, वर्धा
१४ जनवरी, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मैंने आपका बम्बईमें दिया भाषण[1] बार-बार पढ़ा। लेकिन यह पत्र मैं आपके सामने अपनी कठिनाइयाँ रखनेको लिख रहा हूँ। वेस्टमिन्स्टर स्टैच्यूटमें परिभाषित औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्य एक-दूसरेके पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। यदि ऐसा है तो क्या आपके लिए उसी शब्दका प्रयोग करना ठीक नहीं होगा जो भारतके मामलेमें उपयुक्त है?

मुझे इस बातमें तो कोई सन्देह नहीं है कि अल्पसंख्यकोंकी समस्याके सम्बन्धमें आपने जो रवैया अपनाया है, उसे अपनानेके लिए आपके पास ठीक कारण थे। लेकिन उस समस्याका आपने जिस तरहसे उल्लेख किया है, उससे उसके फलितार्थोंके बारेमें मेरे मनमें गम्भीर शंकाएँ हैं। अनुसूचित जातियोंका उल्लेख मेरी समझमें बिलकुल नहीं आया।

अगर आपको लगे कि आप मुझसे मिलना चाहेंगे तो बस एक पत्र या तार भेज दीजिए।[2] इस महीनेकी २२ तारीख तक तो मैं शायद कार्य-समितिके काम-काजमें व्यस्त रहूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३५) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. वाइसरायके १० जनवरीके इस भाषणके लिए देखिए परिशिष्ट २।

२. १७ जनवरीको इसका उत्तर देते हुए लॉर्ड लिनलिथगोने गांधीजी को लिखा था कि आप २९ जनवरीके बाद किसी भी दिन बातचीतके लिए आ सकते हैं।

१३०. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

१४ जनवरी, १९४०

चि० बबुड़ी,

बच्चेके बारेमें सुशीलाने मुझे लिखा है। मैंने गंगाबहनको पत्र लिखवाया है, वह खुद भी तुझे सीधे पत्र लिखेगी। तू भी उसे लिखना। सबसे अच्छी बात तो यह है कि अगर तू दूध, फल और सागभाजी ठीक परिमाणमें खा सके, तो तेरा दूध पुष्टिकर होगा और उससे बच्चेको फायदा होगा। साबूदानेकी खीर लो।

मेरे सूतका कपड़ा तो अभी बुना नहीं गया। मेरी धोतियोंमें से अच्छा कपड़ा यदि और चाहिए तो भेज दूँ। आशा है तुम दोनों आनन्दमें होगे। तू खूब आराम करना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२५) से; सौजन्य . शारदाबहन गो० चोखावाला

१३१. बातचीत : अंग्रेज शान्तिवादियोंके साथ[1]

सेगाँव

[१५ जनवरी, १९४० से पूर्व][2]

. . . भारतने जो स्थिति अपनाई है उसका औचित्य तो इन शान्तिवादियों की समझमें आता था, लेकिन जो बात समझमें नहीं आ रही थी वह यह थी कि जब गांधीजी ने मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको न्याय-सम्मत माना है और वे कहते हैं कि ब्रिटेनकी विजयके लिए वे प्रभुसे प्रार्थना करेंगे तो उन्होंने कांग्रेसको यह सलाह कैसे दी कि वह ब्रिटेनको सहयोग न दे।

. . . गांधीजी ने उन्हें समझाया कि कांग्रेस सहयोग या असहयोग जो भी कर सकती है वह नैतिक ही होगा, भौतिक नहीं। इसलिए कांग्रेस सहयोग करे अथवा असहयोग, उससे ब्रिटेनकी स्थिति पर कोई भौतिक प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि भारतके मातहत देश होनेके कारण ब्रिटेन आदमी और पैसेकी जो मदद उससे जबरन ले रहा है वह तो उसे मिलती ही रहेगी। जब अहिंसक भारत

१ और २. महादेव देसाईके १५ जनवरी, १९४० को लिखे "ए पैसिफिस्ट्स डाउट्स" शीर्षक लेखसे उद्धृत

ब्रिटेनकी विजयकी कामना करता है तो इस भावसे नहीं कि ब्रिटेन चाहे सही हो या गलत, वह जीत जाये, बल्कि उसमें उसका भाव यह है कि जर्मनीके खिलाफ युद्धमें उतरनेमें ब्रिटेनका पक्ष गलत कम और सही अधिक है, इसलिए उसकी विजय हो। लेकिन अगर भारतके सन्दर्भमें युद्ध-लक्ष्योंकी कोई सन्तोष-जनक घोषणा नहीं की जाती तो ब्रिटेनको उसका नैतिक समर्थन नहीं मिलेगा। दूसरी ओर यदि कांग्रेस हिंसा-अहिंसाकी परवाह करना छोड़ दे तो परिणाम बिलकुल भिन्न होगा। उस हालतमें वह विद्रोह भड़काकर ब्रिटेन के मार्गमें प्रभावकारी ढंगसे बाधा डाल सकती है।

[प्र०] : जो स्थिति है उसमें शारीरिक हिंसा तो नहीं, अलबत्ता मानसिक हिंसा होगी, यही न?

[उ०] : आपका कहना शायद ठीक हो। लेकिन असहयोग जब किया जायेगा तब वह अहिंसात्मक ही होगा। मानसिक हिंसामें कोई शक्ति नहीं होती और उससे अगर किसीका नुकसान होता है तो खुद उस व्यक्तिका जिसके विचार हिंसामय हैं। मगर मानसिक अहिंसाके साथ बात उलटी है। इसमें जो शक्ति है उसके दर्शन अभी दुनिया नहीं कर पाई है। और जो चीज मैं चाहता हूँ वह है मन और कर्मकी अहिंसा।

ब्रिटेनको भारतका ऐसा अहिंसात्मक समर्थन तभी मिल सकता है जब उसका पक्ष स्पष्ट रूपसे न्यायसम्मत दिखे, भले ही किसी शान्तिवादीकी दृष्टिसे उसके साधन हिंसामय और इसलिए बुरे ही क्यों न हों। यदि वह भारतके प्रति न्याय बरतना नहीं चाहता, अर्थात् अगर वह भारतके विभिन्न पक्षोंकी सहमतिका टंटा खड़ा किये बिना खुद अपनी ही पहलपर भारतके साम्राज्य-वादी शोषणके कलंकसे अपनेको मुक्त करनेको तैयार नहीं है, तो उसका पक्ष न्यायसम्मत नहीं माना जायेगा। इसलिए अहिंसक भारत ब्रिटेनकी विजयके लिए तो तभी प्रभुसे प्रार्थना करेगा जब इंग्लैंड स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा कर दे कि भारत अब व्यावहारिक दृष्टिसे स्वतन्त्र राष्ट्र है और यथासम्भव शीघ्र ही — हो सकता है, इस युद्धके दौरान ही — वह कानूनी तौर पर भी स्वतन्त्र हो जायेगा। और ऐसी घोषणा वह हृदयसे तभी कर सकेगा जब वह अपने बाहु-बलसे अधिक अहिंसक भारतके नैतिक समर्थनकी कार्य-साधक शक्ति पर भरोसा करने लगेगा। यदि इग्लैंड यह कदम उठाये तो इस युद्धका अन्त शान्तिके रूपमें होगा — श्रेष्ठ शस्त्रास्त्रोंके बल पर जीती गई शान्ति नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति द्वारा प्राप्त की गई सच्ची शान्तिके रूपमें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-१-१९४०

१३२. खुशीकी बात

जिन्ना साहबने जिस दिनको मुक्ति और ईश्वरके प्रति आभार माननेका दिन घोषित किया था[1] उसी दिन गुलबर्गाके मुसलमानोंने मुझे निम्नलिखित तार भेजा: "मुक्ति-दिवसका अभिनन्दन। कायदे आजम जिन्ना जिन्दाबाद।" इसे मैंने मुझे चिढानेके लिए भेजा गया तार माना। मगर तार भेजनेवालोको क्या पता था कि इसे भेजनेमें उनका जो उद्देश्य था वह पूरा नही हो पायेगा? तार मिला तो मैंने भी मूक रूपसे भेजनेवालोके साथ यही कामना की कि "कायदे आजम जिन्ना जिन्दाबाद"। कायदे आजम मेरे पुराने साथी हैं। अगर आज कुछ बातोमें हमारा मतभेद है तो उससे क्या? उससे उनके प्रति मेरी सद्भावनामें कोई फर्क नही पड़नेवाला है।

लेकिन मै कायदे आजमका अभिनन्दन करूँ, इसका उन्होने एक विशेष कारण प्रस्तुत कर दिया है। ईदके दिन उन्होने रेडियो पर जो सुन्दर भाषण दिया, उसके लिए बधाई देते हुए मैंने सहर्ष उन्हें एक तार भेजा। और कांग्रेसकी नीतियो और राजनीतिके विरोधी सभी दलोंसे वे जो समझौते कर रहे है, उससे तो अब वे और भी बधाईके पात्र हो गये है। ऐसा करके वे मुस्लिम लीगको साम्प्रदायिक दलदलसे निकालकर एक राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे है। उनके इस कदमको मै सर्वथा उचित मानता हूँ। देखता हूँ, जस्टिस पार्टी और डॉ० अम्बेडकरके दलने तो जिन्ना साहबके दलके साथ गठजोड़ कर भी ली है। अखबारोमें यह खबर भी है कि हिन्दू महासभाके अध्यक्ष श्री सावरकर जल्दी ही उनसे मिलनेवाले है। जिन्ना साहबने जनताको खुद ही यह जानकारी दी है कि बहुत-से गैर-कांग्रेसी हिन्दुओने उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की है। इस नई हलचलको मै बहुत शुभ मानता हूँ। अगर देशमें मुख्यत. दो ही दल — कांग्रेस और गैर-कांग्रेस दल, या अगर किसीको ज्यादा पसन्द हो तो कहिए, कांग्रेस-विरोधीदल — हो तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है? जिन्ना साहब 'अल्पसख्यक' शब्दको एक नया और अच्छा अर्थ दे रहे है। कांग्रेस बहुमत सवर्ण हिन्दुओ, अवर्ण हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियो, ईसाइयों और यहूदियो सबको मिला-जुलाकर बना है। इसलिए यह विभिन्न वर्गोंके एक विशेष मत और अभिप्राय रखनेवाले लोगोके एक मंच पर आ मिलनेसे बना बहुमत है। उधर जिन्ना साहब जो गठजोड़ तैयार करनेकी कोशिश कर रहे है, वह विभिन्न वर्गोंके एक अन्य प्रकारका मत और अभिप्राय रखनेवाले लोगोका अल्पसख्यक संगठन होगा। यह अल्पसंख्यक दल अपनी सेवा और सत्कार्योंके बल पर निर्वाचकोकी नजरोंमें ऊपर उठकर किसी भी दिन बहुसंख्यक

१. देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० २१-२३।

दलका रूप ले सकता है। विभिन्न पक्षोंका इस प्रकारका संगठन एक ऐसी चीज है जिसके साकार होनेकी कामना सबको हृदयसे करनी चाहिए। यदि कायदे आजम ऐसा संगठन सम्पन्न कर सके तो केवल मैं ही नहीं, बल्कि सारा भारत एक स्वरसे बोल उठेगा: "कायदे आजम जिन्ना जिन्दाबाद।" कारण, ऐसा करके कायदे आजम उस स्थायी और जीवन्त एकताकी स्थापना करेंगे जिसके लिए, मुझे पूरा यकीन है, समग्र राष्ट्र तरस रहा है।

सेगाँव, १५ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१३३. मेरा गुनाह

पंजाबकी एक कांग्रेस कमेटीके एक मुसलमान पदाधिकारी द्वारा भेजे गये एक लम्बे अभियोग-पत्रका सारांश नीचे दिया जा रहा है:

> आपके सार्वजनिक वक्तव्योंसे स्पष्ट है कि आप भारतके मुख्य सम्प्रदायोके आपसी मतभेदोंसे बहुत दु:खी हैं। मुसलमानोंके दिलमें केन्द्रमें एक प्रबल बहुसंख्यक दलका स्वाभाविक डर तो है ही, इसके अलावा जो चीज उन्हें साम्राज्यवादी सरकारसे मिलने और कांग्रेसके विरुद्ध खड़ा होनेको मुख्यत: मजबूर कर रही है वह आपका व्यक्तित्व है। वर्तमान घटनाओंका अध्ययन करनेवाला कोई भी आदमी बहादुर और आजादी-पसन्द मुसलमानोंको प्रतिक्रियावादियोंके समुदायमें धकेलनेके लिए आपको ही जिम्मेवार ठहरायेगा।
>
> आपका दावा है कि "कांग्रेस एक ऐसी संस्था है जो शुरूसे ही सर्वथा राजनीतिक रही है और कभी भी साम्प्रदायिक नहीं रही। कांग्रेसने अपना यह दावा बार-बार और हर उपयुक्त अवसर पर सच साबित कर दिखाया है।" आपने लिखा है कि "कांग्रेसने राष्ट्रीय ध्येयके अलावा किसी ध्येयका प्रतिनिधित्व करनेसे इनकार किया है।" इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देशकी राजनीतिक आजादीके लिए एक गैर-फिरकेवार जमातकी शक्लमें संगठित की गई थी। परन्तु जब आप कहते हैं कि "अगर छुआछूत रहती है तो हिन्दू-धर्म नहीं बच सकता", तब आप मानते हैं कि हरिजनोंका उद्धार सिर्फ हिन्दुओंका ही ध्येय है, और हिन्दुओंके लिए जिन्दगी और मौतका सवाल है। इसके बावजूद आपने भारतमें अपनी जिन्दगीके बीस बरसोंमें छुआछूतको मिटानेके लिए कांग्रेसके मंचका इस्तेमाल किया है और इस नामको कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममें शामिल किया है। मुसलमान

आपका हरिजनोंके उद्धारका काम करनेका हक खुशीसे तसलीम करते हैं, बशर्ते कि यह काम अलग मंचसे किया जाये। परन्तु जिस कामको आप खुद खालिस हिन्दुओंका काम मानते हैं, उसे आप कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममें क्यों शामिल करते हैं? ... इस तरह आपने कांग्रेसकी पृष्ठभूमिको इतने प्रचण्ड रूपसे हिन्दूवादी बना दिया है कि मुसलमानोको कांग्रेससे दूर रखनेके लिए कोई खास कोशिश नही करनी पडती। . . . बदकिस्मती यह है कि ज्यादातर कांग्रेसियोमें वही तगदिली और नासमझी है जो आपके नेतृत्वमें है। उनमें से बहुतोंके लिए आजादीका मतलब है २५०० बरस पहलेके जमानेमें पहुँच जाना और आठ करोड़ मुसलमानों पर उनकी मर्जीके खिलाफ अपना मजहब और तहजीब लाद देना।...

लेकिन अगर ठीक नजरियेसे देखा जाये तो कौमी सवालका हल इतना मुश्किल नही है जितना कि लगता है। अगर अब भी समझदारी और फराख-दिलीसे काम लिया जाये तो कौमी एकताको पहुँचे नुकसानका इलाज हो सकता है।

संविधान-सभा भारतकी राजनीतिक समस्याके हलकी एक तरकीब ही नही है, बल्कि मौजूदा हालातमें साम्प्रदायिक गड़बड़ीसे बचनेका सबसे अच्छा एकमात्र तरीका है।... मगर 'हरिजन' में आपकी कलमसे लिखा कोई लेख[1] काफी नही है। सविधान-सभासे सम्बन्धित प्रस्ताव[2] में साफ-साफ शब्दोंमें एक धारा शामिल की जानी चाहिए, जिसमें मुसलमानोंको यकीन दिलाया जाये कि सविधान-सभामें उनके नुमाइन्दे फिरकेवाराना चुनावके तरीकेसे चुने जायेंगे और उनके मजहब और तहजीबसे ताल्लुक रखनेवाले मामलोमें उनके दो-तिहाई नुमाइन्दोंका फैसला बिना रोक-टोक मन्जूर कर लिया जायेगा।

और फिर इस मतलबका महज प्रस्ताव पास करना ही काफी नही होगा। हर मुसलमानको संविधान-सभाका मतलब समझाने, खासकर मुसल-मानोंके नुमाइन्दोके चुनाव और अधिकारोसे सम्बन्धित धाराओका मतलब समझानेके लिए लगातार, बाकायदा और जोरदार प्रचार करना भी जरूरी है। सिर्फ इसी तरीकेसे कांग्रेस मुस्लिम जनताका भरोसा हासिल कर सकती है और इस्लाम और मुस्लिम तमद्दुन खतरेमें हैं, का हौवा खडा करके मुसलमानोंको गुमराह करनेकी कोशिश करनेवालोकी तदबीरोको बेकार कर सकती है।

भारत उसी दिन आजाद हो सकता है जिस दिन कांग्रेस मुसलमानोका भरोसा हासिल करनेमें कामयाब हो जाये। ब्रिटेन संयुक्त भारतको गुलाम बनाये रखनेकी हिम्मत नही कर सकता। इसलिए आजादीकी लड़ाईको हिन्दू-

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ४०७-१०।
२. देखिए खण्ड ७०, परिशिष्ट १०।

मुस्लिम एकताके आदर्श पर चलने और उसके लिए तरीके अपनानेकी शक्ल अख्तियार करनी चाहिए।

शायद एक बात आप पर जाहिर हो गई होगी और वह यह कि हिन्दू-मुस्लिम एकता मुस्लिम लीगसे या किसी और जमात से बातचीत करनेसे कायम नही हो सकती।

मैंने चिट्ठीमें दी गई कोई भी मतलबकी बात नही छोड़ी है। एक जिम्मेवार कांग्रेसी द्वारा लगाया गया यह इलजाम आश्चर्यजनक है। असहयोगका कार्यक्रम अली भाइयों[1] की सलाहसे उस समय स्वीकृत किया गया था[2] जब कांग्रेसको सबसे अधिक प्रभावशाली मुसलमानोंका हार्दिक सहयोग प्राप्त था। इस कार्यक्रममें हिन्दुओ द्वारा अस्पृश्यताका त्याग शामिल था। क्या गैर-हिन्दुओंको हिन्दू-धर्मके शुद्ध होनेसे खुशी नही होनी चाहिए? कांग्रेस अपने मंचसे सामाजिक और धार्मिक सुधारोके लिए इजाजत और प्रोत्साहन क्यों न दे? अहिंसावादी राजनीति नैतिक उत्थानके प्रयत्नोसे अलग नही रखी जा सकती। और पत्र-लेखक यह बात क्यो भूल रहा है कि खिलाफत खुद एक खालिस मजहबी मामला था? उस समय ऐसे गैर-कांग्रेसी हिन्दू थे, और अब भी हैं, जिनका खयाल था और है कि कांग्रेसने खिलाफतका मामला अपने हाथमें लेकर भारी गलती की थी। मेरे मनमें कांग्रेसके कदमके ठीक होनेमें तनिक भी सन्देह नही है। अगर ऐसा मामला फिर उठा तो मैं अपने मुसलमान भाइयोकी मदद करनेमें जान तक देनेमें संकोच नही करूँगा। "मित्र वह होता है जो जरूरतके समय काम आये।" इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि पत्र-लेखक और उनकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोग अपना खयाल दुरुस्त कर लेंगे और मेरी तरह यह मानेंगे कि किसी भी पंथ या सम्प्रदायके सुधारका हर काम उस सारे समाजकी भलाईके लिए होता है जिसके कि वे अंग हैं, और इसलिए उसे सब मंचोंसे प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए।

संविधान-सभाके बारेमें पत्र-लेखकने जो-कुछ कहा है, उसे कांग्रेसने मान लिया है। प्रचार-कार्य भी हो रहा है। मगर कांग्रेसजनोंको और खासकर कांग्रेसी मुसलमानोको हाथपर हाथ धरकर बैठे नही रहना चाहिए — इस आशासे कि कार्य-समिति यह काम करती रहेगी। कार्य-समितिका काम है कांग्रेस-संगठनकी देखरेख करना, मार्ग-दर्शन करना, सलाह देना, और उसके रोजमर्राके कामकी व्यवस्था करना। परन्तु प्रचार-कार्य तभी हो सकता है जब हजारों कांग्रेसजन इसमें दिलचस्पी ले। अगर कांग्रेस द्वारा तैयार किया गया कार्यक्रम दिलचस्प न हो तो कांग्रेसजन मौजूदा रहनुमाओको एक क्षणमें हटा सकते हैं। कांग्रेसके सम्बन्धमें यह बात इस कारण तो खास तौरसे सच है कि उसने अहिंसाको अपनी नीति माना है। उसकी सफलता एक-एक कांग्रेसजनके हार्दिक सहयोग पर निर्भर

१. मुहम्मद अली और शौकतअली

२. ३० दिसम्बर, १९२० को; देखिए खण्ड १९, परिशिष्ट १।

है। इस अर्थमे काग्रेस देशको राजनीतिक शिक्षा देनेका सबसे बड़ा साधन है। जिस किसीका नाम काग्रेसके रजिस्टरमें लिखा जाता है, वह राजनीतिक शिक्षाका उम्मीदवार बन जाता है। ऐसी शिक्षा देनेके लिए एक पुस्तिका होनी चाहिए। और चूँकि बहुत-से काग्रेसी निरक्षर है, इसलिए सम्भव है, वयस्क-साक्षरताका काम हाथमें लेना जरूरी हो जाये और इसके लिए एक खास विभाग खोलना पड़े। मैं पत्र-लेखकसे सिफारिश करूँगा कि वे इस सुझावपर अमल करें। वे यह काम अपने जिलेमें, जहाँ कि वे उप-प्रधान है, शुरू कर सकते हैं। उन्हे मुस्लिम लीगके सदस्यो पर सन्देह नही करना चाहिए। वे उनके देशवासी और सहधर्मी दोनो है। विचारो और नीतियोके भिन्न होनेसे यह जरूरी नही कि हम एक-दूसरेके दुश्मन बन जायें।

सेगाँव, १५ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१३४. पत्र-लेखकों और सन्देश चाहनेवालोंसे[1]

२३ दिसम्बरके 'हरिजन' में मैंने जो सूचना प्रकाशित की थी[2] उसके बावजूद, ऐसे लोगोंने भी मुझे पत्र लिखना और मुझसे सन्देश माँगना जारी रखा है जो मुझे मजेमें बख्श सकते हैं। मेरे इस अनुरोधका क्या कारण है, इसे लोग विस्तारसे जानना चाहे तो मैं उनसे उपर्युक्त सूचना पढ जानेको कहूँगा। मैं जानता हूँ कि कई घनिष्ठ मित्रोंके पत्रोंकी मैंने न कोई पहुँच भेजी है और न उनके माँगे सन्देश भेजे हैं। वे मुझे क्षमा करे। जो जिम्मेदारी मेरे सिर है उसे अगर मै निभाना चाहता हूँ तो मुझे अपना जी कड़ा करना पढेगा। और यह चीज मैं अपने जाने-पहचाने मित्रोंसे ही शुरू करूँ, इससे अच्छा और क्या हो सकता है?

सेगाँव, १५ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-१-१९४०

१. इस अनुरोधकी पुनरावृत्ति *हरिजन* के ३-२-१९४०, १०-२-१९४० और १७-२-१९४० के अंकोंमें की गई थी।

२. देखिए "पत्र-लेखकों और सन्देश चाहनेवालोंसे", पृ० ४९-५०।

१३५. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रूयूजको

वर्धा (म० प्रा०)
१५ जनवरी, १९४०

प्रिय चार्ली,

अगर ठीक समझो तो गुरुदेवको बता दो कि बगालके बारेमें उनके तार[1] और उनकी चिन्ताका खयाल मेरे मनमें बराबर बना हुआ है। मुझे लगता है कि सुभाष परिवारके बिगड़े बच्चेकी तरह व्यवहार कर रहा है। उसके साथ हमारा मतभेद तभी दूर हो सकता है जब उसकी आँखे खोल दी जायें। फिर, उसकी राजनीति और हमारी राजनीतिमें बहुत बड़े अन्तर दिखाई देते है। ये अन्तर पाटे जाने लायक नही जान पड़ते। मुझे स्पष्ट दिखता है कि यह मामला इतना उलझा हुआ है कि इसे सँभालना गुरुदेवके बसकी बात नही है। वे इतना विश्वास रखें कि कार्य-समितिके किसी सदस्यके मनमें व्यक्तिगत रूपसे सुभाषके खिलाफ कोई दुर्भावना नही है। मेरे लिए तो वह पुत्रके समान है। आशा है, तुम स्वस्थ-प्रसन्न होगे।

सप्रेम,

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७५०) से

१३६. विमतवादी

श्री जयप्रकाश नारायण[2] और श्री सम्पूर्णानन्द[3] ने इस महीनेकी २६ तारीख को ली जानेवाली प्रतिज्ञा[4] के अनुबंध के विरुद्ध अपने विचार साफ-साफ व्यक्त कर दिये है। मेरे मनमें उनके प्रति बड़ा आदर है। वे योग्य और बहादुर है और उन्होंने देशकी खातिर कष्ट झेले है। यदि वे मेरे साथी-सिपाही बन जायें तो मैं इसे विशेष लाभ मानूंगा। यदि मैं उन्हे अपने विचारसे सहमत कर सकूं तो मुझे बहुत खुशी होगी। यदि लड़ाई होती है और मुझे उसका सेनापतित्व करना

१. २० दिसम्बर, १९३९ का; देखिए पृ० ५७, पादटिप्पणी ३।
२. अखिल भारतीय कांग्रेस-समाजवादी दलके तत्कालीन महासचिव
३. संयुक्त प्रान्तके भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री
४. देखिए परिशिष्ट १

है तो मैं पूरा विश्वास न करनेवाले या सन्देह करनेवाले सहायकोको लेकर ऐसा नही कर सकूँगा।

मैं लडाईके लिए उतारू नही हूँ। मै लडाईको टालनेकी कोशिश कर रहा हूँ। कार्य-समितिके सदस्योका चाहे कुछ भी खयाल हो, मैं सुभाष बाबूके इस आरोपको स्वीकार करता हूँ कि मै ब्रिटेनके साथ समझौता करनेको तैयार हूँ, बशर्ते कि समझौता सम्मानपूर्ण हो। वस्तुत. यह सत्याग्रहका तकाजा है। इस-लिए मुझे कोई जल्दी नही है। फिर भी, यदि समय आ गया और यदि मेरा कोई साथी न हुआ, तो मुझे अकेले ही लड़ सकना चाहिए। परन्तु ब्रिटेनपर से मेरा विश्वास उठ नही गया है। लॉर्ड लिनलिथगोका ताजा ऐलान[1] मुझे पसन्द है। मुझे उनकी नेकनीयतीमें विश्वास है। उनके भाषणमें कठिनाई पैदा करने-वाली बातें जरूर है। उसकी अनेक बातोका आशय स्पष्ट करनेकी भी जरूरत है। परन्तु उसमें दोनो राष्ट्रोके लिए सम्मानपूर्ण समझौतेके बीज मौजूद जान पड़ते हैं। इसलिए मेरे साथ काम करनेवालोको मेरा यह पहलू समझना चाहिए। हो सकता है कि विमतवादियोकी दृष्टिसे मेरा समझौता करनेका यह स्वभाव एक दोष हो। यदि यह दोष है, तो देशको इसका पता होना चाहिए।

श्री जयप्रकाश नारायणने अपना और समाजवादी दलका दृष्टिकोण स्पष्ट करके अच्छा ही किया है। रचनात्मक कार्यक्रमके बारेमें उनका कहना है :

> **हमने इसे अपने संघर्षके लिए एकमात्र हथियार अथवा पर्याप्त रूपसे कारगर हथियार भी कभी नहीं माना। . . . इन मामलोंमें हमारे विचारोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। बल्कि कहना होगा कि वर्तमान संकटमें राष्ट्रीय नेताओंकी बेबसी देखकर हमारे विचार और पक्के हो गये हैं। . . . उस दिन विद्यार्थियोंको स्कूलों और कॉलेजोंसे बाहर आ जाना चाहिए और मजदूरोंको अपने औजार रख देने चाहिए।**

यदि अधिकाश काग्रेसजनोंके ऐसे विचार हो जिनका प्रतिपादन श्री जयप्रकाश नारायणने समाजवादी दलकी ओरसे किया है, तो ऐसी सेनाका सेनापतित्व करके सफलता प्राप्त करनेकी आशा मै कभी नही कर सकता। उन्हे न कार्यक्रममें विश्वास है, न वर्तमान नेताओमे। मैं उनसे कहूँगा कि उन्होने यह कहकर कि वे कार्यक्रमपर इसलिए अमल करेगे कि "हाई कमान ऐसा चाहती है", अनजाने ही कार्यक्रमकी निन्दा की है। लडाईपर जानेवाली ऐसी सेनाकी कल्पना कीजिए जिसे न अपने हथियारोपर भरोसा हो और न हथियारोंको निर्धारित करनेवाले नेताओपर। ऐसी सेना खुद बरबाद होती है, अपने नेताओको बरबाद करती है और उद्देश्यको विफल कर देती है। अगर मै श्री जयप्रकाश नारायणकी जगह पर होता, और यदि मै अपनेको अनुशासनका पालन करवानेके योग्य मानता तो मैं अपनी पार्टीवालोसे घरोके अन्दर चुप बैठे रहनेको कहता। यदि मैं ऐसा

१. देखिए परिशिष्ट २।

न कर पाता, तो मै खुल्लमखुल्ला विद्रोहका प्रचार करता और प्रभावहीन नेताओके इरादोको खाकमे मिला देता। और फिर वे चाहते है कि छात्र कॉलेजों और स्कूलोसे बाहर निकल आये और मजदूर अपने औजार रख दे। अब यह तो अनुशासनहीनताका पाठ पढाना है। अगर मेरा बस चले तो मै हर छात्रसे तब तक अपने स्कूल या कॉलेजमें रहनेको कहूँ जब तक कि वह छुट्टी नही ले लेता है या प्रिंसिपल समारोहमें भाग लेनेके लिए कॉलेज या स्कूलको बन्द नही कर देता है। मैं मजदूरोंको भी ऐसी ही सलाह दूँ। श्री जयप्रकाश नारायणकी शिकायत है कि कार्य-समितिने स्वतन्त्रता-दिवसपर किये जानेवाले कामका कोई ब्योरा नहीं दिया है। मेरा विचार था कि भाईचारा बढाने और खादीके कार्यक्रमके बारेमे किसी ब्योरेवार हिदायतकी जरूरत नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि हर जगह कांग्रेस कमेटियाँ कताई-प्रदर्शन, खादीकी फेरी आदिका प्रबन्ध करेंगी। मेरे देखनेमे आया है कि कई कमेटियाँ ऐसा कर भी रही है। मुझे आशा थी कि कार्य-समितिके प्रस्तावके प्रकाशित होनेके दिन ही कांग्रेस कमेटियाँ तैयारियाँ शुरू कर देंगी। देश कहाँ तक तैयार है, इसका अन्दाजा मैं काते गये सूतकी मात्रासे ही नही, बल्कि मुख्यत. देश भरमें खादी की बिक्रीकी मात्रासे लगाऊँगा।

अन्तमें श्री जयप्रकाश कहते है : "हमने अपनी तरफसे एक नया कार्यक्रम रखा। वह था क्रान्तिकारी जन-आन्दोलनकी नीवके रूपमें मजदूरो और किसानोको संगठित करनेका कार्यक्रम।" मुझे इन शब्दोसे ही डर लगता है। मैंने दोनोको ही संगठित किया है, मगर शायद उस ढंगसे नही जो ढंग श्री जयप्रकाशके मनमें है। उनके वाक्यके और स्पष्ट किये जानेकी जरूरत है। यदि उन्हे पूरी तरह शान्तिपूर्ण आधारपर संगठित न किया जाये, तो सम्भव है कि वे अहिंसात्मक कार्रवाईको हानि पहुँचायें, जैसा कि उन्होंने रौलट अधिनियम सत्याग्रह[1] के दौरान और बादमें इंग्लैण्डके युवराजके आगमन[2] के विरुद्ध बम्बईमें हुई हड़तालके दौरान किया था।

श्री सम्पूर्णानन्दने आध्यात्मिक प्रश्न उठाया है।[3] उनका विचार है कि मूल प्रतिज्ञामें फेर-बदल नही की जानी चाहिए थी, यद्यपि, जैसा कि उन्होंने कहा है, और ठीक ही कहा है, वह असम्बद्ध थी। उसका रचयिता मैं था। मैं चाहता था कि लोग स्वतन्त्रताके मन्त्रका उच्चारण-मात्र ही न करे, बल्कि वे उसका प्रयोजन और आधार भी समझें। जब मूल प्रतिज्ञाके कुछ अश निरर्थक हो गये तब उसमें संशोधन कर दिया गया। मै स्वतन्त्रताके मन्त्रकी पवित्रताको स्वीकार करता हूँ। वह मन्त्र हमें उस समय मिला था जब लोकमान्य[4] ने पहली बार कहा था "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।" हजारो लोगोने इस

१. १९१९ में ; देखिए खण्ड १५।

२. १७ नवम्बर, १९२१ को; देखिए खण्ड २१।

३. देखिए "पत्र : सम्पूर्णानन्दको", पृ० ८०।

४. बाल गंगाधर तिलक

मन्त्रको ग्रहण किया और इसका बल दिन-प्रतिदिन बढ रहा है। अब यह लाखों-करोडोके हृदयमें प्रतिष्ठित है। मेरी धारणा है कि इस साल इसमें जो अनुबन्ध जोड़ा गया है, वह जरूरी था। इससे मूल मन्त्रकी पवित्रता बढ़ती है और लोगों को पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिमें क्या योगदान दे सकता है।

इसलिए मै महसूस करता हूँ कि श्री सम्पूर्णानन्दके एतराजका असल कारण यह है कि उन्हें रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास नही है। अत उन्होंने कहा है :

> **यदि उसे प्रतिज्ञाका अभिन्न अंग बनानेका यह मतलब है कि हम बड़े पैमाने पर उत्पादन करनेके बजाय कुटीर-उद्योगोंकी नीतिसे प्रतिबद्ध हैं तो समाजवादी होनेके नाते मै इस नीतिको स्वीकार नहीं कर सकता।**

इसमें सन्देह नही कि मै प्रतिज्ञाकी कानूनी व्याख्या नही कर सकता। ऐसी व्याख्या तो कार्य-समिति ही कर सकती है। परन्तु अहिंसात्मक युद्धके ऐलान और सचालनके लिए जिम्मेवार सेनापतिकी हैसियतसे मुझे यह कहना पड़ता है कि इस तरहकी मनोवृत्ति जन-साधारणके बीच प्रचारमें बाधा डालेगी। सम्पूर्णानन्दजी-जैसा नेता या तो संघर्षमें पूरी तरह कूद पड़ता है या उससे अलग रहता है। यदि वे अनुबन्ध पर बेदिलीसे टिप्पणी करेंगे तो जनताके मनमें भ्रम पैदा हो जायेगा। यदि राष्ट्रीय कार्यक्रममें खादीका स्थायी स्थान नही है, तो अनुबन्धमें उसका उल्लेख नही होना चाहिए। यदि कोई और चीज इससे ज्यादा प्रभावकारी है, तो उसे देशके सामने रखना चाहिए। इस खयालसे कि एक बडी लड़ाई सिर पर आ गई है, किसी मामलेको दबानेकी जरूरत नही है। मगर यह जरूरी है कि जिन्हे जिम्मेवारी सौंपी जाये, जैसे कि उन्हे सौंपी ही जायेगी, उनकी उस कार्यक्रम में जिसे उन्हे चलाना है, सच्ची आस्था होनी चाहिए। किसी तरहके दिखावेसे अब काम नही चलेगा।

एक बड़े प्रभावशाली कांग्रेसीने मुझसे कहा है कि इस बार तो ज्यो ही मै सविनय अवज्ञाकी घोषणा करूँगा, जनता उसका जोरदार जवाब देगी। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि भारतके सारे मजदूर और बहुत-से भागोके किसान तुरन्त हड़ताल कर देंगे। मैंने उनसे कहा कि यदि ऐसी बात हुई तो मुझे बडी परेशानी होगी और मेरी सारी योजना अस्त-व्यस्त हो जायेगी। मै स्वीकार करता हूँ कि मेरे सामने निश्चित योजना नही है। मै तो कहता हूँ कि ईश्वर जब मुझे इशारा करेगा तो वह मुझे योजना भी बता देगा, जैसा कि उसने पहले भी किया है। वह हमेशा मेरा ऐसा पथ-प्रदर्शक रहा है जिसने कभी मुझे निराश नही किया है और मेरे तूफान-भरे जीवनमें उसने मुझे सदा सहारा दिया है। अलबत्ता मै यह जानता हूँ कि मै देशके सामने जो भी योजना रखूँगा, उसमें अनियमित रूपसे और जहाँ-तहाँ होनेवाली हड़तालोंकी गुंजाइश नही होगी, क्योंकि उनसे जरूर ही हिंसा होगी और इसलिए अहिंसात्मक संघर्ष अपने-आप बन्द हो जायेगा। इसका परिणाम मेरा बरतरफ कर दिया जाना होगा।

मुझे यकीन है कि समाजवादी नेता और दूसरे विमतवादी यह आशा नही करते कि मैं ऐसे संघर्षमें कूदूँगा जिसके विनाशकारी परिणामकी सम्भावनाका मुझे पहलेसे ही पता हो। मुझे तो ऐसे सहायकों और सिपाहियोंकी जरूरत है जो एकमत होकर काम करें।

यदि हम जैसे-तैसे नाम-मात्रकी स्वतन्त्रता प्राप्त कर भी ले, तो भी अगर हमने मेरे बताये तरीके से लड़ाई न जीती तो हम राष्ट्रके कामोंको सफलतापूर्वक नही चला सकेंगे। सच्ची अहिंसाके बिना पूरी अराजकता फैल जायेगी। मेरा विश्वास है कि कोई मुझसे यह आशा नही करता कि मैं जानबूझकर ऐसा संघर्ष शुरू करूँगा जिसका अवश्यम्भावी परिणाम अराजकता और मार-काट हो।

सेगाँव, १६ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-१-१९४०

१३७. पत्र : मुहम्मद अली जिन्नाको

१६ जनवरी, १९४०

प्रिय कायदे-आजम,

किसी भारतीय नामके पहले 'मिस्टर' लिखनेसे मुझे घृणा है। यह बहुत अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसीलिए नाम-प्रयोगके सम्बन्धमें स्वर्गीय हकीम साहबने मुझे जो तरीका सिखाया था उसीके अनुसार मैं आपको 'जनाब जिन्ना साहब' लिखता आया हूँ। लेकिन अबुल कलाम मुझे बताते है कि [मुस्लिम] लीगी हलकोंमें आपको हमेशा 'कायदे-आजम' कहा जाता है। और संलग्न कागज से आप जान जायेंगे कि गुलबर्गासे मुझे भेजा गया तार किस प्रकार अन्तिम निर्णयका कारण बना है। आशा है आप मेरे इस आश्वासनको स्वीकार कर लेंगे कि यहाँ मैंने जो-कुछ किया है, वह नेकनीयत और आपके प्रति आदरकी भावनासे किया है। फिर भी यदि आप चाहते है कि मैं आपको किसी दूसरे प्रकारसे सम्बोधित करूँ तो मुझे आपकी इच्छा मान्य होगी।

'हरिजन' के लिए जो लेख[1] मैंने भेजा है, उसकी संलग्न अग्रिम प्रति आपको भेजनेके मकसदसे मैंने यह पत्र लिखा है। आपके हालके सन्देशों और कार्योंमें मुझे आपका जो उद्देश्य दिखाई पड़ा है, उसीको आगे बढ़ानेके विचारसे मैंने उक्त लेख लिखा है। जिस ऊँची मंशाका श्रेय आपको दिया गया है, मैं जानता हूँ कि आपमें उस ऊँचाई तक उठनेकी क्षमता है। आप कांग्रेसका विरोध करते है, इसका मैं बुरा नही मानता। लेकिन कांग्रेसका विरोध करने-

१. देखिए "खुशीकी बात", पृ० १२९-३०।

वाले सभी दलोको एकमें मिलानेकी आपकी जो योजना है उससे आपके आन्दोलन को सहज ही राष्ट्रीय स्वरूप मिल जाता है। यदि आप इसमें सफल होते हैं तो आप देशको साम्प्रदायिक दु:स्वप्नसे उबार लेंगे और, मेरी विनम्र रायमें, आप मुसलमानों तथा अन्य जातियोका मार्ग-दर्शन करेंगे, जिसके लिए सिर्फ मुसलमान ही नही बल्कि अन्य सभी जातियाँ भी आपका आभार मानेंगी। मैं आशा करता हूँ कि मेरी व्याख्या सही है। यदि मैं गलती कर रहा हूँ तो कृपया मुझे सुधारे।

यह बिलकुल व्यक्तिगत, निजी तथा दोस्ताना पत्र है। लेकिन यदि आप आवश्यक समझें तो इसका सार्वजनिक उपयोग करनेके लिए आप स्वतन्त्र हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
लीडर्स कॉरेस्पांडेंस विद मि० जिन्ना, पृ० ५०-५१

१३८. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

[१७ जनवरी, १९४०][1]

इसी १४ तारीखको आपको पत्र लिखने के बाद मुझे सर्वश्री भूलाभाई देसाई,[2] मुन्शी[3] और खेर[4] को दी गई आपकी मुलाकातोका विवरण देखने को मिला है। आपके भाषण[5] का अध्ययन करनेके बाद मनपर जो छाप पड़ी थी, इन विवरणोको देखकर उससे बिलकुल अलग धारणा बनती है। यदि इनसे आपके सोचनेके तरीकेका सही आभास मिलता है तो आपके भाषणको देखकर मैंने जितना सोचा था, समझौता हो पाना उससे कही अधिक कठिन लगता है और शायद अभी हमारी मुलाकातका ठीक वक्त नही आया है। लेकिन इसका निर्णय तो सिर्फ आपको ही करना है। मै नही चाहता कि मेरे १४ तारीखके पत्रके कारण आप मुझे मुलाकातके लिए बुलाकर किसी अटपटी स्थितिमे पडें। पता नही क्यो, मेरी ऐसी भावना है कि हम मिले तो ऐसी स्थितिमें मिले जिसमे अन्तिम रूपसे कोई समझौता कर सकें। लेकिन आगे क्या होगा, उसके बारेमें मुझे अभीसे कोई धारणा नही बनानी चाहिए।[6]

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३६) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. लॉर्ड लिनलिथगोके २१ जनवरीके पत्रके आधारपर
२. केन्द्रीय विधान-सभामें विपक्षके नेता; वाइसरायसे इन्होंने १३ जनवरीको मुलाकात की थी।
३. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीसे १२ जनवरीको हुई मुलाकातके विवरणके लिए देखिए परिशिष्ट ३।
४. बी० जी० खेर, बम्बईके भूतपूर्व मुख्यमन्त्री
५. देखिए परिशिष्ट २।
६. देखिए "पत्र लॉर्ड लिनलिथगोको", पृ० १५९।

१३९. पत्र : डॉ० चोइथराम गिडवानीको

[१८ जनवरी, १९४० से पूर्व][1]

डॉ० चोइथराम पी० गिडवानीको लिखे एक पत्रमें महात्मा गांधीने सिन्ध हिन्दू महासभाके मन्त्रीको इस बातका खण्डन किया है कि सक्खरके दंगों पर हिन्दुओंका दृष्टिकोण सुननेके लिए उन्होंने सक्खर हिन्दू महासभाके अध्यक्ष श्री वीरूमल बेगराज और मन्त्री श्री भोजराज अजवानीको वर्धा आनेको निमन्त्रित किया है। महात्मा गांधीका कहना है कि उन्होंने सिन्धसे किसीको भी मिलने आनेको निमन्त्रित नहीं किया है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १९-१-१९४०

१४०. पत्र : शार्दूलसिंह कवीश्वरको

सेगाँव, वर्धा
१८ जनवरी, १९४०

प्रिय कवीश्वर,

मुझे आश्चर्य है कि ज्ञानीजीको मेरी बात पर इतनी भारी गलतफहमी हुई। मैंने तो यह कहा था कि तुमने कभी भी सिखोंका प्रतिनिधित्व करनेका दावा नही किया है और यह इस अर्थमें कि तुम सम्प्रदायवादसे परे हो। जो-कुछ कहा गया वह तुम्हारी प्रशसाके रूपमें कहा गया था। किन्तु जिस प्रकार अस्पृश्यताको हिन्दू-धर्मका अंग माननेवाले हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व करनेसे इनकार करके भी मैं हिन्दू बना रहता हूँ, उसी प्रकार तुम भी सिख बने रहते हो।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

1. यह दिनांक "बम्बई, १८ जनवरी, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

१४१. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
१८ जनवरी, १९४०

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला। तू बापासे मिल आई, अच्छा किया। यह जगह तो अस्पताल बन गई है। जयरामदास, कुँवरजी, किशोरलाल, वालजीभाई बीमार हैं। अच्छे होते जा रहे हैं। बा अभी नहीं आई है। लक्ष्मीको कमजोरी है। देवदास बीमार हो गया था। कनु २२ को आयेगा। मुझे शायद शान्तिनिकेतन जाना पड़े। यो अभी कुछ तय नही है।

तुम दोनोको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२२) से। सी० डब्ल्यू० ४६१४ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पचोली

१४२. पत्र : अब्दुल खलीलको

सेगाँव, वर्धा
१८ जनवरी, १९४०

भाई अब्दुल खलील,

तुमारा खत मैं आज ही पढ़ सका। तुम लिखते है वह सही है तो खेदकी बात है। मैं तलाश करूंगा।

मो० क० गांधी

भाई अब्दुल खलील
मार्फत मुन्शी अब्दुल वहाब साहब
बैजनाथ पारा
रायपुर (म० प्रा०)

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६१) से

१४३. पत्र : जयप्रकाश नारायणको

[१९ जनवरी, १९४० से पूर्व][1]

तुम्हारा विरोध[2] उचित है और तुमने उसे प्रकट भी बहुत संयत भाषामें किया है। तुम अन्यथा कुछ कर भी नहीं सकते थे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-१-१९४०

१४४. तार : वल्लभराम वैद्यको

वर्धा
१९ जनवरी, १९४०

वल्लभराम वैद्य
आका सेठ कुवानी पोल
अहमदाबाद

अजीर्णसे ग्रस्त शंकरलाल वैंकरकी जाँच करके सूचना दें। जरूरी समझें तो तार दें।

गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० २९१२)से; सौजन्य : वल्लभराम वैद्य

१४५. पत्र : रामदास गांधी और उनके परिवारको

सेगाँव, वर्धा
१९ जनवरी, १९४०

चि० रामा,

तेरी लिखावट पढ़कर मुझे सन्तोष हुआ। जैसे राम हमें रखे वैसे ही हम रहें।

चि० नीमु,

तेरा पत्र पढ़ा। मैंने तो तुझसे पोस्टकार्ड पर मात्र एक लाइन माँगी थी। अब तो अवश्य ही तुझे हर सप्ताह पत्र भेजनेका समय मिलेगा।

१. यह दिनांक "लखनऊ, १९ जनवरी" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. स्वतन्त्रता-दिवसकी प्रतिज्ञाके परिशिष्टके प्रति; देखिए "विमतवादी", पृ० १३४-३८।

चि० सुमी,

तेरा पत्र तो अच्छा गिना जायेगा। किन्तु तुझे स्याही इस्तेमाल करनी चाहिए और एक-एक अक्षर मोती जैसा हो।

चि० कानम,

जब तुम मुझे अपनी पढ़ाई-लिखाईसे, और वैसे ही दूसरे कामोसे भी सन्तुष्ट कर दोगे, तब देखोगे कि मेवा तुम्हारी जेबमें ही है।

चि० उषा[1],

अपने अक्षर सुधार। यहाँ काफी मरीज हैं। वालजीभाईका कोई वहाँ हो तो कहना कि उनके लिए जरा भी चिन्ता न करें। उनकी समुचित देखभाल हो रही है और वह भी खुश रहते हैं। बा अभी भी दिल्लीमें है और कुछ समय वहीं रहेगी।

बापूके आशीर्वाद

श्री रामदास गांधी
दक्षिणामूर्ति
भावनगर, काठियावाड़

मूल गुजरातीसे : निर्मला गांधी पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१४६. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
१९ जनवरी, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। विजयाका पता यह है: आंबला, वरास्ता सोनगढ़ काठियावाड़।

यदि तू यहाँ आकर एक महीना रह जाये, तो तेरे काममें बिलकुल हर्ज नही होगा। और अगर तू खटियामें पड़ जाये या तुझे पिताजीकी मददके लिए जाना पड़ा तो क्या होगा? तबीयत खूब बिगड़ जानेपर आनेकी बजाय अभी आकर तबीयत सुधार लेनी चाहिए। राजेनबाबूसे पूछेगी तो वे भी यही कहेंगे। वहाँ काम कैसे किया जाये, इसका उत्तर तो सीधा है। यदि मन लगाकर कातनेवाली एक-दो बहनें भी मिलें, तो उनपर जितनी बने उतनी मेहनत की

१. रामदास गांधीकी पुत्री

जाये। घर-घर जाकर जितनी खादी बेची जा सके उतनी बेचना। स्त्रियोंकी भजन-मंडली बनाना। उन्हें अक्षरज्ञान कराना। गरीब स्त्रियोंमें भी जाना, उनमें साक्षरताका प्रसार करना। हरिजन बस्तीमें जाना, वहाँकी स्त्रियोंसे मिलना। इस प्रकार यदि तेरा शरीर काम दे तो काम को जितना बढाना चाहे उतना बढ़ा सकती है। धीरे-धीरे और स्त्रियाँ भी आकर तेरे साथ मिल जायेंगी। लेकिन सच बात यह है कि तेरा शरीर पूरा काम नही देता। पूरी तैयारी भी तू नही कर सकती। तूने पहलेसे अपना कार्यक्रम नही बनाया है, इसलिए तुझे लगता है कि कोई काम ही नही है।

यहाँ बरसात खूब हो चुकी है।

सुशीला दिल्लीमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४३) से

१४७. पत्र : केशवराम रा० त्रिवेदीको

१९ जनवरी, १९४०

भाई केशवराम,

तुम्हारे पत्रका जवाव बड़ी देरसे दे रहा हूँ। तुम लक्ष्मीदास भाई[1] से सलाह लो।

बापूके आशीर्वाद

केशवराम रामशंकर त्रिवेदी सिसोदरावाला
शुद्ध खादी भण्डार
नवसारी
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से

१. लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर, एक आश्रमवासी खादी-विशेषज्ञ

१४८. टिप्पणियाँ

साम्राज्यवाद सहज ही नहीं मरनेवाला

मैं अखबार नही पढ़ पाता, सिर्फ कभी-कभी शीर्षकों पर नजर डाल लेता हूँ। इसलिए प्यारेलाल विभिन्न अखबारोसे कतरनें एकत्र करके मुझे दे दिया करते हैं। कभी क्षण-दो क्षणकी फुरसत मिल जाती है तो इन्हें पढ़ लेता हूँ। संयोगसे मुझे एक ऐसी कतरन देखनेको मिली जिसमें इस बातकी हिदायतें दी गई है कि इस महीनेकी १६ तारीखको सयुक्त प्रान्तके जिन लोगोंको गवर्नर महोदयसे अलंकरण प्राप्त करना था उन्हे गवर्नर महोदयको नमन कैसे करना चाहिए :

> **जब सचिव आपका नाम पढ़कर सुनायें तो आप कालीनके किनारे पर चले जाइए और वहींसे गवर्नर महोदयको नमन कीजिए।**
>
> **इसके बाद कालीनके बीचमें चले जाइए और वहाँ फिर नमन कीजिए।**
>
> **अब जिस मंचपर गवर्नर महोदय खड़े होंगे उसके नीचे तक बढ़ जाइए। वहाँ फिर नमन कीजिए।**
>
> **इसके बाद गवर्नर महोदय आपको अलंकृत करके आपसे हाथ मिलायेंगे। इस समय फिर आपको उन्हें नमन करना चाहिए।**
>
> **अब चार कदम पीछेकी ओर चलकर फिर नमन कीजिए।**
>
> **इसके बाद घूमकर अपनी जगह पर चले जाइए।**
>
> **टोपी या पगड़ी लगाकर आनेवाले सेना या पुलिसके सभी अधिकारी सलामी दें, नमन नहीं करें।**
>
> **नोट — नमन करनेमें कमर नहीं, बल्कि सिर्फ सिरको आगेकी ओर झुकाना चाहिए।**

सर सैम्युअल होरका कहना है कि साम्राज्यवाद मर चुका है। हर कांग्रेसी जानता है कि वह मर रहा है। इन हिदायतोसे पता चलता है कि वह मरेगा, लेकिन सहज ही नही। मुझे नही मालूम था कि जलील करनेका यह तरीका अब भी कायम है। अलकरण तो खुद ही साम्राज्यवादकी निशानी है। वे लोगों पर रोब गाँठने, उन्हें खरीदनेके साधन है। वे तथाकथित निष्ठापूर्ण सेवाओंके पुरस्कार हैं और यदा-कदा उनके पीछे प्रतिष्ठित लोगोंकी प्रशंसा या मूक समर्थन पानेका भी उद्देश्य होता है। जब इन अलंकरणोके साथ अपमानजनक रितियां भी जुडी होती है तब जो लोग इनके बारेमें सुनते है उनके मनमें क्रोध और आवेशके भाव जगते हैं। हम आशा तो यह करना चाहेंगे कि आज, जब कि सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए सरगर्मी चल रही है, जिनके भी हाथमें सत्ता

है वे ऐसी हर चीजको समाप्त कर देनेका खास खयाल रखेंगे जिससे अपनी श्रेष्ठता जताने, दूसरोंको अपमानित करनेकी भावनाकी बू आती है।

कांग्रेस और खादी

मुझे पत्र लिखकर लोगोंने यह शिकायत की है कि कांग्रेस संविधानकी खादी-सम्बन्धी धारा[1] का जितना पालन होता है उससे अधिक उसकी अवहेलना होती है। पत्र-लेखकोंकी मुख्य शिकायत यह है कि नगरपालिकाओं और स्थानिक निकायोंके लिए कांग्रेसी उम्मीदवार चुननेमें कांग्रेसके पदाधिकारी खादी-सम्बन्धी धाराका खयाल नहीं रखते। एक पत्र-लेखकका कहना है कि खादी पहनने का नियम इसलिए दरगुजर कर दिया जाता है कि खादीधारियोंमें योग्य उम्मीदवार नहीं मिलते। यदि योग्य खादीधारी लोगोंकी कमी साबित की जा सके तो यह उस धाराको बदलनेका ठीक कारण तो जरूर होगा, लेकिन कांग्रेसके संविधानके जानबूझकर उल्लंघनका कदापि नहीं। एक पत्र-लेखकने इस नियमको दरगुजर करनेका औचित्य यह दलील देकर सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि स्वराज्य और खादीका आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा है तो यह भी संविधानमें परिवर्तन करनेका ठीक कारण माना जायेगा, लेकिन उसकी उपेक्षा करनेका नहीं। हर कांग्रेसी सम्भावित सविनय प्रतिरोधी है — उसे कभी भी सविनय प्रतिरोध करना पड़ सकता है। सविनय प्रतिरोधका अधिकार केवल उसीको मिल सकता है जो खुशी-खुशी राज्यके कानूनोंका पालन करनेका कर्त्तव्य निभाता है। और जो नियम उसने खुद बनाये हों उनके सम्बन्धमें तो यह बात और ज्यादा लागू होती है। इसलिए जानबूझकर संविधानका उल्लंघन करके कांग्रेसी बहुत बड़ा खतरा मोल ले रहे हैं।

और क्या स्वराज्य तथा खादीमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है? जिन कांग्रेसियोंने संविधानमें खादी-सम्बन्धी धारा दाखिल की वे क्या इतने जड़ थे कि जो भूल इन कुछ-एक आलोचकोंको दिनके उजालेकी तरह साफ नजर आ रही है उसकी ओर उनकी दृष्टि गई ही नहीं? मैंने पहले भी निस्संकोच कहा है, और अब फिर उस बातको बेहिचक दोहराता हूँ कि खादीके बिना करोड़ों लोगोंको, भूखों और नंगोंको, करोड़ों अनपढ़ महिलाओंको स्वराज्य नहीं मिल सकता। सदा खादीका उपयोग करना इस बातका प्रतीक है कि उसे पहननेवाला गरीबोंके साथ तादात्म्यका अनुभव करता है और उसमें इतनी देशभक्ति है कि खादी भले ही देखनेमें विदेशके नफीस कपड़ों जितनी मुलायम और आकर्षक न हो और न उतनी सस्ती ही हो, फिर भी वह उसीका उपयोग करता है।

सेगाँव, २२ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-१-१९४०

१. देखिए खण्ड ५९, पृ० २६३।

१४९. स्वतन्त्रता-दिवस

उचित तो यह है कि आगामी स्वतन्त्रता-दिवसकी प्रतिज्ञासे सम्बन्धित प्रश्न कांग्रेसके मन्त्रीसे पूछे जायें, और अधिकृत उत्तर भी केवल कांग्रेस अध्यक्ष ही दे सकता है। फिर भी ऐसे प्रश्न बराबर मुझसे ही पूछे जा रहे हैं। और चूंकि मैंने, संघर्ष आवश्यक हो जानेपर, सविनय प्रतिरोधकी घोषणा करने और सत्याग्रही सेनाका नेतृत्व करनेका जिम्मा ले लिया है, इसलिए २६ जनवरीसे पहले कुछ-एक प्रश्नोंके उत्तर देना मेरा कर्तव्य हो जाता है।

१. ध्यान रहे कि अगर सविनय प्रतिरोधकी घोषणा की जानी है, तो इस बारका प्रतिरोध पहलेके किसी भी ऐसे संघर्षसे अधिक विनययुक्त और अहिंसक होना चाहिए — और किसी कारण नही तो इसी कारण कि हमें दुनियाके युद्धरत देशोंको यह दिखा देना है कि भारत-जैसा विशाल राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिए अहिंसक उपायोंसे लड़ सकता है। इसलिए जब तक मुझे पूरा यकीन नही हो जाता कि कांग्रेसजन बिना कोई शंका-सवाल उठाये आज्ञाका पालन करेंगे तब तक मैं लड़ाई छेड़नेसे दृढ़तापूर्वक इनकार करता रहूँगा।

२. कभी-कभी आत्मसयममें उतनी ही शूरता होती है जितनी धधकती भट्टीमें कूद जानेमें, बशर्ते कि दोनोका हेतु एक ही हो।

३. स्वतन्त्रता-दिवस कांग्रेसका एक वार्षिक कार्यक्रम है और यह सविनय प्रतिरोधसे जुड़ा नहीं है। इसलिए आगामी समारोहको सविनय प्रतिरोधकी घोषणा माननेकी भूल हरगिज नही करनी चाहिए। फिर भी, इस बारका समारोह इस बातका सूचक होगा कि कांग्रेसजनोंमें और जो लाखों-करोड़ों लोग कांग्रेसके आह्वा-नका अब तक उत्तर देते रहे हैं, उनमें कितना अनुशासन है। इसलिए एक ओर जहाँ हमारा प्रदर्शन अब तकके सारे प्रदर्शनोंसे अधिक विराट होना चाहिए, वहाँ दूसरी ओर इसे इतना अधिक शान्तिपूर्ण होना चाहिए कि इसके खिलाफ किसी आलोचकसे कुछ कहते न बने और इसमें गोदके बच्चोंवाली स्त्रियाँ, छोटे-छोटे बच्चे और बूढ़े लोग तक शामिल हो सकें। बम्बईका ६ अप्रैल, १९१९ का प्रदर्शन[1] ऐसा ही था।

४. विद्यार्थियोंने पूछा है कि उन्हें क्या करना चाहिए। उनसे मैं यह आशा करता हूँ कि वे व्यक्तिगत रूपसे स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा लेंगे, क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि वे सत्यमय और अहिंसक साधनोंसे भारतकी स्वतन्त्रता हासिल करनेको कृतसंकल्प हैं। इन सत्यमय और अहिंसक साधनोंका प्रतीक है

१. देखिए खण्ड १५, पृ० १९४।

रचनात्मक कार्यक्रम और इस रचनात्मक कार्यक्रमकी केन्द्रीय प्रवृत्ति है चरखा। कार्यक्रमकी दूसरी मदें है — विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच प्रेम और मर्दे सौहार्दकी स्थापना तथा अस्पृश्यताका निवारण। ये मदें संघर्षकी अंग तो नही है, लेकिन इन्हें पूरा करना संघर्षके लिए अनिवार्य अवश्य है। संघर्ष छिड़ा तो विद्यार्थियोंको हड़ताल नहीं करनी होगी। इसके बजाय उन्हें अपने स्कूल या कॉलेज सदाके लिए छोड़ देने होंगे। लेकिन विद्यार्थियोंको २६ तारीखको हड़ताल नही करनी है। बहुत अच्छा हो, अगर संचालकगण खुद ही अपनी-अपनी संस्थाएँ बन्द करके अपने यहाँके कर्मचारियों और विद्यार्थियोंके जुलूसोंका नेतृत्व करें तथा उन्हें कार्यक्रमकी दूसरी मदोंमें नियोजित करें। वे यह काम बखूबी कर भी सकते हैं। जो बात विद्यार्थियों पर लागू होती है वही श्रमिकोंपर भी लागू होती है। जो लोग छुट्टी लिये बिना काम पर नहीं जायेंगे वे मेरी रायमें अनुशासनहीनताके दोषी होंगे और सत्याग्रह-सेनामें भरती किये जाने योग्य नही रह जायेंगे। अहिंसा पूर्ण अनुशासन और पूर्णतया स्वैच्छिक अनुशासनकी अपेक्षा रखती है। ऊपर जो-कुछ कहा है, उससे स्पष्ट है कि जिनका खादीमें विश्वास नही है और जो उसका उपयोग नही करते वे स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा नहीं ले सकते।

५. कुछ लोगोंके मनमें ऐसी शंका है कि इस प्रतिज्ञाके द्वारा हड़तालों और करबन्दी आन्दोलनोंकी गुंजाइश खत्म कर दी गई है। लेकिन वास्तवमें ऐसी कोई बात नही है। हाँ, इसके साथ ही मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अब अगर संघर्ष छिड़ा तो उसके अन्तर्गत हड़ताल करवाने और करबन्दी-आन्दोलन चलानेका कोई खयाल मेरे मनमें नही है। मेरे विचारसे मौजूदा वातावरण व्यापक पैमाने पर अहिंसक हड़तालों और अहिंसात्मक करबन्दी-आन्दोलनोंके उपयुक्त नही है।

६. मैं यह आशा करता हूँ कि कांग्रेस संगठनके पूरे प्रभावका उपयोग खादीको लोकप्रिय बनाने और जो खादी भण्डारोंमें पड़ी हुई है उसे खपानेमें किया जायेगा।

७. मेरी दृष्टिमें सत्याग्रह आत्मशुद्धिका एक तरीका है। इस शब्दका प्रयोग पहले-पहल १९२१ के अ० भा० कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावमें किया गया था। रचनात्मक कार्यक्रम उसीको ध्यानमें रखकर बनाया गया है। आज यद्यपि इस शब्दकी प्रतिष्ठा गिर गई है, फिर भी उस कार्यक्रमके जनककी हैसियतसे मुझमें तो उसे दोहरानेकी हिम्मत होनी ही चाहिए। हमने १९१९ में सत्याग्रह २४ घंटेके उपवासके साथ आरम्भ किया था। इस बार भी मेरा इरादा २६ तारीखको उपवास रखनेका है, जिसका आरम्भ २५ की शामसे करूँगा। और जिन लोगोंका इसकी शक्तिमें विश्वास है वे भी वैसा करेंगे।

८. यद्यपि मैं साम्राज्यवादी भावना और उससे जुड़ी सारी चीजोंको उखाड़-फेंकनेके संघर्षके निमित्त अपनी समझके मुताबिक अच्छीसे-अच्छी तैयारी कर रहा हूँ और देशको भी इसमें शामिल होनेको आमन्त्रित करता हूँ, फिर भी

मैं जी-जानसे इस बातकी कोशिशमें लगा हूँ कि संघर्षकी नौबत न आये। मैं मानता हूँ कि इंग्लैंड, बल्कि सारी दुनियाके मनीषी बलवानों द्वारा दुर्बलोंके शोषणसे ऊब गये हैं। लॉर्ड लिनलिथगोकी सत्यशीलतामें मेरा विश्वास है। नीतियोंको तुरन्त अमलमें लानेमें महत्त्व व्यक्तियोंका ही होता है। मैं आशा और आस्थाके सहारे काम करता रहा हूँ। और मैंने अब तक यह आशा छोड़ी नहीं है कि हम बिना संघर्षके कोई सम्मानजनक समाधान प्राप्त कर लेंगे, क्योंकि संघर्ष चाहे जितना अहिंसक हो, उसमें प्रचुर कष्ट सहने ही पड़ेंगे। इसलिए मैं सभी कौमों, सभी पक्षोंको — यहाँ तक कि अंग्रेजोंको भी — इस प्रयत्नमें हाथ बँटानेको आमन्त्रित करता हूँ।

सेगाँव, २२ जनवरी, १९४०
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-१-१९४०

१५०. निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए

सेगाँव
२२ जनवरी, १९४०

कल और परसों मुझे दो शर्मनाक ख्वाब आये। एकमें मैंने डाकुको देखा और डरके मारे चीख उठा। चीखसे जागा। अमतुलसलाम शांत कर रही थी — कल बीछुके नजदीक मेरा हाथ पाया। बीछु हाथसे भाग रहा था। मैंने मुन्नालालको बुलाया। इतनेमें मैं चीखा और जाग गया। दोनों चीज मेरे लिये शर्मकी है। मेरी अहिंसा लज्जित हुई — मैं पाता हूँ कि मेरे शब्दोंसे मैं साथी-ओंको भी इजा पहुँचा सकता हूँ जैसे मीराबहनके बारेमें हुआ है, औरोंके बारेमें भी होता है। तीसरी बात यह है कि मैं आज असावधानीमें प्रातःकालमें बोला। ऐसा हो जाता है, होना नहीं चाहिये। इससे मैं पाता हूँ कि मेरी साधनामें काफी अपूर्णता है। इसलिये मैंने निर्णय किया है कि जहाँ तक हो सके मैं मौनका पालन करूँगा। मुझे अंतर्ध्यान होनेकी आवश्यकता है। बीमारीकी सेवाके कारण या अमलदारों इ० को मिलनेके समय या जाहेर कामके लिये बोलना होगा वह तो होता ही रहेगा।

खानेके बारेमें हरेकको मर्यादा रखना आवश्यक है। घेउंका, घीका, दूधका, भाजीका प्रमाण होना चाहिए। भाजी एक समयके लिए आठ आउंस काफी समझी जाय। काम करनेके समय जहाँ तक हो सके सब मौन रखे। भोजन तो अवश्य मौनमें होना चाहिए। भोजनमें कुछ बिगडे तो उसकी टीका खानेके समय करना असभ्यता है, इसलिए हिंसा है। खानेके बाद चिट्ठी लिखकर व्यवस्थापकको बताया जाय। कोई चीज कच्ची रह जाय तो छोड देनी, इतनी भूख रह जाय तो कोई हानि नहीं होगी, लेकिन गुस्सा न किया जाय।

सब काम सावधानीसे होना चाहिए। हम सब एक कुटुंब है ऐसी भावनासे काम होना आवश्यक है।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

१५१. पत्र: कोंडा वेंकटप्पैयाको

सेगाँव, वर्धा
२२ जनवरी, १९४०

प्रिय देशभक्त,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा निर्णय सही है। मैं समझता हूँ, तुम्हें सभी संस्थाओंसे अलग होकर अपनी जगहसे जो सेवा कर सकते हो, वह करनी चाहिए। ईश्वर तुम्हें चिरायु बनाये।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२२४) से

१५२. पत्र: मुन्नालाल जी० शाहको

२२ जनवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

अब मैं तुम्हें क्या लिखूं? सब कहते हैं कि तुम बहुत बोलते हो। तुम्हें एकान्तमें बैठकर कातना चाहिए। पुस्तकालयका काम करने-भरके लिए उस कमरेमें बैठो। मैंने तो अपना मौन बढानेका निश्चय किया है। उसमें मुझे आनन्द आता है, रस मिलता है। फिर तुम्हारे लिए तो एकमात्र इलाज ही वह है। तुम जहाँ जाओगे, वहीं यह अनुभव करोगे कि मनुष्य स्वभाव सब जगह एक ही प्रकारका है। अपने सुख-दुःखके स्वामी हम स्वयं ही हैं। कल वालजी भाईको दाँत निकलवानेके लिए भेजना है। उन्हें ले जाओगे न? शायद एक हफ्ता लगेगा। आजकी आश्रम-सम्बन्धी टिप्पणी तो देखोगे ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५४) से। सी० डब्ल्यू० ७०७१ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

१५३. अहिंसाका व्यावहारिक रूप

डॉ० राममनोहर लोहिया[1] लिखते हैं :

क्या स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा करनेके लिए स्वतन्त्र भारतकी ऐसी समाज-व्यवस्थामें विश्वास करना जरूरी है जो केवल चरखे पर और वर्तमान रचनात्मक कार्यक्रम पर आधारित हो? मेरी व्यक्तिगत रायमें यह जरूरी नहीं है। प्रतिज्ञामें चरखा और ग्राम दस्तकारियाँ समाविष्ट हैं, परन्तु उसमें अन्य उद्योगों और आर्थिक कार्रवाइयोंका निषेध नहीं है। इन उद्योगोंमें बिजली, जहाज-निर्माण और मशीनें बनानेके उद्योग आदिका उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु किसपर कितना जोर दिया जाना है, यह सवाल अभी रहता है। प्रतिज्ञा इस सवालका इसी हद तक फैसला करती है कि चरखे और ग्रामदस्तकारियोंको भावी समाज-व्यवस्थाका अभिन्न अंग मानना जरूरी है और इस विश्वासका स्थान कोई दूसरा विश्वास नहीं ले सकता।

क्या प्रतिज्ञाके अनुसार यह तुरन्त आवश्यक हो जाता है कि वर्तमान रचनात्मक कार्यक्रम पर आधारित कार्रवाईके अतिरिक्त सब कार्रवाई छोड़ दी जाये? मेरी व्यक्तिगत राय है कि यह आवश्यक नहीं है। लगान, कर, सूद तथा देशकी जनताकी उन्नतिके मार्गमें जो और आर्थिक रुकावटें हैं, उनके विरुद्ध आन्दोलन उचित जान पड़ता है। उदाहरणके लिए, यह असम्भव नहीं है कि जब आप सत्याग्रह शुरू करें तब आप लगान और कर न देनेका आन्दोलन करनेका भी निश्चय करें। प्रतिज्ञाकी दृष्टिसे यह बात उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आप वास्तवमें ऐसा निश्चय करते हैं या नहीं करते, जितनी कि यह बात कि आप कर सकते हैं। बहरहाल आज आर्थिक क्षेत्रमें आन्दोलन करना उचित है।

उपर्युक्त दो सवाल प्रतिज्ञाके नकारात्मक पहलूके सम्बन्धमें उठते हैं। एक तीसरा सवाल उसके सकारात्मक पहलूके बारेमें उठता है। यह निस्सन्देह आवश्यक है कि प्रतिज्ञा करनेवाला कोई भी व्यक्ति विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्थाके सिद्धान्तमें अपनी निश्चित आस्था व्यक्त करनेको तैयार हो। इस आस्थाके वास्तविक रूप क्या होंगे, इसका निश्चय इतिहासकी गति करेगी। केवल

१. (१९१०-१९६७); १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टीमें शामिल हुए; १९३६-३८ में अ० भा० कांग्रेस कमेटीके विदेश विभागके मन्त्री; १९५३-५४ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टीके महामन्त्री; मार्क्स, गांधी ऐण्ड सोशलिज्म, तथा अन्य कृतियोंके लेखक

जहाँ तक चरखेका सवाल है, प्रतिज्ञा करनेवाले किसी भी व्यक्तिके लिए यह विश्वास करना सम्भव होना चाहिए कि वस्त्र-उद्योगका पूर्ण विकेन्द्रीकरण सम्भव है और यह कि इसके लिए कोशिश की जानी चाहिए।

आलस्य और इसी तरहके दूसरे कारणोंसे होनेवाली आचरणविषयक अनियमितताओंकी मैंने बिलकुल चर्चा नहीं की है। ऐसी अनियमितताएँ तो सब प्रतिज्ञाओं और आस्थाओंके विषयमें होती हैं। हाँ, इन अनियमितताओंको दूर करनेकी इच्छा जरूर विद्यमान होनी चाहिए।

मैं नहीं जानता कि प्रतिज्ञाकी यह व्याख्या ठीक है या नहीं और आप इसका अनुमोदन कर सकते हैं या नहीं। मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे समाजवादी साथी इसका अनुमोदन करेंगे या नहीं। इस विषयमें शीघ्र ही आपकी रायको जानना देशके लिए लाभदायक हो सकता है। स्वतन्त्रता दिवसके खयालसे तो शायद पहले ही बहुत देर हो चुकी है।

एक बात मैं अक्सर कहता रहा हूँ और यहाँ शायद उसको दोहरानेकी जरूरत न हो। वह यह कि प्रतिज्ञाकी कानूनी और प्रामाणिक व्याख्या कार्य-समिति ही कर सकती है। मेरी व्याख्या उतनी ही प्रामाणिक हो सकती है जितनी कि मेरे प्रश्नकर्ता उसे मानना चाहें।

कुल मिलाकर मैं कह सकता हूँ कि मुझे डॉ० लोहियाकी व्याख्याको स्वीकार करनेमें कोई दिक्कत नहीं है।

कांग्रेसके प्रयत्नका अन्तिम परिणाम चाहे कुछ ही क्यों न हो, प्रतिज्ञाके विषयमें हो रहे वाद-विवादसे जनताको सही ढंगकी राजनीतिक शिक्षा मिल रही है और देशमें विभिन्न विचारोंवाले वर्गोंका मत निश्चित और स्थायी रूप धारण कर रहा है।

यद्यपि मैं डॉ० लोहियासे आम तौरपर सहमत हूँ, फिर भी अपने शब्दोंमें व्याख्या प्रस्तुत करना मेरे लिए ठीक होगा। प्रतिज्ञा सर्वतःपूर्ण नहीं है। वह उस हद तक जाती है जिस हद तक कि मैं कार्य-समितिको कायल कर सका हूँ। अगर मैं देशको अपना हम-खयाल बना सकूँ तो भावी समाज-व्यवस्था मुख्यतः चरखे पर और चरखेका जो भी आशय है उसपर आधारित होगी। इसमें वह सब कुछ होगा जिससे देहातके लोगोंकी भलाई होती हो। पत्र-लेखक द्वारा उल्लिखित उद्योग वर्जित नहीं होंगे, बशर्ते कि वे गाँवों और गाँवोंके जीवनका दम न घोटें। मैं बिजली, जहाज-निर्माण, लोहा-उद्योग, मशीन-निर्माण आदि उद्योगोंके गाँवकी दस्तकारियोंके साथ-साथ बने रहनेकी कल्पना करता ही हूँ। परन्तु उनमें निर्भरताका क्रम बदल जायेगा। अब तक औद्योगीकरणकी योजनाएँ इस ढंगसे बनाई गई हैं जिससे कि गाँवों और गाँवकी दस्तकारियोंकी बरबादी होती है। भावी शासन-व्यवस्थामें औद्योगीकरण गाँवों और दस्तकारियोंकी उन्नतिमें सहायक होगा। मैं समाजवादियोंके इस विचारसे

सहमत नही हूँ कि जिन्दगीकी जरूरतोके केन्द्रीकरणसे आम लोगोंका भला होगा, बशर्ते कि केन्द्रीकृत उद्योगोंकी योजना सरकार बनाये और वही उनकी मालिक भी हो। पश्चिमकी समाजवादी धारणा ऐसे वातावरणमें उपजी थी जो हिंसाकी दुर्गन्धसे भरा था। पश्चिम और पूर्वकी समाजवादी धारणाओका उद्देश्य एक ही है — अर्थात् सारे समाजकी अधिक-से-अधिक भलाई और लाखों-करोड़ों लोगोको निर्धन और गिने-चुने लोगोको धनी बनानेवाली घोर विषमताओका अन्त। मै समझता हूँ कि यह उद्देश्य तभी पूरा किया जा सकता है जब दुनियाके मनीषी अहिंसाको न्यायोचित समाज-व्यवस्थाकी स्थापनाका आधार मान लें। मेरा विचार है कि हिंसा द्वारा श्रमिकोका सत्तापर अधिकार अन्तमें नाकाम होकर रहेगा। हिंसासे जो चीज प्राप्त की जाती है उसे उग्रतर हिंसा छीन लेती है। भारतकी उद्देश्य-प्राप्ति बिलकुल निकट है, बशर्ते कि कांग्रेसजनोंको अहिंसामें सच्चा विश्वास हो और वे उसपर आचरण करे। रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल ही उनकी आस्थाकी कसौटी है। जो लोग जन-साधारणकी भावनाओंको उभारते है वे उन्हें और राष्ट्रीय उद्देश्यको हानि पहुँचाते है। यह कहना कि उनका मंशा अच्छा होता है, बेमानी बात है। कांग्रेसजन कार्यक्रम पर पूरी तरह और ईमानदारीसे क्यों न अमल करे? जब हम स्वतन्त्र हो जायेंगे तब दूसरे कार्यक्रमो पर विचार करनेका समय आयेगा। जैसे कि नीति-कथामें वर्णित लोगोने भैस खरीदनेसे पहले ही उसके बँटवारेके बारेमें झगडा शुरू कर दिया था, वैसे ही हम भी स्वराज्य मिलनेसे पहले ही विभिन्न कार्यक्रमोके बारेमें वाद-विवाद और झगड़ा कर रहे है। शिष्टताका तकाजा है कि जब कोई कार्यक्रम बहुमतसे स्वीकार कर लिया जाये तब सभी उसपर ईमानदारीसे अमल करे।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि प्रतिज्ञाके अनुसार यह आवश्यक नही है कि जो दूसरी मदें आज तक काग्रेसके कार्यक्रमको सुशोभित करती रही है और जिनका उल्लेख डॉ० लोहियाने किया है, उन्हें छोड़ दिया जाये। हर तरहके अन्यायके खिलाफ आन्दोलन करना राजनीतिक जीवनकी प्राण-वायु है। मगर मेरा कहना है कि रचनात्मक कार्यक्रमसे विच्छिन्न आन्दोलनमें हिंसाका पुट जरूर रहेगा।

मै अपनी बात जरा खोलकर कहता हूँ। अहिंसाके विषयमें अपने प्रयोगोंसे मुझे पता चला है कि व्यावहारिक अहिंसाका मतलब है सबके साथ मिलकर शारीरिक श्रम करना। रूसी दार्शनिक बोन्डोरेफने इसे जीविकाश्रमका नाम दिया है। इसका मतलब है आत्यन्तिक सहयोग। दक्षिण आफ्रिकाके पहले सत्याग्रही सार्वजनिक लाभके लिए और सार्वजनिक कोषके लिए श्रम करते थे तथा अपने-आपको पक्षियोंकी भाँति स्वतन्त्र अनुभव करते थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी) ईसाई (प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिक), पारसी और यहूदी सब थे। उनमें अंग्रेज और जर्मन भी थे। जहाँ तक पेशेका सम्बन्ध है, वे वकील, वास्तुविद्, इंजीनियर, बिजलीका काम करनेवाले, मुद्रक और व्यापारी थे।

सत्य और अहिंसाके आचरणसे धार्मिक भेद-भाव मिट गये और हम हर धर्मकी खूबियोंको समझने लग गये। दक्षिण आफ्रिकामें मैंने जो दो बस्तियाँ[1] बसाईं उनमें एक भी धार्मिक झगड़ा हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मिलकर किये जानेवाले श्रम-कार्य थे छपाई, बढ़ईगिरी, मोचीगिरी, बागबानी, इमारत बनाना इत्यादि। हमारा श्रम कोई हमें पीसनेवाला काम नही था, बल्कि वह तो एक आनन्द था। शामके समय साहित्य चर्चा होती थी। वे स्त्री-पुरुष और बच्चे सत्याग्रह सेनाके अग्रणी थे। उनसे ज्यादा बहादुर या ज्यादा वफादार साथियोकी मुझे चाह ही नही हो सकती थी। भारतमें दक्षिण आफ्रिकावाला तजुरबा जारी रखा गया और मेरा खयाल है कि उसमें सुधार भी हुआ। सब मानते हैं कि अहमदाबादके मजदूर भारत-भरमें सबसे अच्छी तरह संगठित मजदूर हैं। यदि वे उसी ढंगपर काम करते रहें जिस ढंगपर कि उन्होंने शुरू किया है तो आखिरकार कारखानोंके मौजूदा मालिकोंके साथ-साथ उन्हें भी उन कारखानोंकी मालिकीमें हिस्सा मिल जायेगा। यदि यह स्वाभाविक परिणाम न निकला, तो मानना पड़ेगा कि उनकी अहिंसामें कुछ त्रुटियाँ रह गई होंगी। बारडोलीके जिन किसानोंने वल्लभभाईको सरदारकी उपाधि दी और अपनी लड़ाई जीती[2] और इसी तरह बोरसद[3] तथा खेड़ा[4] के जिन किसानोंने भी लड़ाई जीती, वे कई वर्षोंसे रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल कर रहे हैं। उसपर अमल करनेसे उनके सत्याग्रहीपनमें कोई कमी नही आई। मुझे पक्का विश्वास है कि यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ तो अहमदाबादके मजदूर और बारडोली तथा खेड़ाके किसान भारतके किसी भी भागके मजदूर-किसानोंसे पीछे नही रहेंगे।

सत्य और अहिंसाके विषयमें चौंतीस सालके सतत अनुभव और प्रयोगने मुझे कायल कर दिया है कि अहिंसा तभी तक निभ सकती है जब तक कि वह सजग शारीरिक श्रमसे सम्बद्ध हो और अपने पड़ोसियोंके साथ हमारे रोजाना व्यवहारमें व्यक्त हो। यह है रचनात्मक कार्यक्रम। यह साध्य नही है, बल्कि एक अपरिहार्य साधन है और इसलिए साध्यका लगभग पर्यायवाचक है। अहिंसात्मक प्रतिरोधकी शक्ति केवल रचनात्मक कार्यक्रम पर ईमानदारीसे अमल करनेसे ही प्राप्त हो सकती है।

सेगाँव, २३ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-१-१९४०

१. फीनिक्स आश्रम और टॉल्स्टॉय फार्म
२. १९२८ में; देखिए खण्ड ३६ और ३७।
३. १९२३ में; देखिए खण्ड २३, पृ० ४०७-९।
४. १९१८ में; देखिए खण्ड १४।

१५४. एकता बनाम न्याय

अभी उस दिन एक सज्जन मुझसे मिलने आये। वे कहने लगे, "आपने यह कहकर भारतका बड़ा नुकसान किया है कि साम्प्रदायिक एकताके बिना स्वराज्य नही आ सकता। यह ऐसा नुकसान है जिसे किसी तरह पूरा नही किया जा सकता। वैसा कहनेके बजाय आपको कहना यह चाहिए कि विभिन्न समुदायोके प्रति न्याय किये बिना और उनके बीच न्यायपूर्ण सन्तुलन स्थापित हुए बिना स्वराज्य नही आ सकता।" मैंने उन्हे अपनी बात समझानेकी पूरी कोशिश की लेकिन वे समझनेको तैयार ही नही थे। उन्होंने कहा. "आप मुसलमानोंकी कृपा पानेके लिए अपनी आत्माको बेचनेको तैयार हो गये हैं।" मैंने इसका विरोध करते हुए कहा: "नही, आप यह तो जानते ही है, बल्कि सारी दुनिया जानती है कि मै भारतकी स्वतन्त्रता हासिल करनेके लिए भी अपनी आत्माको नही बेचूंगा और अगर मै मुसलमानोंकी मैत्री चाहता हूँ तो वह अपने सन्तोषके लिए नही, बल्कि भारतकी भलाईकी खातिर। आप मेरे साथ अन्याय कर रहे है।" उत्तरमें उन्होंने किंचित आवेशमें कहा: "मै आपका देश-प्रेम जानता हूँ। नही जानता होता तो खास तौरसे आपके पास ही क्यों आता? लेकिन आपके देश-प्रेमने आपको अन्धा बना दिया है — जो गलती आपने की है और कर रहे है, वह आपको दिखाई नही दे रही है। हिन्दू लोग क्या कह और कर रहे हैं, आपको मालूम नही है। मुसलमानोके मनको कोई चोट न पहुँचे, इस भयसे वे सब कुछ बरदाश्त कर रहे हैं — सिर्फ इसलिए कि आपमें उनका विश्वास है। मेरा साग्रह अनुरोध है कि आप 'एकता' के बजाय 'न्याय' शब्दका प्रयोग करे।" मै समझ गया कि उन सज्जनसे दलील करना बेकार है। फिर, मेरे पास समय भी नही था। मैंने उनसे वादा किया कि मै 'हरिजन' में इस सम्बन्धमें लिखूंगा। इस वादेसे उन्हे कुछ सन्तोष मिला। अब मेरे उत्तरसे मिलेगा या नही, कह नही सकता।

मेरा यह अटल विश्वास है कि साम्प्रदायिक एकताके बिना हम अहिंसाके बल पर स्वराज्य प्राप्त नही कर सकते। लेकिन विभिन्न समुदायोंके बीच जब तक न्याय स्थापित नही होता तब तक एकता सम्पन्न नही हो सकती। मुसलमानोंकी या किसीकी भी मैत्री रिश्वत देकर हासिल नही की जा सकती। रिश्वतका अर्थ ही होगा कायरता और इसलिए वह हिंसा होगी। लेकिन जितना मेरे भाईका हक है, यदि मै उसे उससे अधिक देता हूँ तो क्या मै रिश्वत देता हूँ या अन्याय करता हूँ? मै उसके मनके सन्देहको उदार बनकर ही दूर कर सकता हूँ।

उदारतासे रहित न्याय बड़ी आसानीसे (शेक्सपियरके सूदखोर यहूदी पात्र) शाइलॉकवाला न्याय बन सकता है। हाँ, मुझे इतना खयाल जरूर रखना चाहिए कि इस उदारताके कारण उस उद्देश्यको कोई आँच न आने पाये जिसके निमित्त मैं उदारता बरतनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

गरज यह कि मैं एकताका विचार या उसके लिए किया जा रहा प्रयत्न छोड़ नहीं सकता। लेकिन जो चीज ज्यादा जरूरी है वह न्याय नहीं, बल्कि सही दिशामें कदम उठाना है। मगर यदि कायदे आजम जिन्ना मुस्लिम मानसका प्रतिनिधित्व करते हों तो अखबारोंमें मुझे दिया गया उनका जो जवाब प्रकाशित हुआ है, उससे एकताकी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है। वे विभिन्न राजनीतिक पक्षों का एक गठजोड़ तैयार करनेकी कोशिशमें लगे हुए है। मगर मैंने इसका जो स्वाभाविक अर्थ लगाया[1] उसका उन्होंने खण्डन किया है, जिससे एक अनोखी स्थिति पैदा हो गई है। उन्होंने भारतकी तसवीर एक ऐसे महाद्वीप के रूपमें खींची है जिसमें धर्मपर आधारित कई राष्ट्रोंका निवास है। अगर भविष्यमें भारतकी यही तसवीर खरी उतरती है तब तो कांग्रेस आधी सदीसे भी अधिकसे जो-कुछ करती आ रही है, सब मिट्टीमें मिल जायेगा। लेकिन मैं उम्मीद करता हूँ कि जो मत कायदे आजम जिन्नाने व्यक्त किया है, वह मुस्लिम लीगके इतिहासकी मात्र एक अस्थायी घटना है। विभिन्न प्रान्तोंके मुसलमान अपने अपने हिन्दू या ईसाई भाइयोंसे अलग हो जायें, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मुसलमान और ईसाई दोनों हिन्दूसे ही मुसलमान या ईसाई बने है, अथवा जो लोग पहले मुसलमान या ईसाई बन गये थे, उन्हींकी सन्तान हैं। धर्म बदल जानेसे वे अपने-अपने प्रान्तोंके नहीं रह गये, ऐसी बात नहीं है। इस्लाम स्वीकार करने-वाले अंग्रेज अपनी राष्ट्रीयता तो नहीं छोड़ देते। मैं आशा करता हूँ कि जो-कुछ कायदे आजम जिन्नाने कहा है, उसमें उनके साथियोंका भी सुविचारित मत प्रतिबिम्बित नहीं होता।

सेगाँव, २३ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-१-१९४०

१. देखिए "खुशीकी बात", पृ० १२९-३०।

१५५. गुजरातवासियोंसे

एक दिन भी मैं यह भूल नहीं पाता कि मुझे आपको उद्देश करके 'हरिजन-बन्धु' में कुछ तो लिखना ही चाहिए। मैं भाषाका प्रेमी हूँ, किन्तु अपने भाषाप्रेम को पूरी तरह कभी चरितार्थ नही कर पाया। आशाएँ तो बहुत संजोई थी। स्वामी आनन्दका बस चला होता तो वे मुझसे मातृभाषामें ही मेरे विचार प्रकट करवाते। लेकिन उनका बस नही चला, मेरा भी नहीं चला। मैंने आशा की थी कि दोनो पत्रोंमें समान रूपसे लिखूँगा। लेकिन भगवानकी सोची बात ही पूरी होती है। मैं यह नही मानता कि मेरे मातृभाषा-प्रेममें कोई न्यूनता थी। मैंने तो यह मानकर अपने मनको शान्त कर लिया है कि मालिककी इच्छा मुझसे एक दूसरा कार्य करानेकी थी। तो यह तो हुई मेरे वक्तव्यकी प्रस्तावना।

गुजरातमें मुझे कमसे-कम एक महीना बिताना था। सरदारकी इच्छाके अनुसार बरतनेमें मुझे आनन्द आता, लेकिन जब मुझपर संघर्षके संचालनका भार आया, तब मैं ढीला पड़ गया। मुझे सेगाँवका एकान्त चाहिए था। मेरा यह अनुभव है कि जहाँ मैं वास करता हूँ, वही मुझे सच्ची प्रेरणा मिलती है। वैसे तो मैंने ऐसी आदत डाल ली है कि मैं जहाँ रहूँ उसीको अपना वासस्थान मानूँ। फिर भी सत्याग्रहके आरम्भ अथवा आविष्कारके पश्चात् मैंने कही-कही आश्रम स्थापित किये हैं और वहाँ साधना की है। सेगाँवको तो आश्रम कहनेमें भी संकोच होता है। सेगाँवमें मैं एकाकीके समान रहना चाहता था। लेकिन यह बिना किसी नियम-कानूनका आश्रम बन गया है। इसमें रोज नई इमारतें बन रही हैं। और अब तो मैं वहाँ अस्पताल खोल बैठा हूँ। सेगाँवको मैंने परिहासमें अपंगालय भी कहा है। मैं तो शरीर और मन दोनोसे अपंग हूँ ही और अपने जैसे औरोंको भी इकट्ठा कर बैठा हूँ। सेगाँवको मैंने पागलखानेकी उपमा भी दी है, और यह उपमा उसपर लागू भी होती है। चरखेसे स्वराज्य मिल जायेगा, ऐसी बात तो किसी पागलके मुँहसे ही निकल सकती है न? लेकिन पागल खुद कहाँ जानते हैं कि वे पागल हैं। इसलिए मैं तो अपने-आपको चतुर ही मानता हूँ।

इसलिए अगर मैं वहाँ आया होता, तो आप लोग मेरे मुँहसे वही चरखे और ग्रामोद्योगकी बातें सुनते। लेकिन ये बातें क्या अब भी आप लोगोंको सुनाने की हैं? और सुनानी भी हो तो सरदार तो वहाँ है ही न? वे आपके पास हो और फिर भी आपको मेरी उपस्थितिकी आवश्यकता महसूस हो तो इसे मैं उनकी खामी मानूँगा। इसलिए यदि मैं आता भी तो मनोरंजनके लिए आता। आपके पास आना मुझे अच्छा लगता है, यह तो आप जानते ही हैं। लेकिन यह

समय मनोरंजनका नही है, न मनमानी करनेका। भगवान हमें जहाँ रखे, वहीं रहकर उसका काम करना हम सबका धर्म है। अतः निश्चित मानना कि अपना धर्म समझकर ही मै यहाँ रह गया हूँ और धर्म समझकर ही वहाँ नही आया।

लेकिन इतना याद रखें कि यद्यपि मैं आपसे दूर हूँ, फिर भी आपसे बहुत आशा लगाये हूँ। आपमें से कुछको तो याद होगा, १९१६ में मैंने कहा था कि मैं तो केवल गुजरातके बलपर सत्याग्रह-संग्राम करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी हिम्मत रखता हूँ। वही शब्द मै आज और अधिक दृढ़ताके साथ दोहरा सकता हूँ।

यों मैं आशावादी हूँ, लेकिन युद्धकी तैयारीका विश्वास होनेपर ही तो मैं सन्तोषजनक समाधानकी आशाका पर्वत खड़ा कर सकता हूँ। जिसकी नीव कच्ची है, उसका भरोसा क्या? और जिसका भरोसा नही, उससे आशा क्या की जाये? जिसका आधार ही नही है, वह तो 'आकाशकुसुमवत्' है। अपनी आशाका पर्वत मैंने मूक हिन्दुस्तान पर खड़ा किया है, उसमें भी गुजरात पर। और अन्तमें----?

आपका,
मोहनदास करमचन्द गांधी

सेगाँव, २३ जनवरी, १९४०
[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २८-१-१९४०

१५६. सरदार पृथ्वीसिंह[1]

सरदार पृथ्वीसिंहने हिंसाको त्यागकर अहिंसाका वरण तो किया है, लेकिन वे कहते हैं कि उनके लिए यह नया अनुभव है। अहिंसाकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिए वे भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। अन्तमें क्या होगा, यह तो अनुभव ही बतायेगा। प्रश्न यह था कि किस प्रदेशमें वे अनुभव प्राप्त करे। अज्ञातवासके दिनोंमें उन्होंने व्यायाम सिखानेका काम किया है। व्यायाम हिंसक भी हो सकता है और अहिंसक भी। दुर्बल शरीरमें अहिंसाका पूर्ण विकास नही हो सकता। शुद्ध अहिंसाके लिए वीर्यवान शरीर आवश्यक होता ही है। एक सीमा तक दोनों प्रकारके शरीरोंके लिए एक ही प्रकारका व्यायाम होता है। लेकिन अन्तमें उनमें भेद करना पड़ता है। सो कैसे, यह बताना सरदार पृथ्वीसिंहका काम है। उन्होंने अपना काम गुजरातसे प्रारम्भ करना तय किया है। उन्हें अपने प्रयत्नमें सफलता मिले!

सेगाँव, २३ जनवरी, १९४०
[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २८-१-१९४०

१. यह "मेरी टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

१५७. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेगाँव, वर्धा
२३ जनवरी, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके दो स्नेहपूर्ण पत्रों[1] के लिए धन्यवाद। दूसरा तो अभी-अभी पहुँचा है। आपके पत्रमें व्यक्त की गई इस भावनाका मैं हृदयसे अनुमोदन करता हूँ कि यदि हम अपनी आगामी बातचीतमें किसी समाधानपर नहीं पहुँच पाये तो हमें फिरसे कोशिश करनी चाहिए।

मैं ४ फरवरीके बाद किसी भी दिन दिल्ली पहुँच सकता हूँ। ११ तारीख तक मुझे दिल्लीसे रवाना हो जाना चाहिए, ताकि सेगाँवमें हरिजन सेवक संघकी बैठकमें शरीक हो सकूँ। अगर आपको असुविधा न हो तो तारसे जवाब[2] देनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८३८) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१५८. पत्र : ग्लैडिस ओवेनको

सेगाँव, वर्धा
२३ जनवरी, १९४०

प्रिय ग्लैडिस,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। यह तो तुम्हारी ही गलती थी कि तुम आकर इतनी जल्दी चली गईं। लेकिन कारण मैं समझता हूँ। अपनी प्रगतिकी सूचना मुझे देती रहना। स्वास्थ्य ठीक रखो, फिर सारा काम भी ठीक-ठीक करोगी।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१९६) से

१. १७ और २१ जनवरीके

२. लॉर्ड लिनलिथगोने इसका उत्तर इस प्रकार दिया था: "सुविधानुसार हम सोमवार ५ फरवरीको या मंगलवार ६ फरवरीको ११ बजे दिनमें मिल सकते हैं।"

१५९. पत्र : जी० रामचन्द्रनको

सेवाग्राम
२३ जनवरी, १९४०

प्रिय रामचन्द्रन,

तुम्हारा पत्र मिला। यह मत समझना कि मै त्रावणकोरकी उपेक्षा कर रहा हूँ। उन्हें[1] यहाँ आज आना चाहिए था। अब वह कहते हैं कि वह कुछ समय बाद आयेंगे। फिलहाल मैं 'हरिजन' में कुछ कहना नही चाहता।[2]

पैसोंके सम्बन्धमें तो मुझे अपना दिल कठोर बना लेना होगा। मै करूँ क्या? यदि तुम्हें पैसोंके लिए भिक्षा माँगनी पड़े तो अन्तमें हार ही होगी। मै माँग सकता हूँ, पर मेरे ऐसा करनेसे तुम्हारे उद्देश्यको हानि पहुँचेगी। संघर्षके लिए चन्दा इकट्ठा करनेमें मेरे नामका उपयोग मत करो। यदि पैसोंके अभावमें संघर्ष विफल रहता है तो कहीं-न-कहीं कुछ गड़बड़ है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१६०. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

२३ जनवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

मैंने तो समय बचानेके लिए थोड़ेमें निबटा दिया था। तुम फिर प्रयत्न करना। हार मत मान लेना। अ० स० के मनमें बहुत गुस्सा है, यह मैं जानता हूँ। लेकिन हम सब अधूरे हैं, इसलिए हमें एक-दूसरेके दोष सहन करने चाहिए। मेरी पामरताका पर्दाफाश तो मेरे सपनोंने[3] कर दिया। लेकिन मैं जैसा हूँ, वैसेको ही तुम सब जिस तरह निभाते हो, वैसे ही दूसरोंको भी निभाओ। ऐसा नहीं करेंगे तो हम सबकी लाज जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५३) से। सी० डब्ल्यू० ७०७३ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. यहाँ सम्भवतः त्रावणकोर राज्यके दीवान सी० पी० रामस्वामी अय्यरसे तात्पर्य है।
२. देखिए "पत्र : सी० पी० रामस्वामी अय्यरको", २८-३-१९४०।
३. देखिए "निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए", पृ० १४९-५०।

१६१. निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए

२४ जनवरी, १९४०

कल शामसे आझादी दिनका २४ घंटेका उपवास मैं करूँगा। उसी कारण किसीको करनेकी आवश्यकता नही है। मैं तो खबर देता हूँ कोई चाहे तो कर सकते हैं। बीमार कभी नही।

दूधकी मात्राके बारेमें मैंने सुशीलाबहनसे बात कर ली है। जिसका दूध १।। रतलसे ज्यादा नही होना चाहीये ऐसोके साथ वह बात कर लेगी। बात यह है कि देढ रतलसे अधिक दूधकी सामान्यतया जरूर नही रहती है। हम जाहिर [सार्वजनिक] पैसेसे निर्वाह करते हैं। इसलिये और हाम [हम] गरीबीका व्रत पालन करते है इसलिए आवश्यकतासे अधिक कुछ भी न ले।

आजकल मैं जो कुछ लिखता हु उसको आज्ञा रूप न माना जाय। सब अपनी बुद्धिका उपयोग करके जो करे वही सही माना जाय। आझादी दिन हमारे लिए आत्मशुद्धिका ही हो सकता है, आत्मशुद्धिमें विवेक, मर्यादा, सयम वि० [वगैरा] आ ही जाता है। २६के लिये कुछ कार्यक्रम रखा जाय। सेगावमें लोग कुछ करनेवाले है या नही उसकी तलाश की जाय। सुखाभाउ[1] से मश्विरा किया जाय।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

१६२. पत्र : डॉ० एन० बी० खरेको

२४ जनवरी, १९४०

प्रिय डॉ० खरे,[2]

एक बार फिर आपकी लिखावट देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। हमारे बीच राजनीतिक मतभेद हो सकते हैं, लेकिन मेरे शरीरके रक्षक तो आप अब भी हैं।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

माई पॉलिटिकल मेमॉयर्स आर ऑटोबायग्राफी, पृ० २५६

१. सुखाभाउ चौधरी, एक सहयोगी कार्यकर्ता जो सेगाँवमें रहते थे

२. मध्य प्रान्तके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, जिन्हें १९३८ में कांग्रेससे निकाल दिया गया था

१६३. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
२४ जनवरी, १९४०

चि० अमृत,

आज सुबह जो-कुछ हुआ, उसे कभी भुलाया नही जा सकता। लेकिन अन्त भला तो सब भला। मै क्या हूँ, इसका सबसे ठीक वर्णन मै यही कर सकता हूँ कि मैं एक ऐसा पिता हूँ जो पूरी तरह आज्ञापालन चाहता है। मैं अपने सभी या बहुत-से बच्चोंका अविश्वास कर सकता हूँ। मैं गलत निर्णय दे सकता हूँ। लेकिन वे मेरा अविश्वास करें, यह मुझे मन्जूर नहीं होगा। वे मेरे निर्णयके सही होनेमें सन्देह करे, इसकी इजाजत मै नहीं दूँगा। मेरे दोषोंकी ओरसे उनकी आँखें बन्द रहनी चाहिए। दूसरोंको वे दोष दिखाई देते है, इसका यहाँ कोई महत्त्व नही है। ऐसा समर्पण प्रायः असम्भव हैं। लेकिन जो लोग मुझे अपना माता-पिता मान लेते है — जैसा कि तुमने माना है — उनके लिए यह सम्भव होना ही चाहिए। मुझे ऐसी श्रद्धा और आज्ञाकारिता मिलती रही है। ऐसी श्रद्धा और आज्ञाकारिता तुम कहने-भरसे जबरन नही दे सकती, लेकिन जब तक तुममें मेरे प्रति अपेक्षित श्रद्धा नही आती तब तक मैं तुम्हें गढ़नेके लिए या तुम्हारी मदद करनेके लिए कुछ नही कर सकता।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

अगर तुममें सहज श्रद्धा है तो तुम मुझे सख्त नही पाओगी। ऐसी श्रद्धा परम शोभायुक्त और स्थायी आनन्दका हेतु होती है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६५) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ६४७४ से भी

१६४. पुर्जा : कनु गांधीको

२४ जनवरी, १९४०

चि० कनैयो,

आजसे ९ या ९-३० बजे वालजीभाई की मालिश शुरू करना। मालिश पूरे शरीरकी हलके-हलके करना। जोर कितना लगाया जाये, यह उनसे पूछना। छाती और पीठके साथ-साथ पेटपर अधिक ध्यान देना। छातीका माप लेना। धीमे-धीमे प्राणायाम कराना सिखाना। . . .[1] लेना सिखाना। उनका सीना चौड़ा होना चाहिए।

बापू

[पुनश्च :]

यह कनु ना० गाधीको अभी दिया जाये।[2]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

१६५. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

[२४ जनवरी, १९४० या उसके पश्चात्][3]

तुमारे घंटोंतक घी घीसनेकी आवश्यकता नही है। मुझे तो नही है। अगर पुण्य कमाते हो तो दूसरी वात।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४५६२) से

१. यहाँ अस्पष्ट है

२. स्पष्ट है कि यह आदेश पत्रवाहकके लिए है।

३. यह एक लिफाफेपर लिखा गया था जिसपर इसी तारीखकी डाक-मुहर है।

१६६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेगाँव
२५ जनवरी, १९४०

मुझे लाहौरसे एक तार मिला है। उसमें बताया गया है कि स्वतन्त्रता-दिवस आ रहा है और इस सिलसिलेमें यहाँ अप्रमाणित खादी और झण्डोंकी बिक्री जोरोंसे चल रही है। सम्भव है, ऐसा अवांछनीय व्यापार और जगहोंमें भी चले। मुझे कांग्रेसजनोंको ऐसी खादी या झण्डे खरीदने या बेचनेके खिलाफ सचेत कर देना चाहिए। मेरी रायमें, ऐसा करना प्रतिज्ञाके विरुद्ध होगा।

अप्रमाणित खादीका मतलब है कतैयोंको उनकी वाजिब मजदूरीसे वंचित करना और खादी-कार्यको आम तौरपर नुकसान पहुँचाना। वही खादी और खादीकी बनी वही चीजें प्रमाणित है जिन्हें अ० भा० चरखा संघ द्वारा प्रमाणित विक्रेता बेचते है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-१-१९४०, और **हरिजन**, ३-२-१९४०

१६७. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव
२५ जनवरी, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र बाकायदा पढ़कर नष्ट कर दिया। आशा है, मेरा कलवाला पत्र तुम्हें मिल गया होगा। मैं तुम्हारी स्थिति स्वीकार नही कर सकता। उसमें अन्तर्विरोध है। बेशक, अंशतः या समग्रतः समर्पण करना तुम्हारी इच्छापर निर्भर है। यह कोई यान्त्रिक क्रिया तो है नही। जो-कुछ मैं कहता या करता हूँ, जब तक तुम्हारा मन उसका अनुमोदन न करे, तब तक तुम्हें मुझे कमसे कम आगाह तो करते ही रहना चाहिए — और किसी वजहसे नही तो ईमानदारीकी खातिर ही। मेरा कहना यह है कि जहाँ पूर्ण समर्पण है वहाँ माता-पिताके निर्णयके सही होनेमें सन्देहकी कोई गुंजाइश ही नही रहती। लेकिन ऐसे विषयोंमें दलील क्यों? ये तो दलीलसे परे हैं।

१. यह **हरिजन** में "अनसर्टिफाइड खादी" (अप्रमाणित खादी) शीर्षकसे छपा था।

तुम्हारा प्रसन्नतासे भरा तार मिला।

मुझे मुलाकात[1] का समय मिल गया है। दिल्ली ५ फरवरीको पहुँच रहा हूँ।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारी डाक महादेव सँभालता है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९५९) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२६८ से भी

१६८. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सेगाँव, वर्धा
२५ जनवरी, १९४०

प्रिय सी० आर०,

ऊपर जा०[2] से प्राप्त पत्रका अनुवाद है। इस मामलेमें शंकरलालकी भावनाएँ बहुत तीव्र हैं। फिर भी जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है तुम्हारी बात ही मानी जायेगी। वाइसरायने बैठकके लिए ५ तारीखको सुबह १० बजेका समय निश्चित किया है। ऐसी चर्चा है कि . .[3] चुनावोंके लिए संघ[4] की बैठक दिल्लीमें १३ तारीखसे पहले होगी। यदि मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ी तो दिल्लीसे तार कर दूंगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८८५) से; सौजन्य . सी० आर० नरसिंहन

१. वाइसरायके साथ

२. श्री कृष्णदास जाजू। उन्होंने शंकरलाल बैंकरकी ओरसे गांधीजी की राय माँगते हुए, "अध्यक्ष-मुलुके वर्तमान पदपर बने रहनेका विरोध" किया था, क्योंकि वह "इस प्रकारकी जिम्मेदारी सौंपे जानेके योग्य नहीं था"। उन्होंने आगे लिखा था : "राजाजी की रायको उचित महत्त्व मिलना ही चाहिए। परन्तु इस मामलेमें यह बात मुझे नहीं जँचती। श्री बैंकरको यह भी डर है कि उनको हटा देनेसे तमिलनाडु में खादी-कार्यको नुकसान पहुँचेगा। परन्तु मैं नहीं समझता कि हम ऐसे मामलेमें बुजदिलीसे काम ले सकते हैं। जो भी कठिनाई आये हमें उसका सामना करना ही चाहिए। बहुत सम्भव है कि उनकी जगहपर काम करनेके लिए किसी सुयोग्य व्यक्तिको ढूँढनेमें कुछ दिक्कत पेश आये। किन्तु इसे करना तो है ही।"

३. स्पष्ट नहीं है

४. हरिजन सेवक संघ

१६९. पत्र : श्रीमती के० एल० रलियारामको

सेगांव, वर्धा
२५ जनवरी, १९४०

प्रिय बहन,

आपने मेरे लेख[1] को गलत समझा है। जिन लोगोंने अपना धर्मान्तरण किया है, उन्हें मैंने अपने धर्ममें फिरसे वापस आनेको आमन्त्रित नहीं किया है। लेकिन मैं उनको अपने धर्ममे वापस आनेसे रोकूँगा नहीं, बल्कि अगर उन्होंने कायल होकर नहीं, वल्कि किसी मजबूरीमें धर्मान्तरण किया हो तो उसपर खुशी तक मनाऊँगा। फिर, भावी भारत वैसा ही तो बनेगा जैसा हम-आप उसे बनायेंगे। अकेले एक व्यक्तिका, चाहे वह जितना बड़ा हो, कोई महत्त्व नहीं होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीमती के० एल० रलियाराम
६ गुल्डिंग रोड
लाहौर
पंजाब

[अंग्रेजीसे]

बाहरी एजेंसियोंसे प्राप्त गांधीजी के कागजात, फाइल सं० ७५; सौजन्य: राष्ट्रीय आभिलेखागार। जी० एन० ६८३४ से भी

१७०. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

२५ जनवरी, १९४०

खानेमें परिवर्तनकी जरूरी नहीं है। पतीयाकी भाजी कोई ४० तोलासे अधिक खा ही नहीं सकता है।

मालीशमें ज्यादासे-जादा २० मिनिट लेना। बाकी समय बेठो, पढो, कातो जो कुछ भी। 'एक घंटा' घसनेसे हानि ही हो सकती है फायदा तो नही।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३४) से

१. देखिए "तटस्थता क्या है?", पृ० ६०-६१ ।

१७१. पत्र : अब्दुल खलीलको

सेगाँव, वर्धा
२५ जनवरी, १९४०

भाई अब्दुल खलील,

तुमारा खत मिला। तुमारी शिकायत सही लगती है। मैं तलाश करता हूँ। एक दोषका जवाब दोषसे न दिया जाय। जुमाकी नमाजमें तो कुछ खलल नही आनेवाली है। जो प्रश्न रहता है वह तो न्याय निर्णयका है ना?

मो० क० गांधीकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६२) से

१७२. पत्र : भारतन कुमारप्पाको

२६ जनवरी, १९४०

प्रिय भारतन,

मैंने आर० वी० जेसुदासनको प्राप्ति-सूचनाका एक पत्र भेजा है। तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि पहला पार्सल औषधालयमें सुरक्षित रखा मिला।[1] जब वह पहुँचा, सुशीला सेगाँवमें नही थी, इसलिए मैंने कम्पाउण्डरको दे दिया होगा। विज्ञापन और कम्पनीका नाम मैं पढ़ नही पाया होऊँगा। खैर, अन्त भला तो सब भला।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५८७) से

१. देखिए "पत्र : भारतन कुमारप्पाको" पृ० १२०।

१७३. पुर्जा : जमनालाल बजाजको

[२६ जनवरी, १९४०][1]

जयपुरके बारेमें मैं अभी नहीं लिखना चाहता। मेरी नजरमें इस बारका मेरा दिल्ली जाना बड़े महत्त्वका है, इसलिए उचित यही है कि अभी मैं कुछ न बोलूँ। वहाँ तो बात करूँगा ही। हमें कोई जल्दी नहीं है। तुम्हें अपना इलाज पूरा करा लेनेके बाद ही जानेकी बात सोचनी है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३००९) से

१७४. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
स्वाधीनता दिवस, [२६ जनवरी, १९४०][2]

भाई वल्लभभाई,

तुम यह क्यों कहते हो कि मेरे साथ बात तक नहीं हो सकती? सच तो यह है कि तुम्हें मेरे साथ बात करनेकी जरूरत ही नहीं होती। तुम्हारी शुरूसे ही यह आदत रही है।

अच्छा तो यही है कि फिलहाल तुम दिल्ली न आओ। मुझे वहाँ ५ को पहुँचना है। अगर बातमें कुछ सार हुआ तो मैं तुम्हें तार दूँगा, और सभीको बुलाऊँगा। यह मेरी राय है। किन्तु यदि तुम्हें आनेकी कोई खास वजह नजर आये तो अवश्य आ जाओ। यदि तुम अभी न आना चाहो तो भी आनेको तैयार रहना।

वजुभाई[3] के बारेमें नारणदास (गांधी)को लिख रहा हूँ। मैंने जमनादास (गांधी)को लिखा था, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

वीरावाला[4] तो चले गये, अब देखना है कौन आता है। मैसूरका बिलकुल अजीब हाल हो रहा है।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८ मैरीन ड्राइव, बम्बई

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३७-३८

१. पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २२६ के आधार पर
२. पत्रकी विषयवस्तुके आधारपर वर्ष निर्धारित किया गया है।
३. वजुभाई शुक्ल; देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", पृ० १७२।
४. राजकोटके दीवान

१७५. सन्देश: अखिल भारतीय महिला सम्मेलनको[1]

[२७ जनवरी, १९४०से पूर्व][2]

मैं बहनोंको स्वतन्त्रताका राज-मार्ग पहले ही बता चुका हूँ। इस मार्गपर वे अपने भाइयोंसे आगे जा सकती हैं। इसपर चलकर वे अपने जीवनको कृतार्थ कर सकती हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८-१-१९४०

१७६. टिप्पणियाँ

विचित्र अनुशासन

केरलके समाजवादियोंने एक घोषणापत्र प्रकाशित किया है। इसे प्रकाशित करनेवालोंमें एक केरल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके महामन्त्री भी हैं। यह 'अनुशासन' का एक विचित्र नमूना पेश करता है। ये हैं उसके कुछ चुनिन्दा वाक्य :

> चरखावाद कांग्रेस-नेतृत्वकी नीतिका एक अंग है। जब तक सम्भव हो तब तक संघर्षको टालते रहना, संघर्ष अनिवार्य हो जाये तो सभी वामपंथी शक्तियोंको उससे अलग रखना तथा अपनी टेक छोड़कर समझौता कर लेना — यही इस नेतृत्वकी नीति है।
>
> इस वक्तव्यपर हस्ताक्षर करनेवालोंका चरखावादमें विश्वास नहीं है। फिर भी अनुशासनके नामपर वे तमाम केरलवासियोंसे नई प्रतिज्ञा लेनेका अनुरोध करते हैं।

कांग्रेसके केरलवासी सरक्षकोंकी तरह अपने सेनापतियोंकी आलोचना करनेवाले सैनिकोंको देशद्रोहका दोषी माना जायेगा, क्योंकि अगर उनसे बने तो वे सैनिकोंके बीच सेनापतियोंकी साख बिल्कुल खत्म कर देंगे। इन सज्जनोंके लिए अधिक शोभाजनक और निश्चय ही ज्यादा बहादुरीका काम तो यह होगा कि कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास न रखते हुए भी कांग्रेसमें बने रहनेके बजाय ये उससे अलग हो जायें और देशको अपनी कार्य-पद्धतिका कायल करके उसे

१ और २. यह सम्मेलन बेगम हमीद अली की अध्यक्षतामें इलाहाबादमें २७ से ३१ जनवरी तक चला था।

अपने रास्तेपर ले आयें। जो लोग देशकी एकमात्र संघर्षशील संस्थाके कार्यक्रम और उसके नेताओंको तुच्छ जताकर उसकी जड़ खोदते हैं वे मुक्ति-दिवसको दूर धकेल रहे हैं।

चिन्ताजनक समाचार

दक्षिण आफ्रिकासे आनेवाले समाचार चिन्ताजनक हैं। डॉ० मलान[1] लड़ाईके लिए कटिबद्ध हैं। वे कानून द्वारा पृथक्करणको अमली शक्ल देंगे। वे गोरों और एशियाइयोंके विवाह-सम्बन्धको अवैध बना देंगे। वे भारतीयोंकी उपस्थिति बरदाश्त करेंगे, लेकिन गोरोंके साथ समान अवसरों और समान अधिकारोंका उपभोग कर सकनेवाले मानवोंकी तरह नहीं, बल्कि लकड़ी-पानी जुटानेवाले दासोंकी तरह। यहाँ भारतमें, जहाँ लोग अपने आत्म-सम्मान और स्वतन्त्र राष्ट्र माने जानेके अधिकारके प्रति हर रोज अधिकाधिक जागरूक होते जा रहे हैं, इस जाति-भेदसे बहुत रोष पैदा हो रहा है। लोग जबतक सोचते हैं उससे पहले ही भारत स्वतन्त्र होनेवाला है। जहाँ तक मैं देख पा रहा हूँ, अपने स्वाभाविक भवितव्यकी ओर उसके प्रयाणको कोई चीज रोक नहीं सकती। यदि स्वतन्त्रता ग्रेट ब्रिटेन और भारतके बीच हुए किसी सम्मानजनक समझौतेके फलस्वरूप आनेवाली है, तो स्वयं मैं तो यह कल्पना करता हूँ कि भारतका ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशोंके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम होगा। लेकिन यदि दक्षिण आफ्रिकाके राजनयिकोंका जातीय श्रेष्ठताका यह रवैया कायम रहा तो असमान पक्षोंके बीच मैत्री-सम्बन्ध असम्भव ही होगा। इस युद्धको मैं ईश्वरीय न्यायके रूपमें देखता हूँ। सारी दुनिया प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे इससे प्रभावित है। हर राष्ट्रको, चाहे वह पराधीन हो या स्वाधीन, अपना रास्ता खुद तय करना है वर्तमान सूत्रधारोंके व्यक्तिगत मंसूबे नाकामयाब हो जायें, यह बहुत सम्भव है। मैं डॉ० मलान तथा उनके-जैसे विचार रखनेवाले दक्षिण आफ्रिकावासियोंसे अनुरोध करूँगा कि वे तनिक दूरदर्शिता से काम लें। लेकिन अगर वे बहुत-से दक्षिण आफ्रिकावासियोंकी तरह यह सोचते हों कि ईश्वरने गोरोंको अश्वेतोंका प्रभु और स्वामी बननेके लिए ही सिरजा है, तो बेशक वे जो-कुछ कर रहे हैं ठीक ही कर रहे हैं। मगर मैं आशा करता हूँ कि डॉ० मलान ऐसा सोचनेवाले लोगोंमें नहीं हैं। जो भी हो, मुझे उम्मीद है कि डॉ० मलान द्वारा सुझाये प्रतिक्रियावादी विधेयकको स्वीकार करनेके लिए जनरल स्मट्स पर जो दबाव डाला जा रहा है, उसके आगे वे झुकेंगे नहीं।

सेगाँव, २७ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-२-१९४०

१. साउथ आफ्रिकन यूनियन असेम्बलीमें राष्ट्रवादियोंके नेता

१७७. एक तार

वर्धागंज
२७ जनवरी, १९४०

हरिजन सेवक संघकी बैठक या तो यहाँ पूर्वघोषित तिथिको करो या वहाँ छः तारीखसे। मेरा विशेष कार्य पूरा हो जानेके बाद मेरे वहाँ रुकनेकी आशा न करो या मलिकन्दा[1] के बाद वर्धामें कोई दिन तय करो।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७८४०) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१७८. पत्र: एन० आर० मलकानीको

सेगाँव, वर्धा
२७ जनवरी, १९४०

प्रिय मलकानी,

सिन्धकी दु:खद घटनाने मेरे मर्मको छेद दिया है। तुम अपीलकी शकलमें कुछ लिखो, फिर मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है। मेरा सुझाया इलाज[2] सच्चा है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३८) से

१. जहाँ २० फरवरीसे गांधी सेवा संघकी बैठक होनेवाली थी
२. देखिए "सिन्धकी दुःखद घटना", पृ० ८३-८६।

१७९. पत्र : नारणदास गांधीको

२७ जनवरी, १९४०

चि० नारणदास,

तुम्हारा काम ठीक चल रहा होगा। कनैयो अपने काममें जुट गया है।

साथमें छगनलालके लिए पत्र है। मेरी इच्छा है कि तुम उसके साथ बैठकर इसका स्पष्टीकरण कर लो।

हिसाबकी क्या बात है?[1] तुम्हारा हिसाब तो हमेशा साफ ही होता है। क्या हिसाबका संक्षिप्त विवरण प्रकाशित नही हुआ है? उसके लिखे अनुसार उसकी मारफत जो पैसा आया है, वह उसे दे देना; उदाहरणके लिए शान्तिलाल वगैरहसे मिला पैसा।

मैं देखता हूँ कि तुम दोनोंके बीच वैमनस्य चल ही रहा है। ऐसी स्थितिमें उचित यही होगा कि तुम दोनों एक दूसरे के साथ काम न करो।

वजुभाईको तुमने वहाँ अपने कामके लिए रख लिया है, इसमें सरदारको लगता है कि उसकी चालाकी काम कर गई। मुझे भी यह अच्छा तो नही लगा। उसमें मुझे मैल दिखाई दिया है। सरदारकी मान्यता है कि तुम्हारे नामकी आड़में वह अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१८०. पत्र : छगनलाल जोशीको

सेगाँव, वर्धा
२७ जनवरी, १९४०

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। संस्थाओंमें काम करनेवाले लोगोंको अपनी संस्थाके संचालककी अनुमति लेकर ही प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। मेरी रायमें प्रतिज्ञा लेनेमें कोई हर्ज नही है।

जयन्ती-कोषके सम्बन्धमें मैंने यह नीति अंगीकार की है कि जैसा नारणदास कहे वैसा किया जाये। तुमने विशेष प्रयोजनोंके लिए जो पैसे उगाहे हैं, वे

१. गांधी जयन्ती-कोषका हिसाब; देखिए अगला शीर्षक।

तुम्हें वापस मिलने चाहिए — उदाहरणके लिए शान्तिलालके। मैंने तदनुसार नारणदासको लिख भी दिया है।

जयन्ती कोषका हिसाब प्रकाशित करना चाहिए, इस बारेमें मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है। यह भी मैंने नारणदासको लिख दिया है।

मैं देखता हूँ कि तुम दोनोंके बीच मतैक्य तो है ही नहीं, मतभेद बराबर बने ही रहते लगते हैं। ऐसी स्थितिमें उत्तम यही होगा कि तुम और वह साथ-साथ मिलकर कोई काम न करो। ऐसा बहुधा हो जाता है। काकासाहब और मगनलाल[1] का भी ऐसा ही हो गया था न? मैं उन्हें एक-दूसरेसे टकराने नहीं देता था, लेकिन जहाँ टकराते थे, वहाँ वैमनस्य तो बढ़ता ही था।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आनन्दने फिर मुझे पत्र लिखा था। मैंने उसे उचित उत्तर दे दिया।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५४८) से

१८१. एक पुर्जा

२७ जनवरी, १९४०

बारोटके सबन्धमें मोटरकी बात करना।

आज रामीके लिए मोटर मँगाना ही सरल उपाय मालूम होता है। उसे बलवन्तसिंह अथवा और कोई स्टेशन तक पहुँचा आये। मैं समझता हूँ कि वह बम्बई होकर जायेगी।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४५६८) से

१८२. पत्र : प्रभाकरको

सेगाँव, वर्धा
२७ जनवरी, १९४०

भाई प्रभाकर,

तुमारे प्रश्न ऐसे हैं जिसका उत्तर देनेमें मुझे काफी समय चाहीये। कोई वैर यहा आओगे तब पूछना। दरम्यान 'हरिजन' पढ़ते रहो, शायद अपने आप उत्तर मिल जायगा।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० १०२५०) से; सौजन्य : भारत कला भवन

१. मगनलाल गांधी

१८३. पत्र : बलवन्तसिंहको

२७ जनवरी, १९४०

चि० बलवंतसिंह,

इस वक्त गांधी सेवा संघमें तुमको ले जानेका दिल नही है। बंगालकी गायों की चिंता हम न करें। कृष्णचन्द्रसे कहूँगा। लेकिन ज्ञानके पिपासुको खुशामत करनी पडती है। जब मेरे जेसे महात्मा बनोगे, तब तुमको ज्ञान देनेवाले तुमारी खुशामत करेंगे। दरम्यान 'गीता' का वचन याद करो। वह यह है प्रणिपात (खुशामतसे) और परिप्रश्न (बार-बार प्रश्नसे) और सेवा करके ज्ञान सीखो।[1] 'गीता'का क्रम तो महात्माओंके लिये ही शायद बदलता होगा। बाकी मुझे जो खुशामत करनी पडती है सो मै ही जानता हूँ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९४५) से

१८४. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

२७ जनवरी, १९४०

सुशीला कहती है उसने उलटा ही कहा है। अगर दरदी (बीमार) को नींदके लिये पेर घसानेकी आवश्यकता रहे [तो][2] घंटो तक घसावे, अन्यथा नही। तुझे आवश्यकता है ही नहीं। [जो][3] आवश्यक नही है वह करना अध्यात्मिक दृष्टिसे हानिकर है। इसलिए २० मिनिट काफी है।

खानेमें सब मिलकर दो घंटेसे अधिक होना ही नहीं चाहिये।

केशुको एकांतमें पढ़ाना। बलवंतसिंहके लिये कुछ काम छोड़ना पडे तो छोडना। . . .[4] आनेसे कुछ तो बचना चाहिये।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३५) से

१. भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ३४
२, ३ और ४. यहाँ शब्द अस्पष्ट हैं।

१८५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२७ जनवरी, १९४०

चि० कृष्णाचद्र,

साथका पढो[1]। बलवंतसिहजीके लिये समय नही मिलता है?

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३६) से

१८६. पत्र : रेहाना तैयबजीको

२७ जनवरी, १९४०

प्यारी बेटी रेहाना,

तेरा पो० का० पाकर वहूत खुश हूआ क्योंकि तू खबर देती है कि अम्मा-जानकी जो फिकर खा रही थी वह दूर हो रही है। मै क्या कहू। इस चीजने मुझे वहूत दु.ख दिया है कि अम्माजान इतनी परेशान रही। उनका ब० प्रे० अभी भी ज्यादा तो है। हाँ, जमनालालजीने तेरे पराक्रमकी सब बातें सुनाई। दो दिन यहाँ रहे। यों तो पूनासे लिखा करते थे तू किस तरह उनके लिये कोयल बन गई थी।[2] तेरी आवाज मै यहांसे सुन लेता हूँ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६७७) से

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. रेहानाबहन भजनोंकी धुन रचती थीं और उन्हें गाती थीं।

१८७. चहुँमुखी तबाही

खबर है, श्री एफ० ई० जेम्स[1] ने हालमें ही मद्रासमें एक भाषणमें निम्न-लिखित उद्‌गार व्यक्त किये हैं :

> इसके बाद श्री जेम्सने कांग्रेस द्वारा निर्धारित स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञाका उल्लेख करते हुए कहा कि उन्हें प्रतिज्ञाका निम्नलिखित वाक्य अच्छा नहीं लगा :
>
> 'ब्रिटिश हुकूमतने न केवल भारतके लोगोंको स्वतन्त्रतासे वंचित कर रखा है, बल्कि उसने जनसाधारणके शोषणको ही अपना आधार बना लिया है और भारतको आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे तबाह कर दिया है।'
>
> "कांग्रेसियोंमें मेरे बहुत-से मित्र हैं और मुझे लगता है कि मुझे उस कथनका विरोध करनेका अधिकार है जिसे मैं इस प्रतिज्ञाके लिए सचमुच अनावश्यक मानता हूँ। यह कथन भड़कानेवाला है, और फिर मुझे इसकी सच्चाईमें भी सन्देह है। आप इसे सही नहीं साबित कर सकते, जैसे मैं इसे गलत नहीं साबित कर सकता।" वक्ताने जोर देकर यह बात कही कि सारा देना एक ही तरफके खाते में डाल देना न्यायसंगत नहीं है। उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि जो कांग्रेसी घृणा और पूर्वग्रहसे मुक्त हैं वे शुद्ध मनसे इस प्रतिज्ञाको दोहरा नहीं सकते। यदि उनसे इस कथनको दोहरानेको कहा जाता है तो इससे बहुत अधिक कटुता, द्वेष और गलतफहमी पैदा हो सकती है। आगे उन्होंने यह भी कहा कि "स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञाके इस वाक्यमें जो खास हिंसा निहित है उससे गांधीजी के अहिंसाके सिद्धान्तका मेल नहीं बैठता।"

प्रतिज्ञाके जिस अंशको श्री जेम्सने उद्धृत किया है उसकी निन्दा करनेवाले वे अकेले नही हैं। 'स्टेट्समैन' ने इस अंशको "एक घृणित झूठ" कहा है। ध्यान रहे कि यह हिस्सा मूल प्रतिज्ञामें था और पिछले दस वर्षोंसे किसीने इस पर उंगली नही उठाई है। बेशक, यह कोई ऐसी बात नही है जिसके कारण आज भी इसकी आलोचना न की जाये। हाँ, आलोचनाका आधार ठीक जानकारी होनी चाहिए और आलोचना सही हो। प्रो० वी० जी० देसाईने हालमें ही इस

१. केन्द्रीय विधान-सभामें यूरोपीय गुटके एक सदस्य

अखवार में यह दिखाया है[1] कि 'स्टेट्समैन' की वह आलोचना कितनी खोखली थी। मगर मैं अब फिर उस विषयकी चर्चा कर रहा हूँ, क्योकि श्री जेम्सने कहा है कि इस "वाक्यमें जो खास हिंसा निहित है उससे मेरे अहिंसाके सिद्धान्तका मेल नही बैठता"। मैं यह मानता हूँ कि यदि इस वातको कहनेवालेका इसकी सचाईमें विश्वास हो तो इसे हिंसामय नही समझा जायेगा। कारण, अहिंसाका मतलब यह नही है कि सत्यको खुद अपनेसे या दुनियासे छिपाया जाये। अहिंसा तो बुराई करनेवालेके दुष्कर्मोकी विलकुल ठीक-ठीक जानकारी होनेके वावजूद उसके प्रति अहिंसाका वरताव करनेमें निहित है। लोगोंके हृदयमें अहिंसाकी भावना उतारनेका मेरा प्रयत्न यदि प्रभावकारी हुआ है तो वह इसीलिए कि ब्रिटिश शासनके परिणामोंका वर्णन करनेमें जिन विशेषणोंका प्रयोग हिंसावादी विचार-धाराके लोग करते आये है, मैंने भी लगभग उन्हीका प्रयोग किया है और उन वुराइयोको दूर करनेका सवसे अधिक कारगर उपाय वताया है। जो हमारा कोई वुरा नही करते उनसे प्रेम करनेमे क्या विशेषता है? विशेषता तो उनसे प्रेम करने, उनके साथ अहिंसाका वरताव करनेमें है जो हमारे साथ दुर्व्यवहार करते है। जव मैंने 'हिन्द स्वराज्य' में आधुनिक सभ्यता को, जिसका प्रतीक साम्राज्य-वाद है, निरीश्वर वताया तव, मुझे मालूम है, उस सभ्यताके प्रतिनिधियोंके प्रति मेरे मनमें सद्भावनाके अतिरिक्त और कुछ नही था।

और क्या यह तथ्य हमारे सामने दिनके उजालेकी तरह स्पष्ट नही है कि "ब्रिटिश हुकूमतने न केवल भारतके लोगोको स्वतन्त्रतासे वचित कर रखा है, वल्कि उसने जनसाधारणके शोषणको ही अपना आधार वना रखा है और भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे तवाह कर दिया है?" ए० ओ० ह्यूम डिग्वी[2], दादाभाई, वेडरवर्न[3] और अन्य वहुत-से जाने-माने तथा किसी भी विषय पर वहुत सोच समझकर कलम उठानेवाले लेखको ने लाखों-करोड़ों लोगोंको यह वताया है कि वर्त्तमान शासनतन्त्रने इस देशकी सम्पदाको लूटकर यहाँके कृषक-समाजको दरिद्र वना डाला है। राजनीतिक पराधीनता तो स्पष्ट ही है। और सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टियोंसे जैसी पूर्ण पराजयका मुँह भारतको ब्रिटिश शासनके अधीन देखना पड़ा है, वैसी पराजय तो अपने इतिहासमें उसने पहले कभी नही देखी थी। यह पराजय इसी-लिए कुछ कम पीड़ाजनक या पतनकारी नही होती कि हमने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विजेताओंके सामने स्वेच्छासे आत्मसमर्पण किया है। जिसको जंजीरमें जकडनेकी कोशिश की जाये, खुद वही आदमी जव जजीरको आगे वढकर गले लगाये और वन्दी वनानेवालेके रीति-रिवाजोका अनुकरण करने लगे तो समझना

१. ६ जनवरी, १९४० के हरिजनमें प्रकाशित "ए रिव्यू ऑफ 'फाउल ऐण्ड एवॉमिनेवल लाइज'" शीर्षक लेखके अन्तर्गत

२. विलियम डिग्वी, इंग्लैण्ड में कांग्रेस के एजेंट

३. सर विलियम वेडरवर्न; १८८९ में कांग्रेसके अध्यक्ष

चाहिए कि उसकी पराजय पूर्ण हो चुकी है। मुझे याद है कि जब मेरे पिता को गवर्नरके आगमनपर लगनेवाले दरबारमें उपस्थित होना पड़ा था तो मेरा सारा घर कैसे अस्तव्यस्त हो गया था। वे मोजे या बूट या जिसे तब 'होल बूट' कहते थे, वैसे जूते कभी नहीं पहनते थे। सामान्यतया वे मुलायम चमड़ेकी हलकी-सी चप्पलें पहनते थे। यदि मैं चित्रकार होता तो जिस समय मेरे पिताजी अपनी टाँगोंपर मोजे चढ़ानेकी कोशिश कर रहे थे और तंग तथा कष्टकर बूटोंमें अपने पैर घुसा रहे थे उस समय उनके चेहरेपर छाये झल्लाहट और वेदनाके भावोंका सही चित्रण करके दिखा देता। मगर लाचारी थी, यह सब-कुछ उन्हें करना पड़ा था! जब लॉर्ड कर्जन कलकत्तामें अपना दरबार लगा रहे थे, उन दिनों संयोगसे मैं वहीं था। मैं इंडिया क्लबमें ठहरा हुआ था। जो राजे-महाराजे वहाँ टिके हुए थे उनकी वेषभूषा देखने लायक थी। वे बिलकुल खानसामे-से दिखते थे। जैसी चुन्नटें सिर्फ बंगाली ही डाल सकते हैं ऐसी चुन्नटोंवाली धोती, दूध-सा सफेद कुरता और कुछ लापरवाहीके साथ लेकिन बड़े ही फबते ढंगसे शरीर पर डाला हल्का-सा शाल — यह थी उनकी साधारण पोशाक। लेकिन सम्राटके प्रतिनिधिके दरबारके लिए इस पोशाकको अनुपयुक्त और गँवारू समझा गया। बड़े-बड़े जमींदारों और नरेशों को तो दरबारमें हीरे-मोतियोंसे सज-धजकर ही उपस्थित होना चाहिए। और इस पत्रमें हमने संयुक्त प्रान्तमें अलंकरण समारोहके समय बार-बार नमन करने का निदश देनेवाला जो परिपत्र[1] उद्धृत किया है उसको क्या कहिएगा? क्या यह सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टियोंसे पतित बनानेवाली चीज नहीं है? श्री जेम्स कहते हैं: "आप इसे सही नहीं साबित कर सकते, जैसे मैं इसे गलत नहीं साबित कर सकता।" मगर इस वाक्यका उत्तरार्ध जितना सही है, पूर्वार्ध उतना ही गलत है। सांस्कृतिक पराभवके मैंने ये सहज रूपसे ध्यानमें आ जाने-वाले कुछ उदाहरण दिये हैं। मगर चोट जितनी मैंने बताई है, उससे बहुत गहरी है। क्या अंग्रेजोंको इस बातपर गर्व करना चाहिए कि बहुत-से शिक्षित भारतीय अपनी मातृभाषामें अपने विचार ठीकसे व्यक्त ही नहीं कर सकते और उन्हें अपने प्रियजनों तक भी अपने अन्तरंग विचार अंग्रेजीमें ही पहुँचाने पड़ते हैं? यह बात भारतकी संस्कृतिके विनाशका कितना बड़ा प्रमाण है? मैं अंग्रेजोंसे निवेदन करता हूँ कि वे इस सांस्कृतिक विनाशकी विकरालताको मेरी ही तरह तनिक महसूस करें। बहुत-से भारतीय आज अपने ही देशमें साहब लोग, अजनबी बन गये हैं और जनसाधारणके साथ उनका कोई सजीव सम्पर्क नहीं रह गया है। कांग्रेसके कारण स्थिति उतनी नहीं बिगड़ पाई है जितनी वह अन्यथा बिगड़ जाती। लेकिन उतनी नहीं बिगड़ पाई है, बस इतना ही कह सकते हैं, इससे ज्यादा नहीं। और कौन जाने, भारतको अपने लक्ष्य तक पहुँचनेसे रोकनेवाली सबसे बड़ी बाधा अस्वाभाविक और कृत्रिम शिक्षा-पद्धति ही न हो! शिक्षित भारतीय

१. देखिए "टिप्पणियाँ", उपशीर्षक "साम्राज्यवाद सहज ही नहीं मरनेवाला" पृ० १४५-४६।

जनसाधारण तक पहुँच पाये, इसके योग्य तो उसे छोड़ा ही नही गया है। इस बातके लक्षण अवश्य दिख रहे हैं कि अंग्रेज अब यह मानने लगे है कि भारतको अपना अपनत्व, अपना स्वत्व प्राप्त करना चाहिए। लेकिन जब तक वे भारतकी इस चहुँमुखी तबाहीके सत्यको नही समझते तब तक उनका हृदय-परिवर्तन पूर्ण नहीं होगा। यदि वे अपनी भारत-विजयपर और इस विजयसे और भी जो बातें जुड़ी हुई हैं उनपर गर्व करते है, तो फिर हम दोनोंके बीच पडी खाई पट नही पायेगी। तथ्योको छिपानेसे हममें एक-दूसरेके प्रति सच्ची और हार्दिक समझ पैदा नही हो सकेगी। उस हार्दिक समझका मतलब यह है कि इग्लैडने भारतपर जो चहुँमुखी विजय पाई है, उसका वह स्वेच्छासे त्याग कर दे। उसके बिना भारत विश्व-शान्तिमें वह विशेष योगदान नही कर सकता जिसके लिए वह विशिष्ट रूपसे योग्य हैं।[1]

सेगाँव, २८ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-२-१९४०

१८८. पत्र : कनु गांधीको

२८ जनवरी, १९४०

चि० कनैयो,

कलकी बाइसिकल वाली घटना अच्छी नही कही जा सकती। बढईको अपने औजार हमेशा तैयार रखने चाहिए। टाइपिस्टको अपना टाइपराइटर, घुड़सवारको अपना घोड़ा तैयार रखना चाहिए। इसी प्रकार बाइसिकल हमेशा साफ, उसमें तेल पड़ा हुआ, और लैस होनी चाहिए। या फिर बाइसिकल रखी ही न जाये। लापरवाहीके कारण होनेवाली दुर्घटना मुझसे बिलकुल बरदाश्त नही होती। यह बात अहिंसाके दायरेमें आ जाती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

१. एफ० ई० जेम्सने इसका जो उत्तर दिया था वह हरिजन, ९-३-१९४० में "अनकन्विंसिंग एपोलॉजिया" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

१८९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

[२९ जनवरी, १९४० से पूर्व][1]

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र बहुत-सी खबरोंसे भरा हुआ है। मैंने वह पत्र कांग्रेसके अध्यक्ष[2] और किशोरलालको पढ़वाया। दोनों चिन्तामें पड़ गये है।[3] प्रभाका स्वास्थ्य अच्छा नही कहा जा सकता। वह यहाँ आ गई है। उसमें पहले जैसा उत्साह नहीं रहा है। वह रातको ही आई है। मैंने उससे बात नहीं की। मैं उसे आज्ञा देकर तो आज ही वापस भेज सकता हूँ, किन्तु ऐसा तो तू नही चाहेगी।[4] फिलहाल तो वह भले यहीं रहे। उसका मन जरा शान्त हो जाये, शरीर स्वस्थ हो जाये तो फिर मैं भविष्यके बारेमें सोचूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०३) से। सी० डब्ल्यू० ६८४२ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१९०. प्रश्नोत्तर

हर सप्ताह मेरे चेतावनी देते रहनेके[5] बावजूद, पत्र लगभग पहलेकी ही भाँति बड़ी संख्यामें आ रहे है। इन सब पत्रोंको पढ़नेके लिए मेरे पास समय नही है। प्यारेलाल मेरे सामने केवल वही पत्र रखते हैं जो उनके विचारमें मुझे अवश्य पढ़ने चाहिए। अतः मैंने उन्हें सुझाव दिया है कि वे इन पत्रोंमें से ऐसे प्रश्न बना लें, जो आम महत्त्वके हों। मैं प्रति सप्ताह ऐसे प्रश्नोंके उत्तर

१. बापुना पत्रो – ५: प्रेमाबहेन कंटकने, पृ० २७१ पर प्रेमाबहन कंटक द्वारा इस पत्रके बारेमें दी गई परिचयात्मक टिप्पणीके आधारपर इसे इस तारीखके अन्तर्गत रखा गया है। देखिए "पत्र: प्रेमाबहन कंटकको", पृ० १९० भी।

२. राजेन्द्र प्रसाद

३. प्रेमाबहनने लिखा था कि कांग्रेस और गांधी सेवा संघके कुछ कार्यकर्ता बिहार फॉरवर्ड ब्लॉककी गतिविधियोंमें भाग लेते हैं। किशोरलाल मशरूवाला संघके अध्यक्ष थे।

४. प्रेमाबहन कंटककी इच्छा थी कि बिहारमें बननेवाले स्वयंसेविका दलका नेतृत्व प्रभावती देवी करें।

५. देखिए "पत्र-लेखकों और सन्देश चाहने वालोंसे", पृ० १३३।

देता रहूँगा। मुझे आशा है कि पत्र-लेखक तथा पाठक इस प्रयासका स्वागत करेंगे।

संविधान-सभा

प्र० : आज भी संविधान-सभाके चुननेवालोंमें एक भारी संख्या ऐसे अनपढ़ और अल्पबुद्धि मतदाताओंकी होगी जो किसी भी पक्षमें इसलिए मत देंगे कि उस पक्षके नेता उन्हें लुभानेवाले नारोंमें फँसा लेंगे। क्या ऐसी दशामें संविधान-सभाके निर्णय केवल एक ढोंग और बहुसंख्याका उत्पीड़न मात्र बनकर नहीं रह जायेंगे? क्या यह उचित नहीं होगा कि ऐसी समस्याओंका निबटारा समाचारपत्रोंमें चर्चाओं द्वारा, जनताकी सभाओं द्वारा, अथवा निजी गोष्ठियों द्वारा किया जाये?

उ० : प्रत्येक बड़े प्रयोगमें खतरा तो रहता ही है। परन्तु मेरे विचारमें प्रस्तावित प्रयोगमें यह खतरा कमसे-कम है। इस सुझावके पीछे यह विश्वास है कि अधिक संख्या ऐसे उम्मीदवारोंकी होगी जो समझदार और सेवाभावी हैं। ऐसी दशामें चुनाव कार्यक्रमका रूप एक विस्तृत राजनैतिक शिक्षणका रहेगा। इसमें बहुसंख्याके छा जानेका प्रश्न नही उठता। इसमें सन्देह नही कि अल्पबुद्धि वाले मतदाता भटककर गलत चयन कर सकते हैं, तथापि यह निर्णय जनताका निर्णय होगा। समाचारपत्रोंमें अथवा जनसाधारणकी सभाओंमें की गई चर्चाएँ चुनाव-प्रणालीका स्थान नही ले सकती। किसी निजी गोष्ठीका निर्णय केवल उन्ही लोगोके विचारोको प्रतिबिम्बित करेगा जो उसमें उपस्थित होगे। आवश्यकता इस बातकी नही है कि निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण हो, अपितु वह आम तौरपर सबकी इच्छाको प्रतिबिम्बित करनेवाला होना चाहिए। आजकल ऐसी अनेक संस्थाएँ है जो जनसाधारणके नामपर बोलनेका दावा करती है। जब संविधान-सभा बन जायेगी तो वह सभी स्वरोका स्थान ग्रहण कर लेगी और राष्ट्रवाणीको व्यक्त करनेका एकमात्र साधन होगी।

क्या मैं सुधारवादी हूँ?

प्र० : क्या सुभाष बाबूका यह कथन सत्य नहीं है कि हाई कमान, जिसमें आप भी शामिल है, सुधारवादी तथा उदारवादी है?

उ०: निस्सन्देह वे ठीक कहते हैं। दादाभाई एक बड़े सुधारवादी थे। गोखले एक बहुत बड़े उदारवादी थे और इसी प्रकार बम्बईके बेताज बादशाह श्री फीरोजशाह मेहता भी ऐसे ही थे। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी ऐसे ही थे। वे अपने समयमें राष्ट्र-हितके सबसे बड़े सरक्षक थे। हम उनके उत्तराधिकारी हैं। यदि वे न होते तो हम भी नही होते। जो बात सुभाष बाबू आगे बढ़ने की अधीरतामें भूलते है वह यह है कि मेरे जैसे सुधारवादी और उदारवादी व्यक्ति भी राष्ट्रप्रेममें किसीसे पीछे नहीं है। किन्तु मैंने उनसे कह दिया है कि अभी उनमें युवावस्थाका ज्वार है और उनमें युवकों-जैसी तीव्रता होनी ही चाहिए। उनको मैंने या किसी अन्य व्यक्तिने दबाकर नही रखा है। और वे

दबनेवाले हैं भी नही। यदि वे रुकते भी हैं तो केवल अपनी समझदारीके कारण ही रुकते हैं। और इसमे वे उतने ही सुधारवादी और उदारवादी हैं जितना कि मै। अन्तर केवल इतना है कि मै अपनी बड़ी आयुके कारण इस तथ्यको पहचानता हूँ और वे युवा होनेके कारण अपने उस गुणको देखनेमें असमर्थ हैं। पत्र-लेखक यह सन्तोष रखें कि हम दोनोंके दृष्टिकोणोंमें अन्तर होते हुए भी और उनपर कांग्रेस द्वारा लगाये प्रतिबन्धके बावजूद जब वे अहिंसात्मक युद्धका नेतृत्व करेंगे तो मै उनका अनुसरण करूँगा और यदि मै उनसे आगे बढ़ जाऊँ तो वे मेरे पीछे चलेंगे। किन्तु मै तो यही आशा रखूँगा कि हम अपने समान ध्येय तक एक और लड़ाई लड़े बिना ही पहुँच जायेंगे।

अनिवार्य भरती

प्र० : आप कहते हैं कि करोड़ों भारतीय निःशस्त्र हैं और वे शस्त्र चलाना नहीं जानते। भारतके स्वतन्त्र होनेपर समूचे राष्ट्रको अनिवार्य भरती द्वारा शस्त्र चलाना सिखानेमें आपको क्या आपत्ति है?

उ० : नि.सन्देह सिद्धान्त रूपमें तो अनिवार्य भरती द्वारा सैनिक प्रशिक्षण देनेमें कोई आपत्ति नही है, लेकिन मेरा विश्वास है कि इस देशके लोग अनिवार्य भरतीके बावजूद आसानीसे शस्त्र चलाना सीखना पसन्द नही करेंगे। जो भी हो, करोड़ों लोगोंको या थोड़े-से लोगोंको भी शस्त्रसज्जित करना मेरे विचार-क्षेत्रसे बाहरकी बात है। यह मेरे लिए अरुचिकर है। यदि मेरा बस चले तो मै प्रवीण और अप्रवीण श्रमिकोंको उत्पादनके लिए अनिवार्य रूपसे भरती करूँगा। मेरा विचार है कि अहिंसक समाज-रचनाका यह सबसे आसान और प्रभावशाली उपाय होगा।

स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा

प्र० : खादी और ग्रामोद्योगोंसे सम्बन्धित स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञाके लोगोंने अलग-अलग अर्थ लगाये हैं। इस बारेमें हम क्या करें? 'नियमित कताई', 'आदतन खादीका प्रयोग', और 'ग्रामीण वस्तुओं'का क्या अर्थ है? क्या प्रतिज्ञापर चलना केवल मेरे लिए ही आवश्यक है या समस्त परिवारके लिए भी? यदि मै समूचे परिवारके लिए खादी खरीदनेमें असमर्थ हूँ तो मुझे क्या करना चाहिए?

उ० : इस बार स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा ऐच्छिक रखी गई है। समाचार-पत्रोंने बतलाया है कि लाखों स्त्री-पुरुषोंने प्रतिज्ञा ली है। मै आशा करता हूँ कि ये संवाद सत्य होंगे। मेरा मापदण्ड खादीकी बिक्री है। प्रतिज्ञा तो अब भी ली जा सकती है। मै मानता हूँ कि इसके विभिन्न अर्थ निकल सकते है, किन्तु ऐसा तो वेदोंके बारेमें भी है। आधिकारिक व्याख्या तो केवल राष्ट्रपति[1] ही दे

१. कांग्रेसका अध्यक्ष उस समय राष्ट्रपति कहलाता था।

सकते हैं। मैं अपनी सम्मति देना नही चाहता। आपकी समझके मुताबिक उसका जो अर्थ निकले आप खुद ही निकालिए। स्मरण रखिए, जहाँ चाह वहाँ राह। नि:सन्देह यदि सारा परिवार ही प्रतिज्ञा ले तो अधिक अच्छा होगा। किन्तु आप अपने भाईके तो रखवाले हैं नहीं। जहाँ तक आपके आर्थिक सामर्थ्यका सम्बन्ध है, जरा सोचकर देखिए कि करोड़ों लोग जो चिथड़ोंमें घूम रहे हैं उनका खयाल करके आपके अपने कपड़ोंमें कुछ कमी करनेकी गुंजाइश है या नही। मुझे सन्देह है कि मेरे प्रश्नकर्ताओंमें से बहुत-से लोग ऐसे होंगे जो दिखावेके लिए आवश्यक मानकर अनेक अनावश्यक वस्तुएँ भी अपने पास रखते होंगे। किन्तु दिखावा उन लोगोंके लिए नहीं है जो अपनी और अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए न्योछावर होना चाहते हैं। मैंने यह भी सुझाव दिया है कि जो लोग खादीकी पूरी कीमत नहीं चुका सकते वे अपनी जरूरतका सूत स्वयं कातकर मिल कपड़ेके भाव खादी प्राप्त कर सकते हैं। और अन्तमें, यह आवश्यक नही है कि आप प्रतिज्ञा अभी ले। यह आप उस समय ले सकते हैं जब आपने अपने-आपको इसके लिए तैयार कर लिया हो। सबसे अधिक आवश्यकता पूरी ईमानदारीकी है। आपके जैसे पत्र मुझे आशासे भर देते हैं। यदि मुझे ईमानदार स्त्री-पुरुष काफी संख्यामें मिलें तो उनसे मैं एक ऐसी सेना तैयार कर सकता हूँ जिसकी गति कोई नही रोक सकेगा।

चरखा और स्वराज्य

प्र० : आप चरखेको स्वराज्यसे किस प्रकार जोड़ते हैं? जब हमने स्वतन्त्रता खोई उस समय भी हम अपनी खादी आप ही तैयार करते थे।

उ० : हमें उस समय चरखेकी अकूत कीमतका आभास नही था। अब चूंकि हमें इसका पता चल गया है, इसलिए हमें चरखेको अपने घरोंमें इसके पुराने सम्मानित स्थानपर प्रतिष्ठित करना चाहिए। मान लीजिए कि वे लोग जो अपने पास बन्दूक रखते हैं, किसी कारणवश अपनी बन्दूकें और स्वतन्त्रता दोनों ही खो दें तो क्या यह उनके लिए उचित होगा कि वे एक ऐसे बुद्धिमान पुरुषकी सलाह ठुकरा दें जो उन्हे अपने शस्त्र फिरसे सँभालनेको कहे और साथ ही उन्हें यह भी बतला दे कि उन्होने अपनी बन्दूकें इतनी आसानीसे छोड़नेमें पहले मूर्खता की थी? मेरा सचमुच विश्वास है कि जब तक हम चरखेको, उसके समस्त फलितार्थोंके साथ, पुन: प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता और गरिमाको नही पहचानते तब तक हम अहिंसात्मक उपायसे न स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं और न उसकी रक्षा कर सकते हैं।

वासनामय आँखें

प्र० : मैं एक कारखानेमें काम करनेवाला गरीब आदमी हूँ। मैं एक बड़ी उलझनमें फँस गया हूँ। जब भी घरसे बाहर निकलता हूँ, किसी सुन्दरीका चेहरा देखकर मैं सुधबुध भूल जाता हूँ। मैं सारा आत्मसंयम खो बैठता हूँ।

कभी-कभी तो लगता है कि कहीं मैं कोई अभद्र व्यवहार न कर बैठूँ। एक बार तो मैंने आत्महत्याका विचार भी किया। मेरी भली पत्नीने मुझे बचा लिया। उसने सुझाव दिया कि जब भी मैं घरसे बाहर निकलूँ उसे साथ ले चलूँ। यह योजना काफी सफल रही, किन्तु यह सदैव सम्भव नहीं है। कई बार तो निराश होकर मैं अपनी आँखोंको निकाल फेंकनेका विचार करता हूँ, किन्तु अपनी पत्नीका खयाल मुझे ऐसा करनेसे रोक देता है। आप तो बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं। क्या आप कोई हल नहीं सुझा सकते?

उ० : आप ईमानदार और स्पष्टवक्ता हैं। आपको विदित होना चाहिए कि आप जिस स्थितिमें है उसमें बहुत-से मनुष्य हैं। आँखोंका व्याभिचार एक आम बीमारी है, जो दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। अब तो इसने एक तरहका सम्मानित स्थान भी प्राप्त कर लिया है। किन्तु इसे आपको कोई सन्तोषकी बात नही मानना चाहिए। आपकी पत्नी बहुत बहादुर हैं। आपको उनके प्रति गैर-वफादार नही होना चाहिए। किसी अन्य स्त्रीके प्रति वासना रखना तो गैर-वफादारी की पराकाष्ठा है। इससे विवाह एक मजाक बनकर रह जाता है। आपको इस शत्रुसे दृढ़ होकर लड़ना है। सदैव मनमें यह विचार रखिए कि संसारकी अन्य सब स्त्रियाँ आपकी सगी बहनें हैं। अश्लील साहित्य, सिनेमा और गन्दे चित्र, जो वासना भड़कायें, त्याग देने चाहिए। सदैव अपनी आँखें पृथ्वीकी ओर गाड़कर चलिए और जब आप ऐसा करें तो ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह आपके हृदयको शुद्ध करे। यदि आप ऐसा करेंगे तो विश्वास रखिए कि वह आपको इस अभिशापसे बचा लेगा। यदि आवश्यक हो तो गहरा काला चश्मा पहनें। इससे आपको बहुत बड़ी बाहरी सहायता मिलेगी। वास्तवमें बड़े शहरोंमें सराहनेके लिए है भी क्या? दम घोटनेवाली विशालता और घनी आबादी, वही शोर और दिन-प्रतिदिन वही मानवीय चेहरे — इनके अतिरिक्त और क्या है? यदि हम जड़ताकी भारी शक्तिके शिकार न होते तो बार-बारके वही भद्दे दृश्य हमारी इन्द्रियोंको रुग्ण बना देते। दिनके समय आप अपने कर्तव्य करनेमें जुटे रहें और रात्रिको ज्योतिषके एक साधारण गुटकेकी सहायतासे आकाशमें सितारोंको देखनेका अभ्यास करें। इस प्रकार आपकी आँखोंके सामने वह दृश्य आयेगा जो विश्वका कोई भी सिनेमा प्रस्तुत नही कर सकता। इस प्रकार एक दिन ऐसा आ सकता है कि असंख्य तारागणोंके बीचमें से आपको ईश्वर झाँकता हुआ नजर आये। यदि आप इस तरह हर रातको प्रकट होनेवाली दिव्य लीलामें अपनेको रमा लेंगे तो आपको ब्रह्माण्डमें व्याप्त एक मधुर और सुखद संगीत सुननेका आभास होने लगेगा। प्रत्येक रात्रि ऐसा प्रयत्न करें तो आपकी आँखें सही मार्गपर आ जायेंगी और आपका हृदय भी शुद्ध हो जायेगा। ईश्वर आपकी सहायता करे।

अप्रमाणित खादी और अखिल भारतीय चरखा संघ

प्र० : मैं भली-भाँति समझता हूँ कि आप केवल प्रमाणित खादीपर क्यों जोर देते हैं। किन्तु प्रमाणित खादी महँगी है। इसका परिणाम यह है कि एक

ओर हजारों लोग हैं जो प्रमाणित खादी नहीं खरीद सकते और दूसरी ओर ऐसे हजारों कतैये हैं जिन्हें चरखा संघ मानक मजदूरीकी पाबन्दीके कारण रोजगार नहीं दे सकता। क्या इस दशामें यह उचित नहीं होगा कि जिनके पास रोजगार नहीं है ऐसे कतैयोंको कुछ कम मजदूरी देकर भी रोजगार दिया जाये और इस प्रकार प्रमाणित और अप्रमाणित खादीको इकट्ठा बेचकर न केवल गरीब उपभोक्ताको सस्ती खादी दी जाये, अपितु गरीब कतैयोंको भी रोजगार दिया जाये?

उ० : यह एक अच्छा प्रश्न है। अखिल भारतीय चरखा सघकी कार्यकारिणी पूर्णतया जागरूक है। कतैयोंकी मजदूरीकी मनमानी वृद्धिके प्रभावका पूरी तरह ध्यान रखा जा रहा है। इसी प्रकार प्रमाणित और अप्रमाणित खादीको इकट्ठा बेचनेके प्रश्नकी ओर भी ध्यान गया है। हर तरहका प्रयास किया जा रहा है कि कीमतें खरीदारोंकी क्षमताके बाहर न जाये। किन्तु अप्रमाणित खादीके स्वार्थी विक्रेता और भोली-भाली लापरवाह जनता इसमें सबसे बड़ी रुकावट है। अखिल भारतीय चरखा सघको इन कठिनाइयोंके बीचमें से अपना रास्ता बनाना है।

नुमाइंदगीकी फीस और कांग्रेस

प्र० : आपने दावा किया है कि कांग्रेसके सदस्य भारतके करोड़ों गरीब मेहनतकश लोगोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। आप यह आशा कैसे रख सकते हैं कि गरीब जनताके प्रतिनिधि, जो स्वयं भी गरीब होंगे, नुमाइंदगीकी पाँच रुपये फीस दे सकेंगे? तो क्या इसका यह अर्थ है कि करोड़ों गरीब लोग अपने नुमाइंदे केवल पैसेवालोंमें से ही चुनें? क्या आपका प्रजातन्त्रका यही आदर्श है?

उ० : मेरा प्रजातन्त्रका आदर्श तो बिलकुल ठीक है। नुमाइंदगीकी फीसके बिना कांग्रेस अपना काम नहीं चला सकती। फीसकी पाबन्दी धोखाधड़ीपर भी कुछ रोक लगाती है। प्रत्येक नुमाइंदेका बहुत बड़ा क्षेत्र होता है। यदि मतदाताओंने अपना नुमाइंदा ठीक चुना है तो फिर वे उसकी फीस और अन्य खर्चके भारको भी सहन करेंगे। यदि मतदाता केवल एक पैसा प्रति व्यक्ति दें, तो भी गरीब-से-गरीब नुमाइंदेके लिए उनका प्रतिनिधित्व करना सम्भव है। सच बात तो यह है कि कांग्रेस न तो पूरी तरहसे प्रजातन्त्रात्मक है और न ही जनसाधारणका पूरी तरह प्रतिनिधित्व करती है। सेवा-कार्यकी अपेक्षा सत्ता हथियानेके लिए हेराफेरीपर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। कांग्रेसके लोग गहराईकी अपेक्षा विस्तारकी ओर चले गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हम बहुत ही विस्फोटक स्थितिमें हैं।

अपने पुत्रके बारेमें क्या कहेंगे?

प्र० : आपको समझनेमें मुझे एक कठिनाई है। आप समूचे विश्वको प्रेमसे जीतनेका प्रयास कर रहे हैं। फिर यह क्या बात है कि आप स्वयं अपने बेटेको

नहीं जीत सकते? आप तो इस सिद्धान्तमें विश्वास करते हैं कि कोई भी कार्य पहले अपने-आपसे आरम्भ करना चाहिए। आप अपने बेटेसे आरम्भ क्यों नहीं करते? संसारमें इतना बुरा तो कोई है नहीं कि उसे सुधारा न जा सके। मुझे विश्वास है कि यदि आप प्रयत्न करें तो सफल हो सकते हैं।

उ० : आप ठीक कहते हैं। किन्तु मैंने अपनी मर्यादाएँ मान ली हैं। पूर्ण अहिंसा, अर्थात् सम्पूर्ण प्रेम कभी असफल नहीं होता। आपकी जानकारीके लिए मैं यह बता दूँ कि मैंने इस बारेमें अब तक आशा नहीं छोड़ी है कि मेरा बेटा कभी-न-कभी सही रास्तेपर आ जायेगा। ऊपरसे तो लगता है कि मैंने अपने हृदयको कड़ा कर लिया है, किन्तु उसके सुधारके लिए मैं निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ। प्रार्थनाकी सार्थकतामें मेरा विश्वास है और मुझमें धैर्य भी है।

द्वेषपूर्ण झूठ

प्र० : आर्य साहित्य मंडल लि०, अजमेर, द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'खतरेका बिगुल' के पृष्ठ ३० पर मैंने एक वक्तव्य पढ़ा है, जो आपने सीमाप्रान्तका दौरा[1] करते समय दिया बतलाते हैं। वह इस प्रकार है: "पठान कबायलियोंकी दो प्रकारकी आवश्यकताएँ हैं : एक शारीरिक, जो भोजन, वस्त्र और आश्रयसे सम्बन्ध रखती हैं, और दूसरी कामवासना-सम्बन्धी। इसलिए हिन्दुओंको चाहिए कि वे अपनी सब धन-सामग्री और स्त्रियाँ भी उनके हवाले कर दें ताकि वे तृप्त होकर आक्रमण करना छोड़ दें।" उस पत्रिकाके पृष्ठ ३१ पर यह कहा गया है कि आपने सर अकबर हैदरीके कहनेपर नागपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपतिको लिखा कि वे अपने विश्वविद्यालयमें उन विद्यार्थियोंको प्रवेश न दें जिनको उसमानिया विश्वविद्यालयने 'वन्देमातरम्' गानेपर निकाल दिया था। किन्तु उपकुलपतिने आपको यह कहते हुए फटकारा — "इस विश्वविद्यालयका उपकुलपति मैं हूँ, न कि आप। मैं अपना कर्तव्य जानता हूँ।" अन्ततः उन विद्यार्थियोंको प्रवेश दे दिया गया। यदि ये सब बातें सत्य हैं तो ये आपपर गहरा दोषारोपण करती हैं। क्या आप इसका कुछ उत्तर देना पसन्द करेंगे?

उ० : मेरा उत्तर यह है कि यह वक्तव्य द्वेषपूर्ण झूठ है। मैं यह जानता हूँ कि मेरे विरुद्ध झूठे प्रचारका अभियान चलाया जा रहा है। मुझे यह जानकर दुःख होता है कि आर्यसमाजकी एक पत्रिका इस असत्यका प्रचार करे। 'आश्रम भजनावली' में एक भजन है, जिसमें हम उन लोगोंके लिए प्रार्थना करते हैं जो हमारी निन्दा करते हैं। मैं 'बाइबिल' की भाषामें कह सकता हूँ, "हे पिता, तू इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" यह दुःखकी बात है कि जिन मित्रोंके बारेमें आप लिख रहे हैं वे नहीं

१. जुलाई, १९३९ में

जानते कि वे क्या कर रहे हैं। मैं उनके लिए भी प्रार्थना करता हूँ। असत्यने, जिसके विरुद्ध वह कहा जाता है उसका कभी कुछ नहीं विगाडा। उससे तो उनको हानि पहुँचती है जो उसे बोलते हैं और उससे समाज भी भ्रममें पड़ जाता है। लेखकने पठानो और सर अकबरपर भी लाछन लगाया है। वादशाह खान, जो खुदाके सच्चे वन्दे हैं, पठान ही हैं। सर अकवर इतने सीधे-सादे तो है नही कि वे मुझसे यह अपेक्षा करे कि उनसे सम्बन्धित बातोंका मैं उत्तर दूं।

सिन्धकी दुःखद घटना

प्र० : आपने अपने लेख "सिन्धकी दुःखद घटना"[1] में सिन्धके पीड़ित हिन्दुओंको सलाह दी है कि यदि वे अपने आत्म-सम्मान और स्वत्वकी रक्षा सिन्धमें रहकर नहीं कर सकते तो वे हिजरत करें। आप उनसे कहाँ जानेकी अपेक्षा रखते हैं? वे जहाँ जाकर शरण लेंगे वहाँ उन्हें जीवनकी जरूरी वस्तुएँ कौन सुलभ करायेगा? क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि हिजरत करनेका उपाय केवल हिन्दुओंके लिए ही है? आप कांग्रेस-शासित प्रान्तोके उन मुसलमानोंको हिजरत करनेकी सलाह क्यों नहीं देते जो जुल्मकी इतनी शिकायत करते हैं? अभी तो स्थिति यह है कि वे जहाँ कम संख्यामें हैं वहाँ तो आपने उन्हें अतिरिक्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया है और जहाँ उनका बहुमत है — अर्थात पंजाबमें — वहाँ उन्हें वैधानिक रूपसे बहुसंख्यकोंवाली स्थिति और विशेष स्थान दिया है।

उ० : उन सभी लोगोंको जो किसी स्थान विशेषमे अपने-आपको उत्पीडित अनुभव करते हैं और जो आत्म-सम्मानपूर्वक नही रह सकते, मेरी सलाह है कि वे उस स्थानको छोडकर अन्यत्र चले जायें। यदि किसी स्थानपर मुसलमान अल्पसंख्यामें हैं और वे अनुभव करे कि वे मजलूम हैं तो मैं उन्हे भी वही सलाह दूंगा जो सिन्धके हिन्दुओंको दी है। लेकिन आम तौरपर वे अल्पसख्यामें होते हुए भी अपने हकके लिए लड़ सकते हैं। मैंने सिन्धियोसे भी कहा है कि यदि उनमे अपनी रक्षा करनेकी वीरता है तो चाहे वे मुट्ठी-भर ही क्यो न हो, उन्हे अपना वह स्थान, जहाँ वे बसे हुए हैं, कभी नहीं छोड़ना चाहिए। हिजरत करनेकी मेरी सलाह केवल उन लोगोके लिए है जिनमे इतनी वीरता नही है कि वे थप्पड़का वदला थप्पडसे दे अथवा अहिंसामे अपनी रक्षा करे।

यह प्रश्न कि शरणार्थी हिजरतके बाद क्या करें, गौण है। भारत-जैसे विशाल देशमें कुछ हजार व्यक्तियोंको खपा लेना साधारण बात है। सिन्धी लोग बड़े साहसी होते हैं। वे भारतमें सब ओर फैले हुए हैं। मेरे विचारमें इस सम्बन्धमें जनतासे सहायताके लिए कोई अपील करना भी आवश्यक नही होगा। उन्हें विदित होना चाहिए कि लिम्बड़ी[2] से निकले हुए शरणार्थी आज तक अपने

१. देखिए पृ० ८३-८६।

२. काठियावाड़ में

देश-निकालेको धैर्य और वीरतापूर्वक सहन कर रहे है। आत्म-सम्मानकी प्रवल भावना प्रत्येक कष्टको सुख बना देती है। किन्तु सम्भवतः हिजरत करना अनावश्यक होगा। मै देख रहा हूँ कि मुस्लिम नेता अब अपनी जिम्मेवारीको समझ रहे है और हिन्दुओंमें सुरक्षाकी भावना जाग्रत करनेका प्रबन्ध कर रहे है।[1] यदि ऐसा हो गया तो सब ठीक हो जायेगा।

अली भाइयोंसे मेरे मैत्री करनेका प्रश्न वर्तमान विषयसे कोई सम्बन्ध नही रखता। मैने साम्प्रदायिक एकता स्थापित करनेके लिए जो-कुछ किया है उसके लिए मुझे कोई दुःख नही है। उसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें मै फिर वैसा ही करूँगा। खिलाफतके दिनोंकी एकतासे दोमें से किसी भी जातिको हानि नही पहुँची, यद्यपि यह खेदकी बात है कि वह एकता स्थायी नही रही। साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी निर्णय[2] के लिए मुझे जिम्मेदार ठहराकर आप गलती कर रहे है। इस निर्णयमें ऐसा कुछ नही है जिसके कारण कोई सम्प्रदाय इसे पसन्द करे। हाँ, यह तथ्य तो है ही कि हम इस व्यवस्थाके अधीन रह रहे है और अब तक हम कोई ऐसी व्यवस्था आपसमें तय नही कर पाये है जिसे इसके स्थानपर प्रतिष्ठित किया जा सके।

सेगाँव, २९ जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-२-१९४०

१९१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

सेगाँव, वर्धा
२९ जनवरी, १९४०

प्रिय चार्ली,

आशा है, बंगालके विषयमें लिखा मेरा पत्र[3] तुम्हें मिल गया होगा।

तो मै १५ या १६ तारीखको शान्तिनिकेतन पहुँच रहा हूँ[4] और वहाँ दो दिन ठहरूँगा। हो सकता है, मुझे दिल्लीसे ही आना पड़े। यह इस बातपर निर्भर है कि वहाँ क्या-कुछ होता है। मेरे साथ बहुत-से लोग होंगे। शायद राजकुमारी भी होंगी। बा तो होंगी ही। इस भीड़-भाड़से कोई असुविधा तो

१. सिन्ध सरकारने निर्णय किया था कि एक जाँच न्यायालय नियुक्त किया जाये ताकि साम्प्रदायिक दंगोंके कारणों और शान्ति कायम रखनेके लिए सरकार द्वारा उठाये जानेवाले कदमोंका पता लग सके।

२. १९३२ का साम्प्रदायिक निर्णय

३. देखिए सी० एफ० एन्ड्रचूजको लिखा पत्र, पृ० १३४।

४. गांधीजी शान्तिनिकेतन १९ फरवरीको पहुँच पाये थे।

नहीं होगी? जरूरी समझना तो तार देना। ४ तारीखको दिल्लीके लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। तुम सफलताके लिए तो प्रार्थना करोगे ही।

सप्रेम,

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७५१) से

१९२. पत्र : अमृत कौरको

सेगाँव, वर्धा
२९ जनवरी, १९४०

प्रिय अमृत,

दो दिनसे तुम्हारी कोई चिट्ठी-पत्री नहीं आई है। यहाँ सब कुशल हैं। आशा है, तुम्हारा खाँसी-जुकाम ठीक हो गया होगा।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

सरूप[1] आदिको प्यार।

श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर
आनन्द भवन
इलाहाबाद, सं० प्रा०

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६०) से : सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२६९ से भी

१९३. पत्र : भारतन कुमारप्पाको

सेगाँव
२९ जनवरी, १९४०

प्रिय भारतन,

तथ्य ये हैं। मैं १० मार्चको रामगढ़में हाजिर होनेके लिए तैयार था और अभी भी हूँ।[2] [कांग्रेस] कार्य-समितिने सोचा कि मुझे तीन दिन पहले रामगढ भेजना बेकार है। वहाँ भीड होने लगेगी जिससे इन्तजाममें बाधा पड़ेगी। उसकी वजहसे जब राष्ट्रपति का जुलूस वगैरह निकलेगा, तब उसकी नवीनता खत्म हो चुकी

१. विजयलक्ष्मी पण्डित
२. खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीका उद्घाटन करनेके लिए

होगी। इसी तरहकी और भी दलीलें दी गई। इसे तुम अपने संवाददाताको भेज सकते हो। मै पूरी तरहसे राष्ट्रपतिके हाथोंमें हूँ। मैने अपना दिमाग खुला रखा है। यह स्वाभाविक है कि हमारे सामान्य उद्देश्यको आगे बढ़ानेके लिए जो-कुछ सम्भव है वह मै करना चाहता हूँ। लेकिन क्या करना सबसे ठीक होगा, यह मै नही जानता। राजेन्द्रबाबू ही इसका उचित फैसला कर सकते है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पेपर्स, फाइल नं० ११/४०; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१९४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२९ जनवरी, १९४०

चि० प्रेमा,

यदि बा की विशेष इच्छा प्रभासे मिलनेकी न होती तो प्रभा तुरन्त वहाँ आ जाती। अगर तू उसके स्वास्थ्यकी देखभाल करे तो वह तेरा जरूरी काम कर देगी।[1] लेकिन यह क्या तू नही जानती?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०४) से। सी० डब्ल्यू० ६८४३ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१९५. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

सेगाँव, वर्धा
२९ जनवरी, १९४०

भाई सम्पूर्णानंदजी,

पत्र मिला। आप कबसे बहुत मेरे नजदीक आये हो। जो लिखते हो मैं समझा हूँ। जितना संभव है इतना दिल खोलके लिखता हूँ, तो भी सैनिकोंपर

1. रामगढमें होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनके लिए महिला स्वयंसेविकाओंके प्रशिक्षण हेतु प्रेमाबहन कंटकने एक शिविरका आयोजन किया था। उनकी रायमें बिहारमें महिला स्वयंसेविकाओंका प्रधान बननेके लिए प्रभावती सबसे योग्य महिला थीं। शुरूमें प्रभावती वह पद सँभालनेके लिए तैयार नहीं हो रही थीं परन्तु अन्तमें प्रेमाबहनने उन्हें इसके लिए राजी कर लिया था।

बोज तो रहता ही होगा। चर्खाके बारेमें जो लिखते हो पर्याप्त है। एडन्ट लिटरनी कार्य अच्छा हुआ। एक अगले पत्रपर समयाभावसे मैं कुछ कर नही सका।

आपका,
मो० क० गांधी

श्री संपूर्णानंदजी
जालीपा देवी
बनारस

मूल पत्रसे: सम्पूर्णानन्द कलेक्शन; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१९६. पत्र: हीरालाल शर्माको

२९ जनवरी, १९४०

चि० शर्मा,

पुस्तककी फेहरिस्त हाथ आवेगी तो ज्यादा मंगावाउंगा। अन्यथा जो पुस्तक लाहोरसे मिली थी वह भेजना? तुमको क्या हुआ है? तुम ही बीमार रहोगे[1] तो दूसरोंको कैसे दुरस्त करोगे? मैं तो ५ को दिल्ली पहुँचूंगा।

बापुके आशीर्वाद

डॉ० ही० ला० शर्मा
नगला नवाबाद
डा० खुरजा
सं० प्रा०

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २८२ और २८३ के बीचकी अनुकृतिसे

१९७. शिरोही[2]

शिरोहीसे यह शुभ समाचार आया है कि पिछले वर्ष सात नेताओंकी गिरफ्तारीसे[3] वहांके लोगोंका मनोबल भंग नही हुआ है। वे हर महीनेकी २२ तारीख (गिरफ्तारी दिवस) यथोचित गम्भीरतासे मनाते हैं। वे सभाएँ और प्रभातफेरियाँ करते हैं, चरखा चलाते हैं, खादी बेचते हैं, आदि। यह शुभ लक्षण है कि देशी राज्योंके कार्यकर्ता, जहां-कहीं भी सम्भव है, अपने-आपको दृढ़ताके साथ और शोभनीय ढंगसे संगठित कर रहे हैं। यदि वे एक ओर भारीसे भारी कष्टका

१. हीरालाल शर्माके पाँवमें काँच चुभ गया था।
२. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
३. देखिए खण्ड ७०, पृ० १९८-९९।

सामना करनेकी कला सीख लेते हैं और दूसरी ओर अहिंसात्मक संघर्षकी मर्यादाओंके कड़ाईसे पालनकी आदत डाल लेते हैं, तो अन्तमें सब शुभ ही होगा। हर रचनात्मक प्रयत्नका मतलब जनतामें जागरूकता लाना और उसे संगठित करना होता है।

सेगाँव, ३० जनवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३-२-१९४०

१९८. निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए

३० जनवरी, १९४०

बलवंतसिंहजीका खत सबको पढनेके लायक है, सब पढे। इसमें जो उपचार बताये है उसे छोड दिया जाय। ऐसा उपचार हमारे लिये शर्मकी बात होनी चाहीये। नमक भी चाहिये इतना ही लेवे। पानी तक निकम्मा खर्च न करे। मैं आशा रखता हूं सब आश्रमकी हरेक चीज अपनी है और गरीबकी है ऐसा समझ कर चलेंगे।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

१९९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
३० जनवरी, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

कानपुर-निवासी पद्म पन्तने तुम्हें लिखे पत्रकी एक नकल मुझे भेजी है। आशा है, तुम सचाईका पता लगानेकी कोशिश करोगे।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

क्या तुमने जमीयत-उलमा-ए-हिन्दकी सबसे ताजी पुस्तिका देखी है? वे तो बड़े खतरनाक मित्र हैं। पता नहीं, कार्य-समितिने मौलवी किफायतुल्ला साहबसे पूरी बातचीत की या नहीं!

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२००. पत्र : अमृत कौरको

सेगांव, वर्धा
३० जनवरी, १९४०

प्रिय पगली,

तुम्हारे दो पत्र मिले — एक एम०[1] की मार्फत। यह जानकर खुशी हुई कि तुम ज०[2] के पहलेकी अपेक्षा कही ज्यादा निकट आ गई हो। उसकी जिन्दादिली संक्रामक है। लेकिन उसकी छूत तुम्हें नही लगी है और न मेरी बातचीतका ही तुम पर कोई असर हुआ है। हुआ होता तो तुम्हारा मन इतना गिरा हुआ न रहता। लेकिन अब प्रभुसे प्रार्थना है कि जो मनुष्यसे न हो सका वह उसीकी कृपासे हो। वहां तुम्हारी जरूरत तो थी ही। तुम आ० भ०[3] में ठहरी, यह अच्छा हुआ। तुम्हारी हारकी मैं फिक्र नही करता। वे लोग खादी बेचें।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६१) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२७० से भी

२०१. पत्र: हरि विष्णु कामथको

सेगांव, वर्धा
३० जनवरी, १९४०

प्रिय कामथ,

अभी-अभी छपा हुआ पत्र-व्यवहार देखा है। देखता हूँ, राजकुमारीने 'नियमित' के बजाय 'दैनिक' कहा है। यह सिर्फ अनजाने हो जानेवाली भूल है, जिसके लिए मैं माफी चाहता हूँ। राजकुमारी अभी यहाँ नही है, अन्यथा वह माफी माँग लेती।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महात्मा, खण्ड ५, पृ० २८० और २८१ के बीचकी अनुकृतिसे

१. तात्पर्य शायद महादेव देसाईसे है
२. ज्वाहरलाल नेहरू
३. आनन्द भवन

२०२. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेगाँव, वर्धा
३० जनवरी, १९४०

चि० विजया,

क्या तू सूख गई है? स्वास्थ्य तो तुम दोनोंका ठीक है न? मनुभाई क्या पर्याप्त दूध-घी लेते हैं? बा अभी दिल्लीमें ही हैं। मैं वहाँ ४ को जानेवाला हूँ। यहाँका अस्पताल तो अभी चल रहा है। आशादेवीके सब दाँत निकलवा दिये गये। वालजीभाईको [दाँत] निकलवाने भेजा है। दुर्गा[1] आज आ गई। साथमें एक नन्ही-सी लड़की लाई है। प्रभा यहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२३) से। सी० डब्ल्यू० ४६१५ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

२०३. पत्र : बलवन्तसिंहको

३० जनवरी, १९४०

चि० बलवंतसिंह,

तुमारा खत बराबर है। सब मिल कर उसका उपाय भी निकालो। तुमार दूध तो ऐसा ही रहेगा। जल्दीसे घटाकर किसीकी तबियत बिगाड़ना था ही नहिं।

तुम्हारे खतमें मैं आवेश नहीं पाता। अतिशयोक्ति भी नहीं है। जो बातें लिखी है उसका मैंने अनुभव कर ही लिया है।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९२८) से

१. महादेव देसाईकी पत्नी

२०४. तार : रेहाना तैयबजीको

वर्धागंज
३१ जनवरी, १९४०

रेहाना तैयबजी
कैम्प बड़ौदा

इस अग्नि-परीक्षामें ईश्वर तुम सबका साथ दे। सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६९४) से

२०५. तार : राजेन्द्र प्रसादको

वर्धागंज
३१ जनवरी, १९४०

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद
पटना

विज्ञापन लिये जा सकते हैं।

मूल अंग्रेजीसे : डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पेपर्स। फाइल नं० ११/४०; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

२०६. भेंट : होम्स स्मिथको[2]

[३१ जनवरी, १९४०][3]

[होम्स स्मिथ :] अब मैं अमेरिका जा रहा हूँ। हमारा इरादा वहाँ, जिस हद तक हमसे हो सकता है एक दोतरफा अभियान चलानेका है, जिसमें हम

१. रेहाना तैयबजीकी माता गम्भीर रूपसे बीमार थीं।

२. महादेव देसाईकी 'रिटिस्कवरिंग रिलिजन' शीर्षक रिपोर्टसे उद्धृत। लखनऊके लालबाग आश्रमके आचार्य होम्स स्मिथ तथा कुछ अन्य लोगोंके हस्ताक्षरोंसे वाइसरायके नाम एक खुला पत्र जारी किया गया था, जिसमें "देशकी विधिसम्मत सरकार" के साथ ईसाई धर्मप्रचारकों की सन्धिकी प्रतिष्ठाको चुनौती दी गई थी। परिणामस्वरूप, उन्हें मिशनसे त्यागपत्र देनेको कह दिया गया।

३. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीके अनुसार

(१) साम्राज्यवादके साथ एक अपवित्र गठबन्धन कायम रखनेके खिलाफ ईसाई धर्मप्रचारक संस्थाओंकी आँखें खोलेंगे और (२) भारतकी स्वतन्त्रताके समर्थकों द्वारा संगठित एक आन्दोलन आरम्भ करेंगे। इस कार्यक्रमके बारेमें मैं आपका विचार जानना चाहता हूँ और अगर आपको यह पसन्द हो तो आपका आशीर्वाद भी चाहता हूँ।

[गांधीजी :] आपको मेरी सलाह यह होगी कि आप किसी भारतीयको अपनी संस्थामें न लें। भारतीयोंसे आप सूचनाएँ अवश्य प्राप्त करें, लेकिन उन्हें सदस्य बनानेकी कोशिश न करें। उनके शामिल होनेसे आप सब सन्दिग्ध बन जायेंगे। मैं चाहूँगा कि आप अपनी आध्यात्मिक वृत्ति और विशुद्ध अमेरिकी चरित्र कायम रखें। मुझे मालूम हुआ है कि हमारे आन्दोलनमें आपकी रुचि इसलिए है कि यह विशुद्ध अहिंसात्मक कहा जाता है। संसारमें स्वतन्त्रताके लिए लड़नेवाले जितने भी लोग हुए हैं, सबके हाथ रक्तरंजित हैं। आप लोग एक विशेष अर्थमें ईसाई होनेका दावा करते हैं, क्योंकि आपका आग्रह अपने जीवनको 'गिरि-प्रवचन' के अनुरूप ढालनेका है, और यदि आप हमारे साथ सहानुभूति रखते हैं तो हमारे विशिष्ट दावेके कारण।

और भारतसे एक पाई भी पाने की अपेक्षा न करें और न मिलनेपर उसे स्वीकार ही करें; भले ही आपको दूसरोंके आगे हाथ ही क्यों न फैलाना पड़े और आप टूली स्ट्रीटके तीन दर्जियों[1] की अवस्थामें ही क्यों न पहुँच जायें।

और अब मैं आपसे भी वही बात कहूँगा जो मिस्टर कैथान[2] से कही थी। आपकी तरह वे भी मिशनसे अलग हो गये हैं और उन्होंने स्वेच्छासे भारतके गाँवोंमें काम करना आरम्भ किया है। उनसे मैंने कहा कि मैं चाहता हूँ, हरएक सच्चा ईसाई अहिंसाके महत् उद्देश्यमें अपना योगदान करे। हमारा आन्दोलन २० वर्षोंसे या शायद २५ वर्षोंसे — अर्थात्, जब भारत लौटकर मैंने काम करना शुरू किया तभीसे — अहिंसक रहा है। भारतके कांग्रेसी विचार-धाराके लोग अहिंसाकी ओर अग्रसर होते रहे हैं। फिर भी, आज मुझे कहना पड़ता है कि उनकी अहिंसा सबलकी अहिंसा नहीं, बल्कि दुर्बलकी अहिंसा रही है। लेकिन आप इसकी ओर इस विश्वाससे आकृष्ट हुए हैं कि हमारी अहिंसा सबलकी अहिंसा है। इसलिए आपको इस आन्दोलनका सम्यक अध्ययन करना चाहिए। इसकी निष्पक्ष आलोचना करनी चाहिए और इसके दोष दर्शाने चाहिए। इस तरह जब तक आपको कताई या जो-कुछ भी इसका मतलब है उसका अहिंसाके साथ अटूट सम्बन्ध न दिखे तब तक मैं नहीं चाहता कि आप कातना आरम्भ करें। सम्भव है कि बादमें आपको उसके प्रयोगके नये

१. इन दर्जियोंने ब्रिटेनकी पार्लियामेंटको एक स्मरण-पत्र दिया था जिसमें उन्होंने अपनेको "हम, इंग्लैंडके लोग" कहा था।

२. अमेरिकी मिशनरी रेवरेंड आर० आर० कैथान; देखिए खण्ड ६४, पृ० ४६२-६३।

तरीकोंका पता चल जाये या ग्रेग¹की तरह आपको भी मेरी दलीलके समर्थनमें कुछ नई दलीलें सूझ जायें।

चरखेसे आपका मतलब क्या आर्थिक अहिंसा नहीं है ?

आर्थिक अहिंसा नहीं बल्कि मैं कहूँगा, अहिंसक अर्थशास्त्र। जिस प्रकार सैन्यवादपर आधारित आधुनिक समाजमें केन्द्रीकृत प्रवृत्तियोंका विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार अहिंसक समाजमें चरखे और दस्तकारियोंकी अपनी एक खास जगह है। आज मेरे हाथ कमजोर हैं। कारण यह है कि मेरे इस विश्वासको पूरे हृदयसे समर्थन नहीं दिया जा रहा है कि भारत अहिंसात्मक उपायोंसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा कर सकता है। जब तक अहिंसा विशुद्ध राजनीतिक ढंगका युद्धका नारा बनी हुई है तब तक भारत विश्व-शान्तिमें ठोस योगदान नहीं कर सकता। यदि स्वतन्त्रता ब्रिटेनकी ओरसे दानमें मिलेगी तो वह कायम नहीं रखी जा सकेगी। उसे कायम तभी रखा जा सकेगा जब हम उसे अपनी योग्यताके बलपर हासिल करेंगे और उसकी रक्षा अपनी शक्तिसे कर सकेंगे। हममें वह अहिंसक शक्ति नहीं है, और सैनिक शक्ति तो नहीं ही है। इसलिए मैं दिल्ली जा तो रहा हूँ, किन्तु अपनी आँखें खुली रखकर, डरते-काँपते जा रहा हूँ। लेकिन मैं व्यावहारिक व्यक्ति हूँ, इसलिए जब जैसी परिस्थिति आयेगी, मैं उसका सामना करूँगा।

लेकिन आपको अहिंसाके मार्गका अनुसरण केवल इसलिए नहीं करना है कि मैं उसकी दुहाई देता हूँ, बल्कि उस रास्तेपर स्वतन्त्र रूपसे अपने ढगसे आगे बढ़ना है। मैं तो धरतीपर चन्द दिनोंका मेहमान हूँ — या हो सकता है, चन्द वर्षोंका, लेकिन इससे भी कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। मैं तो वही दोहरा सकता हूँ जो इतने वर्षोंसे कहता आया हूँ। और फिर, मुझे अपनी सीमाओंका भी बोध है। ये मुझे हैरानीमें डाल देती हैं। इसलिए मैं उन सब लोगोंकी सहायता चाहता हूँ, जिनमें अहिंसाके लिए कुछ करनेकी श्रद्धा है; विशेष रूपसे ईसाइयोंकी सहायता चाहता हूँ। क्योंकि उनमें से हजारोंका विश्वास है कि ईसा धरतीपर शान्तिके दूत थे, मनुष्य-मनुष्यके बीच सद्भावनाके सन्देशवाहक थे। मैं ईसाइयोंका उल्लेख विशेष रूपसे इसलिए करता हूँ कि यद्यपि ऐसे मुसलमान भी हैं जो निजी हैसियतसे अहिंसामें विश्वास रखते हैं, लेकिन बहुत-से मुसलमान अहिंसाको 'कुरान' का विशेष सन्देश नहीं मानते। और आप जानते ही हैं कि ऐसे बहुत-से हिन्दू भी हैं जो अहिंसामें मेरी पूर्ण श्रद्धाके कारण मुझे अपना माननेको तैयार नहीं हैं। ईसाका सन्देश आज १९०० वर्षोंसे संसारके सामने है, लेकिन जिसमें मानवजातिके लिए महान सम्भावना भरी हो ऐसे धर्म या सन्देशके जीवनमें १९०० वर्ष क्या है? इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मेरे ऐसे साथी कार्यकर्ता बनें जो मेरी हर बातको ठोस बुद्धिकी कसौटीपर कसें। मैं आपसे आध्यात्मिक प्रयत्नकी आशा करता हूँ।

१. रिचर्ड बी० ग्रेग, जिन्होंने इकनॉमिक्स ऑफ खद्दर में गांधीजी की दलीलका समर्थन किया था।

इस विषयमें तो हम वर्षों तक आपके चरणोंमें बैठकर सीख सकते ह। मैं यहाँके साथी कार्यकर्ताओंसे सम्पर्क कर रहा हूँ, और अपने देश वापस जाकर मैं ग्रेग-जैसे लोगोंको ढूँढूंगा। . . . हम सदियोंकी परतोंको खोदकर ईसाई धर्मकी पुनः शोध करना चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४०

२०७. तार: जमनालाल बजाजको[1]

वर्धा
१ फरवरी, १९४०

जमनालाल बजाज
नेचरक्योर क्लिनिक, पूना

तुम्हें वहाँ जाने देनेका मन नहीं होता। देखो कि परिस्थितियाँ क्या मोड़ लेती हैं। निश्चिन्त रहकर इलाज कराओ। पत्र लिख रहा हूँ।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २२८

२०८. पत्र: सरलादेवी[2]को

१ फरवरी, १९४०

प्रिय सरला,

आज रात प्रार्थना के बाद कुछ मिनट ले सकती हो।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०८५) से

१. यह जमनालाल बजाजके ३१ जनवरी, १९४० के निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "जयपुरके ताजा समाचार चिन्ताजनक। राज्यकी नीति आतंक फैलानेकी और अन्यायपूर्ण। मन कह रहा है, तुरन्त जयपुर चला जाऊँ। तारसे अनुमति दें। इलाजका पूरा खयाल रखूँगा।"

२. हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी कार्यकर्त्री

२०९. पत्र : द० बा कालेलकरको

सेगाँव
१ फरवरी, १९४०

चि० काका,

वेलीका लेख पढ गया। वह इस पत्रके साथ संलग्न है। इसमें नया कुछ नही है। उनकी सुझाई हिन्दुस्तानी तो उर्दू है, यह तुमने लक्ष्य किया होगा। यह प्रयोगमें लाने जैसी चीज नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७६१) से

२१०. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेगाँव, वर्धा
१ फरवरी, १९४०

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र और तार[1] मिले। मैंने शास्त्रीजी[2] से बाते कर ली है।

वहाँकी अवधि पूरी किये बिना तुम्हें जयपुर जानेकी बिलकुल जरूरत नही है। फिर जब तक मेरा दिल्लीका काम समाप्त न हो जाये, तब तक जानेकी बात ही नही उठती। तब तक सहज ही १५ तारीख आ जायेगी। उसके बाद फिर दिन ही कितने बचेंगे? स्वास्थ्यको ठीक करना भी तुम्हें अपना कर्तव्य समझना चाहिए। तुम्हारा मसौदा[3] ठीक नही कहा जा सकता। तुम्हारी शिकायत महाराजाके विरुद्ध है। उन्हें बीचमें डालनेमें मुझे कोई सार दिखाई नही देता। जब तुम चलने-फिरने लायक हो जाओगे तो उनसे खुद मिल सकोगे। फिर जो होना हो सो हो।

वाइसरायके साथ मैं उतनी गहराईमें नही जा सकूँगा जितनी तुम चाहते हो। मूल प्रश्नके साथ जितना मेल बैठता होगा, उतनी ही हद तक मैं जा सकूँगा। मेरे दिल्लीसे लौटनेके बाद वाइसरायके साथ तुम्हारे स्वयं मिलनेकी बात पर हम विचार कर लेंगे।

१. देखिए "तार : जमनालाल बजाजको", पृ० १९८।

२. हीरालाल शास्त्री

३. जयपुरके गृह-मन्त्रीको दिये जानेवाले जवाबका मसौदा

मुझे लगता है, इतनेमें तुम्हारे सभी प्रश्नोंके जवाब आ गये होंगे, बाकी शास्त्रीजी बतायेंगे। आशा है जानकीदेवी और मदालसा आनन्दपूर्वक होंगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०१०) से

२११. पत्र : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणीको

सेगाँव, वर्धा
१ फरवरी, १९४०

भाई काकुभाई,

क्या २६ तारीखको खादीकी कुछ विशेष बिक्री हुई? इधर हालमें क्या बिक्रीमें कुछ बढ़ोतरी हुई है?[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४३) से। सौजन्य : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणी

२१२. तार : राजेन्द्र प्रसादको

वर्धागंज
२ फरवरी, १९४०

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद
पटना

बीमारी कैसी है। तारसे सूचित करो कि अखबारोंमें प्रकाशित दंगा जाँच [समिति] की रिपोर्टके ऊपर क्या कार्रवाई की गई। कल दिल्लीके लिए रवाना होऊँगा।[2]

बापू

मूल अंग्रेजीसे : डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पेपर्स। फाइल नं० २-१/४०; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. इस पत्रमें 'पुनश्च' करके महादेव देसाईने इतना और लिख दिया था 'कि खादीके आँकड़े फौरन ही भेज दिये जायें जिससे कि *हरिजन* में छपनेवाले आँकड़ोंमें उनका भी उपयोग हो सके।

२. डॉ० राजेन्द्र प्रसादने जवाबमें यह तार गांधीजीको भेजा: "इंफ्लुएंजा हो गया था जो अब ठीक हो रहा है। प्रान्तीय कार्य-समितिने वारदातकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिए पिछले वर्ष कदम उठाये और इसमें सफल रही। इस वर्ष कोई शिकायत नहीं मिली है। मन्त्रीका समाचारपत्रोंको दिया गया वक्तव्य डाकसे दिल्ली भेज रहा हूँ।"

२१३. भेंट : एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको[1]

नागपुर
३ फरवरी, १९४०

एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने गांधीजी को बताया कि श्री जिन्ना ६ फरवरीको वाइसरायसे मिल रहे हैं। जब उनसे यह पूछा गया कि क्या वे श्री जिन्नासे मिलेंगे तो उन्होंने छूटते ही जवाब दिया कि मुझे उनसे कोई वैर तो है नहीं। लेकिन यह पूछनेपर कि क्या वे श्री जिन्नासे राजनीतिक स्थितिपर बातचीत करनेके लिए मिलेंगे, उन्होंने कहा कि मैं कुछ कह नहीं सकता।

यह पूछनेपर कि क्या यह मुलाकात भी एक तमाशा बनकर रह जायेगी, गांधीजी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया कि वे ऐसी उम्मीद नहीं करते, लेकिन इस विषयमें वे कुछ कह नहीं सकते कि वाइसरायके साथ होनेवाली इस मुलाकातके फलस्वरूप वर्तमान गतिरोधका कोई समाधान निकल पायेगा अथवा नहीं। उन्होंने कहा :

क्या होगा, यह तो ईश्वर ही जाने।

प्रश्नकर्ताने कहा कि "हमारी आशाएँ तो आपपर टिकी हुई हैं।" इसपर गांधीजी ने कहा :

ईश्वरपर ही आशा रखिए।

जब उनसे यह कहा गया कि दिल्लीसे लौटनेपर उन्हें या तो समाधानका समाचार देना चाहिए या संघर्ष छेड़नेका आदेश, तो उन्होंने कहा कि आप दोनोंके लिए तैयार रहें। एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको उन्होंने बताया कि अगर वार्ता जल्दी समाप्त हो गई तो वे हरिजन सेवक संघकी बैठकके लिए दिल्लीमें इन्तजार नहीं करेंगे, क्योंकि वे जल्दसे-जल्द सेगाँव वापस जाना चाहते हैं। उसके बाद उनका इरादा महाकवि [रवीन्द्रनाथ] ठाकुर से मिलने शान्तिनिकेतन जानेका है।

कांग्रेसके आगामी अध्यक्षके बारेमें पूछे जानेपर उन्होंने कहा कि जो परिस्थिति है उसमें सबसे उपयुक्त व्यक्ति तो मौलाना अबुल कलाम आजाद ही हैं और मुझे उम्मीद है कि वे सर्वसम्मतिसे चुन लिये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हितवाद, ४-२-१९४०

१. दिल्ली जाते हुए जब गांधीजी सुबह नागपुर से गुजरे तब भेंटवार्ता तभी हुई थी।

२१४. तार : रेहाना तैयबजीको

इटारसी
३ फरवरी, १९४०

रेहाना तैयबजी
कैम्प, बड़ौदा

माताजीकी हालतकी सूचना तारसे दिल्ली भेजो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६९५) से

२१५. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

दिल्ली जाते हुए
३ फरवरी, १९४०

प्रिय जे० एल०,

साथका पत्र[1] पढ़ लो। क्या करना चाहिए, यह तो तुम्हीं जानो। ऐसी बातोंपर ध्यान देना जरूरी है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. डॉ० राजेन्द्र प्रसादको २४ जनवरीको लिखे अपने पत्रमें डॉ० सत्यपालने अकालियोंकी साम्प्रदायिक प्रवृत्तियोंका वर्णन करते हुए कहा था: "यदि कांग्रेस हाई कमान इन्हें भी सम्प्रदायवादियोंकी सूचीमें शामिल नहीं करती तो इस बातका गम्भीर खतरा मौजूद है कि पंजाब कांग्रेस पूर्ण रूपसे अकालियोंके हाथोंमें चली जायेगी, और ये लोग हमारी संस्थाके लिए भारी मुसीबत बन जायेंगे, क्योंकि ये न तो सत्य और अहिंसा में विश्वास करते हैं, न राष्ट्रीयता में . . . न पूर्ण स्वराज्यमें।"

२१६. पत्र : जी० वी० गुर्जले[1]को

रेलगाड़ीमें
३ फरवरी, १९४०

प्रिय भिक्षु,

इस मामलेमें मैं कुछ नही कर सकता।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३९२) से

२१७. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

दिल्ली जाते हुए
३ फरवरी, १९४०

भाई वल्लभभाई,

मैं ये आँकड़े पढ़ गया। इनमें मुझे दो बातें दिखाई देती हैं। ये तीस उम्मीदवार[2] पृथ्वीसिंह नही खोजेंगे। उम्मीदवार तुम सबको अथवा तुम्हें अकेले चुन करके भेजने होंगे। प्रति व्यक्ति बीस रुपयेका खर्च तुमने बताया है, लेकिन क्या इसमे से कुछ काटा नही जायेगा? अगर ऐसा हो तो प्रति व्यक्ति २० नही, ९१५ ÷ ३० = ३०½ हुए। यह ठीक है कि नही, यह सोचने-विचारनेकी बात है। स्वावलम्बी छात्रावासोमे क्या खर्च आता होगा? लेकिन मुख्य बात खर्चकी नही है, उम्मीदवारोंके चुनावकी है। जैसा पृथ्वीसिंह कहे वैसा कर दो, मेरे ऐसा कहनेका यह मतलब न मान बैठना कि तुम पृथ्वीसिंहका मार्गदर्शन नही कर सकते। जहाँ मार्गदर्शन करनेकी आवश्यकता हो, वहाँ जरूर करना। आखिर देखरेख तो तुम्हींको करनी है। मेरे दिल्ली-प्रवासकी सफलताके लिए प्रार्थना करना।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
स्वराज आश्रम
बारडोली

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२: सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३८-३९

१. इन्हें भिक्षु निर्मलानन्दके नामसे भी जाना जाता था।
२. इनके प्रस्तावित शारीरिक प्रशिक्षणके कार्यके लिए

२१८. पत्र : विद्यावतीको

दिल्ली जाते हुए
३ फरवरी, १९४०

चि० विद्या[1],

चि० वीरेन्द्र[2] अच्छा होगा। नयी दिल्ली बिड़ला हाउसके पतेपर उत्तर भेजो।

बापुके आशीर्वाद

रानी विद्यावती
५, सुदिराम बिल्डिंग्स
गूंगे नवाबका पार्क
अमीनाबाद, लखनऊ

मूल पत्रसे : रानी विद्यावती पेपर्स; सौजन्य : राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय

२१९. गुजराती वर्तनी

गुजराती शब्दोंकी वर्तनीके विषयमें जैसी अराजकता फैली हुई है, वैसी शायद ही किसी दूसरी भाषामें हो। मराठीमें नही है, बंगलामें नही है, तमिलमें नही है, उर्दूमें नही है। हिन्दुस्तानकी अन्य भाषाओंमें भी नही सुनी गई। यूरोप की भाषाओंमें तो है ही नही। जिस भाषाके शब्दोकी वर्तनी निश्चित न हो, उस भाषाके बोलनेवाले जंगली न कहे जायें, तो क्या कहे जायेंगे? मनुष्य ज्यों-ज्यों उन्नति करता है, त्यों-त्यों उसकी भाषा भी उन्नति करती है। अनेक मामलों में बोलनेवालेकी परीक्षा उसकी भाषासे की जा सकती है। जो हग, मर, टपर[3] लिखता है, उसके ज्ञानकी थाह मिलते देर नही लगती।

१. हरदोईकी रानी विद्यावती

२. रानी विद्यावतीका पुत्र

३. जिस ढंगसे ये लिखे गये हैं उसके अनुसार तो पहले दो शब्दों का अर्थ "पाखाना करना" और "मरना" होगा; तीसरा समझमें नहीं आता। सही वर्तनीके अनुसार इन्हें हींग, मरी और टोपरूं लिखा जाना चाहिए था, जिनका अर्थ क्रमशः हींग, कालीमिर्च और खोपरा होता है।

भाषाके बारेमें जब मेरे ऐसे विचार हैं, तो यह स्वाभाविक है कि मगनभाई द्वारा भेजी गई इस कतरन[1] को पाकर मैं प्रसन्न हो गया।

बम्बई सरकारने इस निर्णयपर पहुँचनेमें समय तो काफी लिया, लेकिन अन्तमें वह निर्णयपर पहुँच सकी, इसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है। मैं आशा करता हूँ, सभी पत्रकार तथा लेखक विद्यापीठके कोश[2] का अनुसरण करेंगे। वे ऐसा कर सकें, इसके लिए विद्यापीठको तुरन्त पूरे साधन प्रस्तुत करने चाहिए। प्रत्येक भाषा-प्रेमीकी जेबमें अथवा उसकी मेजपर यदि वह अंग्रेजी लिखता हो तो, जैसे अंग्रेजी कोश होता है, वैसे ही गुजराती भाषा-प्रेमीकी जेबमें अथवा मेज पर गुजराती जोडनीकोश होना चाहिए। गुजराती लेखकोंको अपनी भाषाकी शुद्धिके बारेमें उतना ही गर्व होना चाहिए, जितना अंग्रेजोंको अपनी भाषाके बारेमें होता है। जो अंग्रेज शुद्ध वर्तनीमें अपनी भाषा नहीं लिख सकता, वह जंगली माना जायेगा। लेकिन अंग्रेजोंको जाने दें। हमारे अंग्रेजी स्कूलोंमें पढ़ने-वाले विद्यार्थी जितनी सावधानी अंग्रेजी वर्तनीके बारेमें बरतते हैं, या जितनी सावधानी उन्हें बरतनी पड़ती है, उतनी हम सब अपनी भाषाके बारेमें क्यों न बरतें? ऐसा करनेवालोंके लिए विद्यापीठको तुरन्त साधन प्रस्तुत करने चाहिए। उनका कोश तो है ही, लेकिन उससे भी सादा और सस्ता एक जेबी कोश भी होना चाहिए। प्रस्तुत शब्दकोशमें अधिकसे-अधिक शब्द तथा उनके संक्षिप्त अर्थ देनेका प्रयत्न किया गया है। जेबी कोशमें केवल वर्तनी ही रहे, तो काफी होगा। उसमें भी जरूरी नहीं है कि सब शब्द हों। जिन शब्दोंकी वर्तनी के बारेमें जरा भी सन्देहकी गुंजाइश हो, वही शब्द दिये जायें। नियमावली एक या दो पैसेमें अलगसे देनी चाहिए। लेकिन सब लोग नियमावलीको समझनेकी तकलीफ उठायेंगे, ऐसा नहीं मान लेना चाहिए। लोगोंको तो तैयार माल चाहिए, और वह जोडनीकोश ही दे सकता है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ४-२-१९४०

१. कतरनका अनुवाद नहीं दिया गया है। इस कतरनमें बम्बई सरकारकी एक विज्ञप्ति थी, जिसमें उसने गुजराती विद्यापीठसे मान्यता-प्राप्त वर्तनीका अनुमोदन किया था और राज्यकी शैक्षणिक तथा प्रकाशन संस्थाओं से सिफारिश की थी कि वे उसे स्वीकार करें।

२. **सार्थ जोडणीकोश**

२२०. प्रश्नोत्तर

धर्म और राजनीति

प्र० : अपनी आत्मकथामें आपने कहा है कि आप धर्मसे पृथक राजनीतिकी कल्पना भी नहीं कर सकते। क्या अब भी आपका वैसा ही विचार है? अगर है तो फिर विभिन्न धर्मोवाले भारत-जैसे देशमें आप एक सामान्य राजनीतिक नीति अपनाये जानेकी अपेक्षा कैसे करते हैं?

उ० : हाँ, अब भी मेरा विचार यही है कि धर्मसे पृथक राजनीतिकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। सच तो यह है कि धर्म हमारी प्रत्येक प्रवृत्तिमें व्याप्त होना चाहिए। यहाँ धर्मका मतलब किसी धार्मिक पंथसे नहीं है। इसका मतलब है ब्रह्माण्डका व्यवस्थित नैतिक नियमन। ऐसा नियमन गोचर नहीं है, इसलिए वह कुछ कम वास्तविक नहीं हो जाता। यह धर्म हिन्दू-धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म, आदि की सीमाओंसे परे है। यह उनका स्थान नहीं लेता, बल्कि उनके बीच तालमेल स्थापित करता है और उन्हें वास्तविकता देता है।

प्र० : क्या यह सही है कि कुछ सिख कुछ-एक बातोंके सम्बन्धमें आपकी सलाह लेने आये तो आपने उनसे कहा कि गुरु गोविन्द सिंहने तलवारके प्रयोगकी शिक्षा दी, लेकिन आप अहिंसाके पुजारी हैं, इसलिए सिखोंको गुरु गोविन्द सिंह और आप, दोनोंमें से किसी एकको ही चुनना चाहिए।

उ० : यह सवाल दुष्टतापूर्वक भले ही न पेश किया गया हो, किन्तु खराब ढंगसे तो रखा ही गया है। मैंने जो बात कही थी वह यह थी कि अगर आप मानते हों कि गुरु गोविन्दसिंहकी शिक्षामें अहिंसामें पूर्ण विश्वास शामिल नहीं है तो आप तब तक सच्चे कांग्रेसी नहीं हो सकते जब तक कांग्रेसका सिद्धान्त अहिंसा है। मैंने इतना और कहा कि उस दशामें अगर आप कांग्रेसमें प्रवेश करें या उसमें कायम रहें तो आप अपनी स्थितिको बहुत असंगत बनायेंगे और उससे आपके उद्देश्यकी भी हानि हो सकती है।

अहिंसा, इस्लाम और सिख धर्म

प्र० : सभी धर्मोका आदर करनेकी शिक्षा देकर आप इस्लामकी जड़ें खोदने की कोशिश कर रहे हैं। पठानोंसे बन्दूकका त्याग करवाकर आप उन्हें पौरुष-हीन बना रहे हैं। हमारा और आपका कोई मेल हो ही नहीं सकता।

उ० : आप खिलाफत आन्दोलनके दिनोंमें क्या सोचते थे, यह मुझे मालूम नहीं है। मैं जरा आपको हमारे अपने ही समयके इतिहासकी थोड़ी बातें बता

हूं। खिलाफत आन्दोलनकी नींव मैंने डाली। अली-बन्धुओंकी रिहाईके आन्दोलनमें मेरा भी हाथ था। इसलिए जब वे रिहा होकर बाहर आये तो ख्वाजा अब्दुल मजीद, शुएब कुरेशी और मोअज्जम अलीके साथ मिलकर उन्होंने और मैंने एक कार्यक्रम बनाया जिसकी जानकारी दुनियाको है। मैंने उनके साथ अहिंसाके फलितार्थोंकी चर्चा की और उनसे कहा कि अगर आप सच्चे मुसलमानोंके नाते अहिंसाको स्वीकार नहीं कर सकते तो फिर इस मामलेमें मेरे पड़नेका सवाल ही नहीं उठता। उनकी बुद्धिको तो मैं सन्तोष दे सका, लेकिन उन्होंने कहा कि वे मुल्लाओंकी सहमतिके बिना कुछ नहीं कर सकते। इसलिए स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्र[1] के घर उलमाओंकी एक बैठक हुई। उनके जीवन-कालमें मैं जब भी दिल्ली जाता था उन्हींके घर ठहरता था। वहीं वह विद्वन्मण्डली एकत्र हुई, जिसमें मौलाना अबुल कलाम आजाद और मरहूम मौलाना अब्दुल बारी भी शामिल थे। मौलाना अबुल कलाम आजादकी रहनुमाईमें वे इस नतीजेपर पहुँचे कि अहिंसा न केवल इस्लामसे असंगत नहीं है, बल्कि इस अर्थमें वह कर्तव्य भी है कि इस्लामने हिंसाके मुकाबले बराबर अहिंसाको पसन्द किया है। स्मरण रहे कि यह बात १९२० में कांग्रेस द्वारा अहिंसाके सिद्धान्तकी स्वीकृतिसे भी पहलेकी है। मुसलमानोंकी खचाखच भरी सभाओंमें विद्वान मुसलमानोंने अहिंसापर बहुतसे प्रवचन दिये। बादमें सिख लोग भी बेहिचक शामिल हो गये और अहिंसाकी मेरी व्याख्याको उन्होंने दत्तचित्त होकर सुना। वे महान और बड़े शानदार दिन थे। अहिंसा संक्रामक सिद्ध हुई। उसके प्रभावमें जन-चेतनाका ऐसा विकास हुआ जैसा पहले कभी देखा नहीं गया था। सभी सम्प्रदायोंने अनुभव किया कि वे सब एक हैं और अहिंसाने उन्हें एक दुर्निवार शक्तिसे विभूषित कर दिया है। वे सुन्दर दिन बीत गये और आज स्थिति यह है कि मुझे गम्भीरतापूर्वक ऐसे प्रश्नोंके उत्तर देने पड़ते हैं। आपमें अहिंसाके प्रति श्रद्धा नहीं है तो मैं वह श्रद्धा आपमें नहीं जगा सकता। वह तो ईश्वर ही कर सकता है। मेरी श्रद्धा तो अडिग है। आप और आप-जैसे लोग मेरे मंशामें सन्देह करते हैं, फिर भी मैं तो यही मानता हूँ कि एक-दूसरेके धर्मके प्रति आदरकी भावना रखना शान्तिमय समाजका सहज गुण है। विचारोंका स्वतन्त्र आदान-प्रदान और किसी तरह असम्भव है। धर्मका प्रयोजन हमारी पशु-वृत्तिको अंकुशमें रखना है, उसे खुलकर खेलनेकी छूट देना नहीं। ईश्वर एक ही है, यद्यपि उसके नाम अनन्त हैं। क्या आप मुझसे यह अपेक्षा नहीं रखते कि मैं आपके धर्मका आदर करूँ? यदि रखते हो तो क्या मुझे भी अपने धर्मके प्रति आपसे ऐसे ही आदरकी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए? आप कहते हैं कि मुसलमानोंका हिन्दुओंके साथ किसी भी चीजमें मेल नहीं है। आपकी पृथकतावादी वृत्तिके बावजूद सत्य यही है कि संसार विश्व-बन्धुत्वकी दिशामें अग्रसर हो रहा है, और वह दिन कभी-न-कभी जरूर आयेगा जब मनुष्य-मात्रका केवल एक राष्ट्र होगा। हम सबकी नियति यही है और इस नियतिकी

१. दिल्लीके सेंट स्टीफन्स कॉलेजके प्रिंसिपल, सुशील कुमार रुद्र

ओर मानवकी प्रगतिको न आप रोक सकते हैं और न मैं। रही पठानोंको पौरुष-हीन बनानेकी बात, सो उसका जवाब तो बादशाह खान दें तो अच्छा। हम दोनोंकी मुलाकातसे पहले ही वे अहिंसाको स्वीकार कर चुके थे। उनकी मान्यता है कि अहिंसाका अनुसरण करनेके सिवाय पठानोंके सामने अपना भविष्य बनानेका और कोई रास्ता नही है। इसके बिना और कुछ नही तो उनके बीच होनेवाला आपसी रक्तपात ही उनकी प्रगतिके मार्गको रोके रहेगा। और वे मानते हैं कि पठान सीमाप्रान्तमें अपने पाँव तभी जमा पाये जब वे अहिंसाको स्वीकार करके खुदाई खिदमतगार बन गये।

और लांछन

प्र० : अमानुल्ला खाँको भारतपर आक्रमण कर यहाँ मुस्लिम राज कायम करनेको आमन्त्रित करनेकी अलीबन्धुओंकी साजिशमें शामिल होनेमें आप जरा नहीं झिझके। आपने मौलाना मुहम्मद अलीकी ओरसे उस तारका मसविदा तैयार किया जिसमें उन्होंने तत्कालीन अमीरसे ब्रिटेनके साथ सन्धि-सम्बन्ध कायम न करनेको कहा था। सुना जाता है कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दने वह मसविदा देखा था। और सिन्धमें कानूनका राज्य स्थापित करनेका जो एकमात्र रास्ता है, अर्थात् उसका बम्बईमें फिरसे मिला दिया जाना, उसकी माँग करने के बजाय अब आप सिन्धके हिन्दुओंको अपने घरबार मुसलमान उत्पीड़कोंको भेंट कर देनेकी सलाह दे रहे हैं। आप यह क्यों नहीं समझते कि प्रबुद्धता और प्रगतिके इस युगमें अल्पसंख्यक समुदाय अपनेको देवता बना लेनेकी नेक सलाहके बजाय अपने उचित अधिकारोंके कारगर संरक्षणकी अपेक्षा रखते हैं?

उ० : मेरे पास इस तरहके कई पत्र आये हैं। अब तक मैंने उनपर ध्यान नही दिया। लेकिन अब देखता हूँ कि हिन्दू महासभामें इस समाचारका एक परिष्कृत और परिवर्धित संस्करण निकला है। एक क्रुद्ध पत्र-लेखकने लिखा है कि उन-जैसे लोग अब उस बातमें विश्वास करने लगेंगे जो इतने अधिकृत तौरपर कही गई है। इसलिए अपनी प्रतिष्ठाका खयाल करके मुझे उत्तर अवश्य देना चाहिए। लेकिन पत्र-लेखकोंको मालूम होना चाहिए कि मेरे बारेमें जितने झूठे समाचार प्रचारित किये जाते हैं और मेरे लेखोंको जितना तोड़-मरोड़कर पेश किया जाता है, अगर मैं उस सबका खण्डन करने लगूँ तो जिन्दगी मेरे लिए भार बन जायेगी। जिस प्रतिष्ठाको बचानेके लिए इतनी चौकसी करनी पड़े वह प्रतिष्ठा किस कामकी! जहाँ तक अमीर के साथ मेरे साजिश करनेके आरोपका सम्बन्ध है, मैं यही कह सकता हूँ कि इसमें कोई सचाई नही है। इसके अलावा, मुझे यह भी मालूम है कि जब अली-बन्धुओंपर यह आरोप लगाया गया था तब उन्होंने भी इसका जोरदार खण्डन किया था। और उनपर तो मैं आँख मूँदकर विश्वास करता था। मुझे तो ऐसा कुछ भी याद नही है कि मैंने

मौलाना मुहम्मद अलीकी ओरसे तत्कालीन अमीरके नाम किसी तारका मसविदा तैयार किया था। कथित तार अपने-आपमें हानिरहित है, और उससे वह निष्कर्ष नहीं निकलता जो निकाला गया है। स्वर्गीय स्वामीजीने मुझसे तो इसकी सचाईके बारेमें कभी नहीं पूछा। किसी मृत व्यक्तिके बारेमें कुछ कहना गलत है। ऐसे व्यक्तिके बारे में तभी कुछ कहा जा सकता है जब पासमें निश्चित प्रमाण हों और उसके सम्बन्धमें जो बात कही जाये उसे कहना प्रासंगिक हो। यह कहानी 'यंग इंडिया' में मेरे लेखोंके आधारपर गढ़ी गई है। उनसे जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे सर्वथा अनुचित हैं। अंग्रेजोंको भारतसे निकलवानेके लिए किसी भी देशको भारतपर आक्रमण करनेको निमन्त्रित करनेका अपराध मैं कभी नहीं कर सकता। पहली बात तो यह है कि यह चीज मेरे अहिंसा-धर्मके खिलाफ होगी। दूसरे, अंग्रेजोंकी बहादुरी और उनके शस्त्र-बलको मैं इतना श्रेष्ठ तो मानता ही हूँ कि ऐसा सोचनेकी भूल न करूँ कि कई शक्तियोंका एक गुट बनाये बिना भारत पर सफल आक्रमण किया जा सकता है। जो भी हो, ब्रिटिश हुकूमतकी जगह किसी और विदेशी शासनको प्रतिष्ठित होते देखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं विशुद्ध स्वराज्य चाहता हूँ, चाहे वह निम्न कोटिका ही क्यों न हो। जब मैंने 'यंग इंडिया' में वे अनुच्छेद लिखे जिनका प्रयोग आज मेरे खिलाफ करने की कोशिश की जा रही है, तब मेरी जो स्थिति थी वही आज भी है। मैं पाठकोंको यह भी याद दिला दूँ कि मैं गुप्त तरीकोंमें विश्वास नहीं रखता।

जहाँ तक सिन्धका सम्बन्ध है, मेरी सलाह कायम है। सिन्धका फिरसे बम्बई प्रान्तमें मिलाया जाना अन्य कारणोंसे अच्छा हो या न हो, लेकिन निश्चय ही जान-मालको अधिक सुरक्षा प्रदान करनेकी दृष्टिसे तो यह विचार अच्छा नहीं ही है। हर भारतीयको, चाहे वह हिन्दू हो या कोई और अपनी रक्षा स्वयं करनेकी कला सीखनी है। सच्चे लोकतन्त्रकी यही शर्त है। राज्यका कुछ कर्तव्य होता है। लेकिन जो लोग अपनी रक्षा करनेमें खुद राज्यका हाथ नहीं बँटा सकते उनकी रक्षा कोई भी राज्य नहीं कर सकता।

दिल्ली जाते हुए, ४ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४०

२२१. घीमें मिलावट[1]

डॉ० कैलाशनाथ काटजू[2] ने निम्नलिखित पत्र[3] भेजा है :

> २० जनवरीके 'हरिजन' में घीमें मिलावटपर लिखी आपकी टिप्पणी[4] मैंने बड़ी रुचिसे पढ़ी है। . . . दुर्भाग्य तो यह है कि मिलावट केवल घी-विक्रेता और बिचौलिये ही नहीं करते, गाँवोंमें घी तैयार करनेवाले लोग उसे बाजारमें लानेसे पहले अपने घरोंमें ही उसमें मिलावट करने लगे हैं। . . .
>
> इस बुराईको रोकनेके लिए हमने एक विस्तृत विधेयक तैयार किया था और संयुक्त प्रान्तके विधानमण्डलमें उसे पेश भी किया था। जब हमने त्यागपत्र दिया तब वह विधान-मण्डलीय समितिके विचाराधीन था। उस विधेयकमें प्रान्तीय सरकारको कृत्रिम घी या वनस्पति-तेलोंमें रंग या सुगन्ध मिलानेका नियम बनानेका अधिकार दिया गया है। लेकिन मेरा खयाल है, इस उद्देश्यसे अधिक उपयोगी और वास्तवमें महत्त्वपूर्ण धारा वह है जिसमें प्रान्तीय सरकारको घी-उत्पादक क्षेत्रोंमें कृत्रिम घी या वनस्पति घीकी बिक्री बन्द कर देनेका अधिकार दिया गया है। . . . हमें लगा कि जब इन क्षेत्रोंमें वनस्पति घी इस व्यापक प्रयोजनसे ही बेचा जाता है तब एकमात्र उचित उपाय यही रह जाता है कि वहाँ ऐसे घीकी बिक्री बिलकुल बन्द कर दी जाये और इस तरह शुद्ध घीके उद्योगको संरक्षण और प्रोत्साहन दिया जाये। . . .

घी-उत्पादन क्षेत्रोंकी परिस्थितिसे खास तौरसे निबटनेका डॉ० काटजूका सुझाव विचारणीय है। सच पूछिए तो राष्ट्रीय आहारके इस महत्त्वपूर्ण पदार्थमें मिलावटकी समस्या ऐसी है जिसका उपचार अखिल भारतीय पैमानेपर होना चाहिए। इसके लिए तथाकथित उच्चतर राजनीतिक समस्याओंके निबटारेके लिए रुके रहनेकी जरूरत नहीं है।

दिल्ली जाते हुए, [४][5] फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १७-२-१९४०

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. संयुक्त प्रान्तके भूतपूर्व न्याय, विकास, कृषि तथा पशु-चिकित्सा मन्त्री

३. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

४. देखिए पृ० १०७-१०८।

५. साधन-सूत्रमें "५ फरवरी" है, जो स्पष्ट ही भूल है। गांधीजी ४ फरवरी, १९४० को दिल्ली पहुँच गये थे।

२२२. एक साक्ष्य

उडीसा राज्य प्रजा परिषद्के मन्त्री श्री सारंगधर दासने एक पत्र भेजा है, जिसका एक अंश नीचे दे रहा हूँ।[1]

सारंगधर बाबूके इस हृदय-परिवर्तनपर मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मेरा सुझाव यह है कि यदि वे चरखा शास्त्रका सर्वांगीण अध्ययन करेंगे तो उनका हृदय-परिवर्तन स्थायी और संक्रामक सिद्ध होगा। ऐसा करेंगे तो वे पायेंगे कि पत्थरकी नाभिवाला चरखा, जिसे मैंने देखा भी है और चलाया भी है, पुराने किस्मका यन्त्र है, जो समान गतिसे नहीं चल सकता, बल्कि गतिको रोकता भी है। यह समझ जानेपर वे चरखेमें ऐसा सुधार करनेकी कोशिशमें लग सकते हैं जिससे उसपर आजकी अपेक्षा तिगुना नहीं तो दुगुना सूत तो जरूर काता जा सके। और चरखा-वृत्ति जिन अनेक दिशाओंमें काम कर सकती है यह तो उनमें से केवल एक है। चरखेके अनेक पहलू हैं — आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक। इसका आध्यात्मिक पहलू इसे अहिंसाका प्रतीक बनाता है। कई वर्ष पहले मैंने एक स्कॉट मनोवैज्ञानिकके अनुभव उद्धृत किये थे, जिनमें बताया गया था कि उन्होंने बुरे स्वभावके लड़कोंको चरखेकी मददसे कैसे शान्त और धीर बनाया। उन्होंने पाया कि चरखेकी लयबद्ध गति मनुष्यके मनपर शान्त और शमित करनेवाला असर डालती है। मैंने स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टणीका अनुभव भी उद्धृत किया था।[2] उसमें उन्होंने बताया था कि सोनेसे पहले आधा घंटा चरखा चलानेसे उनके थके ज्ञानतन्तुओंको कितना विश्राम मिलता था। 'फाउस्ट' की नारी पात्र मार्गरेट चरखा चलाती हुई जो गीत गाती है उसपर भी जरा गौर कीजिए।[3]

नई दिल्ली, ५ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-२-१९४०

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें बताया गया था कि पत्र-लेखक पहले तो मशीनों और बड़े पैमानेपर उत्पादनमें विश्वास करते थे, लेकिन गांधीजी का "मॉरल कॉन्फिस्केशन" शीर्षक लेख पढ़नेके बाद वे चरखेके भक्त बन गये।

२. देखिए खण्ड २८, पृ० ५६-५७; खण्ड ३०, पृ० ५२६-२७ भी।

३. देखिए खण्ड २५, पृ० ८२-८३।

२२३. अच्छा सुझाव

विले पार्ले-स्थित प्यूपिल्स ओन स्कूलकी श्रीमती कुँवरबाई वकीलने स्वतन्त्रता दिवसपर माध्यमिक श्रेणीके पन्द्रह छात्रों द्वारा काते गये सूतका एक पार्सल मुझे भेजा है। साथमें भेजे पत्रमें वे सूचित करती हैं कि कताई एक हरिजन विद्यार्थी ने आरम्भ की और बादमें सब तो नहीं, लेकिन कई दूसरे विद्यार्थी भी उसके इस नेक उदाहरणका अनुकरण करने लगे। लेकिन श्रीमती कुँवरबाईने यह पत्र मुख्यत: मेरा ध्यान इस बातकी ओर दिलानेके लिए लिखा है कि पिछले तीन वर्षोंसे प्रिन्सिपल वकील और श्रीमती कुँवरबाई वकील अपने शिष्योंके साथ प्रतिवर्ष दो दिन चार-चार घंटे खादी बेचनेमें लगा रहे हैं। परिणाम उत्साहवर्धक रहा है। वे हर बार प्रतिदिन ५०० रुपयेकी खादी बेच पाये। श्रीमती वकीलका विचार है कि यदि सभी शैक्षणिक संस्थाएँ वर्षके कुछ दिन खादी बेचनेके लिए ही नियत कर लें तो उससे खादीको बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा। उन्होंने यह भी लिखा है कि सूत कातने और खादी बेचनेवाले ये विद्यार्थी अपने-अपने घरोंमें भी खादीका इस्तेमाल करनेमें सफल हो गये हैं, जब कि पहले इनमें से अधिकांश घर खादीसे बिलकुल अछूते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर शैक्षणिक संस्थाएँ वकील-दम्पति-जैसी ईमानदारी और निष्ठासे खादी-सेवामें लग जायें तो पूरा वातावरण ही बदल जाये और खादीको सहज ही अपना उचित स्थान प्राप्त हो जाये। मैंने यह बात बेझिझक कही है और उसे यहाँ फिर दोहराना चाहता हूँ कि स्वराज्यके निमित्त कातनेवाला हर व्यक्ति जितने गज कातता है, वह स्वराज्यको उतने ही गज निकट लाता है। जरा सोचिए कि यदि करोड़ों लोग इस महान प्रयत्नमें शरीक हो जायें तो परिणाम कितना भव्य होगा। इस सम्बन्धमें कोई इतिहासमें दृष्टान्त न ढूँढ़ने लगे। किसी राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिए कभी अहिंसात्मक ढंगसे प्रयत्न किया गया हो, इसका कोई दृष्टान्त इतिहासमें उपलब्ध नहीं है। सच्चे अहिंसात्मक प्रयत्नके लिए विलक्षण अस्त्र अपनाने पड़ते हैं — ऐसे प्रयत्नकी यह अनिवार्य शर्त है। चरखेके महत्त्वको समझनेमें हमारे अन्दर छिपी हिंसाकी भावना और इस पद्धतिकी नवीनता ही बाधक है। इसलिए मेरे मनमें कहीं यह आशंका छिपी पड़ी है कि जिन लोगोंने कताईको अपनाया भी है उन्होंने कदाचित् यान्त्रिक रीतिसे अनुशासनकी खातिर ही वैसा किया है। यदि बात ऐसी हो तो इससे कुछ बननेवाला नहीं है। यदि इसे तत्परताके साथ अपनाया जाता है तो वह तत्परता खादीकी बिक्रीमें प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। बहुत-से लोग पत्र लिखकर मुझे यह सूचित करते रहे हैं कि उन्होंने कताईको अपना लिया है, लेकिन खादीकी बिक्रीके बारेमें कोई कुछ नहीं लिखता। यदि खादीकी बिक्रीमें

स्पष्ट वृद्धि होती है तो वह मेरे लिए इस बातका सबसे निश्चित संकेत होगा कि स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञाकी खादी-सम्बन्धी धाराको कांग्रेसियोंने किस भावसे ग्रहण किया है।

नई दिल्ली, ५ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४०

२२४. तार : कार्ल हीथको[1]

नई दिल्ली
५ फरवरी, १९४०

कार्ल हीथ
फ्रेंड्स हाउस
यूस्टन, लन्दन

धन्यवाद। कोई समझौता सम्भव नहीं। मतभेद बहुत गहरे।[2]

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३) से

२२५. तार : च० राजगोपालाचारीको

नई दिल्ली
५ फरवरी, १९४०

च० राजगोपालाचारी
मद्रास

कुछ नहीं बना। कल सुबहकी गाड़ीसे प्रस्थान कर रहा हूँ।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०७८) से

१. यह कार्ल हीथके २ फरवरी, १९४० के इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "कॉन्सिलिएशन ग्रुपको बड़ी आशा है कि ५ तारीखकी मुलाकातमें समझौतेका कोई आधार निकल आयेगा। . . . कृपया हमें जानकारी देते रहें।"

२. ५ फरवरीको वाइसरायके साथ गांधीजीकी मुलाकातके बाद जारी की गई विज्ञप्तिके लिए देखिए परिशिष्ट ४। देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० २१५-१९ भी।

२२६. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

[५ फरवरी, १९४०][1]

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मेरे विचारमें वक्तव्यका यह मसविदा[2] प्रयोजन पूरा कर देगा। मेरा विश्वास है कि आप इस मसविदेको वापस नही चाहते।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२२७. पत्र : जी० रामचन्द्रनको

५ फरवरी, १९४०

हम कल सुबह वर्धाके लिए प्रस्थान कर रहे हैं। अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला है। अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। लेकिन वार्तासे कुछ आशा न रखो। अगर तुम थक गये हो तो वैसा कहो और अभी संघर्ष बन्द कर दो। लेकिन मनमें कमजोरी या झुकनेका भाव न आने दो, बल्कि इस तूफानी वातावरणके बीच भी फिरसे ताकत हासिल करो। सत्याग्रहमें यह करिश्मा भी कर दिखाया जा सकता है। लेकिन अगर तुम बाहरसे पैसेकी कोई सहायता न मिलने पर भी अनिश्चित कालतक चलाते रह सकते हो, तब तो डरनेकी कोई बात ही नही है। मेरा विशुद्ध नैतिक समर्थन सदा तुम्हें मिलेगा।

फिलहाल तो इतना काफी है न?

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

१. यह पत्र लॉर्ड लिनलिथगोके ५ फरवरी, १९४० के पत्रके उत्तरमें था।

२. सम्भवतः यह ५ फरवरी, १९४० की सरकारी विज्ञप्तिका मसविदा था, जो प्रकाशित होनेसे पहले गांधीजी के पास भेजा गया था; देखिए परिशिष्ट ४।

२२८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेगाँव, वर्धा [के पते पर]
५ फरवरी, १९४०

चि० प्रेमा,

ले, यह प्रभा आ गई। अब इसे अपनी देखरेखमें लेना। इसे दूध, घी और किसी फलकी जरूरत होगी। इनके बिना इसकी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहेगी। यदि यह इनके बिना चला सके तब तो बहुत ही अच्छा हो। लेकिन अभी यह प्रयोग करना उचित नहीं होगा। यह समय इससे पूरा काम लेनेका है। इसकी खुराक में जो पैसा खर्च हो, वह मुझसे मँगाना। बाकी और सब प्रभा तुझसे कहेगी।

हम कल सबेरे वापस जा रहे हैं। बा साथ जा रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०५) से। सी० डब्ल्यू० ६८४४ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

२२९. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

नई दिल्ली
६ फरवरी, १९४०

कांग्रेसकी माँग और वाइसरायके प्रस्तावके बीच महत्त्वपूर्ण अन्तर इस तथ्यमें निहित है कि जहाँ वाइसरायके प्रस्तावमें भारतके भाग्यका अंतिम फैसला ब्रिटिश

१. महादेव देसाई द्वारा तैयार किया गया इस भेंटका विवरण "फेल्योर—स्टेपिंग स्टोन टु सक्सेस" शीर्षकसे छपा था जिसमें उन्होंने इस प्रकार लिखा था: "गांधी-अर्विन समझौतेपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घंटों बाद ५ मार्च, १९३१ की ठंडी सुबह को गांधीजी ने पत्रकारोंके एक बड़े दलसे भेंट की थी। गांधीजी बहुत थके हुए थे और यदि ये पत्रकार न आते तो वे सुख की नींद सो रहे होते। किन्तु अपना वक्तव्य बोलते-बोलते उनमें अन्दर से ताजगी आने लगी और क्षणमात्रके लिए भी रुके बिना उन्होंने कई सौ शब्दोंका वक्तव्य बोलकर लिखवाया जिसमें एक अर्द्धविराम भी बदलनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। ६ फरवरी, १९४० की सुबह भी उन्होंने बहुत-से पत्रकारोंसे भेंट की जिनमें **मैनचेस्टर गार्जियन, न्यूज क्रॉनिकल, द टाइम्स** जैसे लन्दनके पत्रों और 'एसोशिएटेड प्रेस ऑफ अमेरिका' के प्रतिनिधि भी शामिल थे। १९३१ जैसा ही महत्त्वपूर्ण कदम ईश्वरके भरोसे उठाने के बाद निद्रा तथा विश्रामका उन्हें अधिकार और आवश्यकता थी, फिर भी वर्धाके लिए रवाना होने से एक घंटा पूर्व वे विदेशी पत्रकारोंसे मिले और उन्होंने लगभग १९३१ के उस वक्तव्य जितना ही लम्बा एक वक्तव्य दिया जिसके दौरान सिर्फ एक बार वे किसी शब्द या वाक्यका संशोधन करनेके लिए रुके।"

सरकार द्वारा किये जानेकी तजवीज है, वहाँ कांग्रेसकी ठीक इससे उलटी तजवीज है। कांग्रेसकी स्थिति यह है कि सच्ची स्वतन्त्रताकी कसौटी यह है कि भारतके लोग अपनी किस्मतका फैसला, बिना किसी बाहरी प्रभाव[1] के, स्वयं करें। और जब तक यह महत्त्वपूर्ण अन्तर दूर नही किया जाता और इंग्लैंड सही निर्णय नहीं लेता — अर्थात् यह स्वीकार नही कर लेता कि वह समय आ गया है जब भारतको अपना संविधान आप बनाने और अपना दर्जा खुद तय करने दिया जाना चाहिए — तब तक मुझे भारत और इंग्लैंडके बीच शान्तिपूर्ण और सम्मानजनक समझौतेकी कोई सम्भावना दिखाई नही देती। जब यह कर दिया जायेगा तो प्रतिरक्षाका प्रश्न, अल्पसख्यकोंका प्रश्न, देशी राजाओंका प्रश्न और यूरोपीय हितोंका प्रश्न सबके-सब अपने-आप सुलझ जायेंगे।

अपनी बात जरा स्पष्ट कर दूँ। अल्पसंख्यक समुदायोंके अधिकारोंके लिए संरक्षणात्मक उपायोंकी व्यवस्था की जाये, यह केवल ब्रिटिश सरकार और कांग्रेसकी समान इच्छा ही नही है, बल्कि स्थिति यह है कि भारतीयोंकी प्रातिनिधिक सभा जब तक न्यायोचित अल्पसंख्यक समुदायोंको पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट नही करती तब तक वह भारतके लिए किसी स्थायी संविधानकी रचना नही कर सकती। 'न्यायोचित' शब्दका प्रयोग मैं यहाँ सोच-समझकर कर रहा हूँ, क्योंकि मैं एकके बाद एक इतने अल्पसंख्यक समुदायोंको उभरते देख रहा हूँ कि इस तरह तो बहुसंख्यक समुदाय नामकी कोई चीज ही नही रह जायेगी। पूर्ण सन्तोषसे मेरा मतलब ऐसा सन्तोष देना है जो सम्पूर्ण राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधक न हो। इसलिए मतभेद होनेपर मैं यह प्रश्न किसी ऐसे न्यायाधिकरणको सौंपना चाहूँगा जो मानव-बुद्धिके द्वारा गठित सर्वोच्च और सर्वाधिक निष्पक्ष न्यायाधिकरण हो। अल्पसंख्यकोंके हितोंको पूर्णतः सन्तुष्ट करनेका मतलब क्या है, इसके सम्बन्धमें उस न्यायाधिकरणका फैसला अन्तिम होगा।

जहाँ तक प्रतिरक्षाका सम्बन्ध है, निश्चय ही स्वतन्त्र भारतके लिए यह एक बुनियादी महत्त्वकी बात होगी कि अपनी प्रतिरक्षाकी व्यवस्था वह स्वयं करे। यह हो सकता है कि इसके लिए भारतको विस्तृत तैयारी करनी पड़े और इस तैयारीके लिए वह इंग्लैंडकी सहायता भी चाहे, यदि इंग्लैंड ऐसी सहायता देनेको तैयार हो। साम्राज्यी नीतिका परिणाम यह हुआ है कि यदि ब्रिटिश संगीनों और ब्रिटेन द्वारा तैयार किये गये भारतीय सिपाहियोंको हटा लिया जाये तो आज निःशस्त्र भारत सर्वथा अरक्षित हो जाये। यह स्थिति ब्रिटेन और भारत दोनोंके लिए समान रूपसे लज्जास्पद है। खुद मुझे तो इस बातकी कोई चिन्ता नही है, क्योंकि अगर मैं भारतसे अपनी बात मनवा सकूँ तो मैं डाकुओं वगैरहसे रक्षाके लिए एक पुलिस दलके अलावा और कुछ नही रखूँ। लेकिन जहाँ तक प्रतिरक्षाका सम्बन्ध है, निःशस्त्र और शान्तिप्रिय भारत

१. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ 'इंटरफियरेंस' (हस्तक्षेप) शब्द है।

उसके लिए विश्वकी सद्भावनापर निर्भर रहेगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी तो यह एक सपना-भर है।

जहाँ तक यूरोपीय हितोंका प्रश्न है, 'यूरोपीय' शब्दपर जोर देना बिलकुल बन्द कर देना चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि स्वतन्त्र भारतको यूरोपीय हितों या अन्य हितोंको जब्त कर लेनेके लिए भी स्वतन्त्र होना चाहिए। जो हित न्यायोचित हैं और राष्ट्रके लिए हानिकर नहीं हैं उनके लिए युक्तियुक्त मुआवजेकी व्यवस्था होगी और होनी चाहिए। इससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आज जिस तरह यूरोपीय हितोंपर विशेष कृपाकी दृष्टि रखी जाती है, वैसी कोई चीज स्वतन्त्र भारतमें सम्भव नहीं हो सकती। ऐसे यूरोपीयोंको मैं बड़े जमींदार या पूँजीपति मानूँगा, और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जायेगा।

अब देशी राजाओंकी बात लें। जो राष्ट्रीय सभा भारतके भाग्यका फैसला करेगी, उसमें शामिल होनेकी उन्हें पूरी छूट है — व्यक्तिगत हैसियतसे नहीं, बल्कि अपने यहाँकी जनताके विधिवत निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे शामिल होनेकी। देशी राजा सम्राटके सामन्त हैं, इसलिए मैं मानता हूँ कि सम्राटसे अलग उनका कोई दर्जा नहीं है, और उससे ऊपर तो उनका कोई दर्जा हो ही नहीं सकता। आज पूरे भारतपर सम्राटकी जो सत्ता है उसे जब वह छोड़ देता है तो स्वभावतः राजाओंको अपने दर्जेकी रक्षाके लिए सम्राटके उत्तराधिकारी, अर्थात् भारतीय जनताका मुखापेक्षी बनना पड़ेगा और इसमें उन्हें गौरवका अनुभव होना चाहिए।

आशा है, इसे बहुत बड़ा दावा नहीं माना जायेगा, क्योंकि यह दावा कांग्रेसकी ओरसे या किसी एक दलकी ओरसे नहीं, बल्कि भारतके प्रतिनिधित्व-रहित करोड़ों मूक जनोंकी ओरसे किया जा रहा है। उनकी ओरसे किया गया कोई भी दावा अनुचित रूपसे बड़ा नहीं माना जा सकता। खुद मैं एक नगण्य आदमी हूँ, लेकिन ऐसा माना जाता है कि इन करोड़ों मूक जनोंपर मेरा कुछ प्रभाव है। मैं जानता हूँ कि मैं भी सम्पूर्णतः उन्हींमें से एक हूँ और उनके बिना मैं कुछ नहीं हूँ और उनसे अलग होकर मेरी जीनेकी भी इच्छा नहीं है।

उनकी ओरसे मैं ब्रिटेनके साथ अहिंसक लड़ाई तक लड़े बिना एक सम्मानजनक समझौता चाहता हूँ। मेरे कोशमें हिंसक लड़ाई जैसा कोई शब्द है ही नहीं। कल मैंने वाइसराय महोदयके सामने यह बात अपने तईं अधिकसे-अधिक शिष्ट और मित्रतापूर्ण ढंगसे रखी। हमने बातचीत व्यक्तिगत मित्रोंकी तरह की, एक दूसरेकी ईमानदारीमें पूरा विश्वास रखते हुए। हमने एक दूसरेको समझा और यह स्वीकार किया कि सरकारकी स्थिति और कांग्रेसकी स्थितिके बीच अभी भी एक चौड़ी खाई है। कांग्रेसकी स्थिति मैंने उनके सामने कांग्रेसके अधिकृत प्रतिनिधिकी हैसियतसे तो नहीं, लेकिन करोड़ों मूक जनोंके स्वयं-नियुक्त प्रतिनिधिकी हैसियतसे अवश्य रखी।

हम लोग एक दूसरेसे मित्रोंकी तरह अलग हुए। वार्ता विफल हुई, इससे मैं निराश नहीं हूँ। उस विफलताका उपयोग मैं सफलताकी सीढ़ीकी तरह करने जा रहा हूँ और मुझे विश्वास है कि वाइसराय महोदय भी ऐसा ही करने जा रहे हैं। लेकिन अगर सफलता निकट भविष्यमें नहीं मिलती तो मैं यही कामना कर सकता हूँ कि भगवान भारत, ब्रिटेन और विश्वकी सहायता करे। वर्तमान युद्धका निवटारा शस्त्रोंकी टकराहटसे नहीं, वल्कि दोनों पक्ष जितनी नैतिकताका परिचय दे सकें उसीके जोरपर होना चाहिए। यदि ब्रिटेन भारतके न्यायोचित दावेको स्वीकार नहीं करता तो इसका मतलब ब्रिटेनके नैतिक दिवालियेपनके अलावा और क्या हो सकता है?

इसके बाद गांधीजी से पूछा गया: "उनके विचारसे, ये प्रस्ताव वर्तमान स्थितिमें कांग्रेस पार्टीकी माँगको पूरा नहीं करते,"[1] इस वाक्यमें 'वर्तमान स्थितिमें' शब्दोंसे क्या तात्पर्य है?" उन्होंने कहा:

सरकारी विज्ञप्तिमें प्रयुक्त 'वर्तमान स्थितिमें' शब्द निरर्थक है। यदि इसका मतलब यह है कि कांग्रेस भविष्यमे अपनी माँगमें कोई परिवर्तन कर सकती है तो ऐसा अर्थ लगानेका कोई कारण नहीं है।

यह पूछनेपर कि क्या कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंके फिर पद-भार सँभालनेकी कोई उम्मीद है, गांधीजीने कहा:

मुझे आशा है और मैं यही अपेक्षा रखता हूँ कि जब तक मुख्य प्रश्नका निवटारा नहीं हो जाता, कांग्रेस मन्त्रिमण्डल सरकारसे वाहर ही रहेंगे।

अभी मुझे कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें वातचीतका कोई आसार दिखाई नहीं देता। ऐसा इसलिए कि जिन्ना साहवने मुझे पत्र लिखकर मुस्लिम लीगकी जो स्थिति वताई है वह राष्ट्रीय ध्येयके लिए सर्वथा हानिप्रद है।[2] वे भारतको कई हिस्सोंमें वाँटनेकी वात सोचकर चल रहे हैं। कांग्रेस एक भारतकी परिकल्पना लेकर चल रही है।

जब गांधीजी को बताया गया कि बी० बी० सी० से यह समाचार प्रसारित हुआ है कि ५ तारीखकी शामको वे जिन्ना साहवसे मिलने जा रहे हैं, तो गांधीजी ने कहा:

१. देखिए परिशिष्ट ४।

२. अन्य राजनीतिक दलोंके साथ अपने समझौतेका उल्लेख करते हुए मुहम्मद अली जिन्नाने लिखा था: "यह तो कुछ हद तक वैसी ही वात है कि आपत्तिके समय अजीवसे-अजीव लोग साथ हो जाते हैं और कुछ हद तक यह कि समान हितोंके कारण मुसलमान और अल्पसंख्यक आपसमें गठबन्धन कर लें। इस मामलेमें मुझे किसी प्रकारका भ्रम नहीं है और मैं यह फिर कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान कोई एक राष्ट्र या देश नहीं है। यह तो एक उपमहाद्वीप है जिसमें अनेक राष्ट्र हैं, जिनमें से हिन्दू और मुसलमान दो प्रमुख राष्ट्र हैं।"

लोग किस तरह समाचार गढ़ लेते हैं, देखकर आश्चर्य होता है। विनाशके निमित्त आविष्कार करनेकी मानवीय क्षमताने अद्भुत ऊँचाई प्राप्त कर ली है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-२-१९४०, और **कांग्रेस बुलेटिन**, २४-२-१९४०

२३०. हमारा कर्तव्य

वाइसराय महोदयके साथ मेरी वार्ता विफल हो गई, इसपर कांग्रेसियोंको हताश होनेकी जरूरत नहीं है। हम समझौतेकी सम्भावनाएँ ढूंढनेके लिए मिले थे। मुझे उसके अंकुर बम्बईमें वाइसराय महोदय द्वारा की गई घोषणा[1] में दिखाई दिये थे। लेकिन अब पता चला है कि वह मेरी भूल थी। वाइसराय महोदयके हाथ बँधे थे। अभी देशके सामने जो प्रस्ताव है, उसकी हदोंसे बाहर जानेकी इजाजत उन्हें नहीं थी। शायद उनका अपना विचार भी ऐसा ही था।

लेकिन हमारी मुलाकातसे कोई नुकसान नहीं हुआ है। विफलताके बावजूद हम एक-दूसरेके निकट आये हैं। स्थिति स्पष्ट हुई है। अहिंसा बहुत अधिक धैर्यकी अपेक्षा रखती है। इसमें विफलता ऊपरी ही होती है। चूंकि लक्ष्य और साधन दोनों शुद्ध हैं, इसलिए विफलता मिल ही नहीं सकती। इस मुलाकातसे हम अपने लक्ष्यके अधिक निकट आये हैं। यदि वाइसराय महोदयने ब्रिटिश नीतिके प्रतिपादनमें साफगोईसे काम लिया, तो मैंने भी कांग्रेसकी नीति बिना किसी लाग-लपेटके सामने रख दी। जहाँ तक मुझे मालूम है, वार्ता बिलकुल बन्द नहीं कर दी गई है। इस बीच हमें दुनियाको यह बताना है कि हम क्या चाहते हैं। भारत अनेक उपनिवेश-राष्ट्रोंमें से एक नहीं हो सकता — अर्थात् वह गैर-यूरोपीय जातियोंके शोषणमें इंग्लैंडका साझेदार नहीं बन सकता। अगर उसका संघर्ष अहिंसक है तो उसे अपना दामन बेदाग रखना है। अगर भारत चाहता हो कि वह आफ्रिकी लोगोंके शोषण और उपनिवेश-राष्ट्रोंमें रहनेवाले अपने ही देशभाइयोंके पतनमें भागीदार न बने, तो उसका अपना स्वतन्त्र दर्जा होना चाहिए। उस दर्जेमें क्या-क्या शामिल हो सकता है और उसका स्वरूप क्या हो, यह ब्रिटेनको तय नहीं करना चाहिए, यह वह तय नहीं कर सकता। इसका निर्णय तो हमें स्वयं, अर्थात् राष्ट्रके प्रतिनिधियोंको करना है — अब इन प्रतिनिधियोंकी सभाको आप चाहे जिस संज्ञासे अभिहित करें। जब तक ब्रिटिश राजनयिक यह बात स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार नहीं करते, तब तक तो यही माना जायेगा कि वे सत्ता नहीं छोड़ना चाहते। ब्रिटेनके इस आशयकी स्पष्ट घोषणा करनेमें न प्रति-रक्षा और अल्पसंख्यकोंके प्रश्नके बाधा बननेकी आवश्यकता है और न देशी नरेशों

१. देखिए परिशिष्ट २।

तथा यूरोपीयोंके हितोंके सवालके अड़चन बननेकी जरूरत है। ऐसा नही है कि इन महत्त्वपूर्ण विषयोंपर गम्भीरतासे विचार करने और इन्हे आदान-प्रदान की नीतिसे निबटानेकी ज़रूरत नही है। लेकिन उनका न्यायसंगत और उचित हल तभी निकाला जा सकेगा जब यह आवश्यक घोषणा कर दी जाये और उसके बाद तुरन्त जहाँ तक सम्भव हो तदनुसार कारंवाई भी की जाये। इसके बिना जर्मनीके खिलाफ ब्रिटेनकी लड़ाईको न्यायपूर्ण नही कहा जा सकता, स्वार्थरहित तो कदापि नही।

तब करना क्या है? क्या सविनय अवज्ञाकी घोषणा? नही, अभी उसका वक्त नही आया है। जब मैं कहता हूँ कि लॉर्ड लिनलिथगो ईमानदारीका व्यवहार कर रहे हैं, तब मेरा आशय सचमुच यही है। वे हमें समझने और अपने वरिष्ठों तथा अपने राष्ट्रके प्रति अपना कर्तव्य निभानेकी पूरी कोशिश कर रहे है। उनकी अपनी जो परम्पराएँ हैं, उन्हें देखते हुए ऐसी आशा तो नही की जा सकती कि वे एकदम ही हमारी स्थितिपर आ जायेंगे। उन्हें झटपट ऐसा करनेको मजबूर नही किया जा सकता। हमें अपने विरोधीको तुच्छ नही समझना है, उसकी शक्तिको कम करके नही आँकना है। वह कमजोर है, ऐसा मानकर चलना और उसकी कमजोरीसे फायदा उठानेकी कोशिश करना गलत होगा। उसके कमजोर होनेसे हम बलवान या योग्य नही हो जाते। और अगर हम खुद सबल हैं तब तो उसकी शक्तिसे हमें घबरानेकी कोई जरूरत ही नही है। इसलिए हमारा कर्तव्य तो यह है कि हम उसे अपनी शक्तिका अहसास करायें। यह काम हम सविनय अवज्ञा करके नही, बल्कि स्वयं अपने दोषोंको दूर करके करेंगे। ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकोंकी समस्या या ऐसे ही किसी दूसरे प्रश्नकी आड़में सही कदम उठानेसे इनकार करे, यह बात हम भले ही न बरदाश्त करे, लेकिन इस सचाईकी ओरसे तो अपनी आँखें हम बन्द नही कर सकते कि ये प्रश्न मौजूद हैं और हमारे लिए इनका हल ढूंढ़ना ज़रूरी हैं। कायदे-आजम जिन्नाने जो दुराग्रहपूर्ण और सर्वथा राष्ट्र-विरोधी स्थिति अपनाई है, उसकी ओर हम भले ही ध्यान न दें, लेकिन मुसलमानोंकी भावनाका खयाल तो हमें करना ही होगा। अन्य समस्याओंके बारेमें भी ऐसा ही कहा जा सकता है। इनके सम्बन्धमें हमें लोक-मानसको शिक्षित करना चाहिए, अपना दिमाग साफ कर लेना चाहिए और यह जानना चाहिए कि इनके विषयमे खुद हमारी स्थिति क्या है। मौलाना साहबका कहना है कि जनप्रतिनिधियोंसे गठित होनेवाली संस्थाओंके चुनावोंके नियमनमें कांग्रेसी और कांग्रेस कमेटियाँ बराबर विचारपूर्वक काम नही करती, और स्थानिक निकायोंका व्यवहार सभी समुदायोंके साथ सदा न्यायपूर्ण नही होता। हमें सन्देहसे परे होना है। कांग्रेस कमेटियोंको एक-एक शिकायतकी जाँच अपार धीरजसे करनी चाहिए। किसी भी शिकायतकी यह मानकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह बहुत तुच्छ है। मेरे पास ऐसे तार और पत्र आये हैं जिनमें इस बातकी बड़ी कड़ी शिकायत की गई है कि कांग्रेस कमेटियों, स्थानिक निकायों आदिके कुछ चुनावोमें मुसलमानों, हरिजनों या ईसाइयोंके दावोंकी

उपेक्षाकी गई है। जहाँ भी ऐसा होता है, हमें समझना चाहिए कि हमने न्याय करनेका एक सुनहरा अवसर खो दिया है। हमें अधीरतामें या अपने दोषोंको छिपानेके लिए सविनय प्रतिरोधका सहारा नहीं लेना चाहिए। यह हमारे आन्तरिक और बाह्य सभी दोषोंके लिए कोई रामबाण नहीं है। यह तो असाधारण परिस्थितिसे निबटनेका एक विशेष और सर्वोपरि उपाय है। लेकिन हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। मैं अपने पूर्ण दायित्व-बोधके साथ कहता हूँ कि अभी हम इसके लिए तैयार नहीं हैं। यह सच है कि अगर हम तैयार होते तो भी इसके लिए अभी समय नहीं आया है। लेकिन वह किसी भी दिन आ सकता है। इसलिए ऐसा न हो कि जब वह आये तो हम ढीले साबित हों।

वर्धा जाते हुए, ६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४०

२३१. प्रश्नोत्तर: झाँसीकी एक सभामें

६ फरवरी, १९४०

. . . स्टेशनपर लोग बहुत बड़ी तादादमें आये थे।

महात्मा गांधीने एक छोटे-से भाषणमें लोगोंको अपने स्वागतके लिए धन्यवाद दिया और उनसे कांग्रेसको मजबूत बनानेका अनुरोध किया।

दिल्ली वार्ता भंग हो गई है या वह सिर्फ स्थगित की गई है, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए महात्मा गांधीने कहा:

मैं तो जन्मजात आशावादी हूँ, इसलिए ऐसा नहीं मान सकता कि वार्ता भंग हो गई है। मैं समझता हूँ और आशा करता हूँ कि वह स्थगित ही हुई है। मुझे ऐसा इसलिए और भी लगता है कि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम जल्दी ही अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेवाले हैं। हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनेसे कोई नहीं रोक सकता।

इस प्रश्नके उत्तरमें कि क्या भारत बिना संघर्ष अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा, महात्मा गांधीने कहा:

यह तो ऐसी चीज है जिसके लिए हमें धीरजके साथ प्रतीक्षा करनी है और देखना है कि क्या होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि अगर कांग्रेसजन मुझे अपना पूरा समर्थन देंगे तो अब और संघर्षकी जरूरत नहीं पड़ेगी। सिर्फ लड़ाईके लिए मैं लड़ना नहीं चाहता। न लड़नेसे मेरा कोई अकाज नहीं हो रहा है। अगर हम लड़ाईके बिना भारतको स्वतन्त्र करा सकें तो मैं लड़ाईको टालनेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखूंगा।

यह पूछनेपर कि क्या वे निकट भविष्यमें दिल्ली जानेवाले हैं, महात्मा गांधीने कहा :

यह तो वाइसराय साहबपर निर्भर है। वे जब चाहें, मुझे बुला लें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-२-१९४०

२३२. तार : 'न्यूज क्रॉनिकल' को[1]

[७ फरवरी, १९४०][2]

मान लीजिए कोई अल्पसंख्यक वर्ग ऐसी माँगें करता है जिन्हें बहुसंख्यक समुदाय राष्ट्रीय हितके लिए अत्यन्त हानिकर मानकर अस्वीकार कर देता है तो वे माँगें निर्णयके लिए दोनों पक्षोंको स्वीकार्य किसी ऐसे न्यायाधिकरणके सुपुर्द कर दी जानी चाहिए जिसकी निष्पक्षतामें सन्देहकी कोई गुंजाइश न हो, जैसेकि संघीय उच्च न्यायालय।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-२-१९४०

२३३. वक्तव्य : 'डेली हेरल्ड' को[3]

सेगाँव

७ फरवरी, १९४०

वाइसरायसे हुई मेरी मुलाकातसे प्रकट होता है कि ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रवादी भारतके बीच अभी बहुत चौड़ी खाई मौजूद है। ब्रिटिश सरकार जो चीज देनेको तैयार है वह वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं है। वास्तविकताका तकाजा

१ और २. यह "एन इल्युसिडेशन" शीर्षकसे दिनांक "सेगाँव, ७ फरवरी, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था। न्यूज क्रॉनिकल ने एक तार भेजकर गांधीजी से उनके इस कथनका खुलासा करनेका अनुरोध किया था कि अल्पसंख्यकोंके मतभेद "सर्वोच्च और सर्वाधिक निष्पक्ष न्यायाधिकरण" के सुपुर्द किये जायेंगे। यह तार उसीके उत्तर में भेजा गया था। देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० २१५-१९।

३. यह हरिजन में "लेट ब्रिटेन एबैंडन हर इम्मॉरल होल्ड" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। डेली हेरल्ड ने "वाइसरायके साथ हुई मुलाकातपर विशेष सन्देश" भेजनेका अनुरोध किया था, जिसके उत्तरमें गांधीजी ने तार द्वारा यह वक्तव्य भेजा था।

यह है कि भारतको क्या चाहिए, यह बात ब्रिटेन नहीं, भारत तय करे। अगर ब्रिटेन सफल विद्रोहके आगे — चाहे वह विद्रोह हिंसक हो या अहिंसक — झुकता है तो उसमें न न्याय करने-जैसी कोई बात होगी और न कोई दूसरी खूबी। क्या उस हालतमें वर्तमान समस्याओंका समाधान हो गया माना जायेगा? ब्रिटेनका व्यवहार न्यायसंगत माना जाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि वह व्यवहारतः भारतकी स्वतन्त्रताको तुरन्त स्वीकार कर लेने और संविधान सभा अथवा इसी प्रकारकी किसी परिषद् द्वारा बनाये जानेवाले संविधानको जितनी जल्दी सम्भव हो उतनी जल्दी मजूरी देनेका अपना संकल्प घोषित कर दे। उपनिवेशों और भारतके बीच कोई समानता नहीं है। भारतका मामला अलग ढंगका है और वह निबटाया भी उसी तरहसे जाना चाहिए। यह बात साफ-साफ समझ लेनी चाहिए कि हर समस्या खुद ब्रिटेनकी पैदा की हुई है। जो-कुछ हुआ है, वह निस्सन्देह साम्राज्यवाद की आवश्यकताका परिणाम है। लेकिन अगर साम्राज्यवाद समाप्त हो जाये तो ब्रिटेनकी पैदा की हुई समस्याएँ सहज ही समाप्त हो जायेंगी। सबसे बड़ी समस्या प्रतिरक्षा की है। ब्रिटेनने भारतको निःशस्त्र क्यों बनाया? भारतीय सैनिक भी अपने देशके लिए विदेशी क्यों बन गये हैं? ब्रिटेनने देशी नरेशोंको क्यों खड़ा किया और क्यों उन्हें अश्रुतपूर्व सत्तासे सम्पन्न किया? निश्चय ही इस देशमें अपने पैर मजबूतीसे जमानेके लिए। किसने यहाँ विशाल यूरोपीय स्वार्थोंको जन्म दिया, और क्यों? अल्पमतोंकी सृष्टि किसने की? राजनैतिक बहुमतसे अलग कोई बहुमत नहीं होता। लेकिन ये चारों साम्राज्यवादके दुर्ग थे और हैं। इस नग्न सत्यको शब्द-जालके पीछे नहीं छिपाया जा सकता। जब ब्रिटेन महान प्रयत्न करके भारत परसे अपना अनैतिक प्रभुत्व समाप्त करनेका निर्णय कर लेगा तब उसकी नैतिक विजय निश्चित हो जायेगी; और तब जैसे रातके बाद दिन आना निश्चित होता है उसी प्रकार उसे दूसरी विजय भी अवश्य मिलेगी। क्योंकि तब सारी दुनियाकी अन्तरात्मा उसके पक्षमें होगी। किसी कामचलाऊ ढंगकी व्यवस्थासे — अभी जो देनेकी रजामंदी दिखाई जा रही है वह वैसी ही व्यवस्था है — भारतके हृदय या विश्वकी अन्तरात्मामें कोई हलचल पैदा नहीं होगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-२-१९४०

२३४. पत्र : रामीबहन के० पारेखको

सेगाँव, वर्धा
७ फरवरी, १९४०

चि० रामी,

तेरा पत्र मिला। बलीबहनका पत्र भी मिला था। हम लोग आज ही पहुँचे हैं। बा भी आई है। प्रभावती हमारे साथ दिल्ली गई थी। वहाँसे वह पटना चली गई। जयरामदास खंडवा गये हैं। वे ठीक हैं। कुँवरजी मजेमें हैं। उन्हें मीराबहनकी कोठरीमें ठहराया गया है। वह जिस छप्परके नीचे थे वहाँ बहुत गरमी होती थी। मनुकी लड़कीको थोड़ा-सा अरंडीका तेल पिलाकर दस्त कराना चाहिए। मनोज्ञा[1] अपने मायके गई है। कमु[2] बुढ़िया-जैसी हो जाये, यह ठीक नहीं होगा। उससे कहना, उसे हट्टी-कट्टी हो जाना चाहिए। अपनी बेटीसे पूछना, अब तो मुझसे बात करेगी न।

बापूके आशीर्वाद

श्री रामीबहन
वोरा वखतचन्द हरिदासका बंगला
हाईस्कूलके पीछे
राजकोट सी० एस०

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३३) से। सी० डब्ल्यू० ७१३ से भी; सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

१. कृष्णदास गांधीकी पत्नी
२. कुमी अडालजा

२३५. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेगाँव, वर्धा
७ [फरवरी][1], १९४०

भाई वल्लभभाई,

साथका पत्र[2] तुम्हें भेज रहा हूँ क्योंकि पत्र-लेखकने जो लिखा है, उसके बारेमें तुम ज्यादा जानते हो। दिल्लीमें मेरा पराक्रम तो तुमने देख ही लिया। अब विलायत तार आ-जा रहे हैं। मैं यहाँसे १५ की रातको शान्तिनिकेतन रवाना हो जाऊँगा। वहाँसे १९ को कलकत्ता।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २३९

२३६. सन्देश : मिल-मजदूरोंको

सेगाँव, वर्धा
७ फरवरी, १९४०

मजदूर भाई-बहनो,

भाई गुलजारीलाल[3] ने मुझे सब-कुछ समझा दिया है। तुम्हारी माँग मुझे वाजिब लगती है। यदि पंचोंकी मारफत या किसी और तरीकेसे भी न्याय न मिले, तो हमारे पास एक ही उपाय है — हड़ताल करना। इस अस्त्रका उपयोग सोच-समझकर करना चाहिए। यदि हममें शक्ति न हो, तो चुप लगाये रहनेमें कोई शर्म नहीं है। लेकिन एक बार यदि हम इस अस्त्रको उठा लें, तो जब तक हमें न्याय न मिल जाये, तब तक इसे छोड़ना नहीं चाहिए। वर्षों पहले मैंने इसका उपाय बताया था।

तुम सबको एक और धंधा भी सीख लेना चाहिए, जिसके सहारे बेकारीका वक्त आरामसे काटा जा सके। जिसे सब कर सकते हैं, ऐसा एक

१. साधन-सूत्र में मई लिखा है जो स्पष्टतः भूल है, क्योंकि गांधीजी १५ फरवरीको शान्ति-निकेतनके लिए रवाना हो गये थे।

२. अहमदावादमें हुई टेनेन्ट्स कॉन्फरेन्सके सचिवकी ओरसे

३. गुलजारीलाल नन्दा, मजूर महाजन, अहमदावादके मन्त्री

धंधा कताई-बुनाई वगैरहका तो बताया ही गया है। दूसरा कोई धंधा खोज लो, तब भी मुझे एतराज नहीं होगा।

साथ ही जो अधिक समर्थ हैं, उन्हें कमजोरोंकी मदद करनी चाहिए। ऐसा करनेपर ही निर्भय हुआ जा सकता है। यदि इस बार हड़तालसे बच जाओ, तो आप लोग मेरे सुझावपर अमल करना शुरू कर देना।

मो० क० गांधीकी दुआ [एं]

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५८२३) से; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

२३७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
[७ फरवरी, १९४० या उसके पश्चात्][1]

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे पत्र[2] बहुत अच्छे लगे। उनसे मुझे ऐसी जानकारी मिली है जो अन्यथा नहीं मिलती। अखिल इस्लामी आन्दोलन[3] के बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नहीं था। इससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ है। मुलाकातके बारेमें मेरा वक्तव्य[4] तुमने देखा होगा। मेरा तरीका तो तुम जानते ही हो। ऐसी मुलाकातोंसे मुझे बल मिलता है। और मैं जो-कुछ करता हूँ, उसको देशके सामने सही रूपमें पेश किया जाये, इसका खयाल रखना तो तुम्हारा और अन्य सहकर्मियोंका काम है। मैं चाहूँगा कि सी० आर० की बातों[5] की चिन्ता तुम मत करो। अपनी जगहपर

१. पत्रके मजमूनसे स्पष्ट है कि यह ७ फरवरीको गांधीजी के सेगांव लौटनेके बाद ही लिखा गया होगा।

२. जवाहरलाल नेहरूके दोनों पत्रोंपर ४ फरवरी की ही तिथि पड़ी हुई थी; देखिए "वही पुराना नाटक?", पृ० २३०-३४।

३. इसके सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरूने लिखा था: "पता नहीं, हाल में रॉयल सेन्ट्रल एशियन सोसाइटी द्वारा लन्दनमें आयोजित एक सामाजिक समारोहकी ओर आपका ध्यान गया है या नहीं। समारोहकी अध्यक्षता लॉर्ड जेटलैण्डने की और उसमें कई मंत्री भी उपस्थित थे। प्रकट उद्देश्य तो लन्दनमें मुसलमानोंके एक सांस्कृतिक तथा धार्मिक केन्द्रकी स्थापना था, लेकिन वास्तविक उद्देश्य अखिल इस्लामवादको बढ़ावा देना और भारत तथा इस्लामी देशोंमें इस भावनासे फायदा उठाकर मित्र राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंको बल देना था।"

४. देखिए पृ० २१५-१९।

५. जवाहरलाल नेहरूने लिखा था कि चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके हालके कुछ भाषणोंमें उन्हें "औपनिवेशिक दर्जे, आदिपर रजामन्दीका बहुत रुझान दिखाई देता है", जो उनके खयालसे चिन्ता-जनक बात थी।

वे बिलकुल सही हैं। फिर भी, मैं चाहूँगा कि अपनी शंकाएँ तुम उनके सामने रखो। १५ की शामको मैं शान्तिनिकेतनके लिए प्रस्थान करूँगा और १९ को वहाँसे मलिकन्दाके लिए।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स (तिथि-रहित); सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२३८. पत्र : रेहाना तैयबजीको

८ फरवरी, १९४०

तुम्हारा तार, जो कि बिलकुल तुम्हारे अनुरूप है, आज दिल्लीसे पुन:प्रेषित होकर मुझे मिला। कल भेजा गया मेरा तार तुम्हें मिला होगा। हाँ, मृत्यु पीड़ाका अन्त है। परमात्मा करे कि तुम्हारे माता-पिता जो उदात्त परम्पराएँ छोड़ गये हैं उनका तुम सब पालन कर सको। मैं आशा रखता हूँ कि तुम उनके अन्तिम समयका हूबहू विवरण मुझे भेजोगी।[1] काश, उस समय 'क़ुरान' का तुम्हारा भावभीना पाठ सुननेके लिए मैं तुम्हारे पास होता!

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६८२) से

२३९. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

सेगाँव, वर्धा
८ फरवरी, १९४०

चि० बबुडी,

डरती क्यों है? चली आ। बा तो तेरे आनेसे प्रसन्न ही होगी। मुझे १५ को जाना है। ज्यादा-से-ज्यादा २८ तक लौटूँगा, शायद पहले भी लौट आऊँ। बालघुट्टी अभी नहीं देनी चाहिए। बच्चेको गोदमें लेकर बाहर घुमाने और सबेरेकी धूप देनेसे सब ठीक हो जायेगा। सोआके बीजका पानी तो अपने दूधमें मिलाकर भी दिया जा सकता है। उससे भी आराम हो सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२६) से, सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

१. रेहाना तैयबजीकी माताका निधन हो गया था।

२४०. पत्र : बलवन्तसिंहको

८ फरवरी, १९४०

चि० बलवंतसिंह,

दूध पीते-पीते थकोगे तो दूसरी बात। मैं थकनेवाला नहीं हूँ, न मैं वहाँसे तुमको कहीं हटानेवाला हूँ। यहीं रहना और आनंदपूर्वक जो काम मैं दूं वह करना। उसीमें तुमारी साधना है, उसीमें गोसेवा है।

वह वहिनका खत अच्छा है। मुझे जो सुनाना है सो सुनाना। अभयदेव[1]को मैंने लिख दिया है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९२९) से

२४१. पत्र : कृष्णचन्द्रको

८ फरवरी, १९४०

चि० कृष्णचन्द्र,

तुमारा खत अच्छा है। हाँ, शरीरश्रम तो हमारे व्रत[2] में ही हैं। उसको जितना महत्व दिया जाय कम है। चिमनलालको जो समय चाहिये सो दिया जाय। इस उपरांत हिंदी शिक्षाको। मालीश इ० तो शरीरश्रम है ही। वह किया जाय।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३७) से

१. गांधी सेवा संघके एक कार्यकर्ता
२. अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन॥
सर्वधर्म-समानत्व स्वदेशी स्पर्श-भावना।
विनम्र व्रतनिष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं॥

२४२. पत्र : मीराबहनको

सेगाँव, वर्धा
[९ फरवरी, १९४०][1]

चि० मीरा,

इस बीच मैं तुम्हारे बारेमें सोचता रहा हूँ। यह पत्र तुम्हें यह बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि तुम नजरोंके सामने नही हो,[2] इसका मतलब यह नहीं कि मुझे तुम्हारा खयाल नही है। तुम्हारी याद बहुत आती है। आशा करता हूँ, समय अपना मरहमका काम कर रहा है। पता नहीं, पण्डित[3] आये या नहीं। तुम मुझे नियमित रूपसे लिखती रहना।

हम यहाँसे कम किरायेवाली ट्रेनसे १५ को प्रस्थान करेंगे और १७ की सुबह कलकत्ता पहुँचेंगे। उसी दिन हम शान्तिनिकेतन चले जायेंगे। वहाँसे १९ को लौटकर मलिकन्दाकी गाड़ी पकड़ेंगे।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४४९) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० १००४४ और बापूज लेटर्स टू मीरा, पृ० ३१८ से भी

२४३. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

१० फरवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे यहाँ आनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यदि सौ रुपये खर्च करके तुम्हें मानसिक शान्ति मिल सके तो यह खर्च सार्थक माना जायेगा — इस बातका विचार भी तुम्हें ही करना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५२) से। सी० डब्ल्यू० ७०७३ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. बापूज लेटर्स टु मीरा के आधारपर
२. मीराबहन पंजाब गई थीं।
३. गदर पार्टीवाले पण्डित जगतराम भारद्वाज; देखिए "पत्र : अमृत कौरको", २९-२-१९४०।

२४४. फिर वही पुराना नाटक?

मेरे दिल्लीसे लौटनेके बाद मुझे एक पत्र मिला है, जो पहले तो दिल्लीके पतेपर ही भेजा गया था, लेकिन वहाँसे फिर मेरे इस पतेपर भेजा गया है। यह पत्र मेरे एक महत्त्वपूर्ण साथी कार्यकर्ता[1] ने लिखा है। मुझे पत्रके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंश उन सब लोगोंके सामने रख देने चाहिए जिनकी इस विषयमें रुचि है :

> पिछले कोई एक महीनेमें जो-कुछ हुआ है उससे मेरे इस विश्वासकी पुष्टि होती है कि ब्रिटिश सरकार हमारी स्थितिको स्वीकार करेगी, ऐसी आशा करनेका लेशमात्र भी आधार नहीं है। सच तो यह है कि बहुत-सी ऐसी बातें हुई हैं जिनसे प्रकट होता है कि वह सरकार एक निश्चित साम्राज्यवादी नीतिपर चल रही है। आपने देखा होगा कि ब्रिटिश पार्लियामेंटने अभी भारत सरकार अधिनियममें संशोधन करनेवाला एक विधेयक पास किया है, जिससे प्रान्तीय सरकारोंके कर लगानेके अधिकार सीमित कर दिये गये हैं। यह बात खास तौरसे संयुक्त प्रान्तके व्यवसाय-कर[2] पर लागू होती है, जिसे इस तरहसे वीटो ही कर दिया गया है। प्रान्तीय विधान-सभाके अधिकारोंको सीमित करनेवाले इस तरहके निर्णयमें अपने-आपमें जो दोष हैं वे तो हैं ही, साथ ही इस निर्णयके लिए जो समय और तरीका चुना गया है वह ब्रिटिश सरकारके साम्राज्यवादी रुखका स्पष्ट प्रमाण है और उससे प्रकट होता है कि उसके रुखमें कोई परिवर्तन नहीं आया है।
>
> यह बात बिलकुल उत्साहवर्धक नहीं लग रही कि आप वाइसरायसे मुलाकात करने नई दिल्ली जा रहे हैं। वही पुराना नाटक फिर खेला जा रहा है, पृष्ठभूमि वही है, विभिन्न उद्देश्य वही हैं, अभिनेता वही हैं, और परिणाम भी निश्चय ही वही निकलेंगे।
>
> लेकिन इसके कुछ दुर्भाग्यपूर्ण परोक्ष परिणाम भी हैं। समझौता सन्निकट है देशमें एसी भावना व्याप्त हो गई है, जबकि वस्तुतः इसके लिए कोई आधार नहीं है। यह भावना कमजोर बनानेवाली और हतोत्साह करनेवाली है, क्योंकि इसका स्रोत शक्ति नहीं है, बल्कि कई लोगोंके सम्बन्धमें तो इसका मूल हर कीमतपर संघर्षसे बचने और हमें पहले जो उच्छिष्ट सत्ता प्राप्त थी

१. जवाहरलाल नेहरू

२. गांधी-नेहरू पेपर्स में उपलब्ध मूल पत्र में यहाँ "प्रापर्टी टैक्स" (सम्पत्ति-कर) है।

उसे फिरसे पानेकी उनकी तीव्र इच्छामें ढूँढ़ा जा सकता है। संघर्ष अवांछनीय है, किन्तु स्पष्ट ही उससे हर कीमतपर तो बचा नहीं जा सकता, क्योंकि कभी-कभी इस तरह संघर्षसे कतरानेका भी बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। लेकिन इस समय तो तत्काल किसी संघर्षका सवाल नहीं उठता। सवाल अपनी स्थितिको गरिमापूर्ण ढंगसे कायम रखने और उसे किसी भी तरह कमजोर न होने देनेका है। मुझे लगता है कि इंग्लैंड और भारतमें भी यह धारणा बड़ी व्यापक हो चली है कि हम किसी भी हालतमें संघर्ष नहीं करेंगे और इसलिए जो कुछ भी मिलेगा उसे हम स्वीकार कर लेंगे। यह धारणा मनोबलको गिरानेवाली है। पिछले पखवाड़ेमें मैंने लक्ष्य किया है कि हमारे कांग्रेस-प्रतिनिधियोंके चुनावों तकपर इस धारणाका असर पड़ा है। बहुत-से लोग संघर्षके भयसे पृष्ठभूमिमें चले गये थे। अब जब सत्ता और पदके उपभोगकी सम्भावना उन्हें फिर दिखाई देने लगी है तो वे आगे बढ़कर सामने आ गये हैं। अवांछनीय लोगोंको कांग्रेससे अलग रखनेके लिए पिछले कई महीनोंमें जो प्रयत्न किये गये वे अंशतः विफल हो गये हैं, जिसका कारण भारतके वातावरणमें हुआ यह आकस्मिक परिवर्तन है। इस परिवर्तनके कारण उन्हें ऐसा विश्वास हो गया कि अब समझौता होने ही वाला है।

ब्रिटिश सरकार भी ऐसी प्रतिक्रिया दिखा रही है जो हमारे लिए प्रतिकूल है, भले ही वह मीठे शब्दोंका प्रयोग कर रही हो। यह सच है कि वह हमसे समझौता करना चाहती है, लेकिन वह इसलिए कि वह युद्धमें हमारी सहायता चाहती है। लेकिन यह बात कहीं अधिक निश्चित और स्पष्ट है कि वह वास्तविक सत्ताको रंचमात्र भी नहीं छोड़ना चाहती और न हमसे समझौता करनेके लिए अपनी बुनियादी साम्राज्यवादी नीतिमें कोई परिवर्तन करना चाहती है। वह साम्प्रदायिक प्रश्नपर अपनी पुरानी साजिश चला रही है और चलाती रहेगी, यद्यपि कांग्रेसको खुश करनेके लिए वह कभी-कभी मुस्लिम लीगकी आलोचनामें भी कुछ शब्द कह देती है। जहाँ तक ब्रिटिश सरकारका सम्बन्ध है, वह अपनी वर्तमान स्थितिको यथावत कायम रखते हुए हमें अपने पक्षमें करनेकी कोशिश करेगी। यह सम्भव हुआ तो बहुत अच्छा। अगर नहीं हुआ—और उसे खुद भी लगता है कि ऐसा नहीं होगा —तो वह समय-समयपर भारतीय नेताओंसे बातचीत चलाती रहेगी, सवाल को लम्बा खींचती रहेगी, इस बातका दिखावा करती रहेगी कि हम समझौतेके निकट हैं और इस तरह विश्व जनमत और भारतीय जनमतको शांत करनेकी कोशिश करती रहेगी। इस दूसरी नीतिका उसके लिए एक और भी लाभ है। इस नीतिपर चलकर वह हमारी शक्तिको चुका

सकती है और हमारे उत्साहको कुछ ठण्डा कर सकती है, ताकि जब अन्ततः संघर्ष आरम्भ ही हो जाये तो उसके लिए अपेक्षित वातावरण देशमें न हो। इंग्लैंडमें सरकारी हलकोंमें यह आम धारणा है कि ब्रिटिश सरकारकी बात-चीत चलाने और फैसलेको टालते जानेकी नीतिका यह परिणाम निकला है और जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने त्यागपत्र दिये थे तब जहाँ भारतमें स्थिति बहुत विस्फोटक थी वहाँ अब वह बहुत शमित हो गई है और खतरेकी कोई बात नहीं रह गई है।

मुझे लगता है कि जहाँ हम संघर्षको न्योता तो नहीं दे सकते और न देना चाहिए और हमें सम्भावित सम्मानजनक समझौतेका द्वार भी नहीं बन्द करना चाहिए, क्योंकि समझौतेका द्वार बन्द करना कभी भी आपके काम करनेका तरीका नहीं रहा है, वहीं हमें यह बात भी बिलकुल स्पष्ट कर देनी चाहिए कि जो शर्तें हमने पहले रखी हैं उनके अलावा और किसी शर्त पर समझौता नहीं हो सकता और न होगा। सच तो यह है कि युद्धने जो मोड़ लिये हैं उनको देखते हुए इन शर्तोंपर भी कुछ पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया है। पहलेकी भाँति अब हम यह नहीं कह सकते कि हम जानना चाहते हैं कि यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है या नहीं। ब्रिटिश सरकारने हमें जो उत्तर दिया है और युद्ध तथा विदेशी मामलोंमें वह लगातार जिस नीतिका अनुसरण कर रही है वह पूर्णतः साम्राज्यवादी है। इसलिए हमें तो अनिवार्यतः इस तथ्यको ध्यानमें रखकर ही चलना है कि यह एक साम्राज्यवादी युद्ध है, भले ही इसके विपरीत कितनी ही बातें कही जायें। युद्ध और ब्रिटिश नीति दिन-दिन अधिकाधिक अनिष्टकारी होते जा रहे हैं, और मैं किसी भी कीमतपर भारतको इस साम्राज्यवादी कुचक्रमें फँसते नहीं देखना चाहूँगा, क्योंकि उससे भारतको केवल हानि-ही-हानि होगी — मात्र भौतिक हानि नहीं बल्कि आत्मिक भी। आज यह बात मुझे आत्यन्तिक महत्त्वकी लगती है।

इसलिए मुझे आज सबसे महत्त्वपूर्ण यह लगता है कि हमें अपनी स्थिति दुनियाके सामने, ब्रिटिश सरकारके सामने और भारतकी जनताके सामने बिलकुल स्पष्ट कर देनी चाहिए। इस समझौतेके सवालपर बहुत अधिक गलतफहमी है, और यह गलतफहमी हमारे लिए पूरी तरह नुकसान-देह और ब्रिटिश साम्राज्यवादके लिए फायदेमन्द है जो इस बीच युद्धके लिए हमारे साधनोंका उपयोग कर रहा है और यह आडम्बर भी रच रहा है कि उसे बहुत हद तक हमारी सद्भावना प्राप्त है। यदि हम ब्रिटिश सरकार या वाइसरायके पास जायेंगे तो उससे ये गलतफहमियाँ और बढ़ेंगी और ब्रिटिश सरकार सही ढंगके समझौतेसे और भी दूर हटती चली जायेगी।

यह चेतावनी बहुत ठीक है। शायद मुझे इसकी जरूरत नहीं थी। लेकिन ऐसी चेतावनियाँ कभी बेकार या गैर-जरूरी नहीं होती। अपनी समझदारीपर जरूरतसे ज्यादा भरोसा करना नासमझी है। कोई यह याद दिलाये कि सबलसे-सबल व्यक्ति भी कमजोर पड़ सकता है और समझदारसे-समझदार आदमी भी गलती कर सकता है तो यह अच्छी बात ही है। और फिर जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो समसामयिक घटनाओंसे भी इतना अनभिज्ञ हूँ कि जब साथी कार्यकर्ता मुझे उन बातोंसे अवगत कराते हैं जिन्हें मुझे जानना चाहिए तो मैं उनका कृतज्ञ होता हूँ।

इस चेतावनीको मैं मूल्यवान समझता हूँ, और जो दलील दी गई है उसमें जोर है, यह स्वीकार करता हूँ। फिर भी, मुझे वाइसराय महोदयसे मिलने और उनसे लम्बी बातचीत करनेपर कोई पश्चात्ताप नहीं है। उससे मुझे और भी बल मिला है। किसी सेनाके सेनापतिको और अधिक बल मिले, यह उस सेनाके लिए बड़े महत्त्वकी बात है। इसलिए मैं तो, जब भी वाइसराय मुझे बुलायेंगे, बराबर वही करूँगा जो मैंने किया है — तब तक, जब तक कि उनकी ईमानदारीमें मेरा विश्वास कायम है। और यह भी तय है कि जितनी शक्तिसे सम्पन्न होकर मैं उनसे मिलने जाऊँगा, लौटनेपर मैं उससे कहीं अधिक शक्तिसे सम्पन्न होऊँगा। सत्याग्रहके तरीकेकी यह अपेक्षा है कि जब तक आशाकी जरा-सी भी गुंजाइश है, तब तक सत्याग्रही आशाका त्याग कदापि न करे। कारण, वह यह आशा कभी नहीं छोड़ता कि एक-न-एक दिन वह अपने विरोधीके उदात्त गुणोंको अवश्य जाग्रत करेगा। उसका तो काम ही अपने विरोधीका हृदय-परिवर्तन करना होता है, उसे अपमानित या पराजित करना नहीं। इसलिए जरूरत होनेपर वह अपने विरोधीका दरवाजा भी खटखटाता है, जैसे कि मैंने अक्सर जनरल स्मट्सका दरवाजा खटखटाया। और हुआ यह कि अन्तिम बार जब कि मैं कम-से-कम आशा लेकर गया था तब जो दरवाजा खुला तो वह सफलताकी शुरूआत साबित हुआ।

और सैनिकोंका मनोबल तो कभी गिरना ही नहीं चाहिए। यह काम नायकोंका है कि वे सैनिकोंसे बराबर सम्पर्क बनाये रखें और उन्हें हर कार्रवाई के कारण और संघर्षपर उसके प्रभावसे अवगत कराते रहें। कारण, चाहे सच-मुच लड़ाई चल रही हो या सिर्फ उसकी तैयारी की जा रही हो, जन-साधारणके शिक्षणका क्रम तो निर्बाध रूपसे कायम ही रहता है। यह सोचना भूल है कि अगर जनताकी संचित शक्तिको बाहर निकलनेका अवसर नहीं मिलेगा तो उसकी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति मर जायेगी। हिंसक क्रान्तिके लिए यह बात भले ही सच्ची हो, लेकिन अहिंसक क्रान्तिके लिए तो बिलकुल गलत है। मेरा निश्चित विश्वास है कि अगर हम अधीरतावश संघर्षको न्योता दे बैठते हैं या बातचीतका दरवाजा बन्द कर देते हैं, जिसका अर्थ वही है, तो हम अपनेको दुनियाकी नजरोंमें गलत साबित करेंगे। जब बिलकुल साफ हो जायेगा कि संघर्षसे बचनेका कोई रास्ता

नहीं है, तब संघर्ष तो करना ही पड़ेगा और वही उसका ठीक मौका होगा। ब्रिटेन या बाहरी दुनियामें फैली गलतफहमीकी हमें अधिक चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि वह निराधार है, और सत्यका सामना होनेपर वह निश्चय ही दूर हो जायेगी।

हमें इस आशंकासे भी चिन्तित नहीं होना चाहिए कि वार्ताएँ इस अर्थमें छलपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं कि ब्रिटेन उनकी आड़में विश्व जनमतको भ्रममें डालकर और हमारे बीच मतभेद पैदा करके और बढ़ाकर उनका उपयोग अपनी शक्तिको सुदृढ़ करनेके निमित्त करेगा। हमें चिन्ता करनी है तो सिर्फ अपनी ही कमजोरीकी और उसके लिए दोषी भी हम स्वयं होंगे।

सेगाँव, ११ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-२-१९४०

२४५. टिप्पणियाँ

अंग्रेजोंके बिना भारत

एक अवकाश-प्राप्त अंग्रेज कलेक्टरने इंग्लैंडसे निम्नलिखित तार भेजा है:

> जरा इस बातका खयाल कीजिए कि ब्रिटिश सेना और ब्रिटिश नौसेना की अचूक ढालके बिना भारत पठानों, अफगानों और जापानकी दयाका भिखारी बन जायेगा। संविधान-सभाके सभी लोग शीघ्र ही बन्दी शिविरमें डाल दिये जायेंगे या मार डाले जायेंगे। सत्याग्रह तो केवल सभ्य और भद्र लोगों पर ही प्रभावकारी होता है।

यह एक ईमानदार अंग्रेज द्वारा सचमुचमें महसूस किया गया डर है। लेकिन यह डर काल्पनिक ही है। इस अंग्रेज भाईने भारतीय राष्ट्रवादियोंको कोई श्रेय नहीं दिया है, अन्यथा वह ऐसा नहीं सोचते कि राष्ट्रवादी जिस संविधान-सभाकी बात सोच रहे हैं वह सर्वथा शक्तिशून्य परिवेश में होगी और फलतः उसे कोई भी सशक्त देश फूंक मारकर उड़ा देगा। यदि कोई सम्मानजनक समझौता हो जाता है तो संविधान-सभाकी बैठक अंग्रेजोंकी उपस्थितिमें किन्तु उनके किसी हस्तक्षेपके बिना होगी। अगर कोई समझौता नहीं होता तो उसकी बैठक एक सफल विद्रोहके बाद होगी। और अगर भारत सफल विद्रोह कर पाता है तो उसका मतलब यह होगा कि उसने अपनेको किसी भी खतरेका सामना करने योग्य बना लिया है। और किसी स्थितिमें संविधान-सभाकी बैठक हो ही नहीं सकती। यह भय भारतमें अंग्रेजी शासनके लिए कोई प्रतिष्ठाकी बात नहीं है। भारतके पास अपनी सेना और नौसेना नहीं है, यह किसकी गलती है?

लेकिन सेना और नौसेनाका न होना किसी जाग्रत जातिको देशी या विदेशी आधिपत्यका जुआ अपने कन्धेसे उतार फेंकनेसे नही रोक सकता। मेरे मित्रने सत्याग्रहके काम करनेके ढंगसे अपरिचित होनेका जो परिचय दिया है, वह क्षम्य है। मेरे सामने किसी ऐसे राष्ट्रका तैयार उदाहरण तो नही है जिसने अपने जीवनका निर्माण सत्याग्रहकी बुनियादपर किया हो। मैं तो उन्हें सिर्फ इतना ही भरोसा दिला सकता हूँ कि वे इसे जैसी छुई-मुई मानते हैं वैसी यह है नही। अगर यह केवल तथाकथित सभ्य लोगोंपर ही प्रभावकारी हो सकता है तो फिर यह निरर्थक है। सभ्यको असभ्यसे अलग करनेवाली रेखा बड़ी सूक्ष्म है। आवेश में आकर दोनों एक-सा व्यवहार करते हैं।

सेगाँव, १२ फरवरी, १९४०

एक विचित्र स्थिति

लुधियाना वाल्मीकि मण्डलके मंत्रीने एक पत्रमें लिखा है:

> पूना-समझौते[1] में पंजाबके हिन्दू दलित वर्गोको पंजाब विधान-सभामें आठ स्थान देनेका निर्णय किया गया था। ये स्थान हिन्दुओंके लिए सुरक्षित स्थानोंसे काटे गये है। सिख तथा अन्य दलित वर्गोंके लोगोंको उनके अपने-अपने सहधर्मियोंके साथ गिना गया। सिख हरिजन अलग स्थानोंके लिए अपने उच्चवर्ण सिख भाइयोंसे लड़ रहे हैं और हम उनकी सफलताकी कामना करते हैं। लेकिन हम यह भी चाहते हैं कि जो स्थान हमें दिये गये है उनपर वे अनधिकृत रूपसे अधिकार न जमायें।

फलतः मण्डलने पंजाब सरकारको एक प्रार्थनापत्र भेजा है, जिसके प्रासगिक अंश मैं नीचे दे रहा हूँ :[2]

> १. पूना-समझौतेमें . . . हिन्दू दलित वर्गोको पंजाब विधान-सभामें आठ स्थान दिये गये थे। . . .
>
> २. ये स्थान हिन्दुओंके लिए निर्धारित कुल स्थानोंमें से काटे गये थे।
>
> ३. सिख और मुसलमान दलित वर्गोंके लोग . . . उपर्युक्त आठों निर्वाचन क्षेत्रोंमें मतदाता या सदस्य नहीं हो सकते थे।
>
> ४. तीसरे मुद्देके बारेमें बड़ा भ्रम फैला हुआ है।
>
> ५. समझौतेकी सही व्याख्या हो सके और आपत्तिकर्ताओंकी ओरसे बहुत बड़ी संख्यामें प्रार्थनापत्र न भेजे जायें, इस दृष्टिसे इस आशयका निर्देश जारी कर दिया जाये कि या तो उपर्युक्त निर्वाचन-क्षेत्रोंमें सिखोंके

१. सन् १९३२ के
२. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये गये है।

नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज न किये जायें या सूचीमें एक धर्मसूचक खाना भी हो।

प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंकी आपत्ति बिल्कुल सही है। लेकिन सिखों, मुसलमानों या ईसाइयोंमें भी अस्पृश्य हैं, यह क्या बात है? क्या अपना धर्म बदलनेवाले लोग सत्ताके लोभमें पड़कर अपने धर्मान्तरणपर पछताने लगे हैं? यदि इस समस्याको सावधानीके साथ और न्यायपूर्वक हल करनेका प्रयत्न कहीं किया गया तो चारों ओर जो जागृति फैल रही है उसके फलस्वरूप यह बहुत परेशान करनेवाली उलझनें पैदा कर सकती है। कलको अगर अनुसूचित वर्गोंकी सूचीमें होना कलंककी निशानी होनेके बजाय एक स्पृहणीय सुविधाकी स्थिति बन जाता है, तो उसपर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। एक समय था जब सरकार या समाज द्वारा अस्पृश्य माने जानेवाले लोग इस संज्ञाको बहुत बुरा मानते थे और इससे बचनेकी कोशिश करते थे। अब बात उलटी हो गई है। ध्यान रहे कि केवल हिन्दू-धर्मकी ही ऐसी कलंकमय स्थिति है कि उसमें अस्पृश्य लोग भी हैं, जिन्हें कानूनी तौरपर अनुसूचित वर्गोंके लोग कहा जाता है।

सेगाँव, १२ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-२-१९४०

२४६. प्रश्नोत्तर

अदालतोंमें झूठ

प्र० : 'हरिजन'में प्रकाशित आपके 'चहुँमुखी तबाही'[1] शीर्षक लेखको लेकर जो विवाद चल रहा है उसका अध्ययन मैं ध्यानपूर्वक करता रहा हूँ। इस विवादमें दोनों ओरसे जो दलीलें दी जा रही हैं उनके बारेमें चाहे कोई कुछ कहे, पर एक न्यायाधिकारीकी हैसियतसे अपनी वर्तमान न्याय-व्यवस्थाका मुझे जो निजी अनुभव है उसके आधार पर मैं एक बात दावेके साथ कह सकता हूँ और कोई उसका खण्डन नहीं कर सकता। अदालतें और वकील खासकर किसान वर्गके और आमतौरपर पूरी जनताके नैतिक और आध्यात्मिक पतनके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी हैं। जिन 'प्रतिष्ठित' जनोंको लोग उनके सामान्य दैनिक जीवनको देखकर पवित्रात्मा मानते हैं, वे भी बहुत छोटी-छोटी बातोंके लिए अदालतोंमें बिलकुल सफेद झूठ बोलते हैं और ऐसा करनेपर उनका मन तनिक भी म्लान नहीं होता। यह महारोग हमारे ग्राम्य जीवनकी नींवको खोखला कर रहा है। क्या आप कुछ सुझाव दे सकते हैं कि ऐसी स्थितिमें

१. देखिए पृ० १७६-७९।

मुझ-जैसा आदमी (अर्थात्, एक न्यायाधीश) जिसे गवाहियाँ लेनी पड़ती हैं और न्यायिक निर्णय देने पड़ते हैं, इस बुराईको रोकनेके लिए क्या कर सकता है?

उ० : आपकी बात बिलकुल सच है। न्यायालयोंके आसपासका वातावरण पतनकारी है। यह बात वहाँ जाकर कोई भी देख सकता है। न्याय-प्रशासनके विषयमें मेरे विचार क्रांतिकारी हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी आवाज तो अरण्यरोदन जैसी है। जब तक भारत सत्य और अहिंसाके सहारे अपने स्वत्वको प्राप्त नहीं कर लेता तब तक निहित-स्वार्थ वाले लोग कोई क्रान्तिकारी सुधार नहीं होने देंगे। यदि वह भव्य स्वप्न साकार हुआ तो न्याय-व्यवस्था और चिकित्सा-व्यवस्था आज जितनी महँगी और अस्वास्थ्यकर है तब उतनी ही सस्ती और स्वास्थ्यकर हो जायेंगी। अगर आपको बहुत बहादुरीकी अपेक्षा रखनेवाली सलाह दूँ तो कहूँगा कि आप न्यायपीठका त्याग करके दरिद्रताका वरण कीजिए और गरीबोंकी सेवा कीजिए। और अगर सामान्य सलाह दूँ तो कहूँगा कि आप जिस कठिन परिस्थितिमें हैं उसमें आपसे जितना करते बने, कीजिए, जीवनको अत्यन्त सादा बना लीजिए और जो पैसा बचा सकें उससे गरीबोंकी सेवा कीजिए।

अहिंसा बनाम आत्म-सम्मान

प्र० : मैं विश्वविद्यालयका छात्र हूँ। कल शाम में कुछ और छात्रोंके साथ सिनेमा देखने गया। प्रदर्शनके बीच हममें से दो अपने-अपने रूमाल अपने-अपने स्थानोंपर छोड़कर हालसे बाहर गये। लौटकर हमने पाया कि हमारे मित्रों द्वारा स्पष्ट चेतावनी देने और आग्रहपूर्वक अनुनय-विनय करनेके बावजूद दो अंग्रेज सिपाहियोंने हमारे स्थान हथिया लिये हैं। जब उनसे जगह छोड़नेका अनुरोध किया तो उन्होंने इनकार तो कर ही दिया, साथ ही ऐसा भाव भी प्रकट किया जैसे झगड़नेपर आमादा हों। सिनेमाके प्रबन्धकको भी उन्होंने घुड़कियाँ दीं और वह बेचारा भारतीय होनेके कारण सहज ही डर गया। अन्तमें उन सिपाहियोंके अफसरको बुलाया गया, तब उन्होंने जगहें खाली कीं। अगर वह अफसर मौकेपर नहीं आता तो हमारे सामने दो ही रास्ते होते, या तो हिंसाका सहारा लेकर अपने आत्म-सम्मानकी रक्षा करते, या उनकी घुड़कीमें आकर कोई और स्थान ग्रहण करते। दूसरा रास्ता अत्यन्त अपमानजनक होता। ऐसी परिस्थितियोंमें आप अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस प्रकार करेंगे?

उ० : इस गुत्थीको सुलझानेकी अपनी असमर्थता मुझे स्वीकार करनी चाहिए। मुझे इस परिस्थितिसे अहिंसात्मक ढंगसे निबटनेके दो रास्ते दिखाई देते हैं। एक तो यह कि जब तक स्थान खाली नहीं किये जायें तब तक वहाँ दृढ़ताके साथ डटे रहना; और दूसरा यह कि जान-बूझकर ऐसी जगह खड़े हो जाना जिससे स्थानोंपर जबरदस्ती कब्जा करनेवालोंको प्रदर्शन दिखाई न दे। दोनों

हालतोंमें आपपर यह खतरा तो होगा ही कि जबरदस्ती कब्जा जमानेवाले लोग आपको पीट दें। मै खुद ही अपने उत्तरोंसे सन्तुष्ट नही हूँ। लेकिन उनसे उस विशेष परिस्थितिकी माँग पूरी हो जाती है। निस्सन्देह आदर्श उत्तर तो यही है कि व्यक्तिगत अधिकारके हड़प लिये जानेकी ज्यादा परवाह न करते हुए हड़पनेवालेको समझायें-बुझायें, और अगर उसपर इसका असर न हो तो सम्बन्धित अधिकारियोंके पास मामला ले जायें, और अगर वहाँ भी असफलता मिले तो उसे उच्चतम न्यायाधिकरणके पास ले जायें। यह तो वैधानिक तरीका है और अहिंसक समाजमें वैधानिक तरीके का सहारा लेनेपर कोई रोक नही होती। कानूनको अपने हाथोंमें न लेना तत्वतः एक अहिंसक तरीका है। लेकिन इस आदर्शका इस देशकी वास्तविकतासे कोई सम्बन्ध नही है; क्योंकि जहाँ मामलेका सम्बन्ध गोरे और खासकर गोरे सिपाहियोंके विरुद्ध किसी भारतीय द्वारा न्याय प्राप्त करनेकी सम्भावनासे हो वहाँ तो यह सम्भावना प्रायः शून्यके बराबर ही है। इसलिए मैंने जो सुझाव दिये है वैसे ही किसी रास्तेका सहारा लेना आवश्यक है। लेकिन मै जानता हूँ कि अगर हममें सच्ची अहिंसा है तो कठिन परिस्थितिसे सामना होनेपर हमें अनायास ही कोई-न-कोई अहिंसक उपाय भी जरूर सूझ जायेगा।

विद्यार्थी और आगामी लड़ाई

प्र०: कालेजका छात्र होते हुए भी मै कांग्रेसका चवन्निया सदस्य हूँ। आपके कथनानुसार जब तक मै अध्ययनमें लगा हुआ हूँ तब तक मुझे आगामी लड़ाईमें सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए। आप विद्यार्थी जगतसे स्वतन्त्रता आन्दोलनमें क्या भाग लेनेकी अपेक्षा रखते है?

उ०: इस प्रश्नमें विचारकी उलझन है। लड़ाई अब भी चल रही है और तब तक चलेगी जब तक कि हमारा राष्ट्र अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त नही कर लेता। सविनय अवज्ञा लड़नेके कई तरीकोंमें से एक है। जहाँ तक आज मै कह सकता हूँ, मेरा इरादा विद्यार्थियोंका आह्वान करनेका नही है। करोड़ों लोग सविनय अवज्ञामें भाग नही लेंगे, लेकिन उसमें वे मदद तो कई तरहसे कर सकते है।

१. स्वेच्छासे अनुशासनका पालन करनेकी कला सीखकर विद्यार्थी राष्ट्र-कार्यकी विभिन्न शाखाओंका नेतृत्व करनेकी योग्यता प्राप्त कर सकते है।

२. वे अध्ययन पूरा करनेपर अच्छी आयवाली नौकरियाँ करनेके बजाय राष्ट्र-सेवक बननेका लक्ष्य अपने सामने रख सकते है।

३. अपने खर्चके पैसोंमें से कुछ बचाकर वे राष्ट्रीय कोषके लिए रख सकते है।

४. वे आपसमें अन्तर्साम्प्रदायिक, अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्जातीय मेल-जोल बढ़ा सकते है और अपने जीवनसे अस्पृश्यताका नामोनिशान मिटाकर हरिजनोंके साथ भाईचारा कायम कर सकते है।

५. वे नियमित रूपसे कात सकते हैं और अन्य सभी प्रकारके कपड़ोंको छोड़कर केवल प्रमाणित खादीका ही इस्तेमाल कर सकते हैं तथा खादी बेचनेके लिए फेरी भी लगा सकते हैं।

६. वे अपने अध्ययन-संस्थानके सबसे पासके गाँव या गाँवोंमें सेवा-कार्य करनेके लिए प्रति दिन नहीं तो प्रति सप्ताह कुछ समय निर्धारित कर सकते हैं और छुट्टियोंमें प्रति दिन कुछ समय राष्ट्रसेवाका कार्य कर सकते हैं।

बेशक, ऐसा समय आ सकता है जब मुझे पहलेकी ही भाँति लड़ाईके लिए विद्यार्थियोंका आह्वान करना पड़े। यद्यपि यह सम्भावना बहुत दूरस्थ है, लेकिन अगर इस मामलेमें मेरी चलती है तो कहूँगा कि जब तक विद्यार्थी उपर्युक्त सेवा और अनुशासन द्वारा अपनेको लड़ाईमें सक्रिय रूपसे भाग लेने योग्य नहीं बना लेंगे तब तक इसमें शरीक होनेके लिए उन्हें आमन्त्रित करनेकी नौबत कभी नहीं आयेगी।

सेगाँव, १२ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १७-२-१९४०

२४७. स्त्रियोंकी भूमिका क्या है?

एक सुशिक्षित बहनके पत्रके थोड़ेसे अंशोको छोड़कर शेषको नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:[1]

> **अहिंसा और सत्याग्रह द्वारा आपने संसारको आत्माकी महत्तासे परिचित करा दिया है।...लेकिन जिस प्रकार आक्रामक वृत्ति, वासना... आदिसे मुक्त होनेके लिए पुरुषके लिए अहिंसा और ब्रह्मचर्यको अपने अन्दर विकसित करना आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्री भी अपनी हीन वृत्तियोंसे, जो पुरुषोंकी हीन वृत्तियोंसे भिन्न हैं और जिन्हें स्त्रियोंकी प्राकृतिक कमजोरी माना जाता है, मुक्त हो सके, इसलिए उसके लिए भी कुछ सिद्धान्तोंका पालन आवश्यक है। स्त्री होनेके नाते उसकी कुछ स्वाभाविक वृत्तियाँ, स्त्री होनेके कारण एक खास ढंगसे किया जानेवाला उसका लालन-पालन और उसी कारण उसके लिए पैदा किया गया परिवेश, ये सब उसके खिलाफ जाते हैं। और ये चीजें, अर्थात् उसकी प्रकृति, उसका लालन-पालन और उसका परिवेश, उसके काममें सदा बाधक बनती हैं और इस दकियानूस कहावतको दोहरानेके अवसर देती हैं कि 'अरे, है तो आखिर वह औरत ही'।... मैं समझती हूँ, अगर हमारे पास सही समा-**

१. यहाँ उद्धृत अंशके कुछ हिस्से ही दिये गये हैं।

धान हो, अपनेको सुधारनेका सही तरीका हमें मालूम हो तो हम सहानुभूति और कोमलता जैसी अपनी स्वाभाविक वृत्तियोंको अपने लिए बाधक के बजाय सहायक गुण बना सकती हैं। जिस प्रकार आप पुरुषों और बच्चोंके लिए कहते हैं कि सुधार अन्दरसे होना चाहिए उसी प्रकार स्त्रियोंमें भी यह सुधार अन्दरसे ही होना चाहिए। . . .

आपने मुझे 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दी थी। उसे मैं बड़ी उत्कण्ठासे पढ़ती हूँ। लेकिन अब तक तो हमें स्त्रियोंके आन्तरिक गुणोंके विकासके लिए कोई सलाह उसमें नजर नहीं आई है। कताई और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष, उस प्रशिक्षणके केवल कुछ पहलू हैं। इनमें पूरा समाधान निहित नहीं जान पड़ता। कारण, जो स्त्रियाँ कातती हैं और कांग्रेसके आदर्शोंके अनुरूप आचरण करनेकी कोशिश करती हैं उन्हें भी मैंने ऐसी भारी भूलें करते देखा है जिनका कारण उनका केवल स्त्री होना बताया जाता है।

. . . कृपया हमें बताइए कि हम अपने गुणोंका अच्छे-से-अच्छा उपयोग कैसे करें, जो चीजें हमारे लिए बाधक हैं उन्हें सहायक कैसे बनायें। . . .

मैं इस सुखद भ्रममें पड़ा हुआ था कि सत्याग्रहकी खोजके साथ ही स्त्रियोंके हित-साधनमें मेरा योगदान निश्चित रूपसे आरम्भ हो गया। लेकिन पत्र-लेखिकाका विचार है कि स्त्रियोंको पुरुषोंसे भिन्न उपचारकी आवश्यकता है। अगर बात ऐसी है तो मैं नही समझता कि कोई पुरुष सही समाधान प्राप्त कर सकेगा। वह चाहे जितना प्रयत्न करे, अवश्य ही विफल होगा, क्योंकि प्रकृतिने उसे स्त्रियोंसे भिन्न बनाया है। घनकी चोट तो निहाईपर पड़ा लोहा ही जानता है। इसलिए अन्ततः यह तो अधिकारपूर्वक स्त्रीको ही तय करना है कि उसे किस चीजकी जरूरत है। मेरी अपनी राय यह है कि जिस प्रकार बुनियादी तौरपर स्त्री और पुरुष एक हैं, उसी प्रकार तत्वतः उनकी समस्या भी एक ही है। दोनोंकी आत्मा एक ही है। दोनों एक ही जीवन जीते हैं, दोनोंकी भावनाएँ समान हैं। दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं और एक-दूसरेकी सक्रिय सहायताके बिना नही जी सकते।

लेकिन, चाहे जैसे हुआ हो, पुरुष युगोंसे स्त्रीको अपने प्रभुत्वमें रखता आया है और इसलिए स्त्रीमें एक प्रकारकी हीनताकी भावना पैदा हो गई है। उसने पुरुषकी इस स्वार्थजन्य शिक्षाको सच मान लिया है कि स्त्री उससे हीन है। लेकिन पुरुषोंके बीच जितने भी मनीषी हो गये है, सबने उसके समान दर्जेको स्वीकार किया है।

फिर भी, इसमें सन्देह नही कि एक बिन्दुपर जाकर दोनोंमें अन्तर पड़ जाता है। यद्यपि दोनों बुनियादी तौरपर एक हैं, लेकिन यह भी सच है कि दोनोंके रूपोंमें भारी अन्तर है। इसलिए दोनोंके धन्धे भी अलग-अलग हैं।

मातृत्वके जिस कर्तव्यको अधिकांश स्त्रियाँ सदा स्वीकार करेंगी, वह स्त्रीसे ऐसे गुणोंकी अपेक्षा रखता है जिनसे सम्पन्न होना पुरुषके लिए आवश्यक नही है। स्त्री भाव है, पुरुष कर्म। वह तत्वत: गृहस्वामिनी है। पुरुष अन्न जुटानेवाला है, स्त्री उसे ढंगसे रखने और बाँटनेवाली है। वह हर तरहसे देखरेख करनेवाली है। मानव-जातिके शिशु-वर्गका लालन-पालन उसका विशिष्ट और खास तौरसे अपना विशेषाधिकार है। उसकी देखरेखके बिना मानवजातिका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

मेरी दृष्टिमें तो यह बात स्त्री और पुरुष दोनोके लिए पतनकारी है कि स्त्रीसे अपनी घर-गृहस्थीके दायित्वोका त्याग करके उस गृहस्थीकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा जाये या प्रेरित किया जाये। यह फिर से बर्बरताकी स्थितिमें लौट जाना और विनाशका आरम्भ है। जो पुरुषका काम है उसे करनेकी कोशिश करके वह अपनेको भी गिराती है और पुरुषको भी। अपनी सगिनीको अपना विशेष धन्धा छोड़नेको प्रलोभित या विवश करनेका पाप पुरुषके सिर लगेगा। जितनी बहादुरी बाहरी आक्रमणसे अपने घरकी रक्षा करने में है, उतनी ही उसे ठीक ढंगसे और अच्छी अवस्थामे रखनेमें भी है।

मैंने करोडों किसानोको अपने स्वाभाविक परिवेशमें देखा है और सेगाँव नामक इस छोटे गाँवमें उन्हे हर दिन उस परिवेशमें देखता हूँ। इसलिए दोनोंके कार्य-क्षेत्रोंका स्वाभाविक विभाजन मेरी दृष्टिमें बरबस आ जाता है। कोई भी स्त्री लोहार या बढईका काम नही करती। लेकिन खेतोमें स्त्री-पुरुष दोनो काम करते हैं, हालाँकि ज्यादा मशक्कतवाला काम पुरुष ही करता है। स्त्रियाँ घरकी सार-सँभाल करती हैं। वे अपनी मेहनतसे घर परिवारकी सीमित आयको बढ़ानेमें कुछ योग अवश्य देती हैं, लेकिन असली रोटी कमानेवाला तो पुरुष ही है।

तो कार्य-क्षेत्रोंके विभाजनको स्वीकार कर लेनेके बाद दोनोंके लिए अपेक्षित सामान्य गुण और संस्कार एक तरहमे एक ही रहते हैं।

इस महान समस्याके समाधानमें मेरा योगदान इस बातमें निहित है कि मैंने जीवनके हर क्षेत्रमें —— चाहे वह व्यक्तिसे सम्बन्धित हो या राष्ट्रोंसे —— सत्य और अहिंसाको लोगोंके स्वीकारार्थ प्रस्तुत किया है। मुझे यह आशा रही है कि इसमें स्त्री निर्विवाद रूपसे नेतृत्व करेगी और इस प्रकार मानवके विकास में अपना उचित स्थान प्राप्त करके अपनी हीनताकी भावनाका त्याग करेगी। यदि वह यह काम सफलतापूर्वक कर पाई तो उसे इस भ्रान्तिमय आधुनिक शिक्षामें विश्वास करनेसे साफ इनकार करना चाहिए कि हर बात यौन वृत्तियोंसे ही निर्धारित होती है। मुझे भय है कि मैंने इस बातको कुछ अनगढ़ ढंगसे पेश किया है। लेकिन उम्मीद है, मेरा आशय स्पष्ट हो गया होगा। मैं नही जानता कि जो लाखों-करोडों पुरुष युद्धमें सक्रिय भाग ले रहे हैं वे प्राकृतिक यौन वृत्तियोंसे ही अभिभूत होकर वैसा कर रहे है। इसी तरह खेतोंमें साथ-साथ काम करनेवाले किसान भी इस वृत्तिकी कोई परवाह नही करते और उनपर

यह वृत्ति हावी नही रहती। इसका मतलब यह नही कि स्त्री या पुरुषमें जो नैसर्गिक वृत्ति विद्यमान है वे उससे मुक्त हैं। लेकिन निश्चय ही यह उनके जीवनपर उस प्रकार शासन नही करती जिस प्रकार उन लोगोंके जीवनपर शासन करती जान पड़ती है जिनका मस्तिष्क आधुनिक काम-साहित्यसे सरावोर है। जब जीवनको उसकी कठोर वास्तविकतामें जीना पड़ता है तब न पुरुषको और न स्त्रीको ही ऐसी बातोंके सम्बन्धमें सोचनेकी फुरसत मिलती है।

इन स्तम्भोंमें मैंने कहा है कि स्त्री अहिंसाकी अवतार है। अहिंसाका मतलब असीम प्रेम है और असीम प्रेमका अर्थ कष्ट-सहनकी असीम क्षमता है। पुरुषकी जननी स्त्रीके अतिरिक्त इस क्षमताका अधिक-से-अधिक परिचय दूसरा कौन देता है? वह इस क्षमताका परिचय तब देती है जब वह शिशुको नौ मास तक अपने पेटमें रखकर उसका पोषण करती है और उसमें उसे जो कष्ट होता है उसमें आनन्दका अनुभव करती है। प्रसव-वेदनासे बड़ी और कौन-सी पीडा हो सकती है? लेकिन सृजनके आह्लादमें वह उस वेदना को भूल जाती है। और उसका शिशु दिन-दिन शुक्लपक्षके चाँदकी तरह बढे, इसके लिए प्रतिदिन कौन कष्ट उठाता है? वह अपने इस प्रेमका प्रसार अखिल मानव जातिमें होने दे, वह यह भूल जाये कि वह कभी भी पुरुषकी वासना-तृप्तिका साधन थी या हो सकती है। तब वह पुरुषके साथ उसकी माता, सर्जक और मूक नेताके रूपमें अपना गौरवपूर्ण स्थान सहज ही प्राप्त कर लेगी। शान्तिके अमृतके लिए तरसते युद्धरत विश्वको शान्तिकी कला सिखाना स्त्रीका कार्य है। वह सत्याग्रह की नेता बन सकती है, क्योकि इसके लिए पोथियोंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानकी नही, वल्कि कष्ट-सहन और श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले दृढ़ हृदयकी आवश्यकता होती है।

वर्षों पूर्व[1] जब मै पूनाके सैसून अस्पतालमें रोग-शय्यापर पडा हुआ था, मेरी नेक परिचारिकाने मुझे एक ऐसी स्त्रीका किस्सा सुनाया, जिसने इस कारण क्लोरोफॉर्म लेनेसे इनकार कर दिया कि उससे उसके उदरस्थ शिशुके जीवनको खतरा हो सकता था। उसकी बहुत कष्टकर शल्य-चिकित्सा होनी थी। उसके पास संज्ञा-शून्य होनेके लिए केवल एक दवा थी और वह थी उसका अपने उदरस्थ शिशुके प्रति प्रेम। उसे बचानेके लिए वह कोई भी कष्ट सहनेको तैयार थी। स्त्रियोंके बीच ऐसी बहादुरीके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, इसलिए उन्हें अपने स्त्री होनेसे कभी घृणा नही करनी चाहिए और न पुरुष न होनेके लिए दुःख। उस वीरांगनाके बारेमें सोचकर मुझे अक्सर स्त्रियोंके गौरवपदसे ईर्ष्या होती है। हाँ, यह सच है कि स्वयं स्त्रियोंको इस पदकी महत्ताका बोध नही है। स्त्री जिस तरह पुरुषके रूपमें जन्म लेनेकी कामना कर सकती है, उसी तरह पुरुष भी स्त्रीके रूपमें जन्म लेनेकी कामना कर सकता है। लेकिन ऐसी कामना, ऐसी इच्छा तो निरर्थक ही है। तो हमने जिस रूपमें जन्म लिया है उसी में हम सुख

१. जनवरी, १९२४ में

मानें और प्रकृतिने हमें अलग-अलग जिन कर्तव्योंके लिए रचा है उन्हे हम सहर्ष सम्पन्न करें।

सेगाँव, १२ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-२-१९४०

२४८. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

१२ फरवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

अब तुम्हें मैं क्या सलाह दूं? कचन मलिकन्दा आना चाहती है। अगर वह आये तो तुम्हें नही आना चाहिए। कारण, केवल विवेक। फिर भी जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा मैं तुम्हें करने दूंगा। मुझे यह भी अच्छा लगेगा कि कांग्रेसके अधिवेशनमें जाने या न जानेकी बात भी तुम्ही तय करो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

धर्म क्या कहता है, इसका विचार करना। इसमें वृत्तियोंका निरोध करनेको कहा गया है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५१) से। सी० डब्ल्यू० ७०७१ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

२४९. क्या यह लड़ाईकी घोषणा है?

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके निर्माताओंने बड़े धैर्यसे इसके चार आधार-स्तम्भों का निर्माण किया है — यूरोपीय हित, सेना, देशी नरेश और साम्प्रदायिक विभेद। इनमें से सेना, देशी नरेश और साम्प्रदायिक विभेद यूरोपीय हितकी सिद्धिके साधन थे। यथार्थवादियोंके सामने यह बात स्पष्ट है कि ये निर्माता साम्राज्य या साम्राज्य-भावनाके त्यागका दावा तभी कर सकते हैं जब वे इन चार स्तम्भोंको हटा दें। लेकिन राष्ट्रवादियों या साम्राज्य-भावनाके ध्वसकारियोंसे उनका कहना है कि "इन चारों स्तम्भोंसे तो तुम्हें स्वयं निबटना है। तुम ऐसा करके दिखाओगे तभी हम भारतको अपना अधीनस्थ देश माननेके बजाय स्वतन्त्र राष्ट्र मानेंगे।" दूसरे शब्दोंमें उनका कहना कुछ इस प्रकार है: "यूरोपीय हितोंके संरक्षणकी व्यवस्था करो, अपनी सेना आप खड़ी करो, देशी नरेशों और सम्प्रदाय-

वादियोंसे, जिन्हें अल्पसंख्यकोंकी संज्ञासे अभिहित किया जाता है, मामला निबटाओ इधर ध्वंसकारियोंका कहना है कि "यूरोपीय हित तो हमपर तुमने थोपे, उनकी रक्षाके लिए सेना खड़ी करके उसका उपयोग तुम पूरी तरहसे अपने प्रयोजनके लिए करते रहे, तुमने देखा कि उस समयके नरेशोंका भी उपयोग तुम अपने हित-साधनके लिए कर सकते थे, और इसलिए तुमने उन्हें बनाया और मिटाया और नये नरेश खड़े किये, तुमने उन्हें उस सत्तासे सज्जित किया जिसका उपभोग वे पहले निरापद रूपसे नही कर सकते थे, बल्कि सच तो यह है कि तुमने भारतके टुकड़े कर दिये, ताकि वह कभी भी एक होकर तुम्हारे खिलाफ खड़ा न हो सके। फिर, तुमने यह भी देखा कि हम लोग जात-पाँतके अभिशापसे ग्रस्त हैं। तुमने हमारी इस कमजोरीका फायदा उठाया और उसे इतना पैना किया कि आज जितने और जिस तरहके दावे किये जा रहे हैं उन सबको अगर मान लिया जाये तो न भारतीय राष्ट्र रह जायेगा और न स्वतन्त्रताकी बात रह जायेगी। और इस सबके ऊपर तुमने हमें निःशस्त्र बनाने और रखनेकी नीतिके द्वारा एक पूरे राष्ट्रको पुस्त्वहीन बना दिया। लेकिन जो-कुछ हो चुका है, उसकी तुमसे हम शिकायत नही करते। इसके विपरीत हम तुम्हारी बहादुरी, कौशल और साहसिकताकी सराहना करते हैं। तुमने अपने पहलेके साम्राज्य-निर्माताओंका ही अनुकरण किया है। कई रूपोंमें तुम उनसे भी आगे बढ़ गये हो। लेकिन यदि तुम यह कहते हो, और सचमुच तुमने यह कहा है, कि तुमने भारतको उसका प्राप्य देनेका निर्णय कर लिया है, तो तुम्हे हमारे रास्तेसे वे बाधाएँ दूर करनी हैं जो स्वयं तुमने खड़ी की हैं। तुम्हें हमसे यह कहनेका अधिकार है कि यह सब करनेमें तुम्हारे सामने जो कठिनाइयाँ हैं उन्हे हम पहचानें और तुम्हारी सहायता करे। अगर तुममें ईमानदारी है तो तुम हमें, जो-कुछ हम अधिकसे अधिक कर सकते हैं, करनेको स्वतन्त्र छोड़ दोगे। जो-कुछ करना सही और उचित है वह किया जायेगा, इस बातके लिए तुम्हें अपनी सबल भुजाओंपर भरोसा करनेके बजाय हमारी न्यायबुद्धिपर विश्वास करना चाहिए। अब तक हमारे भाग्यका निर्णय तुमने किया है। अब अगर सचमुच तुम कुछ करना चाहते हो तो तुम न केवल हमें अपने शासनके तौर-तरीके आप ही तय करने दोगे, बल्कि अगर हम चाहें तो तुम उस काममें हमारी सहायता भी करोगे।"

लॉर्ड जेटलैंडकी ओरसे ध्वंसकारियोंको जो उत्तर[1] मिला है उसका सार मैं नीचे दे रहा हूँ:

> हमारा इरादा, जो-कुछ हमारे पास है, उसपर काबिज रहनेका है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए हम तुम्हें उतनी स्वतन्त्रता देंगे जितनी हम तुम्हारे लिए लाभदायक समझेंगे। जो लड़ाई हम लड़ रहे हैं वह साम्राज्यको टूटनेसे बचानेके लिए है। यदि इन शर्तोंपर दे सको तो हम

१. तात्पर्य ११ फरवरी, १९४० को लॉर्ड जेटलैंड द्वारा संडे टाइम्स को दी गई भेंट-वार्तासे है। देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रों को", पृ० २४९-५० और "एक और अंग्रेजका पत्र", १६-३-१९४०।

तुम्हारी मदद चाहते हैं। यह तुम्हारे लिए भी अच्छा है और हमारे लिए भी। लेकिन अगर तुम मदद नही दोगे तो उसके बिना भी हम काम चला लेंगे। हमें सिर्फ तुम्हारा ही तो खयाल नही करना है, और भी तो पक्ष हैं। भारतमें ऐसे बहुत-से लोग हैं जो ब्रिटिश शासन और ब्रिटेन की सुख-शान्तिदायिनी छत्रछायाके लाभोंको समझते हैं। हमारा इरादा, हम भारतके वफादार तत्वोंसे जितनी सहायता प्राप्त कर सकते हैं, उसके बलपर इस युद्धको जीतनेका है। उनकी सेवाओंका प्रतिदान हम समयपर और भी सुधार लागू करके देंगे। हमारे इस कथनका कि हम विश्वको लोकतन्त्रके लिए सुरक्षित बनायेंगे, यही तात्पर्य है। कारण, हम विश्वके सबसे अधिक लोकतान्त्रिक राष्ट्र हैं। इसलिए यदि हम सुरक्षित हैं तो जो हमारे साथ हैं वे भी सुरक्षित हैं। हमारे संरक्षणमें भारत-जैसे जो देश हैं उनमें लोकतन्त्रको क्रमिक रूपसे दाखिल किया जायेगा, ताकि वे निर्बाध रूपसे प्रगति कर सकें और उन्हें वे कठिनाइयाँ न झेलनी पड़ें जो हमें झेलनी पड़ी।

आशा है, यहाँ मैंने जो सार प्रस्तुत किया है उससे लॉर्ड जेटलैंडके साथ कोई अन्याय नही हुआ है। यदि यह सार काफी हद तक सही है तो मुद्दे बिलकुल साफ हैं। राष्ट्रवादियों और साम्राज्यवादियोंके बीच समझौतेकी कोई सम्भावना नही है। इसलिए अगर लॉर्ड जेटलैंडने ब्रिटिश सरकारके सुचिन्तित विचारको ही व्यक्त किया है तो इसका मतलब राष्ट्रवादी भारतके विरुद्ध युद्धकी घोषणा है। कारण, चारों स्तम्भ चट्टानकी तरह दृढ़तासे खड़े हैं। राष्ट्रवादी उनसे निबटनेकी — मानो ये समस्याएँ राष्ट्रवादियोंकी ही पैदा की हुई हों — जितनी ज्यादा कोशिश करेंगे इन स्तम्भोंमें उतनी ही दृढ़ता आयेगी। यदि ब्रिटिश सैन्य-बलकी सफलताका मतलब भारतकी पराधीनताकी अवधिका और बढ़ना हो तो मैं ईमानदारीके साथ उसकी विजयकी कामना नही कर सकता। यह आखिरी वाक्य मैं व्यथित हृदयसे लिख रहा हूँ।

सेगाँव, १३ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-२-१९४०

२५०. निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए

सेगांव

१३ फरवरी, १९४०

१ सबको जानना चाहिय कि सेगांवमें काफी जहरी सांप रहते हैं. ईश्वरकी कृपा समझें कि अब तक किसीको सांपने नहिं काटा है। लेकिन सावधान रहनेका हमारा धर्म है। ईश्वर सावधानको ही सहाय देता है। इसलिये मेरी सलाह है कि जब तक हो सके सब लालटेनका सहारा ले इसी तरह अंधेरेमें भी जूते भी पहने।

२. जब तक बन सके हम नौकरोंका सहारा निजी कामके लिये कमसे कम ले।

३. जबसे शांतिनिकेतन जानेकी बात चली है तबसे व्याकुल हो रहा हूं। आज दो दिनसे अधिक खलबली चली है और आज तो मैं बहुत बेचेन हो गया। मैंने देखा कि मैं अपना धर्म चुकता हूं। सत्यका सूक्ष्म भंग कर रहा हूं। मेरेमें सबको खुश करनेकी आदत है। हमेशा सफल होता हूं। ऐसा नही है। लेकिन इसमें अतिशयता आ जावे तब वह गुण मिट कर दोषका रूप लेता है। मैं देखता हूं कि शांतिनिकेतन और मलीकांठा कम से कम लोगोंको मेरे साथ ले जानेका मेरा धर्म है। अधिक ले जानेकी मैंने शांतिनिकेतन से सम्मति तो मंगवा ली है।[1] लेकिन आज मुझे एकाएक लगाकी आवश्यकतासे एक भी अधिक आदमीको ले जाना मेरा धर्म नही है। इसलिये मैंने निश्चय किया है कि मेरे साथ सिवाय बा, महादेव, प्यारेलाल, कनु और नारायण[2] के कोई नही जायेंगे। मेरे दिलमें क्या रहा है उसका एक अंश भी यहां नहिं बता सका हू। मेरे लिये यह कदम एक भारी वस्तु है। लेकिन सिवाय इसके मैं शांत नहिं हो सकता था।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

१. देखिए "पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको", पृ० १८८-८९।

२. नारायण देसाई

२५१. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

१३ फरवरी, १९४०

चि० मुन्नालाल,

धर्मका निरोध कभी नही करना चाहिए। वृत्तियोंका — इच्छाका निरोध सदैव करना चाहिए। भगवान पतजलिने योगको चित्तवृत्ति-निरोध[1] कहा है। तुम्हें इस बार सयम करना चाहिए।[2] इसका अर्थ यह नही है कि किसी दूसरे अवसरपर भी धर्मलाभके लिए तुम्हें शान्तिनिकेतन नहीं जाना चाहिए। यद्यपि मेरी मान्यता तो यही है कि जब तक तुम्हारा मन सेगाँवमें रम नही जायेगा तब तक उथलपुथल मची ही रहेगी। शान्ति तो तुम्हें देर-सबेर यही मिलनी है। सब-कुछ अच्छा कही नही मिलेगा, इसलिए सब-कुछ अच्छा लगनेकी कला साधनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५५०) से। सी० डब्ल्यू० ७०७५ से भी; सौजन्य . मुन्नालाल जी० शाह

२५२. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

सेगाँव, वर्धा
१३ फरवरी, १९४०

चि० जेठालाल,

व्यवस्था वगैरहके सम्बन्धमें तुम्हारी शिकायत बिलकुल सही है। हमारे यहाँ अधेरकी कोई सीमा नही है। यह भी सच है कि मैंने थोड़े ही केन्द्र देखे हैं; लेकिन उनमें भी कोई बहुत जान नही है। उनमें जान कैसे डाली जा सकती है? एक कारगर तरीका तो यह है कि तुम मौनभावसे वहाँ बैठकर मुझे कुछ करके दिखाओ। तब अनन्तपुर[3] सहज ही तीर्थक्षेत्र बन जायेगा। तुम जानते हो

१. योगसूत्र, १
२. देखिए "पत्र: मुन्नालाल जी० शाहको", पृ० २४३।
३. वहाँ जेठालाल जी० सम्पत ने एक खादी-केन्द्र खोला था।

कि मैं यह सपना देखता आ रहा हूँ। तुम्हें भगवानने लेखनी नहीं दी तो क्या, तुममें श्रद्धा तो है ही। बाकी सब चीजें उसका अनुसरण करेंगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह खुशीकी बात है कि यचु बिलकुल अच्छी हो गई।

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९८६९) से; सौजन्य : नारायण जे० सम्पत

२५३. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव, वर्धा
१३ फरवरी, १९४०

चि० लीला,

तुझे पत्र लिखनेकी इच्छा तो बहुत होती है, लेकिन क्या करूँ? महादेव तुझे जो लिखे, उसीको तू मेरे लिखेके समान समझ।

तुझसे रहा ही न जाता हो, तो तू जरूर आ जा।- लेकिन मैं तो यहाँ रहूँगा नहीं। हम लोग १५की रातको जा रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९३५) से; सौजन्य : लीलावती आसर

२५४. पत्र : मदालसाको

सेगाँव
१३ फरवरी, १९४०

चि० मदालसा,

तुझे क्या फिर बुखारने घर दबाया है? हिम्मत मत हारना। जल्दी अच्छी हो जाना। बीमारीका सर्वोत्तम उपयोग यह है कि भगवानके प्रति अपनी श्रद्धा बढ़ाई जाये तथा अपने स्वभावको वशमें रखा जाये। इस तरह तुरन्त स्वस्थ भी हुआ जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३२०

२५५. पत्र : हीरालाल शर्माको

सेगाँव
१३ फरवरी, १९४०

चि० शर्मा,

पुस्तक[1] डाकसे नहि किसीके साथ ही भेजो। दूसरा जो तुमने इशारा किया है वह मैं नही समजा हू। कठोर प्रेम[2] क्यो? मैं १५को बगाल जाता हू।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

२८के नजदीक वापस आनेका होगा।

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २८४ और २८५ के बीचकी अनुकृतिसे

२५६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[3]

सेगाँव
१४ फरवरी, १९४०

यदि लॉर्ड जेटलैंडकी हालकी घोषणा[4]का विवरण ठीक-ठीक छपा हो तो उससे राष्ट्रवादियोकी माँगके प्रति सरकारके रुखके सम्बन्धमें सारी अटकल-

१. गाधीजी द्वारा चुनी हुई प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकें

२. हरिजन में "चरखा" शीर्षकसे प्रकाशित गाधीजी के लेख, देखिए पृ० १०९-१४का उल्लेख करते हुए हीरालाल शर्माने लिखा था कि सुभाष बाबूकी बीमारीका खयाल करते हुए उन्हें उनके प्रति अपने कठोर प्रेमका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

३. यह हरिजन में "बैंगिंग द डोर" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

४. भारत मन्त्रीने कहा था कि १९३५के अधिनियमके व्यावहारिक अनुभवसे प्रकट हो गया है कि अल्पसंख्यकोंकी समस्याको स्वयं भारतीयोंको निबटाना चाहिए। "दूर-दूरसे गोलन्दाजी और वक्तव्योंसे कुछ होनेवाला नहीं है। शब्दजाल और आदर्शोंके व्यामोहसे उतरकर सत्यके ठोस धरातलपर आनेकी आवश्यकता है। . . . मैं मानता हूँ कि जो लोग अपने-अपने अनुयायियोंकी ओरसे अधिकृत रूपसे बोल सकते हैं उनके आपसी परामर्शसे ही — यह परामर्श शुरू में चाहे अनौपचारिक और गुप्त ही हो — इस समस्याके सुलझनेकी आशा की जा सकती है। यदि ऐसा परामर्श और बातचीत ईमानदारीके साथ होनी है तो सभी पक्षोंमें बातचीतकी सफलताकी सच्ची भावना और समझौतेकी वृत्ति होनी चाहिए। ब्रिटिश सरकार यह सब जबरदस्ती नहीं करवा सकती। वह तो इन बातोंके लिए लोगोंको ईमानदारीसे समझा ही सकती है। देखिए "एक और अंग्रेजका पत्र", १६-३-१९४० भी।

बाजियोंका अंत हो जाता है। मुझे तो यही मालूम है कि वेस्टमिन्स्टर स्टैच्यूटके ढंगका औपनिवेशिक स्वराज्य स्वतन्त्रताके समान ही है और उसमें साझेदारीसे अलग होनेकी भी छूट है। इसलिए मैंने सोचा था कि इंग्लैंडको भारतको अपना दर्जा आप ही तय करने देनेकी छूट देनेमें कोई कठिनाई नही होगी। लेकिन लॉर्ड जेटलैंडने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह दर्जा खुद भारतको नहीं, बल्कि इंग्लैंडको तय करना है। दूसरे शब्दोंमें, भारतपर इंग्लैंडकी जकड़ कायम रहनी है। अल्पसख्यकोंकी समस्या तथा ऐसी दूसरी समस्याओंके समाधानका भार भी वे राष्ट्रवादियोंपर ही डाल रहे हैं। मै पहले ही बता चुका हूँ[1] कि भारतकी स्वतन्त्रताको — संरक्षण-व्यवस्थासे युक्त स्वतन्त्रताको — स्वीकृति मिले बिना यह काम किस तरह असम्भव है। लॉर्ड महोदय समझते हैं कि चूँकि कुछ भारतीयोंको अंग्रेजी शिक्षाका प्रसाद मिला है और ब्रिटिश लेखकोंसे उन्होंने स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विचार सीखे हैं, इसलिए वे बराबर साझेदारीकी संज्ञासे अभिहित ब्रिटिश संरक्षणमें रहना पसन्द करेंगे। इसीको मैं राष्ट्रवादियोंके लिए दरवाजा बन्द कर दिया जाना कहता हूँ। क्या इसका मतलब उससे भी अधिक घातक समझौता है जिसकी कि घोषणा पिछली गोलमेज परिषद्[2] में की गई थी। यदि ऐसा ही है तो इसका मतलब है साम्राज्य-भावनाको नष्ट करनेको कटिबद्ध राष्ट्रवादियोंके खिलाफ युद्धकी घोषणा। मेरा नम्र निवेदन है कि राष्ट्रवादियोंने आदर्शवादके पीछे वास्तविकताका त्याग कर दिया है, यह आरोप लगाकर भारतकी माँगको अनसुना कर देना सरासर गलत है। मेरा कहना तो यह है कि वास्तविकताका सामना करनेसे खुद लॉर्ड महोदय कतरा रहे हैं और अवास्तविकताके जंगलमें भटक रहे हैं। मै उनपर आदर्शवादका आरोप तो लगा नही सकता। मगर उनको यह बता देता हूँ कि राष्ट्रवादी भारत करने मरनेको तैयार बैठा है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १७-२-१९४०

१. देखिए "क्या यह लड़ाईकी घोषणा है?" पृ० २४३-४५।

२. १९३१ में

२५७. पत्र : शम्भुशंकर त्रिवेदीको

सेगाँव
१५ फरवरी, १९४०

चि० शम्भुशंकर,

मुझे तुम्हारी खबरे मिलती रहती है। कुछ मित्रोंने लिखा है कि तुम्हे उपवासके लिए मैंने प्रेरित किया है। तुम तो ऐसा नही मानते न? मेरी स्थिति इस प्रकार है। तुम्हें या किसीको भी उपवास करनेकी प्रेरणा देनेका मुझे कोई अधिकार नही है। जब अपने अन्तरसे प्रेरणा उठे केवल तभी उपवास करना चाहिए। अत मेरा दृष्टिकोण तो यह है। तुमने मुझे लिखा कि स्पष्ट रूपसे वचनभंग हुआ था और वचन मिलनेपर तुमने उपवास छोड़ दिया। और अब फिर उसका भंग हुआ है। सो तुमने मुझसे पूछा कि इस कारण उपवास करनेमे कोई अधर्म तो नही है? इस प्रश्नका मेरा उत्तर था कि इसमें अधर्म नही है बल्कि यह तुम्हारा धर्म हो सकता है। अत यदि तुम्हारे मनमें जरा भी शका हो तो तुम उपवास त्याग दो। और यदि शका न हो तो ईश्वर तुम्हे अपने संकल्पपर टिके रहनेकी शक्ति दे। यह जानकर मुझे खुशी हुई कि तुम्हारा मन शान्त है। तुम्हारे मनकी शान्ति सर्वदा बनी रहे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे · प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल

२५८. प्रश्नोत्तर

एकता बनाम न्याय

अपने "एकता बनाम न्याय" शीर्षक लेखमें[1] आप कहते हैं कि अगर मैं अपने भाईको उसके हिस्सेसे ज्यादा देता हूँ तो इसे न घूस देना माना जायेगा और न अन्याय करना। आप कहते हैं कि शंका-सन्देहका निवारण तो मैं उदार बनकर ही कर सकता हूँ। उदारतारहित न्याय देनेका मतलब तो उस प्रयोजनको ही निष्फल कर देना है जिसके लिए न्याय दिया जाता है। मेरा निवेदन यह है कि न्याय और उदारता साथ-साथ नहीं चल सकते। ड्राइडनने सच ही कहा है: "न्याय अन्धा है, वह किसीको नहीं पहचानता।" इसके अलावा हम

१. देखिए पृ० १५५-५६।

उदारता तो कमजोर, दब्बू और विनयीके साथ ही बरत सकते हैं, उसके प्रति तो उदारता नहीं दिखाई जा सकती जो अपनी शक्तिके मदमें चूर होकर हमें दबाये। ऐसे व्यक्तिको उचितसे अधिक देना उदारता नहीं, बल्कि कायरतापूर्ण आत्म-समर्पण है। यद्यपि हिन्दू संख्यामें अधिक हैं, लेकिन जैसाकि आपने खुद बताया है, उनका बहुमत काल्पनिक है और वास्तवमें वे कमजोर पक्षके लोग हैं। इसके अतिरिक्त, यदि मुसलमानोंके साथ उदारता दिखानी भी हो तो वह दिखानेका अधिकार केवल हिन्दू महासभाको ही है। जहाँ दो पक्षोंमें विवाद है वहाँ किसी तीसरे पक्षको एक पक्षको नुकसान पहुँचाकर दूसरेके साथ उदारता दिखानेका क्या अधिकार है?

उ० : जिस लेखकी आपने चर्चा की है उसमें मैंने किन्ही विशेष अल्पसंख्यक समुदायोंका नही, बल्कि सामान्य सिद्धान्तोंका जिक्र किया है। जिस प्रकार न्याय न्याय तभी है जब उसमें उदारताका पुट हो उसी प्रकार उदारता भी उचित वही है जो न्यायसम्मत हो। इसलिए किसी पक्षको नुकसान पहुँचाकर उदारता नही दिखाई जानी चाहिए। इससे यह नतीजा निकलता है कि किसी एक अल्पसख्यक समुदायको लाभ पहुँचानेके लिए किसी दूसरे अल्पसख्यक समुदाय या समुदायोंके हितोंका बलिदान कर दिये जानेका कोई प्रश्न ही नही उठता। आपका यह कहना भी ठीक है कि उदारता तो कमजोर और विनयीके साथ बरतनी है, न कि धौंस जमानेवालेके साथ। फिर भी, मैं उस धौंस जमानेवालेकी ओरसे कहूँगा कि न्यायका अधिकारी तो वह भी है, क्योंकि जिस क्षण आप उस धौंस जमानेवालेकी उपेक्षा करते हैं और उसके साथ अन्याय करते हैं उसी क्षण आप यह सिद्ध कर देते हैं कि उसका धौंस जमाना और आपको दबाना उचित ही था। इसलिए व्यवहारका एकमात्र निरापद — यदि आप किसी और अच्छे विशेषणका प्रयोग न करना चाहे तो — नियम उदारतापूर्वक न्याय करना है, फिर न्यायके पात्र अल्पसंख्यक समुदायका स्वरूप चाहे जैसा हो। मेरी निश्चित मान्यता है कि जहाँ शुद्धतम न्याय किया जायेगा वहाँ अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकका प्रश्न उठेगा ही नही। किसी समाजमें धौंस जमानेवालेका होना एक अशुभ लक्षण है और वह किसी विशेष परिस्थितिका — उदाहरणके लिए, कायरताका — परिणाम होता है। हम यह अक्सर भुला देते है कि कायरतामें भी अन्याय हो सकता है। सचाई यह है कि कायरोंकी कोई न्याय-भावना नही होती। वे बल-प्रयोगकी धमकी या वास्तविक बल-प्रयोगसे ही दबते हैं। मै नही समझता कि कायर और धौंस जमाने-वालेमें से किसको बेहतर कहा जा सकता है। कायर भी उतना ही बुरा है जितना धौंस जमानेवाला, फर्क सिर्फ इतना है कि कायर समाजमें पहले आते हैं, धौंस जमानेवाले हमेशा बादमें।

पहलेके एक अंकमें मैंने यह स्वीकार किया है कि जहाँ तक हिन्दुओंका सम्बन्ध है, उनकी ओरसे समझौता करनेका अधिकार तो हिन्दू महासभा या वैसे ही किसी अन्य संगठनको ही है।[1] कांग्रेस सभी समुदायोंका प्रतिनिधित्व करनेकी

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० ३८१-८३।

कोशिश करती है। कांग्रेसमें जो हिन्दुओंका बहुमत है वह किसी पूर्व योजनाका परिणाम नही है, बल्कि इस संयोगका फल है कि हिन्दू राजनीतिक दृष्टिसे अधिक जागरूक हैं। इतिहास इस बातका साक्षी है कि कांग्रेसका गठन मुसलमानो, ईसाइयों पारसियों, हिन्दुओ सभीके मिले-जुले प्रयत्नो और अग्रेजोंको श्रेय देते हुए हम कहेंगे कि उनके नेतृत्वका परिणाम है। और चाहे कांग्रेसके विरोधमें कुछ भी कहा जाये उसने अपना वह स्वरूप कायम रखा है। इन दिनो एक मुसलमान धर्मतत्वज्ञ कांग्रेसके निर्विवाद नेता हैं और वे दूसरी बार इसके अध्यक्ष बने हैं।[1] कांग्रेस बराबर इस बातके लिए प्रयत्नशील रही है कि विभिन्न समुदायो के यथा-सम्भव अधिक-से-अधिक लोग उसके सदस्य बनें और इसलिए कांग्रेसने राष्ट्रीय एकता स्थापित करनेके लिए अनेक समझौते किये हैं। इसलिए वह अपने-आपको उस दायित्व से बरी नही कर सकती, और यही कारण है कि यद्यपि मैंने यह स्वीकार किया है कि हिन्दू महासभा या वैसी ही कोई संस्था हिन्दुओकी ओरसे कोई साम्प्रदायिक समझौता कर सकती है, लेकिन जब तक कांग्रेसको आम तौरपर सभी समुदायोंका विश्वास प्राप्त है तब तक वह राजनीतिक समझौते करनेमें अपनी असमर्थता नही बता सकती और न उसे बतानी ही चाहिए।

कलकत्ता जाते हुए रेलगाडीमें, १६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २४-२-१९४०

२५९. टिप्पणियाँ

स्पष्ट अन्याय

सेंग खासी फ्री मॉर्निंग स्कूल, मावखार, शिलांग, के मन्त्रीने उन लोगोंको, जिनकी शिक्षा-सम्बन्धी मामलोंमें दिलचस्पी है, एक परिपत्र भेजा है। उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे भी भेजी है। उसके कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ :

> ब्रिटिश सरकारने ईसाई पादरियोंको खासी और जैन्तिया पहाड़ी जिलोंके लोगोंमें शिक्षा-प्रचारके लिए आर्थिक सहायता दी। पादरी लोगोंने स्कूली किताबें अपनी मर्जी और पसन्दसे छापीं। . . . उन्होंने 'बाइबिल'का खासी भाषामें अनुवाद किया और उसे स्कूलोंमें पाठ्य-पुस्तक नियत कर दिया। . . . शुद्ध खासी जातिके कुछ सज्जनोंने . . . १९२१ में सेंग खासी फ्री मॉर्निंग स्कूल शुरू किया, ताकि खासी संस्कृतिकी रक्षा की जा सके। . . . खासी और जैन्तियाके स्कूलोंके डिप्टी इन्स्पेक्टरने हमसे यह इच्छा प्रकट की कि हम अपने स्कूलमें वही पुस्तकें पढ़ायें जिन्हें उनके महकमेने नियत कर

१. रामगढ़में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशनके मनोनीत अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद

रखा है। मैंने उनकी तजवीज इस शर्तपर स्वीकार कर ली कि हम सेंग खासी स्कूलकी पाठ्य-पुस्तकोंमें उन पुस्तकोंको शामिल नहीं करेंगे जिन्हें पादरियोंने लिखा या संगृहीत किया है। स्कूलोंके डिप्टी इन्स्पेक्टर ने हमारे स्कूलको सरकारसे आर्थिक सहायता दिलानेकी इसलिए सिफारिश नहीं की कि हमारे स्कूलमें उनका नियत किया हुआ पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया गया।... अत्यन्त खेदकी बात है कि स्कूलोंके डिप्टी इन्स्पेक्टर इस स्कूलको पादरियों द्वारा लिखित पुस्तकें पढ़ानेके लिए बाध्य करते हैं और इस तरह उस उद्देश्यको ही छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं जिसके लिए यह स्कूल खोला गया है।

जो-कुछ ऊपर कहा गया है अगर वह सच है, तो उससे मेरी इस बातकी पुष्टि होती है कि शासकवर्गने ईसाई पादरियोंके प्रयत्नोंको प्रोत्साहन दिया है। किन्तु मैं इस परिपत्रको अपनी बातका समर्थन करनेके लिए प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। मैं तो उस स्कूलके मन्त्रीकी शिकायतको सबके सामने रखनेके लिए ऐसा कर रहा हूँ। निश्चय ही उन्हें इस बातका पूरा अधिकार है कि वे ईसाई पादरियों द्वारा तैयार किये गये धर्म-परिवर्तनकारी साहित्यके पढ़ाये जानेपर आपत्ति करें। यह याद रहे कि यह स्कूल सरकारसे सहायता पाता रहा है। यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि अब ईसाई पादरियोंकी पुस्तकें पढ़ाये जानेका सवाल क्यों उठा है। आशा है कि स्कूलको, उसके मन्त्रीकी उचित आपत्तिके कारण, आर्थिक सहायतासे वंचित नहीं किया जायेगा।

मलाई-निकला दूध

इलाहाबाद कृषि संस्थानके प्रोफेसर वार्नरने अपने उस लेखकी प्रति मुझे दी है जो उन्होंने संयुक्त प्रान्तके एक नगर-निकायको भेजा है। निकायने एक उप-नियम बनाया है जिसके तहत यह आवश्यक करार दिया गया है कि "नगरमें बिकनेवाला तमाम मलाई-निकला दूध रंगीन कर दिया जाये, ताकि उसकी आसानीसे पहचान हो सके और उसका इस्तेमाल शुद्ध दूधमें मिलावट करनेके लिए न किया जा सके?" प्रोफेसर वार्नरकी रायमें यह एक खतरनाक उपनियम है जिसका परिणाम महत्त्वपूर्ण खाद्य पदार्थको नष्ट कर देना होगा। उन्होंने, मेरी रायमें, अपने लेखमें निर्णयात्मक रूपसे यह सिद्ध कर दिया है कि एक खाद्य पदार्थके रूपमें मलाई-निकले दूधकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि इस दूध और शुद्ध दूधमें इतना ही फर्क है कि शुद्ध दूधमें से चर्बीका एक बहुत बड़ा भाग मक्खन बनानेके लिए निकाल लिया जाता है, लेकिन तब भी उस दूधमें सभी लवण और प्रोटीन ज्योंके–त्यों बचे रहते हैं। अतः मलाई-निकले दूधको शुद्ध दूधमें मिलानेके बाद भी उस दूधकी पोषक शक्तिपर बहुत कम असर पड़ता है। केवल चर्बी तत्व ही कुछ कम हो जाता है। उन्होंने अपने तर्कके पक्षमें आँकड़े दिये हैं, जिन्हें मैं यहाँ नहीं दे रहा हूँ। प्रोफेसर वार्नरको मलाई-निकले दूधके

जरिये भी मिलावटके विरुद्ध उप-नियम बनानेपर कोई आपत्ति नही है। लेकिन मेरी दृष्टिमें उनकी यह आपत्ति सही है कि ऐसे दूधको रग मिला कर नष्ट क्यों किया जाये। उन्होंने सिद्ध किया है कि ऐसा करना न केवल गरीब लोगोंको एक महत्त्वपूर्ण पोषक पदार्थसे वंचित करना होगा, बल्कि इसका एक खतरा यह भी है कि मिलावटके लिए फिर पानीका प्रयोग अधिक किया जायेगा। यह खतरा वास्तविक है, क्योंकि पानीका अनुपात जितना अधिक होगा दूधकी पोषक-शक्ति उतनी ही कम हो जायेगी। फिर यह भी सम्भव है कि मिलाया गया पानी अशुद्ध हो। प्रोफेसर वार्नरने शुद्ध घी को मिलावटसे बचानेके लिए वनस्पति घी को रँगने और मलाई-निकले दूधको रँगनेकी आवश्यकतामें अन्तर बताया है। वनस्पति घी को किसी अहानिकर रंगसे रँगना अत्यन्त आवश्यक है। रँगा हुआ वनस्पति घी लोग उसके सस्तेपनके कारण इस्तेमाल करेंगे। लेकिन चूंकि मलाई-निकले दूधके विरुद्ध लोगोंमें पहलेसे ही पूर्वाग्रह मौजूद है, अत लोग रंगदार मलाई-निकला दूध कतई इस्तेमाल नही करेंगे, भले ही उसमें मिलाया गया रग कितना ही अहानिकर हो। मै प्रोफेसर वार्नरके तर्कको यह सुझाव देकर और मजबूत बनाना चाहता हूँ कि यदि नगरपालिकाएँ मलाई-निकले दूधको लोकप्रिय बनानेकी कोशिश करें तो अच्छा रहेगा। वह बहुत सस्ता बिक सकता है और गरीबो तथा अमीरों, दोनोंके लिए अच्छा पोषक पदार्थ है। मलाई-निकला दूध उन मरीजोंके लिए भी अच्छी खुराक है जो शुद्ध दूध नही पचा सकते।

कलकत्ता जाते हुए रेलगाड़ीमें, १६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०

२६०. भाषण : शान्तिनिकेतनमें[1]

१७ फरवरी, १९४०

यहाँ पहुँचनेपर मेरे मनमें सबसे ज्यादा चिन्ता दीनबन्धु[2] की है। शायद आपको मालूम न हो कि कल सुबह कलकत्तामें ट्रेनसे उतरनेपर मैंने पहला काम यह किया कि उनसे मिलने अस्पताल गया। गुरुदेव विश्वकवि हैं, लेकिन दीनबन्धुमें भी कविकी भावना और वृत्ति विद्यमान है। बहुत दिनोंसे उनकी कामना थी कि वे इस अवसरपर यहाँ उपस्थित रहते और गुरुदेवसे मिलनके इस पर्वसे जुड़े एक-एक शब्द, एक-एक गति और भंगिमाका रस-पान करते और इस सबकी स्मृति अपने मनमें संजोकर रखते। लेकिन ईश्वरकी इच्छा कुछ और थी। फलतः वे अपनी वाणी तकका पूरा-पूरा उपयोग करनेमें असमर्थ, रुग्णावस्थामें कलकत्तामें पड़े हुए हैं। प्रभुसे मेरी यही प्रार्थना है कि वह उन्हें शीघ्र ही स्वस्थ करके फिर हमारे पास भेजे या कम-से-कम उनकी आत्माको शान्ति दे, और आप सबसे भी मैं अपनी इस प्रार्थनामें शरीक होनेको कहूँगा।

मैं जानता हूँ कि गुरुदेवके मनमें मेरे प्रति कितना प्रेम है।[3] मुझे १९१५ के आश्रमके वे प्रारम्भिक दिन याद हैं जब मेरे पास सिर छिपानेको कहीं जगह नहीं थी। तो यहाँ मैं कोई अजनबी या अतिथिकी तरह नहीं आया हूँ। शान्ति-निकेतन मेरे लिए मेरे घरसे भी बढ़कर रहा है। यही वह स्थान है जहाँ १९१४ में मेरे दक्षिण आफ्रिकी परिवारके सदस्योंको, मेरे इंग्लैंडसे भारत पहुँचने तक,

१. प्यारेलालके "द शान्तिनिकेतन पिलग्रिमेज" शीर्षक लेखसे उद्धृत। शान्तिनिकेतनमें गांधीजी का स्वागत करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा: "मुझे आशा है कि अपने आश्रममें आपका स्वागत करते हुए हम यथासम्भव प्रेमकी मूक अभिव्यक्तिके नियमको निभा पायेंगे और उसे शब्दाडम्बरका रूप नहीं ग्रहण करने देंगे। महान व्यक्तियोंको श्रद्धाके सुमन अर्पित करनेके लिए स्वभावतः सादगीकी भाषा अपेक्षित होती है, और आपके समक्ष ये चन्द शब्द हम आपको केवल यह बतानेके लिए निवेदित कर रहे हैं कि हम आपको अपना मानते हैं, समग्र मानवताका मानते हैं।

"इस समय हमारे सामने ऐसी समस्याएँ उपस्थित हैं जो मनुष्यके भवितव्यको तिमिराच्छन्न कर रही हैं। हम जानते हैं कि ये समस्याएँ आपके मार्गमें बाधारूप हैं और हममें से कोई भी इनसे मुक्त नहीं है। अब हम कुछ क्षणोंके लिए अपने-आपको इस उथल-पुथलसे अलग ले चलें और आपके इस मिलनको हृदयके सहज सरल मिलनका ऐसा पर्व बनायें जिसकी स्मृतियाँ उस समय भी अक्षुण्ण रहें जब हमारी मार्गच्युत राजनीति की समस्त नैतिक उलझनें दूर हो जायें और हमारे प्रयत्नोंका चिरन्तन मूल्य उजागर हो।"

२. सी० एफ़० एन्ड्रयूज

३. यह और इससे आगेका वाक्य अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

हार्दिक आतिथ्य प्राप्त हुआ था और मुझे भी यहाँ प्रायः एक महीने तक आश्रय मिला। आप सबको अपने सामने पाकर मेरा मन उन दिनोंकी स्मृतियोंसे भर गया है। मुझे इस बातका बड़ा दु:ख है कि मैं अधिक दिन नहीं रुक सकता। कर्तव्यका प्रश्न है। अभी हालमें अपने एक मित्रको लिखे पत्रमें मैंने शान्ति-निकेतन और मलिकन्दाकी अपनी इस यात्राको तीर्थयात्रा कहा है। इस बार शान्ति-निकेतन मेरे लिए सचमुच शान्तिका निकेतन साबित हुआ है।[1] मैं राजनीति की सारी चिन्ता और भारको पीछे छोड़कर यहाँ केवल गुरुदेवके दर्शन और आशीर्वाद के लिए आया हूँ। मैंने अक्सर अपनेको एक कुशल भिखारी कहा है, लेकिन मेरे भिक्षापात्रमें गुरुदेवके आजके आशीर्वादसे अधिक मूल्यवान कोई भी वस्तु नहीं डाली गई है। मैं जानता हूँ कि उनके आशीर्वाद तो सदा मेरे साथ हैं। लेकिन आज मुझे यह सौभाग्य मिला है कि वे स्वयं आशीर्वाद देनेके लिए उपस्थित हैं। और इस बातसे मेरा मन आनन्द-विभोर हो उठता है। जहाँ सम्बन्ध प्रेमका हो, वहाँ शब्द कुछ काम नहीं आते।[2]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०, और अमृत बाजार पत्रिका, १८-२-१९४०

२६१. पत्र : अमृत कौरको

शान्तिनिकेतन
१८ फरवरी, १९४०

प्रिय पगली,

तुम्हारे तार मिले। मेरे हाथमें ज्यादा चोट तो नहीं आई थी। वह महात्मा महात्मा क्या जिसकी जरा-सी चोटको भी खूब बढा-चढाकर न बताया जाये। यह भी गलत है कि लोगोंने कहीं कोई विरोध दिखाया।

अन्तरात्माके निर्देशपर जो प्रतिबन्ध[3] लगाया था, वह तो जहाँ तक मैं देख पाता हूँ, सही ही साबित हुआ है।

तुमने इसे बहुत ही ठीक भावनासे ग्रहण किया, जिससे मुझे बड़ी राहत मिली। आशा है, तुम स्वस्थ होगी और सारा परिवार परिवारकी तरह बरत रहा होगा। मैं चाहता हूँ, तुम हर छोटी-मोटी बातमें रुचि लो, लेकिन बिना अपने को आगे किये। तुम्हें सर गिबीके ढंगसे रुचि लेनी चाहिए। "दाहिने

१. अमृत बाजार पत्रिका के अनुसार, इससे पहले जब अखबारवालोंने गांधीजी से सवाल पूछने चाहे तो उन्होंने कहा: "मैं यहाँ शान्तिकी खोजमें आया हूँ, उसमें बाधा न डालें।"

२. यह वाक्य अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

३. देखिए "निर्देश : आश्रमवासियोंके लिए", पृ० २४६।

हाथको भी मालूम न होने दो कि बायाँ हाथ क्या करता है,"[१] या कि यह सूत्र वाक्य "बायें हाथ" से आरम्भ होता है?

जब आनन्द उठानेका मौका आया, तभी बेचारा बाबलो बीमार हो गया। म[हादेव]को आज उसे कलकत्ता ले जाना पड़ा।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६६) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ६४७५ से भी

२६२. पत्र: वालजी गो० देसाईको

शान्तिनिकेतन
१८ फरवरी, १९४०

चि० वालजी,

आशा है वहाँ तुम्हारा सब काम-काज ठीक चल रहा होगा। पूर्ण स्वस्थ हुए बिना सेगाँव कदापि मत छोड़ना। सबके साथ जी खोलकर मिलना-जुलना, घूमने जाना और बातचीत करना। तुम्हारी मालिश ठीक हो रही होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४९०) से; सौजन्य: वालजी गो० देसाई

२६३. पत्र: कुँवरजी खेतसी पारेखको

शान्तिनिकेतन
१८ फरवरी, १९४०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा सब काम-काज ठीक चल रहा होगा। सुशीलाबहन वहाँ है, इसलिए मैं तुम्हारी कोई चिन्ता नहीं करता। तुम्हारी देखभाल अच्छी तरह होती होगी। अ[मतुल] स[लाम] तुम्हारी चिन्ता कर रही थी।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३४) से। सी० डब्ल्यू० ७१४ से भी; सौजन्य: नवजीवन ट्रस्ट

१. सेंट मैथ्यू, ६, ३

२६४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

शान्तिनिकेतन
१८ फरवरी, १९४०

चि० कृष्णचंद्र,

तुमारा पेर अच्छा हो जाना चाहिये। बालकृष्ण अच्छे होंगे। मेरा अच्छा चल रहा है। हाथको कुछ कहने योग्य, इजा[1] हुई ही न थी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३८) से

२६५. सन्देश : शान्तिनिकेतनको

शान्तिनिकेतन
१८ फरवरी, १९४०

पूरे शान्तिनिकेतनको मालूम है या मालूम होना चाहिए कि बड़ो दादा[2] के साथ मेरा क्या नाता था। वह एक गहरा आध्यात्मिक सम्बन्ध था। मृत्युसे वह सम्बन्ध समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए कहनेकी जरूरत नहीं कि आगामी समारोहमें मेरा हृदय पूर्ण रूपसे आपके साथ होगा।

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२०९) से; सौजन्य : विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

१. चोट
२. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई, द्विजेन्द्रनाथ

२६६. भाषण : श्रीनिकेतनमें[1]

१८ फरवरी, १९४०

मौन बहुत अच्छा भाषण है। जब मैं पहले-पहल आया था तबसे यहाँ बहुत विकास हुआ है।[2] शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन दोनोंने जो प्रगति की है उसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। प्रभुसे मैं यही कामना करता हूँ कि आप आसपासके क्षेत्रोंके गरीब ग्रामवासियों और संथालोंकी सेवा करें।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बजार पत्रिका, १९-२-१९४०

२६७. बातचीत : शान्तिवादियोंके साथ[3]

[१९ फरवरी, १९४० या उससे पूर्व][4]

[प्र० :] मान लीजिए किसी प्रबल पशुबलवाले व्यक्तिके आगे कोई असहाय महसूस करे तो क्या उसके लिए सिर्फ उतनी शक्तिका इस्तेमाल करना उचित नहीं होगा जितनी कि उस व्यक्तिको अन्याय करनेसे रोकनेके लिए जरूरी है?

[उ० :] हाँ, वह उचित तो होगा; लेकिन जिसमें सच्ची अहिंसाकी वृत्ति है उसे असहाय महसूस करनेकी जरूरत नही है। हिंसाके आगे असहाय महसूस करना अहिंसा नही, कायरता है। अहिंसाको कायरतासे गडमड नही करना चाहिए।

१. गांधीजी विश्वभारतीका ग्रामोद्धार केन्द्र देखने गये थे। वे जब वहाँसे चलने लगे तो उनसे दो शब्द कहनेका अनुरोध किया गया।

२. इससे पहले गांधीजी ने कहा था: "यह जगह तो इतनी बदल गई है कि पहचानी नहीं जाती।"

३. प्यारेलालके "'एन इंटरल्यूड ऐट शान्तिनिकेतन" शीर्षक विवरणसे उद्धृत। शान्तिवादियोंकी एक मण्डलीने जिनमें कुछ क्वेकर मित्र भी शामिल थे, डॉ० अमिय चक्रवर्तीके नेतृत्वमें गांधीजी से मुलाकात की थी।

४. यह विवरण "रेलगाड़ीमें, १७ फरवरी, १९४०" तिथि-पंक्तिके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। स्पष्ट ही १७ तारीख भूलसे लिखी गई है, क्योंकि बातचीत "शान्तिनिकेतनमें गांधीजी के दो दिन ठहरनेके दौरान" हुई थी और वे वहाँ १७ से १९ फरवरी तक ठहरे थे।

मान लीजिए कोई आपके पास आकर आपको अपमानित करता है, तो क्या आप उस तरह अपनेको अपमानित होने देंगे?

अगर आप अपमानित महसूस करें तो अपने सम्मानकी रक्षाके लिए उस उद्दण्ड व्यक्तिके मुँहपर आपका तमाचा जड़ देना या आप अन्यथा जो-कुछ आवश्यक समझें वह करना बिलकुल उचित होगा। अगर आप कायर नही हैं तो उस परि-स्थितिमें आपका बल-प्रयोग करना स्वाभाविक होगा। लेकिन अगर आपने अहिंसाकी भावना को हृदयंगम कर लिया है तो आपमें अपमानित होनेकी अनुभूति नही होनी चाहिए। उस हालत में आपके अहिंसक व्यवहारको देखकर वह उद्दण्ड व्यक्ति या तो खुद शर्मिन्दा हो जायेगा और आपको अपमानित नही कर पायेगा या फिर आपकी अहिंसा-वृत्ति आपको ऐसा बना देगी जिससे उस उद्दण्ड व्यक्तिके दुर्व्यवहारका आपपर कोई असर ही नही होगा और फलत: वे अपमानजनक शब्द उसके मुँह तक सीमित रह जायेंगे और आप उनसे अछूते रहेंगे।

मान लीजिए कोई पागल आदमी हत्या करनेपर उतारू है या आप किसी उपद्रवके मुकामपर स्थितिके बहुत बिगड़ चुकनेपर पहुँचते हैं। क्रुद्ध भीड़ नियन्त्रणसे बाहर हो चुकी है और आप असहाय महसूस करते हैं। तब आप उस पागल आदमीको रोकनेके लिए बल-प्रयोगको या दूसरी स्थितिमें क्रुद्ध भीड़को तितर-बितर करनेके लिए, उदाहरणार्थ अश्रुगैसके प्रयोगको उचित मानेंगे या नहीं?

ऐसी कार्रवाईको मैं क्षम्य तो सदा मानूँगा, लेकिन यह नही कहूँगा कि अहिंसाकी दृष्टिसे यह उचित है। मैं यह कहूँगा कि आपमें इतनी अहिंसा-वृत्ति नही थी कि आप विशुद्ध अहिंसात्मक तरीकेका भरोसा करके चलते। यदि आपमें होती तो आपकी उपस्थिति-मात्र उस पागलको शान्त कर देती। अहिंसाको कार-गर बनानेकी शक्ति भी खुद अहिंसामें ही छिपी होती है। यह कोई यान्त्रिक प्रणालीसे काम करनेवाली चीज नही है। 'मैं बल-प्रयोग नही करूँगा', यह कहने-भरसे आप अहिंसक नही बन जाते। आप अहिंसक हैं, इसकी अनुभूति आपके हृदयमें होनी चाहिए। आपके हृदयमें अन्यायीके प्रति प्रेम और दयाका उमड़ता हुआ स्रोत होना चाहिए। जब आपके हृदयमें ऐसी भावना होगी तो वह तदनुकूल किसी क्रियाके रूपमें अभिव्यक्त होगी। वह क्रिया मात्र एक संकेत, या एक दृष्टि अथवा मौन भी हो सकती है। लेकिन जैसी भी होगी, वह अन्यायीके हृदयको अवश्य द्रवित करेगी और अन्यायको रोक देगी।

अहिंसाके आदर्शकी दृष्टिसे देखें तो अश्रुगैसका उपयोग उचित नही है। लेकिन यदि मैं देखूँ कि मैं ऐसी कठिन स्थितिमें पड़ गया हूँ कि इसके प्रयोग बिना किसी असहाय युवतीकी रक्षा नही कर सकता अथवा किसी क्रुद्ध भीड़को पागलपनका काम करनेसे नही रोक सकता तो मैं इसके प्रयोगको दुनियाके तमाम विरोधके बावजूद उचित ठहराऊँगा। यदि ईश्वरके सामने पेश होनेके दिन ईश्वरके समक्ष मैं यह दलील दूँ कि अपने अहिंसाके सिद्धान्तसे बँधे होनेके

कारण मैं इन अवाछनीय घटनाओंको घटित होनेसे रोक नही पाया, तो वह मुझे क्षमा नही करेगा ! अहिंसा स्वतः क्रियाशील है। पूर्णतः अहिंसक व्यक्ति स्वभावसे ही हिंसाका प्रयोग करनेमें असमर्थ होता है, या यो कहिए कि उसके लिए हिंसाका कोई उपयोग ही नही होता। उसकी अहिंसा सभी परिस्थितियोंमें सभी प्रयोजनोंके लिए पर्याप्त होती है।

इसलिए जब मैं कहता हूँ कि बलका प्रयोग चाहे जिस परिमाण और चाहे जिस परिस्थितिमें हो, गलत है तो मेरे इस कथनको सापेक्ष ही मानिए। एक शाश्वत सिद्धान्तमें अपवादोंकी सम्भावनाको स्वीकार करनेके बदले, मेरे लिए यह कहना बहुत ठीक होगा कि मुझमें पर्याप्त अहिंसा नही है। इसके अलावा, जब मैं इस सिद्धान्तका कोई अपवाद स्वीकार करनेको तैयार नही होता तो उससे मुझे अहिंसाकी पद्धतिमें पूर्ण प्रवीणता हासिल करनेके लिए भी प्रेरणा मिलती है। मैं पंतजलिकी इस सूक्तिमें अक्षरशः विश्वास करता हूँ कि अहिंसाके सामने हिंसा स्वयंमेव तिरोहित हो जाती है।[1]

क्या कोई राज्य विशुद्ध अहिंसक पद्धतिसे अपना काम चला सकता है?

सरकार तो पूर्णतः अहिंसक नही बन सकती, क्योंकि वह समग्र जनताकी प्रतिनिधि होती है। आज मैं ऐसे स्वर्णयुगकी कल्पना नही कर रहा हूँ। पर मैं यह अवश्य मानता हूँ कि ऐसा समाज बन सकता है जो मुख्य रूपसे अहिंसक हो। और मैं उसीको साकार करनेके लिए काम कर रहा हूँ। ऐसे समाजका प्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार कम-से-कम बल-प्रयोग करेगी। लेकिन कोई भी सच्ची सरकार अराजकता नही फैलने दे सकती। इसीलिए मैंने कहा है कि मुख्य रूपसे अहिंसापर आधारित सरकारके अधीन भी एक छोटे-से पुलिस-दलकी आवश्यकता रहेगी।[2]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०

२६८. साम्प्रदायिक समस्या-सम्बन्धी निर्णय

अपने सक्षिप्त बंगाल-प्रवासमें मुझपर साम्प्रदायिक समस्या-सम्बन्धी निर्णयके विषयमें किये जानेवाले सवालोंकी झड़ी लग गई है। मुझसे कहा गया है कि न कांग्रेस कार्य-समितिने और न मैंने ही इसपर अपनी कोई पक्की राय जाहिर की है। कार्य-समितिका निर्णय तो उसके रिकार्डमें दर्ज है और प्रकाशित भी हो चुका है।[3] उसने उक्त निर्णयको न तो स्वीकार किया है, न अस्वीकार

१. योगसूत्र
२. देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० २१५-१९।
३. कांग्रेस कार्य-समितिने इसके सम्बन्धमें जून, १९३४ में बम्बईमें प्रस्ताव पास किया था। देखिए खण्ड ५८, परिशिष्ट १।

ही किया है। जबरदस्ती लादी हुई किसी चीजकी न तो स्वीकृति हो सकती है, न अस्वीकृति हो सकती है। किसी कैदीको जो सजा दी जाती है उसमें उसकी स्वीकृतिकी जरूरत नही पड़ती। उसकी अस्वीकृति निरर्थक है, क्योंकि जल्द ही उसका भ्रम दूर हो जायेगा। यह साम्प्रदायिक समस्या-सम्बन्धी निर्णय भारतकी भलाईके खयालसे उसपर नही थोपा गया है, बल्कि भारतपर ब्रिटिश साम्राज्यकी पकड़को मजबूत करनेके लिए थोपा गया है। इसलिए कहा जा सकता है कि कार्य-समितिने भी उसे उतना ही स्वीकार या अस्वीकार किया है जितना कि बंगालने। हाँ, इतना फर्क जरूर है कि बगालकी तरह कार्य-समितिने उसके खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं किया है।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मै इस निर्णयको बिलकुल नापसन्द करता हूँ। इससे भारतके किसी भी पक्षका लाभ नही हुआ, सिर्फ अंग्रेजोंको फायदा पहुँचा है। अगर मुसलमान इस खयालमे भूले हो कि उन्हें इससे लाभ पहुँचा है तो जल्द ही उनको मालूम हो जायेगा कि वे भारी भूल कर रहे थे। अगर इस निर्णयको बदलने, और जैसा इसे बनाना चाहिए वैसा बनानेकी मुझमें शक्ति होती, तो मै इसी क्षण वैसा कर डालता। लेकिन मुझमें ऐसी कोई शक्ति नही है। वह शक्ति तभी पैदा हो सकती है जब हममें एकता हो। बगाल अन्यायका एक ज्वलन्त उदाहरण है। दो प्रमुख जातियोंके बीच जबरदस्त यूरोपीय मताधिकारका पच्चड घुसेड़ देनेके किसी न्यायपूर्ण कारणकी मै कल्पना नही कर सकता। इन यूरोपीयोकी तादाद नगण्य-सी है। उनके हित ब्रिटिश संगीनों द्वारा सुरक्षित है। फिर उन हितोको विधानमण्डलमें प्रविष्ट कराके और ज्यादा मजबूत बनानेकी क्या जरूरत है? बिना मताधिकारके भी उनका प्रतिनिधित्व समझमें आता है ताकि वे विधानमण्डलके सामने अपना पक्ष रख सकें। पर जब तक उनके हित ब्रिटिश सगीनोसे सुरक्षित है, तब तक विधानमण्डलमें उन्हें जरूरतसे ज्यादा प्रतिनिधित्व देना बिलकुल अन्यायपूर्ण जबरदस्ती है। अगर यूरोपीय मताधिकार हटा लिया जाये तो बगालके विधानमण्डलका सारा नक्शा ही बदल जायेगा। आज यह विधानमण्डल जनता यानी वास्तविक मतदाताओंके प्रति पूर्णत. जिम्मेदार नही है। विधानमण्डलका यूरोपीय गुट न तो हिन्दुओंको चैन लेने देता है न मुसलमानोंको। मुसलमान मन्त्री भले ही इस खयालसे खुश हो लें कि यूरोपीय मतके बलपर उनकी स्थिति सुरक्षित है। व्यक्तिके नाते चाहे वे भले ही सुरक्षित हों, पर ऐसे लोगोंके किसी गुटको जो तादादमें नगण्य है, यदि प्रजासत्तात्मक विधानमण्डलमें अपने वोटके बलपर जिधर चाहे उधर उलट-फेर कर देनेकी कृत्रिम निर्णायक शक्ति दे दी जाये तो राष्ट्रीय हित कभी सुरक्षित नही रह सकते। इस बातसे विधान मण्डलका प्रजासत्तात्मक स्वरूप ही नष्ट हो जाता है।

इस तरह 'निर्णय' में जो बुराई है उसे मै जानता हूँ। पर मै यह नही जानता कि सिवाय धीरजके साथ प्रयत्न करनेके इससे और किस तरह निपटा जाये। हाँ, इतना मैं जानता हूँ कि जब तक यह 'निर्णय' कायम है तब तक

सच्चा स्वराज नहीं हो सकता। बंगाल इस अन्यायका एक ज्वलन्त उदाहरण है। असम इसका दूसरा उदाहरण है। 'निर्णय' की बारीकीसे जाँच की जाये तो मालूम होगा कि राष्ट्रीय दृष्टिसे इसमें कोई अच्छाई नहीं है। अब या तो ब्रिटिश सरकार अपने अन्यायका मार्जन करते हुए इसे बदल सकती है, अथवा फिर सफल विद्रोहके जरिये इसे बदला जा सकता है। मैं यह भी जोड़नेवाला था कि इनके अलावा आपसी समझौतेके जरिये भी इसे बदला जा सकता है। पर अगर हिन्दू और मुसलमान राजी हो जायें, तो भी यह असम्भव मालूम पड़ता है। इसके लिए यूरोपीयोंको भी राजी करना पड़ेगा, जिसका अर्थ है कि उनको स्वार्थ-त्याग के लिए राजी होना पड़ेगा, और यह बात राजनीतिके लिए अनहोनी-सी है। यूरोपीयों में अगर स्वार्थ-त्यागकी भावना होती तो भारतमें राष्ट्रीय हितके विरुद्ध किसी पृथक् यूरोपीय हितका अस्तित्व ही नहीं होता। और ऐसा साहसी व्यक्ति शायद ही कोई हो जो यह दावा करे और यह सिद्ध करनेकी आशा करे कि भारतमें राष्ट्र-हितके विरुद्ध कोई यूरोपीय हित नहीं है।

कलकत्ता जाते हुए रेलगाड़ीमें, १९ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-२-१९४०

२६९. पुर्जा: आनन्द तो० हिंगोरानीको

१९ फरवरी, १९४०

ऐसे ग्रन्थ[1] के साथ विस्तृत सांकेतिका होनी चाहिए। दूसरे संस्करणमें भी वह नहीं है। तुम्हें सांकेतिका तैयार करके अलगसे बेचनी चाहिए।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा आनन्द तो० हिंगोरानी

१. आनन्द तो० हिंगोरानी द्वारा तैयार किया गया *टु द स्टुडेंट्स* नामक गांधीजी के लेखों का एक संग्रह

२७०. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

कलकत्ता जाते हुए
१९ फरवरी, १९४०

प्रिय गुरुदेव,

विदा होते समय आपने जो मनको छू लेनेवाला पुर्जा[1] मेरे हाथमें धर दिया था वह मेरे हृदयमें उतर गया है। नि.सन्देह विश्वभारती राष्ट्रीय संस्था है। इसमें भी शक नहीं कि वह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था भी है। उसके स्थायित्वमें कोई सन्देह न रह जाये, इसके लिए हम सबको जो-कुछ करना है, वह सभी-कुछ मैं करूँगा। आप इस ओरसे निश्चिन्त रहें।

आपने दिनमें एक घंटा सोनेका जो वचन दिया है, मैं आशा करता हूँ कि आप उसका निष्ठापूर्वक पालन करेंगे।

यों तो मैंने सदा ही शान्तिनिकेतनको अपना दूसरा घर माना है, किन्तु इस बार वहाँ जाकर मैं और भी घनिष्ठ हो गया हूँ।

आदर और प्यार सहित,

आपका
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५३५) से

२७१. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्‌को

रेलगाड़ीमें
१९ फरवरी, १९४०

चि० सुन्दरम्,

तुम्हारा तार इतनी देरसे मिला कि समयपर तार नहीं दे सका। इसलिए जो बच्चा यज्ञोपवीत[2] धारण करनेका व्रत ले रहा है, उसे इस पत्रके माध्यमसे आशीर्वाद भेज रहा हूँ।

सबको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१८०) से

१. देखिए "मैंने शान्तिनिकेतनमें क्या देखा", २६-२-१९४०।

२. मूल पाठमें 'उपनयन' शब्द है जो स्पष्टः भूल है। 'उपनयन' का अर्थ यज्ञोपवीत-संस्कार होता है।

२७२. तार : एगथा हैरिसनको

कलकत्ता
[१९ फरवरी, १९४०][1]

एगथा हैरिसन
२ क्रैनबोर्न कोर्ट
अल्बर्ट ब्रिज रोड
लन्दन

एन्ड्रयूजका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधर रहा है। हर तरहकी सावधानी बरती जा रही है। उसकी बहनको सूचित करो।[2]

गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२१०) से; सौजन्य : विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

२७३. वसीयतनामा

मैंने आजसे पहले जो वसीयतें की हैं, उन्हे रद्द माना जाये, और इसे मेरा आखिरी वसीयतनामा माना जाये।

मैं किसी भी वस्तुको अपनी मिल्कियत नही मानता। लेकिन चलनमें अथवा कानूनी तौरपर मेरी जो भी मिल्कियत मानी जाये, फिर वह चल हो या अचल, तथा मेरे द्वारा लिखी गई अथवा भविष्यमें लिखी जानेवाली प्रकाशित तथा अप्रकाशित, पुस्तकों और लेखो आदिके कापीराइटके अधिकार, इन सबका वारिस मैं नवजीवन संस्थाको नियुक्त करता हूँ। उसका 'डिक्लेरेशन ऑफ ट्रस्ट' मैंने तथा श्री मोहनलाल मगनलाल भट्टने तैयार करके तारीख २६-११-१९२९ को[3] रजिस्टर कराया था, तथा उस संस्थाके श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल, श्री महादेव हरिभाई देसाई तथा श्री नरहरि द्वारकादास परीख फिलहाल ट्रस्टी है।

पूर्वोक्त पुस्तकोंकी बिक्रीसे तथा उनके कापीराइटके अधिकारोंसे जो वास्तविक

१. मलिकन्दा जाते हुए गांधीजी १९ फरवरीको कलकत्तामें रुके थे। तभी वे सी० एफ० एन्ड्रयूजको देखने गये थे।

२. एगथा हैरिसनने तारपर यह टिप्पणी दी: "बहनके पास भेजा। प्रेसको सूचना दी २०-२-४०"।

३. देखिए खण्ड ४२, पृ० २२१-२५।

लाभ हो, उसका २५ प्रतिशत नवजीवन संस्था मेरे मरनेके बाद हरिजन-सेवाके लिए हरिजन सेवक संघ को देगी।

इसी वसीयतनामेके अनुसार व्यवस्था करनेके लिए मैं महादेव हरिभाई देसाई तथा नरहरि द्वारकादास परीखको अपना निर्वाहक नियुक्त करता हूँ। मृत्यु अथवा और किसी कारणसे इनकी अनुपस्थितिमें अन्य लोगोंको व्यवस्था करनेका अधिकार होगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

मलिकन्दा, २० फरवरी, १९४०

गवाह :

प्यारेलाल नैयर, २०-२-४०

किशोरलाल घ० मशरूवाला, २०-२-४०

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६८६) से; सौजन्य · नवजीवन ट्रस्ट

२७४. भाषण : खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीमें[1]

मलिकन्दा
२० फरवरी, १९४०

अगर आप शान्ति रखेंगे तो मेरी आवाज आप तक पहुँच जायेगी। अभी मैंने कई लोगोंको 'गांधीवाद ध्वंस हो' चिल्लाते हुए सुना। जो गाधीवादका ध्वंस करना चाहते हैं उनको ऐसा कहनेका पूरा-पूरा अधिकार है। जो लोग मेरा भाषण सुनने आये हैं वे कृपा करके खामोश रहें। उनको इन विरोधी नारोंसे चिढ़ना नही चाहिए और न 'गाधीकी जय'के नारे लगाकर उनका जवाब ही देना चाहिए। अगर आप अहिंसक हैं तो आपको ऐसे नारे चुपचाप सुन लेने चाहिए। अगर गाधीवादमें असत्यकी बू है तो उसका अवश्य ध्वस होना चाहिए। अगर उसमें सत्य है तो उसके नाशके लिए लाखो या करोड़ो आवाजें लगाई जानेपर भी उसका नाश नही होगा। जो लोग गाधीवादके विरुद्ध कुछ कहना चाहते हो उन्हें वैसा कहनेकी आजादी दीजिए। इससे कोई नुकसान नही होगा। उनसे किसी प्रकारका द्वेष या वैर न कीजिए। जब तक आप अपने विरोधियोंको शान्तिसे निवाह नही सकेंगे तब तक अहिंसाको सिद्ध नही कर सकेंगे। अगर सच पूछा जाये तो खुद मैं ही नही जानता कि गांधीवादका क्या अर्थ है। मैंने देशको कोई नई चीज नही दी है। हिन्दुस्तानमें जो-कुछ पहले ही से मौजूद था उसे केवल एक नया रूप दिया है। इसीलिए उसे गांधीवाद कहना गलत होगा।

१. सवेरे मलिकन्दा पहुँचते ही गांधीजी ने प्रदर्शनीका उद्घाटन किया था।

हम यहाँ किसी राजनैतिक कामके लिए नही आये है। गाधी सेवा-संघका जो प्रधान उद्देश्य है, उसे पूरा करनेके तरीकोंका विचार करनेके लिए हम यहाँ आये है। जो लोग विरोधी नारे लगानेके लिए आये है उनसे मै प्रेमसे कहता हूँ कि वे जो-कुछ कहना चाहते है अवश्य कहें और अपने विचार प्रकट करें। हम एक-दूसरेको शत्रु क्यों समझें? हम दोनोंमें मतभेद है; लेकिन इससे क्या? हम सब हिन्दुस्तानको प्यार करते है, उसकी आजादी चाहते है; इसलिए हमें एक-दूसरेका मित्र होना चाहिए। एक पक्ष एक रास्ता लेता है, दूसरा पक्ष दूसरा ही रास्ता पसन्द करता है, लेकिन हमारा मकसद तो एक ही है? फिर दुश्मनी क्यों रहे?

आप इतनी बड़ी संख्यामें यहाँ चले आये। लेकिन आपने व्यवस्थित और अनुशासनमें रहकर मुझे यहाँ तक आने दिया। मै आशा करता हूँ कि आपका अनुशासन दूसरोंके लिए अनुकरणीय होगा। अगर हम व्यवस्थित रहना न सीखेंगे तो करोड़ोंका स्वराज्य नही पा सकेंगे।

अब मै प्रदर्शनी खोलता हूँ। मैंने अब तक उसे देखा नही है। उचित तो यह होता कि मै उसे पहले देख लेता।

इस प्रदर्शनीमें जो चीजें रखी गई है उनका एक खास उद्देश्य है। यह प्रदर्शनी आपको बतलायेगी कि हिन्दुस्तानमें ऐसे कौन-कौनसे उद्योग है जिनके पुनरुज्जीवन से देशका कल्याण होगा। आजका मनुष्य जड़ और निर्जीव यन्त्रोंपर अभिमान करने लगा है। लेकिन मेरी तो यह श्रद्धा है कि मनुष्य रूपी यन्त्र सबसे बढ़िया है। इस सृष्टिमें मनुष्यसे बढ़कर अद्‌भुत और सूक्ष्म यन्त्र दूसरा कौन-सा है? उसे स्वयं ईश्वरने बनाया है। मनुष्यकृत जड़ यन्त्रमें चैतन्य नही होता। ऐसे यन्त्रोंपर लोग क्यों अभिमान करते है, यह मेरी समझमें नहीं आता। मनुष्यरूपी यन्त्रमें यह विशेषता है कि उसमें चैतन्य है। मनुष्य अपने दो हाथ और दस उंगलियोसे अपनी बुद्धिके जोरपर जो चमत्कार कर सकता है वह जड़ यन्त्र नही कर सकते। मै तो यह चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानके हर एक हिस्सेमें रहनेवाला हर एक पुरुष और हर एक स्त्री यह समझ ले कि उसके हाथ और बुद्धिमें कितनी कला भरी हुई है।

ईश्वरने हमें हाथ इसलिए नही दिये है कि हम आपस में लड़ें। उसने तो एक-दूसरेकी सेवा और सहायता करनेके लिए हमें हाथ दिये है। उसने बुद्धि इसलिए दी है कि हम एक-दूसरेके जीवनकी उपयोगी वस्तुएँ बनानेके लिए उन हाथोंका उपयोग करें। जो लोग अपने हाथोंका और बुद्धिका उपयोग इस प्रकार करेंगे वे ही शान्तिके मार्गपर चल सकते है। वे ईश्वरको अपने समयका बराबर हिसाब दे सकेंगे।

इतना कहकर मै प्रदर्शनीका उद्‌घाटन करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि आप हजारोंकी संख्यामें उसे देखकर उससे लाभ उठायेंगे।

गांधी सेवा-संघके छठे अधिवेशन (मलिकन्दा-बंगाल) का विवरण, पृ० २-३

२७५. भाषण : गांधी सेवा-संघमें–१[1]

मलिकन्दा
२१ फरवरी, १९४०

भाइयो और बहनो,

भाई जाजूजीने आपसे कह दिया है कि अगर मैं मनाही नही करता तो किशोरलाल आज आग्रहपूर्वक यहाँ आनेवाले थे। आपसे मैं जो-कुछ कहूँगा उसे वे सुनना चाहते थे। मैंने उनसे कह दिया कि तुम्हें उसके सुननेकी जरूरत नही है। लेकिन उनका जी नही मानता। इसलिए उन्होंने कहा कि मैं 'लाउड स्पीकर' के जरिये अपने कमरेमें पड़े-पड़े सुन लूँगा। कल जब उनका भाषण पढ़ा जा रहा था तो वे सुन सकते थे। उसी तरह आज मेरा भाषण भी सुन लेंगे। आज मैं कुछ दुविधामें पड़ा हूँ। सामान्यत. ऐसा नही होता — जो शब्द मैं बोलना चाहता हूँ, वे सहजमें अपने-आप ऐसे ही आ जाते हैं। आज ऐसा होगा या नही, यह मैं नही जानता। मैं अब भी विचार तो कर रहा हूँ कि आप लोगोंको क्या सलाह दूँ। लेकिन अभी तक मुझे ठीक-ठीक पता नही है कि मैं आप लोगोंको कौन-सी निश्चित सलाह दूँगा।

पहले प्रफुल्लबाबू[2] ने जो-कुछ कहा उसके विषयमें दो शब्द कहना चाहता हूँ। उन्होने जो कहा वह अगर दरअसल उनके हृदयकी ध्वनि है तो मैं कहूँगा कि उन्होने मेरी बात ठीक-ठीक समझ ली है। मैंने 'अगर' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर सावधानीके कारण किया है। मैं मनुष्यके हृदयको थोड़े ही पहचान सकता हूँ। अगर उन्होंने केवल भावनावश, जोशमें आकर शब्दोंका उच्चारण किया है, उसके अर्थको अगर वे घोट-घोटकर पी नही गये हैं, तो उससे किसीका कोई फायदा नही होगा। लेकिन मुझे विश्वास और आशा है कि उन्होंने केवल उच्चारण मात्र नही किया है, बल्कि अपनी श्रद्धाका दर्शन हमें कराया है। मैं यह भी मानता हूँ कि गाधी सेवा-संघके सदस्य अगर अपनी-अपनी दूसरी प्रवृत्तियाँ छोड़कर चरखेको ही लेकर बैठ जायें तो भी हम हिन्दुस्तानकी आजादी पा सकेंगे। ये विचार तो मेरे हैं; मगर उन्हें प्रकट करनेकी मेरी हिम्मत नहीं है। प्रफुल्लबाबूने बिना हिचके उन्हें प्रकट करनेकी हिम्मत की।

उन्होंने कह दिया कि दो सौ या तीन सौ आदमियोंसे काम नही चलेगा, कम-से-कम एक लाख आदमी चाहिए। लेकिन यहाँ तो तीस कोटि मनुष्य

१. अधिवेशन प्रातः ७-३० बजे आरम्भ हुआ। किशोरलाल मशरूवालाके अस्वस्थ होनेके कारण श्रीकृष्णदास जाजूने अधिवेशनका सभापतित्व किया।

२. प्रफुल्लचन्द्र घोष

पड़े हैं। तीस कोटिमें एक लाख तो बिन्दु-मात्र है। परन्तु यदि एक लाख मनुष्य भी विश्वाससे काम करे तो बड़ी शक्ति पैदा कर सकते हैं। यह श्रद्धाकी बात है, सिद्ध करनेकी नही। इसका आँकड़ोंसे हिसाव नही किया जा सकता। मैं आँकड़ोंका भी हिसाव कर रहा हूँ। चरखेसे हिन्दुस्तानका कपड़ेका सवाल कैसे हल किया जा सकता है, यह आँकड़ोंसे दिखाना पड़ेगा। उसके लिए आँकड़े तैयार करनेको कृष्णदास गाधीसे कहा है। वह सारा हिसाब मैं कर रहा हूँ। और दूसरोंसे करा रहा हूँ। हिसाब जब पूरा हो जायेगा तो उसे प्रकाशित भी करूँगा।

लेकिन प्रफुल्लबाबूने जिस बातपर जोर देकर कहा है, वह यह है कि हर एक कार्यकर्ता कम-से-कम एक लाख गज सूत [प्रति वर्ष] काता करे। यह प्रश्न केवल आँकड़े और हिसावका नही है। उन्होंने तो यह भी कहा है कि उनका यह विश्वास है कि चरखा अहिंसाका प्रतीक है। इसी विश्वाससे अगर श्रद्धालु आदमी काम करे तो उसका चेप (छूत) फैल जाता है। रोगका भी छूत फैलता है, लेकिन वह नाशक होता है। श्रद्धाका छूत पोषक होता है। रोगके जब पख आ जाते हैं तो हमारे दिलमें कुछ भीति पैदा हो जाती है, क्योकि वह अगर फैल जाये तो तबाह कर देता है। लेकिन अगर चरखेका छूत सबको लग जाये तो आजादी हासिल हो जायेगी, इसमें कोई सन्देह नही।

मुझे ऐसा लगा कि हम जो चन्द आदमी यहाँ बैठे हैं वे शायद ही इस बातको मानते हों। शायद मेरा सन्देह सही है। वे सोचते हैं कि "क्या सिर्फ चरखेसे ही स्वराज्य मिल सकेगा"? लेकिन यह 'सिर्फ' बाद में निकल जाता है। उसी चरखेमें से एक बुलन्द शक्ति पैदा हो जाती है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि चरखा वह मध्यवर्ती सूर्य है जिसके गिर्द अन्य सब तारागण घूमते हैं। ओक नामके वृक्षका बीज कितना छोटा होता है। लेकिन जहाँ एक बार उसकी जड़ जमी कि उसका विस्तार फैल जाता है और वह कितनी ही वनस्पतियोंको आश्रय देता है। अगर चरखेकी वृत्ति फैल गई तो सिर्फ चरखा ही थोड़े रहनेवाला है? उसकी छायामें असंख्य उद्योगोंको स्थान मिलेगा। उसकी सुगन्धसे सारी दुनिया सुगन्धित हो जायेगी।

लेकिन इन सब बातोंसे बढ़कर यह बात है कि चरखा अहिंसाका प्रतीक है; और जो भी इसे ग्रहण करे उसे अहिंसामें विश्वास करना ही पड़ेगा। यही बात उस दिन सर नीलरत्न सरकारने कही। मैं उनसे मिलने गया था। वे अर्धांग वायुसे बीमार पड़े थे। मेरा हाथ पकड़कर रोते रहे। उन्होंने चरखेकी बात की। कहने लगे 'अगर हममें चरखेके प्रति श्रद्धा पैदा हो जाये तो देशका उद्धार होगा।' मैं जानता हूँ कि जिन्हें व्याधि हो जाती है उनमें भावुकता आ जाती है, लेकिन फिर भी सर नीलरत्न जो कह रहे थे उसमें सत्य था। उसका सार यह है कि अभी मेरी अहिंसा अधूरी है। उसे पूरा करनेमें आप सब हिस्सा लेते हैं। प्रफुल्लबाबूने जो कहा उसका भी यही अर्थ है। उस श्रद्धासे यदि आप चरखेको

स्वीकार कर लेंगे तो संघकी हस्ती सार्थक हो जायेगी।[1]

किशोरलाल आज्ञा भग करके आये हैं।[2]

हाँ, तो अब मैं 'हम संघका क्या करें?' इस मुख्य विषयपर आता हूँ। इस विषयमें मैंने किशोरलालसे बात की। हम अन्तिम निर्णयपर आ गये, ऐसा तो मैं नही कह सकता। मैं कोई नई बात आपके सामने रखना चाहता हूँ, ऐसा भी नही। लेकिन आपको कौन-सी निश्चित सलाह दूं, इसके विषयमें मेरी बुद्धि स्पष्ट नही हुई है। अगर आपके साथ यहाँ बैठकर इस तरह विचार करते-करते बात स्पष्ट हो गई, तो मेरे मुँहसे स्पष्ट निर्णय निकल जायेगा। नही तो मेरी वाग्धारा सूख जायेगी। यह कोई पद्मा नदीकी धारा थोड़े ही है,[3] जो जहाँ जाती है वहाँ रास्ता निकाल लेती है?

प्रश्न यह आता है कि 'हम गांधी सेवा-सघ को रखेंगे या नही'? और दूसरा सवाल उसीमें से पैदा होता है कि 'अगर रखें तो उसका रूपान्तर करके रखें, या ऐसा ही।'

इन दोनों बातोका समर्थन आज मेरे पास है। यदि हम गांधी सेवा-संघकी पूर्णाहूति कर दें तो कुछ खोनेवाले नही हैं। और यदि उसमें परिवर्तन करें तो आमूल परिवर्तन करना होगा। लेकिन संघका बदला हुआ रूप क्या हो, इसके बारेमें मैं अभी कोई निश्चित राय नही बना सका हूँ। इसलिए पहले मैं आपको यह बताऊँगा कि हम अगर गांधी सेवा-संघको नाबूद कर दें तो कोई हानि नही होगी। हो सकता है कि मेरे विचार मेरे डरपोकपनसे पैदा होते हैं। लेकिन मुझे ऐसा नही लगता। सो कैसे? यही मैं आपको समझाता हूँ।

वे लोग जो यह कहते हैं कि 'गाधीवादका ध्वंस हो' उसमें अर्थ नही है, ऐसा नही है। अगर गांधीवादका अर्थ सिर्फ यन्त्रकी तरह चरखा चलाना ही हो तो उसका ध्वंस होना ही इष्ट है। वह जो प्रफुल्लबाबूने एक लाख गज सूत कातने की बात कही है उसका महत्त्व मैंने आपको समझाया, परन्तु हमें उसका केवल शब्दार्थ नही लेना चाहिए। मैं उसकी दूसरी बाजू भी जानता हूँ। सिर्फ चरखा चलानेसे देशका कल्याण नही होगा। पुराने जमानेमें भी कई पंगु (अपाहिज) और स्त्रियाँ चरखा चलाती थी। तो भी वे गुलामीमें डूबी हुई थी। कौटिल्य[4] ने जो लिखा है कि 'उस जमानेमें चरखे चलाये जाते थे', उसीके साथ-साथ उन्होने यह भी कहा है कि 'राजदण्डके डरसे चरखा चलवाया जाता था'। चरखा चलानेवाले अपनी इच्छासे नही, बल्कि मजबूरीसे, बेगारके तौरपर, चरखा चलाते थे। औरतें चरखा कातनेके लिए हारबन्द (एक कतारमें) बैठती तो थी; लेकिन वह सब जबरदस्तीका

१. इतनेमें किशोरलाल मशरूवाला अधिवेशन स्थलपर पहुँच गये।

२. इसपर किशोरलाल मशरूवालाने कहा कि मैं डाक्टरकी अनुमतिसे आया हूँ, क्योंकि बिस्तर-पर लेटे-लेटे मुझे भाषण सुनाई नहीं पड़ता था।

३. अधिवेशन पद्मा नदी के तटपर हुआ था।

४. 'अर्थशास्त्र' के लेखक

मामला था। ये सब लिखी हुई बात है; मैं केवल सुनी हुई बात नहीं कर रहा हूँ। अगर हमारा मतलब फिरसे उसी चरखेको जारी करनेसे है, तब तो उस चरखेका ध्वंस ही होना चाहिए और उस चरखेका महत्त्व माननेवाले गांधीवादका भी ध्वंस होना चाहिए।

अगर हमारी अहिंसा वीरकी अहिंसा न होकर कमजोरकी अहिंसा है, अगर वह हिंसाके सामने झुकती है, हिंसाके आगे लज्जित और बेकार हो जाती है, तो ऐसे गांधीवादका भी ध्वंस होना चाहिए। उसका ध्वंस होने ही वाला है। हम अंग्रेजोंसे लड़े, मगर उसमें हमने अशक्त लोगोंके शस्त्रके रूपमें अहिंसाका प्रयोग किया। अब हम उसे बुलन्द, शक्तिशालीका शस्त्र बनाना चाहते हैं। अहिंसा एक हद तक अशक्तोंका शस्त्र भी हो सकती है। लेकिन एक हद तक ही। परन्तु वह बुजदिलोंका — कायरोंका — शस्त्र तो हरगिज नहीं हो सकती। अगर कोई बुजदिल होकर अहिंसाको [अपना] लेता है तो अहिंसा उसका नाश करेगी।

हमें यह देखना चाहिए कि हम चरखा चलाते हैं तो क्या उसमें से हममें अहिंसाकी शक्ति पैदा होती है? [सम्मेलनमें सूत्रयज्ञके समय] आप दो से चार तक चरखा चलाते है, क्या उस वक्त आप उसका अहिंसासे अनुसन्धान करते हैं। क्या उसमें से आपकी अहिंसाकी शक्ति नित्य बढ़ती रहती है? कोई दो घंटेमें छह सौ गज काते या एक घंटेमें छह सौ गज काते, उसका महत्त्व तो है। लेकिन सबसे महत्त्वका सवाल तो यह है कि क्या कातनेसे हमारी अहिंसा-शक्ति बढी? हमारा अहिंसाका दर्शन बढ़ा? अगर हमारा चरखा हमारी अहिंसाको नित नया बल नही देता, हमारा अहिंसाका दर्शन नही बढ़ाता तो मैं कहता हूँ कि 'गांधीवादका ध्वंस हो।' वे लोग ध्वंसके नारे पागलपनमें लगा रहे हैं, रोषमें आकर कह रहे है। लेकिन मैं तो बुद्धिपूर्वक कह रहा हूँ। यह बात आपसे एक ऐसा आदमी कहता है जो सारासार [का] विचार कर सकता है, जिसका मस्तिष्क काम करता है, और जिसने सफलतापूर्वक वकालत भी की है। मैं यह साक्षी देता हूँ कि हम यदि अहिंसासे अनुसन्धान करके ध्यानपूर्वक चरखा नही चलाते है तो गांधीवादका अवश्य ध्वंस हो जाना चाहिए। क्योंकि फिर उसमें कोई शक्ति नही रह जाती।

एक दृष्टान्त देता हूँ। एक आदमी है, वह माला तो फेरता है लेकिन उसका दिल ऊपरको जाता है, नीचेको जाता है, चारों ओर भटकता फिरता है; तो वह माला उसको गिराती है। वह झूठा आश्वासन लेता है कि मैं माला फेरता हूँ। वहाँ मालाका ईश्वरसे अनुसन्धान नही है। वह कितना ही माला फेरता रहे, ज्यों-का-त्यों रहेगा। उसकी उँगलियोंमें कष्ट होना शुरू हो जाता है। उसकी माला निकम्मी ही नही है। नुकसानदेह भी है। क्योंकि उसमें दंभ है। माला अनेक धर्मोमें अनादि कालसे नाम-स्मरणका साधन रही है। लेकिन जहाँ ध्यान और अनुसन्धान नही है वहाँ दंभ ही रह जाता है। इस तरह माला फेरनेवाला ईश्वरको और जगतको भी धोखा देता है।

यही बात चरखेपर लागू है। चरखेमें मैंने जो शक्ति पाई वह यदि आप न पायें; जैसी मेरी श्रद्धा है वैसी अगर आपकी न हो; तो वह चरखा ही आपका

नाश करेगा। आप गांधी सेवा-संघके सदस्य हैं, इसलिए एक लाख गज सूत कात लेंगे। धोत्रे[1] अपने विवरणमें हिसाब देगा कि इतना-इतना सूत हुआ। आप कहेंगे प्रगति है। मैं कहूँगा, नहीं। आपको अभिमान हो जायेगा। मैं कहूँगा कि अगर जड़वत् माला फेरनेमें दंभ है तो यन्त्रवत् चरखा चलानेमें आत्मवंचना है, और आपको अभिमान होने लगेगा इसलिए दंभ भी है। अगर ऐसा न होता तो चरखा कातनेवाली लाखों स्त्रियोंको हम संघका सदस्य बना लेते। लेकिन हमारे दिलमें यह विचार कभी आया ही नहीं।

जब आप अनुसन्धानसे कातेंगे, चरखेके तमाम सहचारी भावोंको समझ-बूझकर ज्ञानपूर्वक कातेंगे, तब यह आपकी बुद्धिको सतेज बनायेगा। उससे आपके हृदयको बल मिलेगा। आपकी बुद्धिका और हृदयका बल दिनों-दिन बढ़ता ही रहेगा। आपका सूत अच्छा निकलने लगेगा। आप विचार करने लगेंगे कि चरखेसे स्वराज्य कैसे मिलेगा? आपको हर दिन नई-नई बातें दिखाई देने लगेंगी। और इस तरह चरखा आपको आपके अभीष्टके अधिकाधिक निकट पहुँचाता रहेगा। चरखा अहिंसाका प्रतीक है, इसका क्या अर्थ है, इसका मैंने थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराया। प्रफुल्लबाबूने जो-कुछ कहा उसमें क्या चीज भरी है, इसका भी थोड़ा-सा स्पष्टी-करण किया। अब मैं इस बातको लम्बाना नहीं चाहता। मुझे डर है कि जितने आदमी यहाँ आये हैं उनमें अहिंसाका ऐसा बल नहीं है।

इसलिए हम अपना निरीक्षण करें। क्या हम वैसे अहिंसावादी हैं जैसा कि हमें होना चाहिए? क्या हम राग-द्वेषके अधीन होकर हिंसा नहीं करते? जिनके साथ हम बैठे हैं, जिनके साथ हमें काम करना है, क्या उनके लिए हमारे दिलमें कोई प्रेम है? मैं अपना आत्म-परीक्षण इसी प्रकार करता हूँ। मेरा विश्वास है कि मैं खुद वैसा अहिंसक नहीं हूँ। हाल ही में, कोई चार-पाँच दिनकी बात है, अपने व्यवहारसे मुझे पता चला कि मेरे बरतावमें भी अनजानेमें असत्य आ जाता है। सेगाँवमें मैं अक्सर मौन रहता हूँ। मौन रहनेसे मुझे शान्ति मिलती है। दिलसे एक बोझ-सा उतर जाता है। अगर मुझसे कोई हमेशाके लिए मौन रहनेके लिए कहे तो मैं नाचूँगा। सेगाँवमें अक्सर मुझे जो कहना होता है उसे मैं लिख देता हूँ। लेकिन इतने दिनके अनुभवके बाद भी मैं कहता हूँ कि मुझमें असत्यने स्थान लिया है। अहिंसाके खयालसे मनुष्य दूसरेको खुश करना चाहता है। धर्म भी कहता है कि सत्य भी बोलो और प्रिय भी बोलो। लेकिन यह बड़ा कठिन प्रयत्न है। मधुर बोलनेके प्रयत्नसे भी असत्य आ जाता है। केवल लोगोंको अच्छा लगे इसलिए उन्हें खुश करनेको कुछ कहना धर्म नहीं है। शास्त्रकारोंका जो वाक्य है उसकी मैं विस्तृत व्याख्या या स्पष्टीकरण नहीं कर रहा हूँ। उन्होंने तो ठीक ही कहा है कि सत्य भी बोलो और प्रिय भी बोलो। लेकिन हम उनका पूरा वाक्य कहाँ समझते हैं? हम तो दूसरोंको खुश करनेके लिए केवल प्रिय ही बोलते हैं। यह धर्म नहीं है। सेगाँवमें कोई आना चाहता है।

१. रघुनाथ श्रीधर धोत्रे, गांधी सेवा-संघके मन्त्री तथा न्यासी

मान लीजिए प्रेमाबहन आना चाहती है। वह मुझसे पूछती है, 'मैं आ जाऊँ?' उसे प्रसन्न करनेके लिए मैं कह देता हूँ 'आ सकती है।' इसका विचार नहीं करता कि वहाँ उसको कोई काम है या नहीं? मुझे आप वैद्य, नेता या शिक्षक, चाहे जो भी समझें; तो भी मेरा यह धर्म है कि इस प्रकारका असत्य न करूँ। जहाँ सेवाकी जरूरत नहीं होती, इच्छा भी नहीं होती, वहाँ केवल दूसरोंकी मर्जी के लिए सेवा ले लेता हूँ। परसों शान्तिनिकेतन जाना था। वहाँ वसुमती[1], अनसूया और दूसरे लोग आना चाहते थे। मैंने सोचा यह तो मेरी तीर्थयात्रा है। वहाँ बहुत लोगोंको क्यों ले जाऊँ? लेकिन मुझे संकोच हुआ। उनको खुश करनेके लिए मैंने कहा, शान्तिनिकेतनसे पूछ लिया जाये। महादेवने तार देकर पूछा। वे बेचारे इनकार थोड़े ही कर सकते थे? उन्होंने कहा जितने आओगे सबका स्वागत है। लेकिन मैं अगर सबको ले जाता तो बेवकूफ बनता। क्योंकि न शान्तिनिकेतन-वालोंको शान्ति रहती और न मुझे ही। इस प्रकार उनके आतिथ्यपर बोझ डालना मेरा धर्म नहीं था। मेरा कर्तव्य था कि मैं अपने साथियोंसे कह देता कि मैं उन्हीं को ले जाऊँगा जिनकी कि मुझे अपने कामके लिए जरूरत है। लेकिन मैं बुजदिल बन गया। मेरी सत्यवादिता भी गई और अहिंसा भी गई। परन्तु अन्तमें मैंने निडर बनकर सबको लिख दिया कि मैं सिर्फ इने-गिने लोगोंको ही साथ ले जाऊँगा?[2] मेरे सौभाग्यसे मेरे साथी मेरे इस प्रकार आगा-पीछा करनेको सह लेते हैं।

अगर मुझको नेतागिरी करना है, करोड़ोंको रास्ता दिखाना है, उन्हें अपने पीछे दरियामें फेंक देना है, तो मुझे लज्जाके कारण असत्य नहीं करना चाहिए। अगर मैं ऐसा करूँगा तो नेतागिरीके लिए नालायक ठहरूँगा। अहिंसाकी नीतिका यह आवश्यक अंग है। मैंने चरखेको उस नीतिका व्यक्त प्रतीक माना है। आप मुझसे पूछेंगे कि यह सब तुमने कहाँसे पाया? मैं कहूँगा, सेवाके अनुभवसे। १९०८ से मेरे दिलमें यह बात जमी हुई थी। उस समय तो मैं करघे-चरखेका भेद भी नहीं जानता था। लेकिन बीज-रूपमें चरखेसे मुझे प्रेरणा मिली। शायद आपको पता नहीं होगा कि मैंने 'हिन्द स्वराज्य' किसके लिए लिखा। अब तो वे मर गये हैं इसलिए उनका नाम बतानेमें भी हर्ज नहीं है। मैंने सारा 'हिन्द स्वराज्य' अपने मित्र डॉ० प्राणजीवन मेहता[3] के लिए लिखा। उनमे जो चर्चा हुई वही उसमें

१. वसुमती पंडित

२. देखिए "निर्देश: आश्रमवासियोंके लिए", पृ० २४६।

३. बम्बईके ग्रान्ट मेडिकल कॉलेजसे स्वर्ण पदक प्राप्त करनेवाले डॉ० मेहता, बैरिस्टर-ऐट-लॉ भी थे। वे गांधीजी के 'सबसे पुराने मित्र' थे। अक्तूबर, १८८८ में सर्वप्रथम गांधीजी लन्दनमें उनसे मिले थे और उसी दिनसे वे गांधीजी के 'पथ-प्रदर्शक तथा सलाहकार' बन गये थे। वे एक ऐसे परोपकारी व्यक्ति थे कि 'कोई भी सुपात्र गरीब उनके द्वारसे कभी भी खाली हाथ नहीं लौटा'। फीनिक्स सेटलमेंटके दिनोंसे ही उन्होंने गांधीजी को उनकी प्रवृत्तियोंके लिए आर्थिक सहायता देना शुरू किया और जब तक जिन्दा रहे उन्हें मदद देते रहे। उनका देहान्त अगस्त, १९३२ में हुआ। उन्होंने **एम० के० गांधी एंड द साउथ आफ्रिकन प्रॉबलम** नामक पुस्तक भी लिखी थी। गांधीजी ने उन्हें जो श्रद्धांजलि दी, उसके लिए देखिए, खण्ड ५०, पृ० ३४४-४५।

आई है। एक महीना मैं डॉ० मेहताके साथ रहा। वे मुझे प्यार करते थे लेकिन मेरी बुद्धिकी उनके पास कोई कीमत नहीं थी। वे मुझे मूर्ख और भावुक मानते थे। लेकिन अनुभवसे मुझमें कुछ हिम्मत आ गई थी। कुछ वाचा भी आ गई थी। डॉ० मेहता कितने बुद्धिशाली आदमी थे? उनसे बुद्धिवाद करनेकी शक्ति मुझमें कहाँ? लेकिन मैंने अपनी बात उनके सामने रखी। उनके हृदयपर वह असर कर गयी; उनके विचार बदल गये। तो मैंने सोचा इसे लिख ही क्यों न डालूँ? उनसे जैसा संवाद हुआ वैसा ही उसमें लिखा है। मैंने उस समय तक चरखेका दर्शन ही नहीं किया था। चरखेकी बात तो आगे मेरे स्वतन्त्र प्रकरणोंमें आई है। लेकिन तो भी वहाँ मैंने आखिरी दलील यही दी थी कि अहिंसात्मक संस्कृतिका आधार सार्वत्रिक कताई ही हो सकती है। यानी उस वक्त भी मेरे दिलमें चरखे से अहिंसाका अनुसन्धान तो था। 'यह चरखेकी बात कहाँसे आई?' एक ही जवाब है, 'परमात्माने ही भेजी'। चरखा चलानेसे हममें सत्यपर चलनेकी हिम्मत आनी चाहिए। मैं चरखा चलाता हूँ तो पागल-सा हो जाता हूँ। ईश्वरने मुझे सेवाकी दूसरी शक्तियाँ न दी होती तो मैं चरखा चलाते बैठा रहता और उसीसे सन्तुष्ट रहता। जेठालाल[1] ने एक बार मुझसे कहा भी था कि 'तुम्हारी चरखेमें इतनी श्रद्धा केवल वाचामें ही है, आचारमें नहीं है। अपना सारा समय चरखा चलानेमें ही क्यों नहीं लगाते?' मैं कह चुका हूँ कि लोगोंकी सेवाके कामकी दूसरी शक्तियाँ भी मुझमें हैं, उनका भी उपयोग कर लेता हूँ। इसलिए सारा समय चरखेको नहीं देता। जेठालाल कह सकता है कि मेरी श्रद्धा भी अधूरी है। उसका यह कहना उचित होगा कि मैं दूसरी सारी शक्तियोंका चरखेमें हवन क्यों नहीं देता? यह सच है कि सारी चीजें चरखेसे ही निकली हैं। ग्रामोद्योग संघ उसीसे निकला है। अस्पृश्यता-निवारण और नई तालीम उसीके फल हैं। मेरी प्रवृत्तियोंकी ग्रहमालाका वही सूर्य है। उसके संशोधनके लिए ही मैं अपनी दूसरी शक्तियोंका उपयोग करता हूँ। भरसक प्रयोग भी करता रहता हूँ।

इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि चरखेमें जो अर्थ भरे हैं उनको न समझकर अगर आप चरखा चलाते हैं तो या तो उसे पद्मा नदीमें फेंक दीजिए, या जलाकर जाइए। तब सच्चा गांधीवाद प्रकट होगा। सिर्फ चरखा चलाने तक ही जो गांधीवाद सीमित है उसके लिए तो मैं भी कहूँगा कि 'गांधीवाद का ध्वंस हो'।

इस परसे मेरे दिलमें यह विचार आता है कि अगर हम यहाँसे गांधी सेवा-संघकी पूर्णाहुति करके चले जायें तो क्या अच्छा नहीं होगा? इसमें खेदकी कोई बात नहीं है—शायद हमारा बाह्य रूप लोप हो जानेपर ही सच्चा गांधीवाद प्रकट होगा। सीताके दृष्टान्तमें यही बात है। जब वह मायामृग आ गया तो रामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा, तुम्हें तो लोप हो जाना है।[2] वास्तविक

१. जेठालाल गोविन्दजी सम्पत

२. गोस्वामी तुलसीदासकृत **रामचरितमानस**, अरण्य काण्ड। वाल्मीकिकृत **रामायण** में असली सीताके लोप होने और माता सीताके प्रकट होनेकी बात नहीं है।

सीता लुप्त हो गईं। उसकी जगह उसकी छाया-मात्र रह गई। उसीसे सारी रामलीला हुई है। क्या हम भी इसी तरह लोप न हो जायें? फिर जिन्हें सत्य और अहिंसाकी साधना करनी होगी वे करते रहेंगे। शायद इसीसे हममें सच्ची शक्ति पैदा होगी। इसलिए, क्या यह बेहतर नही है कि हम संघको बन्द कर दें? नही तो मुझे डर है कि हम संघके बाह्य रूपसे अपना काम निकाल लेंगे और उसके मूल हेतुको भूल जायेंगे। इस प्रकार हम अपने दिलको और संसारको धोखा देंगे। इस तरह यह संघ अगर चलता रहा और अपनी सारी उम्र-भर आप सब लोग उसमें काम करते रहे और उसीमें एकके बाद एक मेरे साथी मरते गये और इतने दिन मैं अकेला ही जिन्दा रहा, तो उनके विषयमें मैं यह नही कह सकूँगा कि उनका जीवन सार्थक था। मैं तो यही कहूँगा कि मेरी साधनामें इतनी अपूर्णता रह गई।

आप कहेंगे कि हमारी साधना पूर्ण भले ही न हो लेकिन संघसे हमें अपनी साधनामें शक्ति और सहारा मिलता है। संघ न रहा तो हमें यह बल और मार्ग-दर्शन कहाँसे मिलेगा? मुझे डर है कि इससे आप परावलम्बी और दुर्बल बन जायेंगे। यह बड़ा भयंकर परिणाम होगा। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि आप इस आश्रयको छोड़ दें। अगर संघसे सान्त्वना और सहायता पाये बिना हमारा गुजारा नही हो सकता तो इसे जरूर बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकारका संघ आपकी ताकत बढ़ा नही सकता। आपको खुद अपने बलपर सत्य और अहिंसाकी साधना करनी चाहिए।

संघमें हम अपने आदर्शोपर कहाँ तक चलते है, यह भी तो सोचिए। यही देखिए। सम्मेलनपर कितना खर्च होता है? प्रफुल्लबाबूको बुलाकर पूछा 'भोजनपर कितना खर्च करते हो?' कहते हैं, 'पाँच आनेसे ज्यादा नहीं खिलाऊँगा'। घीका पानीके जैसा उपयोग करते हैं। मैं जिस तरह कह रहा हूँ, उसमें कुछ विनोद और अतिशयोक्ति अवश्य है। शायद मुझे वस्तुस्थितिका पता भी न हो। आप मेरे शब्दोंके पीछे जो भाव है उसीका विचार करें।

मेरा मतलब यह है कि हम अभी गरीबीके आदर्शसे बहुत दूर है। हमारा जीवन अभी काफी भोगमय है। हम अपने दिलको फ़ुसलाते हैं कि स्वास्थ्यके लिए इतना दूध-घी खाना जरूरी है। तभी सेवाकी शक्ति बनी रहेगी। मैं अपने दिलको फ़ुसलाता हूँ कि बकरीका दूध नही पिऊँगा तो मेरी कार्यशक्ति कम हो जायेगी। इस तरह हम अस्वाद व्रतसे विचलित होते हैं; भोगी बन जाते हैं। प्रफुल्ल-बाबूने हम सबको यहाँ बुलाया। लोगोंसे पैसे माँगे। लोगोंमें मेरे नामके प्रति कुछ मोह है। पैसे आ गये तो इन्होंने सोचा कि हमें खिला दें। ऐसा सब चलता है। हम उसे स्वीकार भी करते हैं। सार्वजनिक पैसेका उपयोग करनेका यह सही तरीका नही है। हमें तो उस पैसेका उपयोग एक कंजूसके जैसा करना चाहिए। कोई भी चीज व्यर्थ नही करनी चाहिए। हमारे नजदीक सिर्फ पैसा ही सम्पत्ति नही है। हर एक उपयोगी चीज असली सम्पत्ति है। पानी भी हम फेंक नही सकते। अगर एक प्याला पानीसे काम चलता है तो दो क्यों लें? इस

प्रकार हर एक बातमें हमारी विशिष्ट दृष्टि होनी चाहिए। केवल कोई चीज स्वादिष्ट लगती है इसलिए हम जरूरतसे ज्यादा नही खा सकते है। हम अहिंसा और सत्यका पालन इस तरह नही कर सकते।

दूसरा उदाहरण लीजिए। कल शामको क्या हुआ? 'गांधीवादका ध्वंस हो' का घोष हुआ। मारपीट भी हुई। दो-चार आदमी पिट गये। मै आपसे पूछता हूँ कि आपके दिलपर क्या असर हुआ? हम दो सौ आदमी यहाँ इस तरह पिटकर मर जायें तो आपके दिलमें रोष पैदा होगा या दया? सिर्फ मर जानेसे हम परीक्षामें उत्तीर्ण नही होगे। हमारे दिलमें मारनेवालोंके लिए दया होनी चाहिए। प्रेम तो वहाँ ठीक नही होगा। जो अत्याचार करते हैं उनको हम यह शाप नही देंगे कि उनका सत्यानाश हो जाये। लेकिन उनसे प्रेम भी कैसे कर सकते हैं? उनपर दया करेंगे। वे अज्ञानी हैं इसलिए ईश्वरसे प्रार्थना करेंगे कि वह उन्हें ज्ञान दे। हम तितिक्षासे उनके आघात सह लेंगे। हमारे हृदयसे दयाके उद्‌गार निकलेंगे। सिर्फ लोगोको सुनानेके लिए नही, बल्कि सच्चे दिलसे हम उनपर दया करेंगे। कोई मुझपर हमला करता है, लेकिन मुझे उसपर गुस्सा नही आता। वह मारता जाता है, मै सहता जाता हूँ, मरते-मरते भी मेरे मुखपर दर्दका भाव नही बल्कि हास्य है, मेरे दिलमें रोषके बदले दया है, तो मै कहूँगा कि हमने वीर-पुरुषोकी अहिंसा सिद्ध कर ली। मै आपसे पूछता हूँ कि जो आपको गाली देते रहते है, क्या उनके प्रति आपके दिलमें दया है? समाजवादी और दूसरे सब 'वादी' जो हमारा विरोध करते है, क्या उनके लिए हमारे दिलमें दया है? अहिंसामें इतनी ताकत है कि वह विरोधियोको मित्र बना लेती है और उनका प्रेम प्राप्त कर लेती है। मुझे डर है, और मेरे पास ऐसे सबूत है कि हम ऐसे नही है। हममें से जो ऐसे नही हैं उन्हें प्रामाणिकतासे संघसे हट जाना चाहिए। सभी एकसे हो तो सभीको हट जाना होगा। शायद मुझे भी कहना पड़े कि मै भी इस लायक नही हूँ। तब तो यहाँसे सघकी पूर्णाहुति ही करके जाना अच्छा है। हम किशोरलालभाई पर सघके सचालनका बोझ क्यों रखें? क्या हमें उन्हें यहाँ दफन करना है? उन्हे रात-दिन संघकी चिन्ता रहती है। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। वह खोत्रे पड़ा है। कामके बोझके नीचे दबा जा रहा है। क्यों न हम उनको उस बोझसे मुक्त कर दें?

मै आपसे कहता हूँ कि सघका विसर्जन करनेमें हमारी कोई हानि नही है। सघमें अगर कुछ है तो उसके तीन सौ सदस्य उसकी तीन सौ शाखाएँ हो जाती है। और इस प्रकारकी शक्ति अगर हमारे सदस्य नही दिखा सकते तब तो कहना पड़ेगा कि संघमें कुछ था ही नही। तब फिर उसे कायम रखनेसे क्या लाभ? मेरी तो यही सलाह है कि हम उसकी पूर्णाहूति करके यहाँसे जायें।

हम यह कदम डरके मारे नही उठा रहे है। अपने बल संग्रह करनेके लिए उठा रहे हैं। क्योकि अगर हम यह काम शुद्ध बुद्धिसे करेंगे तो हमारी शक्ति बढ़ेगी और आज हमारी हस्तीसे जो डर पैदा हो रहा है वह नही रहेगा। हमारी

शक्ति अगर किसीके दिलमें डर पैदा करती है या हिंसाकी प्रेरणा करती है तो वह अहिंसक नहीं हो सकती। उस हालतमें हम संघका आश्रय लेंगे तो हमारा कल्याण नहीं होगा। वह हमें अहिंसक शक्ति नहीं दे सकता। और न हम उसकी शक्ति बढ़ा सकते हैं। क्योंकि हम तो खुद ही आश्रय चाहते हैं। अगर हम पैसेके लिए या सामुदायिक बलके लिए संघका आश्रय चाहते हों तो हम सत्य और अहिंसाके अभ्यासके लिए निकम्मे हैं। अगर हमारे लिए भगवानका आश्रय काफी नहीं है तो हमारे हिसाबमें गलती है।

जब हम संस्थाका इस बाह्य रूपसे अन्त कर देंगे तो हमारे अन्दर नम्रताकी शक्ति पैदा होगी। अंग्रेजीमें एक कहावत है 'जो यह जानता है कि मैं कुछ नहीं जानता वही दरअसल ज्ञानी है।' जिस दिन हम इतने नम्र हो जायेंगे कि अपने-आपको शून्यवत् बना लेंगे उसी दिन हमारी शक्ति बढ़ेगी। फिर तो गांधी सेवा-संघ एक दूसरी ही अनोखी अव्यक्त संस्था बन जायेगी। वह सीता जो लुप्त हो गई, अमर है। आज तक हम उसका नाम लेकर पावन होते हैं। वह सीता जिन्दा है। छायाकी सीता मर गयी। अगर हम दरअसल शक्तिशाली होना चाहते हैं तो संघका विसर्जन कर दें। यह भी शक्तिका काम है। इसके लिए भी हिम्मत और बल चाहिए।

अगर आपमें यह शक्ति नहीं है तो आप संघको दूसरा रूप दे दें। मेरी यह स्पष्ट राय है कि आप राज-प्रकरणको भूल जायें। मैं वही शख्स हूँ जिसने हुदलीमें[1] कहा था कि हम राज-प्रकरणमें चले जायेंगे। मैंने ही आपको राज-प्रकरण में खींचा था, उसके लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं है। उस समयकी परिस्थितिमें वही सलाह ठीक थी। अगर हम राज-प्रकरणमें न पड़ते तो आज जो अनुभव हमें हुआ है वह कभी न होता। किशोरलालने मुझे कई उदाहरण सुनाये कि हम किस तरहसे इस छोटेसे संघमें पदों और अधिकारोंके लिए लड़े। इसका यह अर्थ है कि हममें अहिंसाकी शक्ति नहीं है, काफी मात्रामें सत्य भी नहीं है। अगर हम अपने राजनैतिक व्यवहारमें सत्य और अहिंसाकी शक्ति प्रकट करते तो इतिहास कुछ दूसरा ही हो जाता।

हमारे अन्दर आगे बढ़नेकी, नेता बननेकी, महत्त्वाकांक्षा रही। लेकिन नेता बननेका असली अर्थ हम नहीं समझ सके। 'मैं सबसे बड़ा नेता बन जाऊँ' इसका अर्थ यह है कि 'मैं सबसे बड़ा सेवक बन जाऊँ'। सेवा भी उसकी करो जिसे सेवाकी जरूरत है। जिसे सेवाकी जरूरत नहीं है उसकी सेवा करना ढोंग है। वह तो दंभ है।

मेरी ऐसी ही सेवा की जाती है। यह भी मेरे असत्यका ही एक उदाहरण है। मैं अपने असत्य कहाँ तक गिनाऊँ। उनकी तो लम्बी फेहरिस्त हो जायेगी। मुझे पैर दबवानेकी जरूरत नहीं होती। दूसरोंको खुश करनेके लिए नाहक पैर दब-

१. १९३७ में; देखिए खण्ड ६५, पृ० १०९-१५।

वाता हूँ। मेरा पतन होता है। वह समझता है कि उसे पुण्य मिलता है। लेकिन वह भी पुण्य नही ले जाता। थोड़ा-सा भोग ले जाता है। यह सेवा नही है।

इसी तरह हम अधिकार और सत्ताके द्वारा सेवाका दभ करते है। लोगोंको सिर्फ दिखाना चाहते है कि हम सेवामें लगे है। इसलिए हमारा धर्म तो यह है कि हम राज-प्रकरणको भूल जायें। तब तक भूल जाये जब तक देशके सभी दल हमसे आकर यह न कहें कि 'तुम आओ, तुम्हारी जरूरत है। तुम्हारे वगैर काम नही चलता।' तव तक हम बैठे-बैठे सेवा करते रहें। नालायक और निठल्ले वनकर बैठे रहें ऐसा नही। आखिर जो भिन्न-भिन्न संस्थाओंके अधिकार-पदोंपर चुने जाते है ऐसे आदमी एक लाख भी तो नही होगे। हम लाखमें से एक न बनें। हम तो तीस कोटिमें से एक बनें। हम तीस कोटिमें से एक लाखमें क्यों जायें? एक लाखके लिए हम शून्य हो जायें। तीस कोटिमें घुल-मिल जाना वहुत वड़ी बात है।

वल्लभभाईका ऐसा खयाल है कि शायद संघके अधिकांश सदस्य राज-प्रकरणमें है। अगर वे सव छोड़ दें तो संघमे कितने आदमी रह जाते है? चार-छह आदमी शायद रह जायें। मै नही जानता कि कितने सदस्य राज-प्रकरणमें पड़े है। मैंने धोत्रेसे फेहरिस्त माँगी है। लेकिन उससे मेरी सलाहमे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मै यह कब कहता हूँ कि वे सव राज-प्रकरणसे भाग जायें? अगर वे वहाँ पैसे और सत्ताके मोहसे या प्रतिष्ठाके लिए रहते हों तो उन्हें निकल जाना चाहिए। अगर सेवाभावसे रहते हों तो रहें। लेकिन इसकी परीक्षा कौन करेगा? मै नही कर सकता, न किशोरलाल ही कर सकता है। वह कोई भगवान थोड़े ही है? किसीके दिलका हाल वह क्या जाने? मै राज-प्रकरण छोड़नेकी बात नहीं कह रहा हूँ। मै तो यह कह रहा हूँ कि जो राज-प्रकरणमें है वे वहाँ अपनी हिम्मत पर रहें। सघके आश्रयकी अपेक्षा न रखें। इसलिए जो राज-प्रकरणमें है, या जाना चाहते है, वे संघ छोड दें। अगर सभी ऐसे है तो संघ अपने-आप खत्म हो जाता है। दो-चार ही वच जाते है तो भी संघको कायम रखनेकी जरूरत नही है।

हरएक सदस्य जो-कुछ करे अपनी जवावदारीपर करे। मै तो निश्चय-पूर्वक कहता हूँ कि आपको गांधी सेवा-संघको समेट ही लेना चाहिए। उसके वाह्य रूपका लोप ही कर देना चाहिए। हम चाहे काग्रेसमें रहें, या रचनात्मक कार्यमें रहें, अपनी जिम्मेवारीपर रहें। खामख्वाह क्यों गांधीको, या गाधीवाद जैसी कोई चीज हो तो उसको, वदनाम करें? संघके रहनेसे यह व्यर्थका अभिमान पैदा होता है कि हम दूसरोसे अच्छे है। दरअसल हम दूसरोंसे किसी वातमें अच्छे नही है। जैसे दूसरे है वैसे ही हम है — कुछ कम या अधिक मात्रामें। इस तरहकी तुलना करना हमारे लिए लज्जाकी वात है। हमको तो दूसरोंमें घुल-मिलकर उनकी सेवा करनी है। दूधमें मिश्री जिस तरह मिल जाती है उसी तरह हम सवमें घुल जायें। हम जो-कुछ है अपने दिलमें रहें, अपने सिद्धान्तोंपर नम्रतासे दृढ रहें और शून्य होकर सेवा करते रहें।

अगर आपमें हिम्मत है तो आप गांधी सेवा संघको समेट लें; अथवा अगर उतनी हिम्मत नही है तो राज-प्रकरणमें से हट जायें। यानी किसी भी कांग्रेस-कमेटीमें गांधी सेवा-संघका कोई सदस्य न रहे। संघके रूपको समेटने पर भी हमारा आन्तरिक सम्बन्ध तो कायम ही रहेगा। हम एक-दूसरेके साथ अगर सिद्धान्तोंके और प्रेमके बन्धनसे बँधे हैं तो हमारा एक अव्यक्त संगठन रहेगा। वही सच्चा संगठन होगा। इसका मतलब यह नही कि हम कोई गुप्त संगठन करने जा रहे हैं। हमें किसी स्थूल संगठनकी जरूरत ही नही है। जो चीज हमने गांधी सेवा-संघसे पायी है उसे हमसे कौन छीन सकता है? हमने जो-कुछ प्राप्त कर लिया है उसे खोनेका कोई डर नही। हृदय-तत्रके साथ मिली हुई चीज कोई नही छीन सकता। हम अपने सिद्धान्तोंका त्याग कभी नही करेंगे। हम तो अपनेको असत्यके बोझमे मुक्त कर रहे हैं। जबकि इतनी कटुता और इतना जहर फैल रहा है तो खामोशीके सिवा दूसरा कोई उपाय नही है।

मै यह नहीं कहता कि हमने आज तक जो किया वह गलत था। वह तो आवश्यक ही था। उससे हमें नई शिक्षा और नया अनुभव मिला। अब हम एक नये युगका आरम्भ कर रहे हैं। जो लोग राज-प्रकरणमें सत्य और अहिंसाको निबाह सकते हैं वे वहाँ रहें, लेकिन संघको छोड दें तो संघमें राज-प्रकरण नही रहेगा। राज-प्रकरणके बाद रचनात्मक काम ही रह जाता है। लेकिन चरखा संघ आदि संस्थाएँ जो काम कर रही है उसके बाद क्या बच जाता है? यह दूसरा सवाल है। उसको तो बादमें लूँगा। आपको समझाते-समझाते मेरा दिमाग साफ हो गया है। इसलिए एक बात मैंने निश्चित रूपमें आपके सामने रख दी है कि आप संघकी पूर्णाहुति कर दें। कमसे-कम उसमें से राज-प्रकरण बिलकुल निकाल दें। तब फिर संघका क्या रूप बन जाता है, यह सवाल बादमें आयेगा।

वे रहें[1], लेकिन संघके सदस्योंके रूपमें नही। अगर वे स्वतन्त्र रूपसे नही रह सके तो वे निकम्मे हैं। सरदार और राजेन्द्रबाबू राज-प्रकरणसे हटने लगे तो मै उनको रोकूँगा। लेकिन वे संघके सदस्य न रहें। मै जानता हूँ कि वे अपने बलपर सेवा-भावसे राज-प्रकरणमें रह सकते हैं। अब अगर कोई ऐसे लोगोंका वर्ग रह जाता है जो कि एक-दूसरेका समर्थन चाहते है तो उनका विचार वे करेंगे। संघ नही कर सकता। अहिंसा ऐसी शक्ति है कि उसे सिवा ईश्वरके कोई मदद नही चाहिए। अगर वे ऐसे नही है तो वे पंगु हैं। जो राज-प्रकरणमें पड़े हैं उन्हे पंगु नही होना चाहिए। क्योंकि वहाँ तो अहिंसाकी कड़ी परीक्षा होती है। यहाँ इतनी कड़ी नहीं होती। राज-प्रकरणमें जानेवालोंको किसीके आश्रयकी जरूरत नही होनी चाहिए। एक ईश्वरका आश्रय बस है।

अब अगर इस प्रकार अपनी हिम्मतपर सेवा-भावसे राज-प्रकरणमें पड़नेवाले सदस्योंकी संख्या बहुत बड़ी हो तो भी क्या हर्ज है? संघमें चार-छः ही आदमी

१. श्री कृष्णदास जाजूने पूछा था कि जो लोग राजनीतिमें सेवाभावसे हिस्सा ले रहे हैं क्या वे भी संघको छोड़ दें? अगर संघमें उनकी संख्या अधिक हो तो भी?

रह जायें तो भी मैं नाचूंगा। अगर वे सच्चे होंगे तो छ. के छ. करोड़ हो जायेंगे। उनमें इतनी शक्ति होगी। मेरा इतना ही कहना है कि जो सेवा-भावसे राज्य-प्रकरणमें पड़े हैं वे वहीं रहें, मगर संघमें न रहें।

मैं दुबारा समझा दूं। मैं यह नहीं कहता कि जो राज-प्रकरणमें पड़े हैं वे वहाँसे निकल जायें। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि वे संघमें न रहें। उनके निकल जानेसे संघकी शक्ति कम नहीं होगी, बल्कि बढ़ेगी। जो लोग रह जायेंगे वे अगर कामके नहीं होंगे तो संघ मिट जायेगा। हमारे पास कोई विशेष चीज नहीं है। हममें दूसरे लोगोंकी अपेक्षा कोई विशेष गुण नहीं है। हमारी जो विशेषता हो सकती है वह अभी आई नहीं है। हम अगर जबरदस्ती अपने-आपको दूसरेसे ऊँचा समझेंगे, तो संघको तो मरना ही है और बदनाम होकर मरना है। अगर हममें कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है तो संघकी हँसी होगी। अगर हममें अहिंसाकी स्वतन्त्र शक्ति हो तो संघके बिना भी हम सेवा कर सकेंगे। चाहे मैं जंगलमें अकेला जाकर रहूँ या श्मशानमें जाकर रहूँ, तो उससे यह शक्ति नहीं आनेवाली है। मैं वहाँ भूतोंसे नहीं डरूँगा, लेकिन सेवाकी शक्ति कैसे जायेगी? वह तो रचनात्मक मूक कार्यसे ही आ सकती है।

जो राज-प्रकरणमें पड़े हैं उनमें भी सत्य और अहिंसाकी स्वतन्त्र शक्ति होनी चाहिए, क्योंकि वही उनका 'क्रीड' है। मैं इसका साक्षी हूँ कि इस देशमें कांग्रेस सबसे बड़ी शक्ति है। क्या कांग्रेस राज-प्रकरणके लिए काफी नहीं है? तब क्यों दूसरी संस्था हम कायम करें? हमारी संस्थाके बारेमें लोग ऐसा समझने लगे हैं कि वह भी कांग्रेसका ही काम करती हुई अपनी अलग हस्ती रखना चाहती है। इसका तो यह अर्थ होता है कि वह कांग्रेसकी बराबरी करना चाहती है। इस-लिए मैंने जो सलाह दी है आजके वायुमण्डलमें वही सही है। हुदलीमें मैंने जो सलाह दी थी वह उस वक्तके वायुमण्डलमें उचित थी। मुझमें यह अधिकता है कि जिस वक्त मेरा हृदय जो बताता है वही कहता हूँ। आज मेरा हृदय जो कह रहा है वही प्रकट कर रहा हूँ। मैं नहीं जानता हूँ कि एक महीने बाद मैं क्या कहूँगा। मैं ऐसा आदमी हूँ जो इर्द-गिर्दकी बातोंका अच्छा असर ले लेता है और बुरा असर नहीं लेता। मेरी साधना ही ऐसी रही है कि अच्छी शक्तियाँ और अच्छे परिणाम मुझमें आ जाते हैं। मैं उनसे अछूता नहीं रह सकता।

आपके सामने बैठकर विचार करते-करते मेरा हृदय और बुद्धि खुल गई है। मैं विचार करके नहीं आया था लेकिन फिर भी स्पष्ट सलाह दे दी। जिस किसीको कुछ शंका हो या मुझसे यह कहना हो कि 'तुम इतनी चीज न जानते थे इसलिए ऐसी सलाह दे रहे हो', तो वे कह सकते हैं। जिन्हें स्वतन्त्र रूपसे अपनी राय देनी हो वे भी अपनी राय प्रकट कर सकते हैं।[1]

१. यहाँ रामरत्न शर्माने गांधीजीसे पूछा कि राजनीतिके बारेमें जो नीति बताई गई है वह देशी राज्योंमें भी क्या वैसी ही रहेगी जैसी ब्रिटिश भारतमें।

हाँ, वही।[1]

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि अगर दरअसल हमारेमें शक्ति भरी है तो वह शक्ति कम न होगी। समाजके जीवनपर हमारी कृतियोंका असर भी बराबर पड़ेगा। अब तक हमने संघ बनाकर जिस तरहसे प्रयोग किया उससे हमें सफलता नहीं मिलेगी। अहिंसा किस तरह काम करती है इसका पूरा अनुभव इसमें से नही मिलता। अहिंसा एक स्वयंभू शक्ति है। संघकी उपाधि यदि उसकी शक्तिको न रोके तो वह ज्यादा काम करती है। मैंने जो यह लिखा है कि "यदि हिन्दुस्तानमें अहिंसाका एक भी सम्पूर्ण प्रतिनिधि पैदा हो जाये तो भी हमारा काम सिद्ध होगा"—वह पूर्ण वाक्य है। मेरा मतलब यह नही है कि वह अकेला सब-कुछ कर लेगा। अकेला तो ईश्वर ही नही कर सकता। उसे भी अनेक रूप लेने पड़ते हैं। मेरा मतलब यह है कि यह अकेला प्रतिनिधि सबको अपनी ओर खींच लेगा। संघकी शक्ति आपको कमजोर कर देगी। उसमें आपका जो अपनापन है वह प्रकट नही होने पाता। आप केवल संघकी शक्तिका प्रदर्शन करते हैं, अपनी आत्माकी शक्तिका नही। संघमें जो शक्ति है वह भी आपकी ही शक्तियोंका समुदाय है। अहिंसाके विकासके लिए शक्तियोंके समुदायके ऐसे संगठन की जरूरत नहीं रह जाती। मैं बाह्य साधनोंकी आवश्यकता महसूस नही करता। जो अपने-आपको गांधीवादी कहलाते हैं, उनमें अगर रोष है, बुजदिली है तो वे किसी संघको सुशोभित नही कर सकते। ऐसा गांधीवाद नही रहेगा। मैंने सारे हिन्दुस्तानको अपना क्षेत्र बनाया है, या यों कहिए कि ईश्वरने यह क्षेत्र मुझे दिया है। इसका एक विशेष कारण है। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तानके घर-घरमें अहिंसा है। यूरोपमें तीन सौ आदमियोंकी ऐसी जमात नही मिलेगी जिनसे मैं ऐसी बातें कह सकूँ, जैसी आपसे कह रहा हूँ। यही कारण है कि ईश्वरने मुझे अपने प्रयोगोंके लिए यह क्षेत्र दिया। मैं क्षेत्र क्या पसन्द कर सकता हूँ? मेरी क्या शक्ति है? वह तो उसीने दिया है। इसलिए मेरी निश्चित राय है कि अहिंसाके सिवा दूसरी सारी बातें आपको फँसानेवाली हैं। आपके सवालका मेरा उत्तर इतना ही है कि संघके न रहते हुए भी हमारी स्वतन्त्र अहिंसक शक्तिकी प्रतिक्रिया समाजके जीवन पर होती ही रहेगी।[2]

इसकी कसौटी खुदका मन ही है। अगर हमारा मन साफ है तो दूसरोंकी टीकाका विचार करनेकी जरूरत नही है।[3]

१. स्वामी सत्यानन्दने पूछा था: संघ बन्द कर देनेपर भी चूँकि गांधीजी और संघके सदस्योंके बीच आत्मिक सम्बन्ध बरकरार रहेगा, इसलिए विरोधी नारे तो लगते रहेंगे। इसके अलावा संघकी शक्ति की जो प्रतिक्रिया सामाजिक जीवनपर होती है वह नहीं होगी।

२. इसके बाद गोपालराव काळेने पूछा कि राजनीतिमें सेवाभावकी कसौटी क्या हो। अगर दूसरे लोग इसे 'महत्त्वाकांक्षा' कहें तो क्या करें?

३. नरहरि परीखने पूछा कि कांग्रेसके 'सिद्धान्त' में भी तो 'शांतिपूर्ण और न्यायसंगत' उपाय कहा गया है। तो फिर आप राजनीतिज्ञोंको संघ छोड़नेको क्यों कहते हैं?

अगर ऐसा है तो हमने अलग संस्था ही क्यों बनाई ? जमनालालजी की ऐसी कल्पना थी कि जो सत्य और अहिंसाको पालिसी मानते हैं वे संघमें नही जा सकते। लेकिन हम कांग्रेसके 'क्रीड'को अपना भी धर्म मानते हैं तो हमारे लिए कांग्रेस ही पर्याप्त है। संघकी क्या जरूरत है?[1]

कांग्रेसमें ही रहनेसे। आध्यात्मिकता ऐसी कोई चीज नही है कि गांधीकी दुकानपर गये और उसकी पुड़िया लेकर चले। आप संघको सत्संग मानते हैं, लेकिन वह सत्संग नही रह जाता। हममें भावुकता आ जाती है और एक-तरहका पवित्रताका अभिमान भी आ जाता है। मैं विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि संघमें रहकर हमारी शक्ति बढ़ती है, ऐसा नही है। शक्ति कांग्रेसमें रहकर बढ़ेगी। मैं दृढ विश्वाससे कहता हूँ कि यदि आप संघ और कांग्रेसका मुकाबला करके देखें, तो आप पायेंगे कि संघसे आपको बल नही मिलेगा। वह तो आपका आश्रय-स्थान है। वहाँसे आपको गरमी मिलेगी; लेकिन वह आपकी शक्ति आजमानेका क्षेत्र नही हो सकता। वह क्षेत्र तो कांग्रेस है। कांग्रेस एक तूफानी समुद्र है। वहाँ जाकर अगर आप अपने रोषादि रोक सकते हैं, तो मान लीजिए कि आपका जहाज चल रहा है। संघ तो बन्दरगाह है। यहाँ शक्तिके प्रयोगका कोई अवसर ही नही। मेरी अपनी शक्ति तो कांग्रेसमें ही बढी है। संघसे मैंने कोई शक्ति नही पाई।[2]

वे अगर वहाँ कोई असर नही कर सकते या लोग उनका वहाँ रहना पसन्द न करते हों, तो वे निकल जायें। यह 'गांधीवाद' शब्द राज-प्रकरणमें से ही निकला है। अगर हम उसे सुशोभित कर सकते हैं तो राजनीतिमें रहें, नही तो हट जायें।[3]

गांधीवादी व्यक्ति है, लेकिन संघ एक समुदाय है। राज-प्रकरण में पड़नेवाले व्यक्ति किसी समुदायमें रहते हैं तो नाहक जहर पैदा होता है। राज-प्रकरणके लिए तो यह संघ बना नही है। जो उसमें पड़ते हैं उन्हे संघकी जरूरत भी नही है; न उन्हे संघसे कोई बल मिलता है। अगर ऐसी कोई दूसरी चीज हो, जिसके लिए आप संघ चाहते हैं, तो बतलायें। अगर आप यह कहें कि संघसे आपको सहायता और आधार मिलता है इसलिए वह चाहिए तब तो मैं कहूँगा कि संघको तोड़ ही देना चाहिए।[4]

१. प्यारेलालजी (हापुड़वाले) ने पूछा कि लोग कांग्रेसमें सेवाभावसे काम करते हैं उन्हें आध्यात्मिक बल तथा सत्संग कहाँ प्राप्त होगा?

२. इसके बाद लाला जगन्नाथने पूछा कि जो लोग संघमें नहीं हैं, लेकिन गांधीवादको मानते हैं वे भी राजनीतिमें रहें या नहीं?

३. लाला जगन्नाथने पूछा कि इसी शर्तपर गांधी सेवा संघके सदस्य भी राजनीतिमें रहें तो क्या हर्ज है?

४. मार्च १९३८ में डेलांगमें दिये गये गांधीजी के भाषणोंका (देखिए खण्ड ६६) उल्लेख करते हुए प्रभुदास गांधीने पूछा कि इस समय गुंडाशाहीका संगठित रूपसे प्रतिकार करनेके लिए शान्ति-सेना स्थापित करनेकी आपकी बातका और आज संघको तोड़ देनेकी आपकी सलाहका क्या कोई मेल बैठता है।

शान्ति-सेनाके बारेमें मैंने कहा भी और लिखा भी है, यह बात सही है। कुछ लोगोंने उस दिशामें प्रयत्न भी किया। हकीम अलवईने ऐसी एक शान्ति-सेना बनाई थी। मैंने उन्हें धन्यवाद भी दिये थे। लेकिन अब उसका नामो-निशान तक नहीं रहा। मैं देखता हूँ कि वह चीज भी नहीं चल सकती। आप शान्ति-सेना बनायेंगे। आपकी प्रतिज्ञापर कई आदमी झूठ-मूठ दस्तखत कर देंगे और उसका पालन नहीं करेंगे। आबोहवामें जब इतना मैल भरा हुआ है, तो अच्छी चीज भी गंदी हो जानेका डर है। इसलिए उससे अस्पृष्ट (बचकर) ही रहना चाहिए। मेरे पास अगर एक लोटा-भर गंगाजल हो तो उसे एक तालाब-भर गन्दे जलमें मिला देनेसे वह गन्दा जल शुद्ध हो जायेगा, ऐसा समझनेकी मूर्खता मैं नहीं करूँगा। आप एक-एक आदमी अपना-अपना अलग शान्तिदल बना सकते हैं। लेकिन ऐसे आदमी भी कहाँ हैं? शिकारपुर और सक्खरमें क्या कांग्रेसवाले नहीं थे?[1] फिर क्यों एक भी आदमी ऐसा नहीं निकला जो बिना रोषके दंगा शान्त करनेकी कोशिशमें मरा हो। कानपुरमें गणेश शंकर[2] के पुजारी तो काफी भरे हैं? लेकिन उसका सम्प्रदाय क्यों लुप्त हो गया? तो भी मैं यह नहीं मानता कि गणेश शंकरकी आत्माहुति व्यर्थ गई। उसकी आत्मा मेरे दिलपर काम करती रहती है। मुझे जब उसकी याद आती है तो उससे ईर्ष्या होती है। इस देशमें दूसरा गणेश शंकर नहीं हुआ। उसकी परम्परा समाप्त हो गई; लेकिन वह इतिहासमें अमर हो गया। उसकी अहिंसा सिद्ध अहिंसा थी। उसीकी तरह कुल्हाड़ीके प्रहार सहते हुए मैं शान्तिपूर्वक मरूँ तो मेरी अहिंसा भी सिद्ध होगी। मेरा भी यह सुख-स्वप्न है कि मैं उसीकी तरह मरूँ — एक तरफसे एक मनुष्य मुझपर कुल्हाड़ी चला रहा हो, दूसरा दूसरी तरफसे बरछी मार रहा हो, तीसरा लाठी मार रहा हो और चौथा लात और घूसे बरसाता जाता हो, ऐसी अवस्थामें भी मैं खुद शान्त रहूँ और लोगोंसे शान्त रहनेको कहूँ और खुद हँसता हुआ मरूँ — ऐसा भाग्य मैं चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे ऐसा मौका मिले और आपको भी मिले।[3]

मैंने यह कब कहा कि हम टीकासे डरकर बन्द करें। मैंने तो यह कहा कि शायद हम उस टीकाके पात्र भी रहे हैं। इसके मेरे पास काफी सबूत पड़े हैं। अगर हमारे अन्दर अहिंसक पुरुषार्थके लक्षण दरअसल होते, तो आज हम जैसे पड़े हैं वैसे नहीं रहते और न आगे रहेंगे। हमारेमें से एक दूसरी ही शक्ति पैदा होगी। तब आपको न मेरी सलाहकी दरकार रहेगी, न इस संघ

१. देखिए "सिन्धकी दुःखद घटना", पृ० ८३-८६।

२. राष्ट्रीय हिन्दी पत्र *प्रताप* के संस्थापक-सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी; कानपुर में हुए साम्प्रदायिक दंगेके दौरान शान्ति स्थापित करनेके प्रयास में २६ मार्च, १९३१ को वे शहीद हो गये थे। उनके प्रति गांधीजी की श्रद्धांजलिके लिए देखिए खण्ड ४५, पृ० ३७३-७६, ३९६ और ४२७।

३. मूलचन्द अग्रवालने कहा कि जब सदस्योंके दिल साफ हैं तो दूसरोंकी टीका-टिप्पणीसे डरकर या उनके विरोधके कारण संघको बन्द कर देना अहिंसा नहीं है।

की। जो अपने हृदयको रोककर मेरी सलाहपर चलते हैं या मेरे दबावसे काम करते हैं, वे सच्चे गांधीवादी नही हैं। मैंने तो अपने लड़कोसे भी सोलह वर्षके बाद ऐसी अपेक्षा नही रखी। उनके सोलह वर्षके होते ही उनको अपना मित्र माना। उनसे कह दिया कि वे जिसे अपना स्वधर्म समझते है उसका पालन करे। "स्वधर्मे निधनं श्रेय:"[1]। अगर वे मेरी बात मानें तो तब तो उसे उन्हें अपनाना होगा। इसलिए नही कि उनका बाप कहता है, बल्कि इसलिए कि वही बात उनकी बुद्धिमें जम गई है। गांधी सेवा-सघकी ऐसी बात नही है। आपको तो अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे विचार करना चाहिए। अगर आपका दिल कहे कि सघ रहना चाहिए तो पीछे उसका यही मतलब है कि आप बडी कड़ी परीक्षा देना चाहते हैं।[2]

मैंने तो कह दिया कि अगर आप इसी कारणसे संघको समेट लेना पसन्द नही करते, तो उसमें से राज-प्रकरणको हटा दें, यह मेरी दूसरी सूचना है। संघको बनानेमें जमनालालजी की ऐसी ही कल्पना थी कि जो लीडर नही है, प्लेटफार्म पर नही आते, वितडा नही करना चाहते, उनकी सुविधा और मार्ग-दर्शनके लिए एक संस्था हो। आप कांग्रेसके चवन्नीके मेम्बर रहें; लेकिन उसमें कोई ओहदा न ले। ओहदा न लेकर भी अगर आप ठीक-ठीक सेवा करेंगे तो आपकी नीति का असर पड़ेगा। मैंने कांग्रेसमें कोई ओहदा नही लिया, तो भी मुझे ओहदेदार बनाया गया। मतलब यह कि रचनात्मक काम ही गांधी सेवा-संघका प्रधान काम हो। अब उस कार्यका क्या स्वरूप हो, चरखा संघ वगैरह जो काम कर रहे हैं उनमें और संघके कार्यमें क्या फर्क हो, यह तीसरा सवाल है। जो राज-प्रकरणमें पड़े कि उनके निकल जानेके बाद तो पाच-दस आदमी संघमें रह जायेंगे, यह उनके सोचनेकी बात है। गांधी सेवा-संघ क्यों रहना चाहिए, इसके लिए जो दलीलें दी गई हैं उनका उत्तर मैं दे चुका हूँ। अब उन दलीलों को दोहरानेकी जरूरत नही है।[3]

हमारा राग-द्वेष भले ही न मिटे। लेकिन एक बड़ा भारी असत्य तो मिट जायेगा। आज तो हमारे राग-द्वेषके लिए संघ भी जवाबदार है। वह झमेला तो नही रहेगा। यह समझनेकी बात है। लोग समझते हैं कि गांधी सेवा-संघ सत्य और अहिंसाका संगठन करता है; किशोरलाल जैसे आदमीके हाथमें उसकी बागडोर है। लेकिन अगर हमारे आचरणमें वह बात नही है तो एक असत्य फैलानेमें संघ कारणीभूत होता है। अगर हमारे अन्दर सचमुच सत्य और अहिंसा है, तो संघमें न रहते भी हम अपने कुटुम्बमें, अपने पड़ोसियोंसे या

१. भगवद्गीता, अध्याय ३, श्लोक ३५।

२. रामरत्न शर्माने संघके बन्द होनेपर उससे प्रेरणा और मार्गदर्शन ग्रहण करनेवाले रचनात्मक कार्यकर्ताओंको जो हानि होगी उसका जिक्र किया।

३. मूलचन्द अग्रवालने पूछा कि संघके बन्द हो जानेपर सदस्योंके दिलोंमें जो राग-द्वेष है क्या वह भी खत्म हो जायेगा?

कांग्रेसमें जो व्यवहार करेंगे उससे लोगोंके आदरके पात्र होंगे। इसके लिए संघकी जरूरत नहीं है। यह सच है कि हम सब अपूर्ण ही पैदा हुए हैं। हमें प्रेरणा और मार्गदर्शनकी जरूरत है। लेकिन हमें इस संघसे ऐसी प्रेरणा मिलती है या नहीं, इसमें जबरदस्त सन्देह है। यह मैं टीका करनेकी बुद्धिसे नहीं कहता। जब हम देखते हैं कि इतना जहर फैल रहा है तो हमें समझ लेना चाहिए कि हमारा कोई-न-कोई दोष अवश्य है और अपना आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। यह समझने-लायक बात है। कमसे-कम हमें अपने कार्यका रूपान्तर कर लेना चाहिए। मेरी रायमें तो मिट जाना ही अच्छा है।[1]

यह सवाल तो किशोरलालभाईके लिए है। मुझे इतनी जानकारी नहीं है और अनुभव भी नहीं। मेरी राय बनी है कि संघके राजनीतिमें पड़नेसे कुछ राग-द्वेष बढ़ा है। संघके सदस्योंका पतन हुआ है या नहीं, यह मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं किसीको नहीं जानता। किशोरलाल जानते हैं, आप अपना प्रश्न उनके पास भेज दें। मैं तो मुल्ककी आबोहवा देखकर यह सलाह दे रहा हूँ कि आप संघको बन्द कर दें। क्योंकि जब इतना जहर पैदा होता है तो उसमें हमारा कुछ-न-कुछ दोष अवश्य है। अगर किशोरलालकी राय इससे उलटी हो तो वे संघ चलाते रहें। मैं रुकावट डालनेवाला कौन होता हूँ। आपको उन्हींके मार्गदर्शनमें तो चलना है। मैंने जितनी बातें सुनी हैं उनपर से मेरी यह राय बन गई है कि हमारी जवाबदारी काफी है।[2]

तब तो यह देखना होगा कि ऐसे कितने रह जाते हैं। रचनात्मक काममें दंश (स्टिंग) नहीं रहेगा। आज तो वातावरण असत्य और हिंसासे भरा हुआ है। इसलिए हम राज-प्रकरणमें तो रह नहीं सकते। रचनात्मक कामके लिए संघको कौनसे रूपमें रखा जाये, यह सवाल तो बादमें आता है।[3]

इसका उत्तर दिया जा चुका है। वर्तमान परिस्थितिमें संघसे ऐसा आश्वासन नहीं मिल सकता। इस प्रकारकी कल्पना हमें दुर्बल बनाती है।

गांधी सेवा-संघके छठे अधिवेशन (मलिकन्दा, बंगाल) का विवरण, पृ० ६-२२

१. हरिभाऊ उपाध्यायने पूछा कि क्या अध्यक्षके पास ऐसे कोई सबूत हैं जिनसे यह साबित होता हो कि राजनीतिमें भाग लेनेके कारण सदस्योंका पतन हुआ है।

२. बालूभाईने पूछा कि रचनात्मक कामके लिए संघके बने रहनेमें क्या हर्ज है।

३. ज्योतिप्रकाशने पूछा कि आश्वासन प्राप्त करने तथा परस्पर विचार-विनिमय द्वारा निर्णय लेनेके लिए यदि संघको बने रहने दिया जाये तो क्या हानि है।

२७६. भाषण : गांधी सेवा-संघमें – २[1]

मलिकन्दा
२१ फरवरी, १९४०

गोकुलभाईने जो-कुछ कहा है, उसका उत्तर मैं दूं। उन्होने जो दो चीजें कही है, उनमें गलतफहमी है। उन गलतफहमियोको मैं दूर कर दूं तो उन वातो पर नाहक चर्चा नही होगी।

मैंने यह नही कहा कि गाधी सेवा-सघके सदस्य राज-प्रकरणसे हट जायें। मैंने यह कहा कि संघके सदस्योंकी हैसियतसे वे वहाँ न रहे। मैंने तो सवेरे ही कह दिया कि सघका एक भी सदस्य वहाँसे न हटे। मैंने सरदार और राजेन्द्रवावूका उदाहरण देकर कहा कि मैं उनसे राज-प्रकरण छोड़नेको नही कहूँगा। लेकिन मैंने यह कहा कि उन्हें संघसे हट जाना चाहिए। मैं यह चाहता हूँ कि संघमें राज-प्रकरणको स्थान न रहे।

तव गोकुलभाईका दूसरा प्रश्न आ जाता है कि जब सारा जीवन एक और अविभक्त है, तो हम किस चीजके विषयमें ऐसा कह सकते हैं कि यह राज-प्रकरण है और यह नही है। मैंने यह अवश्य कहा है कि हमको जीवनके विभाग नही करने चाहिए, क्योकि वे सब एक-दूसरेसे मिले हुए हैं। इसलिए जीवन एक है। लेकिन एक दूसरी दृष्टि भी है। हमारा सारा शरीर एक है। उसके आँख, कान, नाक आदि कई अग हैं। जब हम सारे शरीरकी दृष्टिसे देखते हैं, तो इन अवयवोंका खयाल नही करते। लेकिन जव इनमें से किसी एक ही अवयवकी चिकित्सा कराते हैं, तव उनका पृथक्-पृथक् विचार करते हैं। वे सव एक ही शरीरके अंग हैं। लेकिन फिर भी, हम पृथक्करण करके ज्ञानेन्द्रियोंमें और कर्मेन्द्रियोंमें भेद करते हैं। आज उस पृथक्करणकी दृष्टिसे हम देख रहे हैं। राजनीति तो हमारी सारी प्रवृत्तियोके साथ मिली हुई है। लेकिन मैं उस व्यापक अर्थमें राजनीति छोड़नेको नही कह रहा हूँ। काग्रेसके और दूसरे चुनावों आदि की जो राजनीति है उस राज-प्रकरण और दलवन्दीसे मेरा मतलव है। संघमें से यह सत्ताकी राजनीति क्यों हटानी चाहिए, यह मैंने समझा दिया। वुज-दिलीके कारण नही, वल्कि आत्मशुद्धिके लिए हम यह कदम उठा रहे हैं। अहिंसा ऐसे ही चलती है। मैंने राजनीति-मात्रका निषेध नही किया। मैं जानता हूँ कि इस देशमें सभी तरहका रचनात्मक काम राजनीतिका ही अंग है। मेरी दृष्टिमें तो वही सच्चा राज-प्रकरण है। अहिंसाका सत्ताके राज-प्रकरणसे कोई सम्वन्ध नही रह सकता।

१. संघके सायंकालीन अधिवेशनमें, जो ७-३० बजे आरम्भ हुआ था

अहिंसाके लिए सघकी हस्ती अपरिहार्य नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि अहिंसाका कोई सघ ही नही बन सकता। लेकिन आजका हमारा सघ उस प्रकारका नही है। हमने एक संघ बना लिया; उसका स्वाद हमने चख लिया; कम-से-कम मैंने तो चख लिया। हमने देख लिया कि अहिंसाका संघ दूसरे संघों की तरह नही चल सकता; और न उसे उस तरह चलाना ही चाहिए। अहिंसाके संघमें कुछ विशेषताएँ होनी चाहिए। इसलिए मुझे सघका जो अनुभव है, उसके आधारपर मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस राज-प्रकरणसे बचें। और अगर ही बचेंगे तो गांधीवादका ध्वंस अवश्य होगा।

हमने एक अनोखी नीतिको लिया है। उस नीतिके प्रयोगके साधन भी अनोखे होंगे। वे क्या होंगे, उसकी मैं खोज करता रहता हूँ। मैं प्रयोग कर रहा हूँ। बदलती हुई परिस्थितिमें मुझे अपने तरीके भी बदलने पड़ते है। लेकिन मेरे पास कोई बना-बनाया शास्त्र नहीं है। हमारा प्रयोग एकदम नया है। उसके कदमोंका क्रम कही निश्चित नही है। मै तो एक जिज्ञासु हूँ। सत्याग्रहके विज्ञान की खोज और विकास मैं धीरजके साथ कर रहा हूँ। इस खोजसे नित नया ज्ञान और नित नया प्रकाश पा रहा हूँ।

इसी प्रयोगकी वृत्तिसे हुदलीमें मैंने कहा था कि हम राज-प्रकरणकी रंग-भूमिमें उतरें, शौकसे उसका अनुभव लें, अपनी सत्य और अहिंसाकी शक्तिको आजमायें। हो सकता है कि ऐसी सलाह देनेमें मैंने गलतीकी हो; लेकिन उसका मुझे पश्चात्ताप नही है। अच्छा ही हुआ कि हम राजनीतिकी रंगभूमिमें उतरे। हमने बहुमोल अनुभव ले लिया। अगर हम यह अनुभव नही लेते, तो मैं दुविधा में रह जाता। मेरे दिलमें यह बात रह जाती कि हमने राज-प्रकरणके क्षेत्रका अनुभव नही लिया। अब उस अनुभवके बाद मैं आपको यह निश्चित सलाह दे सकता हूँ कि संघकी हैसियतसे हम राज-प्रकरणका त्याग कर दें।

और एक बात आप न भूले। संघने राजनीतिको अपना क्षेत्र कभी माना ही नही। आप याद कीजिए कि जबसे संघके अधिवेशन होते हैं, हमने कभी राज-प्रकरणकी चर्चा भी की है? आप उसकी रिपोर्ट देखें, प्रस्ताव देखें, उनमें राज-प्रकरण नामको भी नही है। संघके जो सदस्य राज-प्रकरणमें दिलचस्पी लेते हैं, उनका वह विषय है। संघका विषय नही। सरदार उसमें है, उनका वह विषय है। संघके दूसरे सदस्योंकी भी वह संघके बाहरकी एक प्रवृत्ति है। आप यहाँ उसकी चर्चा कब करते हैं? क्या आप सरदारको कभी यह तकलीफ देते है कि वे पार्लमेंटरी बोर्डका काम कैसे चलाते हैं, यह आपको बतायें। आप मुझसे कब पूछते है कि मैंने वाइसरायसे क्या कहा? हमें इन बातोंके विषयमें जिज्ञासा तो होती है, लेकिन वह संघके सदस्यके नाते नहीं; दूसरी ही हैसियतसे। हुदलीमें हमने राज-प्रकरणमें पड़नेका प्रस्ताव किया। लेकिन उसके बाद भी हमने अपने सम्मेलनोमें राजनीतिकी चर्चा नही की। हम यहाँ दूसरी ही वृत्ति लेकर आते हैं। हमारा तो एक जिज्ञासुओंका समूह है। यहाँ हम आत्म-निरीक्षणके लिए और

अपनी भूलें सुधारनेके लिए आते हैं। इसलिए हमारे सम्मेलनोंमें एक दूसरा ही वायुमण्डल होता है। राज-प्रकरण एक वाह्य व्यवहार है। इसलिए हम यहाँपर उसकी चर्चा नही करते। यहाँ संघका वह विषय नही है।

हुदलीके वाद भी संघका भीतरी स्वरूप नही वदला। इस परसे स्पष्ट है कि लोगोंके दिलमें यह गलतफहमी कि हम एक राजनैतिक दल वना रहे हैं, नाहक पैदा हुई। हम नाहक गड्ढेमें गिर रहे हैं। इसलिए मै कहता हूँ कि हम संघको वन्द कर दें। मै राज-प्रकरणको वन्द नही करता। लेकिन संघकी हैसियतसे उसे वन्द कर देता हूँ, क्योंकि वह हमारा विषय नहीं है। हुदलीमें भी हमने संघके असली रूपको नही वदला। सिर्फ इतना ही गुनाह किया कि संघके सदस्योंको पार्लमेण्टरी काम करनेकी इजाजत दी। लेकिन उसके वाद भी मैंने पार्लमेण्टरी कार्यमें प्रत्यक्ष दिलचस्पी बहुत कम ली। मै तो अखवार भी बहुत कम पढ़ता हूँ। किशोरलालभाईसे पूछो तो वे कहेंगे, इसके वारेमें मै कुछ नही जानता, सरदारसे पूछिए। इसका कारण स्पष्ट है कि संघने उसको अपना क्षेत्र ही नही माना। हमने संघ उस कामके लिए वनाया ही नहीं था। फिर हम इस अंगार में नाहक क्यो पड़ें? हम उसमें से हट जायें।

गोकुलभाईने इस भेदको नही समझा। वे समझे कि मै राजनीतिका निषेध कर रहा हूँ। ऐसी बात नहीं है। मै तो यही कहता हूँ कि संघ उस झंझटमें न पड़े।

अब यह सवाल रह जाता है कि हम राज-प्रकरणमें भी सत्य और अहिंसा दाखिल करानेका प्रयत्न क्यों न करे? संघ उस क्षेत्रको अस्पृष्ट क्यों छोड़ दे? इसका उत्तर भी मै दे चुका हूँ। जब हममें बुराईको दूर करनेकी शक्ति न हो तो हमें उससे दूर हो जाना चाहिए, यही अहिंसाका तरीका है। इसीका नाम असहयोग है। असहयोगका वड़ा भारी सिद्धान्त मैंने हिन्दुस्तानके सामने रखा है। उसीको मै यहाँ लागू कर रहा हूँ।

एक उदाहरण लीजिए। आपके सामने यहाँ विरोधी प्रदर्शन हो रहा है। तो क्या हम जवरदस्ती जाकर उनके सामने खड़े हो जायें; और उनसे कहें कि "यह लो, हम खड़े है, तुम्हे हमारे साथ जो करना है सो करो।" यह तो मूर्खता है। इसलिए शास्त्रकार कहते हैं कि अगर कोई तुम्हारी निन्दा करता है तो उसे सुननेके लिए मत जाओ।

मुझे पता नहीं, आपको जापानके कोवे नगरके तीन वन्दरोंकी मूर्तिका हाल मालूम है या नही। उसी मूर्तिकी एक छोटी-सी प्रतिकृति — एक खिलौना — किसीने मुझे दे दिया था। उसमें तीन वन्दर हैं। एक अपना मुँह वन्द किये हुए, दूसरा आँखें वन्द किये हुए और तीसरा कान वन्द किये हुए है। वे संसारको यह उपदेश दे रहे हैं कि मुँहसे वुरे वचन मत निकालो, आँखोंसे वुरी वातें मत देखो और कानोंसे गन्दी वातें मत सुनो। असहयोगका यही रहस्य है। यहाँ यह विरोधी प्रदर्शन हो रहा है। अगर वे इस मण्डपमें आकर हमपर हमला करें, तो मै आपसे कहूँगा कि आप वैठे रहें और उनके प्रहार सहते रहे। लेकिन मै यह कभी नही कहूँगा कि वे लोग जहाँ प्रदर्शन कर रहे हैं, वहाँ जाकर आप उनके प्रहार सहें। यह

तो उन्हें जान-बूझकर उत्तेजित करना है। इसमें अहिंसा नहीं है। इसमें अहंकारकी वृत्ति है।

इस असहयोगकी वृत्तिको मैं यहाँ लागू कर रहा हूँ। हमारा राज-प्रकरणमें जाना उनकी वृत्तिको उत्तेजन देना है। उनके रोषको खुराक देना है। इसलिए अहिंसा कहती है कि हम वहाँसे हट जायें। राज-प्रकरणसे निकलनेपर भी कोई हमारी निन्दा करे, विरोध करे, हमपर हमला करे, तो हम सब कुछ बरदाश्त करेंगे। हमारे राज-प्रकरणसे अलग हो जानेके बाद अगर किसीको हमारा ध्वंस करना है तो वह करे।

लेकिन यह सब होते हुए भी जिन्हें अपने राजनैतिक काममें संघ से आसरा लेनेकी जरूरत नहीं है वे वहाँ रहें। जैसे वल्लभभाई हैं। उनको संघकी क्या दरकार है? संघमें रहनेसे उनकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। संघ पैदा होनेसे पहले ही राज-प्रकरणमें उनकी प्रतिष्ठा थी। इसलिए उनके रहनेसे संघकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। दूसरी बात यह है कि वे तो जन्मजात राज-प्रकरणी पुरुष हैं। राज-प्रकरण उनके खूनमें है। वे रचनात्मक कामके लिए पैदा नहीं हुए हैं। उन्होंने तो एक तरहसे विवश होकर रचनात्मक काम को स्वीकार कर लिया है। उनकी प्रकृतिका वह अविभाज्य अंग नहीं है, जैसाकि मेरा दावा है। वे रचनात्मक कामसे भरे हुए नहीं हैं, जैसाकि मैं हूँ। मैं इसके लिए पैदा ही हुआ हूँ। यह मेरी आत्माका अंग है। राज-प्रकरण तो मेरे लिए एक उपाधि-रूप (झंझट) है। उससे अगर पिंड छूटे, तो मैं खुशीके मारे नाचूँगा। सरदार शायद ऐसा नहीं करेंगे। मुझमें और उनमें यही बड़ा भारी भेद है। अगर मैं गलती कर रहा हूँ तो वे इसके साक्षी हैं। मेरी गलती सुधार सकते हैं।

लेकिन अगर दूसरे बहुत-से सदस्य ऐसे हैं जिन्हें संघसे प्रतिष्ठा मिलती है और उस प्रतिष्ठाका उनकी राजनीतिमें उपयोग होता है, तो इसका यही इलाज है कि हम उन्हें यह प्रतिष्ठा न दें। इस तरहसे दूसरेसे माँगी हुई प्रतिष्ठा उन्हें भी छोड़ देनी चाहिए। यदि हम ऐसी प्रतिष्ठा उन्हें देते हैं और वे लेते हैं, तो हम कांग्रेस-समाज-वादी या साम्यवादियोंके हरीफ [प्रतिद्वन्द्वी] बननेके आरोप के पात्र हो जाते हैं। जब दरअसल ऐसी बात नहीं है, तो हम ऐसे इलजामके लिए गुंजाइश क्यों रखें?

हम किसीका मुकाबला नहीं करना चाहते। हमारा मार्ग तो यह है कि जो हमारा विरोध करते हैं, उन्हें भी अपनायें। अगर वे विरोध करते हैं, तो उनकी नासमझी है। लेकिन हम तो जानते हैं कि हम उनके और वे हमारे हैं। इसलिए जब तक लोग हमें राज-प्रकरणमें बुलाते नहीं हैं, हम राज-प्रकरणमें निश्चेष्ट रहें। अपना रचनात्मक काम चुपचाप करते रहें। इस प्रकार राज-प्रकरणसे हटकर अहिंसाको सुशोभित करें। यह एक अनुभवीका वचन है। आप उसके रहस्यको समझ लें और पकड़ ले और उसमें जो भरा है, उसपर ध्यान दें। इस प्रकार आपका संघको समेट लेना अहिंसाका पदार्थपाठ होगा। यह सीधी बात है। इसमें कोई हानि नहीं है।

अब मैंने जो यह कहा कि मैंने संघसे कुछ नहीं पाया, उससे उन्हें [गोकुल भाईको] दुःख क्यों लगे? यहाँ तो मैं अपने घरमें बैठा हूँ। आप सब मुझसे प्रेम

करते हैं। यह तो हमारा कुटुम्ब है। कुटुम्बमें हमसे बच्चे प्यार करते हैं, बीवी प्यार करती है, माँ-बाप, भाई-बहन, सब प्यार करते हैं। वहाँ हमें अपनी अहिंसाका प्रयोग करनेका मौका ही बहुत कम मिलता है। उसी तरह इस संघमें मेरी अहिंसाकी परीक्षा नहीं होती। यहाँ आप मुझे क्या सिखा सकते हैं? कांग्रेसमें मेरी अहिंसाकी कसौटी होती है। वहाँ मेरा विरोध होता है, निन्दा होती है, टीका होती है। मेरी क्रोध-वृत्तिको खाद्य मिलता है, उत्तेजना मिलती है। मैं सब अदबके साथ बरदाश्त करता हूँ। मुझे अहिंसा और प्रेमके अभ्यासका मौका मिलता है। वहाँ मेरी वृद्धि (विकास) होती है, इसलिए मैं यह कहता हूँ कि मुझे अपनी शक्ति बढ़ानेके अवसर कांग्रेसमें मिले। वहींसे मैंने सब कुछ पाया। संघसे बहुत कम पाया। मेरा मतलब यह नहीं है कि संघ कोई निकम्मी या फेंक देनेकी चीज है। बात ऐसी है कि मैंने तो आपकी स्तुति ही की है, निन्दा नहीं की। गोकुलभाई भी जहाँ उन्हें प्रेम मिलता है ऐसे कुटुम्बमें क्या सीख सकते हैं? बाहरसे अधिक सीख सकते हैं। परीक्षाका स्थान बाहरके जगतमें है। वहाँ गालियाँ खाकर भी प्रसन्नचित्त रहना सीखना है। कितनी भी उत्तेजना हो, तो भी हमारे चित्तमें रोष नहीं आना चाहिए। हमारी कसौटीका क्षेत्र बाहर है। यहाँ तो हमें अपनी बैटरीमें मसाला भर लेना है। अब यह मसाला किस प्रकार भर सकते हैं, यह दूसरा सवाल है। उसके लिए संघके रूपको बदलना पड़ेगा। इस विषयमें जिसको कुछ कहना हो, वह बादमें कहे। अभी तो हम संघको राज-प्रकरणसे अलग कर लेनेके प्रश्नपर ही विचार कर रहे हैं। मैंने गोकुलभाईकी गलतफहमी दूर कर दी है। सारी बातें स्पष्ट कर दी हैं। अब वे चाहें तो अपनी गलतीके लिए अपना कान पकड़ सकते हैं और अधिक कुछ पूछना हो तो पूछ भी सकते हैं।[1]

जाजूजीका एक स्वभाव है, जो मैं जानता हूँ। वे हर एक चीज पद्धतिपूर्वक करना चाहते हैं। उन्होंने कहा है कि अगर कोई चीज निश्चित शब्दोंमें आपके सामने रखी जाये तो विचार करनेमें सुविधा होगी। मैंने भी समझा कि अगर कोई चीज बन जाये तो अच्छा हो। इसलिए यह एक प्रस्ताव बनाया है। अगर आप संघको निपटाना चाहते हैं तो निपटा दें। अपनी उस रायपर मैं कायम हूँ, और वैसी सलाह मैं आपको दे चुका हूँ। अगर वह बात आपको पसन्द न हो, तो राज-प्रकरणमें भाग लेनेवाले सदस्योंके रहनेसे जिस रूपमें संघ रह सकता है, उस रूपमें उसे कायम रखें। शायद यह बात आपको अधिक पसन्द आयेगी, ऐसा समझकर मैंने यह प्रस्ताव[2] बनाया है। वह अभी आपके सामने पढ़ दिया जायेगा। रात-भर आप इसको सोचें। कल तो इस सवालका फैसला कर ही लेना चाहिए। किशोरलालभाईने दो बार दो-दो प्रस्ताव बनाकर दिये हैं। पहली बार जो प्रस्ताव

१. इसके बाद दांडेकरने वल्लभभाईसे अपने विचार व्यक्त करनेकी प्रार्थना की। जब वल्लभभाई विस्तारपूर्वक बोल चुके तो गांधीजी ने अपना भाषण पूरा किया।

२. प्रस्तावका मसविदा उपलब्ध नहीं है। प्रस्ताव जिस रूपमें पास हुआ उसके लिए देखिए परिशिष्ट ५।

दिये उनमें जो चीज थी वह नहीं ले सका। आज दो प्रस्ताव फिर दिये हैं। उनमें जो बात है, वह भी स्वीकार नहीं कर सका; लेकिन उसकी कुछ ध्वनि इस प्रस्तावमें आ गई है।[1]

गांधी सेवा-संघके छठ अधिवेशन (मलिकन्दा, बंगाल) का विवरण, पृ० २५-३३

२७७. भाषण: गांधी सेवा-संघमें – ३[2]

मलिकन्दा
२२ फरवरी, १९४०

भाइयो और बहनो,

आखिरमें जो लोग बैठे हैं, क्या उन तक मेरी आवाज पहुँचती है? अगर न पहुँचती हो तो बता दें।

आज प्रातः ३ बजे ही मैं उठ गया। संघकी बात सोचना शुरू कर दिया। उसका नतीजा आपके सामने रखता हूँ। आप अपनी राय उसके बाद आज ही बताना चाहें तो बतायें। कल एक अधूरा-सा प्रस्ताव आपके सामने रखा गया। सोचता हूँ कि उसपर कुछ कहूँ और उसके बाहर भी कुछ कहूँ।

राज-प्रकरणके बारेमें मैंने जो कहा, उसपर मैं और भी दृढ़ हो गया हूँ। विचार करनेपर मुझे मालूम हुआ कि हमने अनजानमें असत्याचरण भी कर लिया है। कल रातको मैं जो बता रहा था वह इस बातका सूचक था। इसलिए हमने सत्ताके राज-प्रकरणका तो जान-बूझकर त्याग कर दिया। अगर हम संघके नाते सत्ताके राज-प्रकरणमें पड़ना चाहते थे, तो हमें खुले तौरपर पड़ना चाहिए था। उसके लिए संघका स्वरूप भी बदलना चाहिए था। लेकिन राज-प्रकरणमें पड़नेके लिए हमारे पास तो कोई सामग्री ही नही है। राज-प्रकरणके लिए यह भी जान लेना जरूरी है कि दूसरे क्या करते हैं और क्या करना चाहते हैं। समाजवादियोंकी क्या विचारसरणी और नीति है, यह भी जान लेना चाहिए था। हमारे पास तो राजकीय पुस्तकोंकी लाइब्रेरी तक नहीं है।

मैंने तो समाजवादका कुछ भी अध्ययन नही किया। उस विषयकी पुस्तकें नही पढ़ीं। जयप्रकाशकी एक पुस्तक[3] पढ़ी। मसानी[4] ने एक पुस्तक दी, वह भी पढ़ ली। सम्पूर्णानन्दजीने एक बड़ी अच्छी पुस्तक[5] लिखी है। बड़े प्रेमसे भेज दी;

१. मन्त्रीने गांधीजी के प्रस्तावका मसविदा पढकर सुनाया। अधिवेशन रातको ९ बजे स्थगित कर दिया गया।

२. अधिवेशन प्रातः ७-३० बजे आरम्भ हुआ, जिसका सभापतित्व श्रीकृष्णदास जाजूने किया।

३. व्हाई सोशलिज्म? (१९३६)

४. एम० आर० मसानी

५. समाजवाद (१९३६)

इसलिए उसे भी पढ़ा। बस, इतना ही मेरा समाजवादका अभ्यास है। वे लोग बताते हैं कि समाजवाद और साम्यवादपर कितनी ही पुस्तकें लिखी गयी हैं। साम्यवादका तो मैंने कुछ भी नही पढ़ा। आपमें से कितनोंने पढ़ा होगा, मै नही जानता।

वह चीज मेरी प्रवृत्तिमें नही आती। मेरे दिमागकी रचना ही दूसरी है। मेरा बुद्धिमत्ताका दावा तो वे कबूल भी नही करते। राज-प्रकरणमें मेरी बुद्धिकी कोई प्रतिष्ठा नही है। जो राज-प्रकरणमें पड़े है, वे तो मुझपर हँसते हैं। वे कहते है, 'क्या यह राज-प्रकरण है?' मै एक लड़वैया था इस कारण मेरी राज-प्रकरणमें प्रतिष्ठा बढ़ी; मेरी बुद्धिके कारण नही। मेरी बुद्धिकी ऐसी प्रतिष्ठा कोई नही मानता कि उसीसे मै किसीको परास्त कर सकूँ। मै समाजवादको मानता हूँ और साम्यवादका भी माननेवाला हूँ। मै सबको मानता हूँ, लेकिन अपनी दृष्टिसे मानता हूँ। मै सबका हूँ और किसीका नही हूँ। अहिंसाको माननेवाला किसीका विरोधी नही हो सकता। वह तो सबकी मददसे अहिंसाका विज्ञान बनाना चाहता है। किसीका विरोध करनेका या किसीको परास्त करनेका राज-प्रकरण उसका है ही नही।

जिसे राजनीति कहा जाता है, उसके लिए न तो मै खुद लायक बनना चाहता हूँ और न दूसरोंको बनाना चाहता हूँ। हुदलीमें मैंने राजनीतिमें प्रवेश करनेके लिए कहा। अनजानमें मैंने वह भूल की। यह भी कह सकते हैं कि अनजानमें हमने असत्याचरण किया। जिस कामके लिए हम पैदा हुए है उसीको अच्छी तरह करनेके बदले हमने दूसरे काममें हाथ डाला। जो हुआ सो ठीक ही हुआ। हमने अनुभव ले लिया। पाया कि हमारी वह ताकत नही है। हमें अपनी अयोग्यताका पता लग गया है। अब हम अपना हाथ खीच लेते हैं। हमने गलती तो की, लेकिन अपने दोषोंका पता लगते ही हम सँभल रहे हैं। गलती जब सुधार ली जाती है, तब वह गलती नही रहती। अपनी भूल कबूल कर लेनेसे हमारी शक्ति बढ़ती है। मै आपसे कहता हूँ कि आप अपनी मर्यादाओंको पहचान लीजिए, और जिस कामके लिए यह संघ बना था उसीको अच्छी तरह कीजिए।

आज मेरे पास नोआखलीसे कुछ मित्र आ गये थे। वे कहते थे : "हम तुम्हारी सब बातें स्वीकार करते। लेकिन तुम्हारे अनुयायी जो यहाँ बैठे हैं, उनकी बात नही समझ सकते हैं; हम तुम्हारी बात मान सकते हैं। तुम उसे गांधीवाद कहो, चरखा चलाना कहो, ग्रामोद्योग कहो, हम उसको स्वीकार करते हैं। हम तुम्हारे अनुयायी हैं। लेकिन तुम्हारे अनुयायियोंके अनुयायी नही हैं। तुम्हारे अनुयायियोके पास कुछ भी नही है।" उन्होंने जो-कुछ कहा, बड़े प्रेमसे कहा। हमारे लिए वह समझनेकी बात है। हम राज-प्रकरणमें पड़े, इससे न तो वहाँ कुछ कर सके, न हमारा अपना ही काम कर सके। न इधरके रहे, न उधरके। अब हमें अपने अज्ञानका ज्ञान हो गया है। हम उसे दूर करनेके लिए प्रयत्नशील बने।

हमने अपने सिद्धान्तोंके प्रयोगके लिए राज-प्रकरणका उपयोग किया। आज अनुभवके बाद उसका त्याग कर रहे हैं। हम जिस राज-प्रकरणका त्याग कर रहे हैं, वह है कांग्रेस-सत्ता हस्तगत करनेका राजकारण। हम कभी उसमें हिस्सा नही ले सकते। मैं व्यक्तिकी बात नही करता; संघकी बात करता हूँ। संघमें सत्ताकी राजनीतिके लिए कोई स्थान नही है। जिस व्यक्तिकी स्वाभाविक प्रवृत्ति और योग्यता हो वह उसमें रहे। लेकिन यह सत्ताका राज-प्रकरण ऐसा भयंकर जाल है कि इसमें से शायद व्यक्तियोंको भी निकल जाना पड़े। वहाँ उनकी अहिंसाकी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा होगी। उन्हें कटु अनुभव आयेगा, तब वे भी निकल आयेंगे। लेकिन आज तो मैं संघके लिए ही कह रहा हूँ। संघको कांग्रेस कमेटियोंका, यानि चुनाव और सत्ताके राज-प्रकरणका त्याग ही करना चाहिए। इस रायपर मैं और भी दृढ़ हो गया हूँ। उस राज-प्रकरणके योग्य यह संघ नही है। मैं खुद उसके लायक नही हूँ। आपके अध्यक्ष तो उसके लिए और भी कम लायक हैं। वे तो तत्त्ववेत्ता, नीतिशास्त्रज्ञ और लेखक हैं।

तीसरी बात एक वाक्यमे कह दूं। सच बात तो यह है कि आपको 'गांधी-वाद' नामको ही छोड़ देना चाहिए, नही तो आप अध-कूपमें जाकर गिरेंगे। गांधीवादका तो ध्वंस होना ही है। 'गांधीवाद का ध्वंस हो' की आवाज मुझे प्यारी लगती है। 'वाद' का तो नाश ही होना उचित है। वाद तो निकम्मी चीज है। असली चीज अहिंसा है। वह अमर है। वह जिन्दा रहे; इतना मेरे लिए काफी है। गांधीवादका ध्वंस तो मैं शीघ्र ही देखना चाहता हूँ। आप साम्प्रदायिक न बने। मैं तो किसीका साम्प्रदायिक नही बना। कोई सम्प्रदाय कायम करना कभी मेरे ख्वाबमें भी नही आया। मेरे मरनेके बाद मेरे नामपर अगर कोई सम्प्रदाय निकला तो मेरी आत्मा रुदन करेगी। इतने बरसों तक हमने जो चीज चलायी, वह कोई 'वाद' नही है। हमें किसी 'वाद' में नही पड़ना है; मौन धारण करके अपने सिद्धान्तोके अनुसार सेवा करते रहना है।

लोग चाहे जो कहे, सेवाका कोई सम्प्रदाय नही बन सकता। वह तो सबके लिए है। हम सबको स्वीकार करेंगे। सबके साथ चलनेकी कोशिश करेंगे। यही अहिंसाका रास्ता है। अगर हमारा कोई 'वाद' है, तो वह यही है। गांधीवाद कोई चीज नहीं। मेरा कोई अनुयायी नही है। मैं ही अपना अनुयायी हूँ। नही, नही, मैं भी अपना पूरा-पूरा अनुयायी कहाँ बन पाया हूँ? अपने विचारोंपर मैं भी कहाँ अमल करता हूँ? तब दूसरे मेरे अनुयायी कैसे हो सकते हैं? दूसरे मेरे साथ चलें, मेरे सहयात्री रहें, यह तो मुझे प्रिय है। लेकिन कौन आगे चले और कौन पीछे चले, इसका मुझे कहाँ पता है? आप सब मेरे सहाध्यायी, सहकर्मी, सहसेवक, सह-संशोधक हैं। अनुयायी होनेकी बात आप छोड़ दें। कोई आगे नही, कोई पीछे नही। कोई नेता नही, कोई अनुयायी नही। हम सब साथ-साथ हारबन्द (एक कतारमें) चल रहे हैं। यह बात कई बार कह चुका हूँ; लेकिन आप लोगोंको याद दिलानेके लिए फिरसे दोहरा दी है।

हमें कांग्रेसमें सत्ताका त्याग करना है। इसके विषयमें आप अपना दिमाग बिलकुल साफ कर लें, तो आगेकी बात आपकी समझमें आ सकेगी। मुझसे पूछा गया है कि "क्या हम म्युनिसिपैलिटी आदि संस्थाओंसे भी हट जायें?" मैं यही कहूँगा कि म्युनिसिपैलिटीको भी छोड़ना चाहिए। नागपुरकी म्युनिसिपैलिटीका किस्सा मैं जानता हूँ। वहाँकी कांग्रेस म्युनिसिपल पार्टीमें कितना वैमनस्य, कितना वैरभाव पैदा हो गया है, यह देखकर मैं चकित हो गया। उसके बारेमें मैं बहुत-थोड़ा जानता हूँ। गोपालराव उसका इतिहास भीतरसे जानते हैं। वहाँकी कांग्रेस म्युनिसिपल पार्टीमें तीन पक्ष हो गये हैं। तीनों आपसमें लड़ते हैं। तीनो पक्षोंके आदमी मेरे पास चले आये और अपनी-अपनी बात कह गये। मेरे दिलपर बहुत बुरा असर हुआ। वहाँकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीमें भी काफी वैरभाव है। मैंने उनसे कहा कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीपर ए० आई० सी० सी० (अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी)का अंकुश है। आप सरदार या राजेन्द्र बाबूके पास जाइये। ऐसी किसी संस्थामें यदि गांधी सेवा-संघका सदस्य चला जाये, तो मुझे बहुत बुरा लगेगा। वह वहाँ जाकर क्या कर सकता है? हम तो तीस कोटिके साथ अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं। यह तभी होगा जबकि हम शून्यवत् बनेंगे। हमें अधिकारसे क्या काम? सत्ताका राज-प्रकरण मिथ्या है। हमें लोगोंको सच्चा राज-प्रकरण बताना चाहिए। जो काम दूसरे लोग नहीं करते, बल्कि जिसे वे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, वही रचनात्मक काम हम करेंगे। गांधी सेवा-संघ रचनात्मक कार्य करते रहनेमें अपना जीवन सफल मानेगा। संघके सदस्योंमें से राज-प्रकरणमें प्रत्यक्ष हिस्सा लेनेवाले चौरासी आदमी हैं। वे तो हट जायेंगे। लेकिन उसके बाद संघका क्या स्वरूप रहेगा, यह मैं अभी समझाता हूँ।

गांधी सेवा-संघकी हस्ती रचनात्मक कार्यक्रमके लिए है। वही सच्चा राज-प्रकरण है। अधिकारका त्याग करके हमें उस सच्चे राज-प्रकरणको सुशोभित करना है। कोई उसे राज-प्रकरण न कहे, तो हमें उसकी क्या परवाह है? हम कांग्रेसकी मर्यादामें रहेंगे; लेकिन सत्ता और चुनावसे हट जायेंगे।

सत्य और अहिंसाको जो लोग मेरी तरह मानते हैं, उनकी फेहरिस्तका रजिस्टर रखनेके लिए गांधी सेवा-संघकी जरूरत नहीं है। ऐसी किसी फेहरिस्तकी मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता। "तब भविष्यमें संघका क्या स्वरूप और क्या कार्य हो सकता है", इसका विचार मैं कल कर रहा था। मैं जिस नतीजेपर आया हूँ, वह सब आपके सामने रखता हूँ। मेरे नजदीक अब गांधी सेवा-संघ एक 'पोस्ट-ग्रेज्युएट स्टडी' जैसी संस्था बन जाती है। हमारे यहाँ जितनी संस्थाएँ मेरे नामसे — यानी मेरी देखभाल या मार्गदर्शनमें — चल रही हैं, वे सब रचनात्मक कार्यके लिए ही हैं। चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक-संघ, तालीमी संघ — इन सबका मार्गदर्शक मैं ही हूँ। दक्षिण भारतके हिन्दी प्रचारमें मेरा हाथ रहा है। सारे भारतके हिन्दी प्रचारकी नीतिपर मेरा अंकुश चलता है। मेरे नजदीक ये सब सच्चे राज-प्रकरणके अविभाज्य अंग हैं। अहमदाबादमें जो मजदूर-संघ

चलता है, उसपर भी मेरा अंकुश है। इन सब संस्थाओंके लिए गांधी सेवा-संघ पोस्ट-ग्रेज्युएट अध्ययन और संशोधनका काफी काम कर सकता है। ये सारी संस्थाएँ यह कार्य पर्याप्त मात्रामें नहीं कर सकतीं; क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र मर्यादित है। उदाहरणार्थ, चरखा संघको लीजिए। उसकी नीति तो मैंने बना दी है। वह नीति यह है कि जो लोग भूखे और गरीब हैं, जिनके पास सालमें करीब-करीब छह महीनेका वक्त खाली रह जाता है, उनके हाथमें जितना पैसा दे सकें, दें; और दूसरोंको समझा-बुझाकर, उनकी पारमार्थिक बुद्धिको जाग्रत कर इन गरीबोंकी बनायी हुई खादी खरीदनेको उन्हें प्रेरित करें। चरखा संघके कार्य क्षेत्रमें स्वावलम्वन भी आता है, लेकिन इसी प्रधान कार्यकी मदद करनेके उद्देश्य से। उसमें स्वावलम्बनका वह पहलू नहीं आता जो प्रफुल्लबाबूने आप लोगोंके सामने रखा था। प्रफुल्लबाबूने तो उसका अहिंसासे और स्वराज्यसे अनुसन्धान करके कहा था। उस प्रकारका स्वावलम्बन चरखा संघके क्षेत्रमें नहीं आता। मैं शंकरलालसे यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि वह कातनेवाली गरीब औरतोंको चरखेमें भरी हुई सारी बातें समझायें।

वह तो आपका काम होगा। प्रफुल्लबाबूने उस दिन कहा कि आप लोगोंको सालमें कम-से-कम एक लाख गज सूत कातना चाहिए। उसका मैंने हिसाब किया तो मालूम हुआ कि करीब तीन सौ गज रोज कातना चाहिए; तब सालमें एक लाख गज होगा। बात यह है कि तीन सौ गज निकालना, अच्छा चरखा और अच्छी पूनियाँ हों तो पौन घंटेका काम है। आध घंटेमें करनेवाले भी पड़े हैं। आप लोगोंसे तो मेरी अपेक्षा अधिक-से-अधिक होगी। आप लोगोंके लिए तो कातनेकी कला हस्तामलकवत् होनी चाहिए, क्योंकि आप तो पोस्ट-ग्रेज्युएट ठहरे। आप सच्चे दिलसे ध्यानावस्थित होकर कातेंगे। तीन सौ गज आध घंटेमें कातनेवाले कुशल कारीगर भी हैं। लेकिन आप केवल कुशल कारीगर ही नहीं होंगे; आप तो चरखे के जरिये ईश्वर-दर्शन करनेकी चेष्टा करेंगे, जैसाकि मैं कर रहा हूँ; तभी मेरी परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे। यह प्रफुल्लबाबूकी योजनाका मेरा स्पष्टीकरण है।

चरखा संघवाले, ग्रामोद्योग-संघवाले, अपने-अपने क्षेत्रके सम्बन्धमें विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आपके पास आयेंगे। आपको ऐसे कामोंमें सम्पूर्णता और विशेषता प्राप्त करनी होगी। हर एक आदमी सभी बातोंका विशेषज्ञ नहीं हो सकता। लेकिन एक-एक आदमी एक-एक कामका विशेषज्ञ बन सकता है। डॉक्टरोंमें भी कोई डॉक्टर फिजिशियन होते हैं, तो कोई सर्जन होते हैं। सर्जरीमें भी कोई आँखके, कोई नाकके, कोई गलेके विशेषज्ञ होते हैं। इसी तरह हम एक-एक विभाग सँभाल लें। यह पैसा कमानेकी बात नहीं है। दूसरे विशेषज्ञ पैसा कमानेके लिए आविष्कार और संशोधन करते हैं। हमें गरीबोंकी सेवा और उन्नतिके लिए विशेषज्ञ बनना है। भविष्यमें गांधी सेवा-संघ यह कार्य करेगा तभी उसका अस्तित्व सार्थक होगा। अगर आप संघको रखना ही चाहें तो इस रूपमें रखें या उसे बन्द कर दें; नहीं तो सारे जगतमें हमारी हँसी होनेवाली

है और हमारे ही हाथोंमें गांधीवादका ध्वंस होनेवाला है। हम अपने दिलको धोखा न दें।

दूसरा भी एक हमारा कार्यक्रम रहेगा। मैंने मजदूर सघवालोसे कह दिया है कि वे राज-प्रकरणमें पड़ेंगे तो मरेंगे। चरखा संघवालोंसे कह दिया है कि तुम्हें राजनीतिसे कोई मतलब नही है। अगर तुम स्वराज्यके राज-प्रकरणमे पड़ोगे तो तुम्हारा सूत कच्चा निकलेगा, क्योंकि ध्यान बँट जायेगा। अपना काम भी ठीक नही कर सकोगे, निकम्मे ठहरोगे। हरिजन सेवक-सघसे कहा कि स्वराज्यसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। वे अपना काम करते जायें तो उसीमें से स्वराज्य अपने-आप पैदा हो जायेगा।

लेकिन आपके लिए क्या है? आपको देखना होगा कि गाधी कहता है कि मै चरखेमें ईश्वरका दर्शन करता हूँ। उसका क्या मतलब हो सकता है? हम उसका अक्षरार्थ लें, या उसका रहस्य लें, या दोनों? मै तो कहूँगा कि आप दोनो लें। भावार्थ यह है कि चरखेके प्रत्येक धागेमें आप ईश्वरका दर्शन करें। चरखे-जैसी सेवाकी प्रवृत्तियाँ हमें ईश्वरके नजदीक ले जाती है, यह उसका रहस्य है। आप देखेंगे कि इस प्रकार हमारी इन प्रवृत्तियोमें बडी व्यापक भावना भरी हुई है।

उसका अक्षरार्थ भी व्यापक-सा ही है। आप तो पोस्ट-ग्रेज्युएटकी लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) में शोध और आविष्कार करेंगे। इसके लिए आपको चरखा-शास्त्रमें ही नही, बल्कि कातनेकी कलामें भी निपुण होना चाहिए। गाधी सेवा-सघसे विशेष ज्ञान और विशेष कौशल्यकी अपेक्षा रखी जायेगी। आपका चरखा, सघके चरखेसे अच्छा चले। आपका धागा महीन, मजबूत और अटूट होगा। तार टूटना आपके लिए शर्मकी बात होगी। जो शास्त्री है उसके शस्त्र भी अच्छे-से-अच्छे होने चाहिए। आपकी पूनियाँ, आपके औजार, सभीमें विशेपता होगी। मै आपको केवल कुशल मजदूर नही बनाना चाहता। मै तो आपको कुशल कलाकार और वैज्ञानिक शोधक बनाना चाहता हूँ। आपसे अनोखी चीज चाहता हूँ। आपके चरखे में और चरखा सघके चरखेमे उतना ही अन्तर होगा जितना कि मेरे उस्तरेमें और एक हज्जामके उस्तरेमें होगा। आपके साधन अनोखे होंगे।

यहाँ आप दूसरोकी बनाई हुई पूनियोसे कातते है। लेकिन उस स्थितिमें जिन पूनियोसे कातेंगे वे साधारण नही होगी। पूनियाँ बनानेके तरीकेमें आप सुधार करेंगे। अच्छी-से-अच्छी पूनियाँ खुद बनायेंगे और बनवायेंगे। इस तरह हर एक छोटी-छोटी तफसीलकी बातका अध्ययन करेंगे जैसाकि विनोबाने किया है। उन्होने तो प्रयोग कर-करके हर एक चीजका एक शास्त्र ही बना दिया है। पूनियाँ बनानेकी नयी तरकीब निकाली है। आन्ध्रमें मछलीके दाँतोंका उपयोग करते है। विनोबाकी पद्धतिमें आन्ध्र-पद्धतिका अनुवाद है; लेकिन उन पूनियोसे कता हुआ सूत आन्ध्रका मुकाबला कर सकता है। उन्होंने व्हेरम[1] कपासके चालीस अकके सूतका कपड़ा बनवाकर मेरे पास भेजा है। वह चीज प्रदर्शनीके लायक है। यह एक

१. कपासकी एक किस्म जो भूतपूर्व बरार रियासत में उगाई जाती थी

मुसलमान लड़केके हाथसे बनवाया हुआ है। आपके धुनकनेके तरीके भी ऐसे होंगे जिससे किसीको कष्ट नहीं होगा। आपकी धुनकीमें से कपासके तंतु नहीं उड़ेंगे। खाँसीवाला आदमी भी बेखटके धुनक सकेगा। आपके कपास पसन्द करनेमें भी कुछ विशेषता होगी। बेल (जिनिंग प्रेसकी गठान) की कपास तो आप ले ही कैसे सकेंगे? आपकी ओटनेकी खास पद्धति होगी। इसके लिए धैर्य और शोधक बुद्धि चाहिए, लगन चाहिए। अगर यह सब आपने कर लिया, तो मेरे अक्षरार्थका पालन कर लिया।

इसके बाद आपको यह देखना होगा कि क्या चरखा आपकी अहिंसक शक्तिको बढ़ाता है? विनोबाने एकादश व्रतोंका एक श्लोक बनाया है। हर रोज आप उसका उच्चारण करते हैं। आपको देखना होगा कि क्या "उन ग्यारह व्रतोंके पालनमें चरखेसे आपको मदद मिलती है?" चरखा-संघके चरखेमें राज-प्रकरण भले ही न हो; लेकिन आपको देखना होगा कि "आपके चरखेमें राज-प्रकरण है या नहीं?" मतलब यह कि उससे लोगोंकी शक्ति बढ़ती है या नहीं? आजाद हिन्दुस्तानमें स्वराज्यकी जो अर्थ-व्यवस्था होगी, वह चरखेके आधारपर हो सकती है या नहीं? वह लोगोंको केवल मजदूरी करनेवाले यंत्र बना देगा; या अहिंसक स्वराज्यके सिपाही बनायेगा? यह सब आपको देखना है। चरखा संघके क्षेत्रमें ये बातें नहीं आती। उसके क्षेत्रसे परे जो विशेष कार्य रह जाता है, वह आपका क्षेत्र होगा।

आपको सोचना होगा कि 'क्या दरअसल चरखेसे स्वराज्य मिलेगा? क्या दरअसल यह बात आपको जँचती है? या केवल गाधी कहता है, इसलिए आप उसे मानते हैं? गांधी चरखेके द्वारा ईश्वरका दर्शन कर सकता है, या उसमें से स्वराज्य पानेकी आशा रखता है, यह उसकी व्यक्तिगत बात भी हो सकती है। आपको इस बातकी खोज करनी होगी कि क्या यह सिद्धान्त सार्वत्रिक हो सकता है। जैसे जगदीशचन्द्र वसु अपने क्षेत्रमें संशोधक थे, वैसे आपको भी बनना होगा। उन्होंने एक पोस्ट-ग्रेज्युएट कोर्स भी बनाया। मैंने देखा है कि वे कैसे उसीमें जुटे रहते थे। उनके जीवनका वही एक विषय हो गया था। मैं तो उनके साथ बैठनेवाला था। रात-दिन कुछ दिनों तक उनके घरमें रहा। उनके पास दस-बीस चुने हुए आदमी थे। लेकिन दस-बीस चुने हुए आदमी अगर अपनी धुनके पक्के हों, तो करोड़ोंका काम कर लेते हैं। विशारदोंका काम तो ऐसा ही होता है। चरखा-संघ, ग्रामोद्योग संघ यह काम नहीं कर सकते। वहाँ भी विशारद हैं, संशोधन भी करते हैं, लेकिन आपका क्षेत्र उनसे भी व्यापक और विशिष्ट होगा। मैं तो उनके द्वारा खासकर दरिद्रनारायणकी सेवा करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। उनका विकास उसी दिशामें होगा। लेकिन आपका काम तो अनोखा होगा। आप केवल औजार और उपकरणोंमें सुधार ही नहीं करेंगे, बल्कि हमारे सिद्धान्तोंसे उन चीजोंका सम्बन्ध भी देखेंगे। मेरी बुद्धि एक सहाध्यायीकी बुद्धिके तौरपर आपकी सहायता करेगी, लेकिन विशेष काम तो आप ही से कराना है।

इसी तरहसे संशोधन और आविष्कार सब जगह होता है। जर्मनीमें देखिए कितने विशारद हैं। वहाँ उन्हें हिंसाके शास्त्रके विशारदोंकी दरकार है। हमारे पास एक छोटा-सा केन्द्र हो, तो हम भी अहिंसाके शास्त्रमें खोज और विकास करेंगे। हमें चरखा और उसके इर्द-गिर्दकी प्रवृत्तियोंका अनुसन्धान अहिंसासे करना है और आखिर अजाममें ईश्वरसे करना है।

आपको सोचना होगा कि क्या ये सब चीजें हो सकती हैं? आप देखते हैं कि हिंसाके आधारपर बना हुआ समाज भी विशारदों द्वारा ही चलता है। हम एक नये समाजका निर्माण सत्य और अहिंसाके आधारपर करना चाहते हैं। उसका शास्त्र बनानेके लिए हमें विशारदोंकी जरूरत है। जिस तरहसे आज जगत चल रहा है, वह हिंसा और अहिंसाका मिश्रण है। जगतका बाह्य रूप उसकी भीतरी हालतका प्रतीक है। जर्मनी जैसा मुल्क जो हिंसाको ही ईश्वर मानता है, रात-दिन उसीके विकासमें लगा है; उसीको सुशोभित करनेकी कोशिशमें लगा हुआ है। हिंसाके पुजारी जो-जो उद्योग कर रहे हैं, हम देख रहे हैं। हमें भी यह समझ लेना चाहिए कि हिंसावाले हमारी प्रवृत्तियाँ देख रहे हैं। वे देख रहे हैं कि हम अपने शास्त्रके विकासके लिए क्या कर रहे हैं।

लेकिन हिंसाका मार्ग पुराना और रूढ़ है। उसमें खोज करना उतना कठिन नहीं है। अहिंसाका रास्ता नया है। अहिंसाका शास्त्र अभी बन रहा है? हम उसके सारे अंग नहीं जानते। इसमें खोज और प्रयोगका विशाल क्षेत्र पड़ा है। आप अपनी सारी बुद्धि लगा सकते हैं।

अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसाकी कल्पना व्यापक है। वह करोड़ोंकी है। मैं तो उनका सेवक हूँ। जो चीज करोड़ोंकी नहीं हो सकती, वह मेरे लिए त्याज्य है, और मेरे साथियोंके लिए भी त्याज्य ही होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करनेके लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचारके नियम नहीं हैं। वह समुदाय, जाति और राष्ट्रकी नीति हो सकती है। अभी हमने यह सिद्ध नहीं कर दिया है; लेकिन यही हमारे जीवनका उद्देश्य हो सकता है। जिनका यह विश्वास न हो, या जिनसे यह न बन सके, वे कृपा करके हट जायें। लेकिन मेरा तो यही स्वप्न है। इसीको मैंने अपना कर्तव्य माना है। चाहे सारा जगत मुझे छोड़ दे, तो भी मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। मेरी श्रद्धा इतनी गहरी है। इसे सिद्ध करनेके लिए ही मैं जीऊँगा और उसी प्रयत्नमें मरूँगा। मेरी श्रद्धा मुझे नित्य नया-नया दर्शन कराती है। मेरी उत्तर अवस्थामें अब मुझसे इसके सिवा दूसरा कुछ होनेवाला नहीं है। हाँ, अगर मेरी बुद्धि ही कलुषित हो जाये या मैं दूसरा कोई नया दर्शन कर लूँ, तो बात दूसरी है। लेकिन आज तो अहिंसाके नित्य नये-नये चमत्कार मैं देखता हूँ। रोज नया दर्शन और नया आनन्द मुझे मिलता है। मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशाके लिए है। वह आत्माका गुण है, इसलिए वह व्यापक है; क्योंकि आत्मा तो सभीके होती है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहोंके लिए है, सब समयके लिए है। अगर वह दरअसल आत्माका गुण है, तो हमारे लिए वह सहज

हो जाना चाहिए। आज कहा जाता है कि सत्य व्यापारमें नही चलता, राज-प्रकरणमें नही चलता। तो फिर वह कहाँ चलता है? अगर सत्य जीवनके सभी क्षेत्रोमें और सभी व्यवहारोंमे नही चल सकता, तो वह कौड़ी कीमतकी चीज नहीं है। जीवनमें उसका उपयोग ही क्या रहा? मैं तो जीवनके हर एक व्यवहारमें उसके उपयोगका नित्य नया दर्शन पाता हूँ। पचास वर्षसे अविकसे साधना कर रहा हूँ। उस साधनाका अनुभव अंशत: आप लोगोंके सामने रखता जाता हूँ। आप भी उसका दर्शन कर सकते हैं।

अगर संघको रहना है, तो इस कामके लिए रहना चाहिए। अगर आपमें इतनी इच्छा, उत्साह या शक्ति नही है, तो संघको बन्द करना ही सत्य और अहिंसाकी साधना है। क्योंकि ऐसा न करेंगे, तो हम अपराधी साबित होंगे; अप्रमाणिकताका पाप करेंगे। दूसरा भी एक पाप करेंगे। किशोरलालभाई जैसा सेवक हमारे पास है। वह शुद्ध आदमी है, अविच्छिन्न उद्यम करनेवाला है, ईश्वरने उसे सूक्ष्म बुद्धि दी है। ऐसे सेवकका हम दुरुपयोग करेंगे। अगर वह राजी भी हो जाये, तो क्या हम उसकी जान ले लेंगे? लेकिन मैं उनसे आग्रह क्यों करूँगा? आज हमारे पास ऐसा कौन-सा विशेष काम है? हमें उन्हें आज ही इस बोझसे मुक्त कर देना चाहिए।

उस दिन मैंने आपसे कहा कि किस परिस्थितिमें गांधीवादका ध्वंस होना चाहिए। आज फिर मैं आपसे कहता हूँ कि अगर गांधीवाद गलतीका समर्थन करता हो, तो उसका ध्वंस होना चाहिए। सत्य और अहिंसा कोई आकाशपुष्प नही हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्मसे प्रकट होने चाहिए। इस संघमें किशोरलालको जो कटु अनुभव हुए हैं, उन्हें वह कहना नही चाहता। वह मौन रह जाता है, क्योंकि वह सहनशील है। जब बात बहुत बढ़ जाती है, तभी मुझसे थोड़ा-सा कह देता है। वस्तुस्थितिका कुछ दर्शन मैं कर लेता हूँ। हममें भी जो यह विखवाद (जहरीला मनमुटाव) पैदा हो गया है, वह क्यो? हम तो एक कुटुम्बके हैं। सत्य और अहिंसाको धारण कर बैठे हैं। हमारेमें भी भेदबुद्धि है, वादबुद्धि है, द्वेषबुद्धि है, तो क्या सत्य और अहिंसा इस जमीनकी चीजें नहीं हैं? क्या वे आसमानमे ही रहने लायक हैं? हमने राज-प्रकरणमें जाकर अनुभव लिया। हमारे संघमें भी अच्छे-अच्छे आदमियोंमें वैमनस्य पैदा हो गया।[1] अरे, कहाँ राम और कहाँ भरत? किशोरलाल तो कवि भी है। उन्होंने राम और भरतका काव्य बना दिया। यहाँ न तो कोई राम है और न कोई भरत। राम और भरत होते तो ऐसी बात ही क्यों होती? कहाँ उनका प्रेम और कहाँ इनका झगड़ा! राम और भरतसे तो ये करोड़ों कोस दूर हैं।

१. यहाँ श्रोत्रेने बताया कि किशोरलालभाई ने "राम और भरत" शीर्षकके अन्तर्गत सर्वोदय में ऐसे झगड़ोंकी चर्चा की थी। सर्वोदय हिन्दी मासिकका सम्पादन काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी कर रहे थे।

जब हम एक ही संघमें हैं और सेवाके ही उद्देश्यको लेकर आये हैं, तो हममें ऐसा भेदभाव क्यों होना चाहिए? हमें तो एक-दूसरेसे प्रेम ही करना चाहिए। क्या आप जितने आदमी यहाँ आये हैं, वे इस प्रकारके हैं? क्या वे एक-दूसरेसे प्रेमका व्यवहार करते हैं? अगर जवाबमें आप 'हाँ' कहें, तो मुझे आपकी बड़ी सख्त परीक्षा लेनी होगी। मुझे डर है कि हम उस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं होंगे। आप आपसमें अपने विषयमें एक-दूसरेकी सच्ची राय पूछें। अपने हृदयसे पूछें, तब आपको पता चलेगा कि हम अभी अहिंसासे कोसों दूर हैं। जब हम इतने दुर्बल हैं तो कांग्रेसमें क्यों पड़ें? वहाँ हम क्या सेवा कर सकते हैं? हमारे सामने जब कोई हरीफ (प्रतिस्पर्धी) आ जाता है, तब हम बैठ क्यों नहीं जाते? कांग्रेसके अधिकारसे हमारा क्या वास्ता है? हम चुनावमें किसीको परास्त करनेकी बात क्यों सोचें?

अगर हमारे अन्दर अधिकारकी लालसा या ईर्ष्याका भाव नहीं है, तो बाहर इतनी कटुता क्यों पैदा हुई? मलिकन्दामें ये आदमी आकर ध्वंसके नारे क्यों लगाते हैं? क्यों इतना गोलमाल करते हैं? यहाँपर जो बंगाली कार्यकर्ता हैं, उनसे मैं पूछता हूँ। यह कटुता कैसे पैदा हुई? आप उनको प्रेमसे वश करनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते? आपमें से जो प्रमुख कार्यकर्ता हैं वे उनके पास जाकर प्रेमसे उनसे क्यों नहीं पूछते? प्रफुल्लबाबू हैं, सतीशबाबू हैं, वे नारे लगानेवालोंके पास जायें, उनकी मण्डलीमें बैठें, प्रेमसे उनसे बात करें। मैं खुद यह कर चुका हूँ। मेरे लिए यह नयी बात नहीं है। मैं उनका हरीफ थोड़े ही हूँ? जो वे चाहते हैं, वह मैं नहीं चाहता। वे अधिकार चाहते हैं, मैं अधिकार चाहता ही नहीं। स्पर्धा तो तभी होती है, जब दोनों एक ही चीज चाहते हैं। हमें तो उनके प्रेमका पात्र बनना है। इसलिए हम राज-प्रकरणको छोड़ दें। मैदान उनके लिए खुला छोड़ दें। अहिंसा इसी तरह काम करती है। इसीलिए हमको सत्ताका राज-प्रकरण छोड़ देना चाहिए।

लेकिन हम बेकार और निकम्मे थोड़े ही बैठे रहेंगे? हम चरखा चलायेंगे और साथ-साथ यह भी देखेंगे कि चरखेसे हमारी बुद्धि कुंठित होती जाती है, या तेजस्वी बनती जाती है। हम चरखेका अध्ययन करेंगे। चरखा क्या है, वह क्यों आया, कैसे आया, क्यों गया, हमारे लिए उसका क्या उपयोग है, उसका क्या इतिहास है, क्या भविष्य है — इन सब बातोंका अध्ययन हमें करना है। इसके लिए हमें एक खास तरहकी लाइब्रेरी रखनी होगी। गांधी सेवा-संघके पास जैसी अनोखी लाइब्रेरी होगी, वैसी जगतमें और कहीं नहीं होगी। जब हम इस प्रकारसे काम करने लगें तभी हम गांधीवादके झंझटसे निपटनेवाले हैं। यह ऐसा कार्यक्रम होगा, जिसके लिए हमारे आजके विरोधी हमारी स्तुति करेंगे। आज जो हमें कोसते हैं, वे ही हमें आशीर्वाद देंगे। यह बात अगर आपकी बुद्धि, शक्ति और इच्छासे अतीत है, तो आप वैसा कह दें। उससे यही सिद्ध होगा कि आज ऐसा संघ बनानेकी योग्यता हममें नहीं है। लेकिन इससे जो बात मैंने आपके सामने पेश की है, वह थोड़े ही गलत साबित होगी?

जब यह संघ बना था, उस वक्त भी यह कल्पना नही थी। मै जब जेलमें था[1], तब जमनालालजीने इसे बनाया। जमनालालजी तो एक शुद्ध हृदयके सेवक है। मैंने जब असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो उन्होंने अपनी थैलीका मुँह खोला। मैंने वकीलोंसे वकालत छोड़नेके लिए कहा था। जमनालालजीने वकालत छोड़कर देशकार्यमें लग जानेवाले सौ वकीलोंके चरितार्थकी तजवीज करनी चाही। इसलिए नही कि वे खुद कांग्रेसपर राज करना चाहते थे, बल्कि जनतामें सत्याग्रहकी शक्ति जाग्रत करनेके लिए। इन आदमियोंको कांग्रेसमें भेजनेकी उनकी कल्पना नही थी। वे जब-जब मेरे साथ बात करते थे तब-तब यही कहते थे कि इन आदमियोंको राज-प्रकरणसे अलग रखा जाये। पीछे असहयोगी वकीलोंको निर्वाहके लिए पैसा देनेकी बातके बदले रचनात्मक कार्य करनेवालोंको देनेका निश्चय हुआ। इसीमें से इस सघका जन्म हुआ। जमनालालजीने संघके द्वारा राज-प्रकरण करनेकी बात कभी सोची ही नही थी। १९३४ में जब मैंने संघको कुछ बड़ा रूप दिया, तब भी वे अनुकूल नही थे। बादमें हुदलीमें भी वे मेरे प्रस्तावके खिलाफ थे। संघको राजनीतिमें लानेका आरोप अगर आप मुझपर करें तो उसे मै कबूल कर लूँगा। जमनालालजी पर यह आरोप करे, तो ठीक नही है।

आज मैंने फिर एकाग्र होकर संघकी नीतिका विचार किया। अब तक इतनी आस्थासे नही कर सका था। उम्रके कारण मेरी शारीरिक शक्तिका ह्रास हो गया है। मेरी नजर सभी तरफ नही जा सकती। सभी बातोंसे मै हमेशा ओतप्रोत नही रह सकता। मेरा शरीर क्षीण हो गया है। किसी तरह आज तक अपनी जिम्मेवारियोंका वहन किया है। मै तो सम्मेलनमें आनेसे भी बचना चाहता था; लेकिन प्रफुल्लबाबूने आग्रह किया, इसलिए चला आया। आनेपर एकाग्र होकर संघकी स्थितिपर विचार करने लगा। जो नतीजा निकला वह आपके सामने रखा है। आज तो मै इसी विचारसे ओतप्रोत हो गया हूँ। किशोरलालने इतने वर्षो तक इस बोझको उठाया। उसे संघमें लानेवाला तो मै ही हूँ। आज उसकी क्या स्थिति हो गयी है? उसका शरीर क्षीण हो गया है। मैंने उसका भाषण पढ़ा। किशोरलाल आज यहाँ काम नही कर सकता। इसलिए मै इतनी दिलचस्पीसे यह विषय आपके सामने रख रहा हूँ।

एक तरहसे अनायास इस बातको मै यहाँ कह रहा हूँ। अगर आप संघमें राज-प्रकरणमें सीधा हिस्सा लेनेवाले सदस्योंको नही रखते है, तो संघको एक छोटा-सा रूप प्राप्त हो जाता है। अगर वह सच्चा होगा तो उसीमें से बड़ा व्यापक वृक्ष बनेगा; नही तो वह मिट जायेगा।

राज-प्रकरणके कारण २४३ सदस्योंमें से ८४ निकल जाते है। इसलिए नही कि वे निकम्मे है, बल्कि इसलिए कि उनका उस क्षेत्रमें उपयोग है और वे उसके लायक हैं। बाकीके जो रह जाते है उनमें से ऐसे कितने है जो इस बातको

१. १९२२-२३ में

अंजाम दे सकते है ? इसके लिए आप दो-चार आदमियोंकी कमेटी बनायें। वे ईश्वर-को साक्षी रखकर ऐसे आदमियोकी फेहरिस्त बनायें जो इस नये कामके योग्य हों। उस कमेटीको यह भी निर्णय करनेका अधिकार दे दें कि आगे इस संघको क्या रूप देना है। इस विषयमें उस कमेटीके सामने आप भी अपनी-अपनी राय संक्षेपमें रखें, व्याख्यान न दें। लेकिन हर हालतमें जिस तरहसे संघ आज चल रहा है, उसे तो समाप्त ही करना है। आगे वह चलाया जाये या नही, अगर चलाया जाये तो किस रूपमें, यह सोचनेकी बात है। जिस रूपमें वह चल सकता है उसकी कुछ रूपरेखा मैंने आज रखी है।

अब जो करीब-करीब तीस वैतनिक सदस्य है, उनका क्या होगा, क्या न होगा, यह सवाल रह जाता है। वह तो हिसाब-किताबकी बात होगी। गांधी सेवा-सघकी हस्ती वेतन चुकानेके लिए थोडी ही है? वह तो जमनालालजी का एक ट्रस्ट है, वह एक छोटी-सी बात है। धोत्रे और जमनालालजी कर सकते है। दूसरे किसीके सोचनेकी बात नही है। जमनालालजी और उनसे जो सम्बन्ध रखनेवाले है, वे सोचें। इसपर वह बात छूट जाती है।

बाकीके जो है उनसे मै पूछता हूँ कि क्या आपकी रायमें गाधी सेवा-संघ का कायम रहना अच्छा है? अगर आप उसे रखना चाहें, तो उस रूपमें रखना होगा जो मैंने बतलाया है। आपको अभ्यास करना होगा, शोध करनी होगी, प्रयोग करने होंगे। तब तो बड़ा उज्ज्वल जीवन होगा। उसके लिए बौद्धिक, शारीरिक और आत्मिक, तीनो प्रकारकी शक्तियोको एकाग्र करना होगा। वह देशके लिए और जगतके लिए एक अनोखी बात होगी, जिससे कोई द्वेष ही नही कर सकेगा। शरीर, आत्मा और बुद्धिका एकीकरण करके आप मुल्क और जगतके सामने एक नयी सस्कृतिका आदर्श रखेंगे। इससे भी बढकर कोई ध्येय हो सकता है?

यह एक प्रौढ बात मैंने आपके सामने रख दी है। अगर वह आपकी शक्तिके बाहर हो, तो आज संघको बिलकुल खत्म करना ही अच्छा है। जो सत्य और अहिंसाकी कसौटीपर खरे उतर सकते हैं, ऐसे सर्वार्पण-बुद्धिकी भावनासे काम करनेवाले विशारद ही इसे बदले हुए रूपमें चला सकेंगे।

मैंने अपनी बात आपको विस्तारसे समझा दी है। अब आप अपनी-अपनी राय बतायें।

स्वामी आनन्द : . . . क्या साम्प्रदायिक एकताको भी संघमें स्थान रहेगा? या उसे बाद (तर्क) कर दिया है?

गांधीजी : उसे तो बाद (तर्क) नही किया है। वह तो है ही। उसके बिना अहिंसा कोई चीज ही नहीं रह जाती। उसके लिए हमारे पास आज कोई कार्य-क्रम नही है। इसलिए मैंने जान-बूझकर उसका जिक्र नही किया।

स्वामी : मुझे आशंका है कि अगर हम मजदूर संगठन और साम्प्रदायिक एकताके काममें पड़ेंगे तो उसके कारण भी दूसरे लोगोंके दिलोंमें ईर्ष्या और रोषका जहर

पैदा हो जायेगा। वहाँ भी उनसे संघर्षकी नौबत आ जायेगी। फिर वहाँसे भी हमको हटना होगा।

गांधीजी : अगर ईर्ष्या और हिंसाके भाव पैदा होंगे, तो हटना होगा। तब तो शायद यह सिद्ध होगा कि हम जो अहिंसाका प्रयोग करनेवाले लोग है, वे निकम्मे हैं। कुछ लोग यह भी कहेंगे कि अहिंसा ही निकम्मी है। उनकी दृष्टिसे अहिंसा परम धर्मके बदले परम अधर्म सिद्ध होगा। क्योंकि वे तो कहते हैं कि हिंसा और अहिंसाके मिश्रणसे ही यह जगत बना है। दोनोंका साथ-साथ चलना आवश्यक है; नही तो संसारका व्यवहार ही कुंठित हो जायेगा। मजदूर बुज-दिल हो गये है; उनमें आत्मविश्वास पैदा करनेके लिए उन्हें हिंसात्मक प्रतिकार सिखाना चाहिए। हिन्दू भी डरपोक हैं। उनके लिए अहिंसा परम धर्म नही है। ऐसे खत आज भी मेरे पास आते रहते हैं। हमें तो यह सिद्ध करना है कि हम मजदूर और साम्प्रदायिक प्रश्नका समाधान अहिंसासे कर सकते हैं।

रामरत्न शर्मा : मैं अपनी एक कठिनाई आपके सामने रखना चाहता हूँ। मैंने किशोरलालभाईसे कहा कि मुझे कहीं विशारद बननेके लिए भेजिए। उन्होंने कहा कि आपको सिखानेकी हमारे पास कोई व्यवस्था नहीं है। बापू जिस तरहका संघ बनाना चाहते हैं, वही मेरी भी इच्छा थी। उसके लिए मुझे कहीं विशारद बननेकी शिक्षा लेनी होगी। लेकिन जहाँ मैं आज काम कर रहा हूँ, वहाँ कुछ जिम्मेवारियाँ मैंने ले ली हैं, उनका क्या करूँ? यह एक धर्मसंकट-सा हो जाता है।

गांधीजी : मैं जिस संघकी कल्पना कर रहा हूँ वह तो विशारद बननेके बाद की है। विशारद बननेके लिए हम क्या करें, यह दूसरा सवाल है।[1]

सुधाकर : हम राज-प्रकरणका परित्याग सदाके लिए कर रहे हैं या कुछ समयके लिए ?

गांधीजी : हमेशाके लिए कौन कह सकता है? हम भगवान थोड़े ही हैं। हम तो आजकी बात कह रहे हैं।

कृष्णन् नायर : आपकी योजना जहाँ तक मैं समझ सका हूँ ऐसी है कि रचना-त्मक कार्य करनेवाली जो चार-पाँच संस्थाएँ हैं, उनके लिए गांधी सेवा-संघ एक 'सेन्ट्रल रिसर्च इन्स्टिट्यूट' (केन्द्रीय संशोधन प्रयोगशाला) जैसा रहेगा। लेकिन आपके सिद्धान्तोंके अनुसार इस देशमें जो लोग भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं, उनका संगठन कैसे हो? जो लोग चरखा संघ, ग्रामोद्योग-संघ आदि संस्थाओंमें काम करते हैं, उनके लिए तो वे संस्थाएँ हैं। लेकिन जो लोग इन पाँच संस्थाओंमें नहीं हैं, उनका संगठन किस प्रकार हो? क्या उनके लिए भी एक 'ओल्ड स्टूडेन्ट्स एसोसिएशन' (पुराने विद्यार्थियोंका संघ) जैसी कोई संस्था आवश्यक नहीं है? क्या हमारे सब सदस्य इन पाँच संस्थाओंमें आ जाते हैं? कोई बाकी नहीं रहता?

१. इसके बाद नरहरि परीख, दादा धर्माधिकारी और गोपबन्धु चौधरीने वर्तमान संघके स्थानपर नया संघ बनानेके गांधीजी के सुझावका समर्थन किया।

गांधीजी : अगर तुमने विवरण ध्यानसे पढ़ा है, तो तुम्हें यह मालूम हो जाना चाहिए कि हमारे कितने सदस्य रचनात्मक संस्थाओंमें काम कर रहे हैं। यह विवरण एक पढ़ने लायक चीज है। यह कोई मामूली विवरण नहीं है। इसमें सदस्योंकी संख्या कई प्रकारकी दी गयी है। उनका प्रान्तवार, कार्यानुसार, संस्थानुसार वर्गीकरण इसमें है। मैं तो विवरण पढ़कर मुग्ध हो गया। इसका परिशिष्ट देखिए। सारी चीजोंका उत्तर इस विवरणमें से मिल जाता है। विवरण पढ़नेसे मालूम होगा कि गांधी सेवा-संघ जैसी एक स्वतन्त्र संस्था रखकर हम कोई बड़ा काम नहीं कर लेंगे। जो लोग सर्वार्पण बुद्धिसे काम करेंगे, उनके लिए बार-बार पूछनेकी या मार्गदर्शनकी जरूरत नहीं रह जाती है। आजादी पाना कोई मामूली काम नहीं हैं। उसके लिए हमें वैसे ही कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता होगी जो सर्वार्पण बुद्धिसे और अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे काम करते रहेंगे। जिन्हें देखभाल की जरूरत है, वे किसी-न-किसी रचनात्मक संस्थाकी देखभालमें काम कर सकते हैं। उसके लिए संघकी जरूरत नहीं है। हमारे पास रचनात्मक काम करनेवाली पाँच संस्थाएँ हैं। बहुत-से सदस्य उनके क्षेत्रमें आ जाते हैं। फिर उन्हे गांधी सेवा-संघमें रखकर हम अधिक क्या दे सकते है? संघ एक छठी अंगुली बनकर रह जाता है। और देखभाल या निरीक्षण करे भी कैसे? हमारे पास इसका कोई सामान नहीं है।

कृष्णन नायर : तो मतलब यह है कि आज हमारा स्थूल रूप समाप्त हो जाता है।

गांधीजी : हाँ, वह तो होता ही है। आज हम सीताको पातालमें भेज देते हैं।

प्रेमाबहन : आपने 'दांडी कूच'[1] के वक्त भी ऐसा ही कहा था कि सब नालायक हैं और यह कहकर आश्रम तोड़ दिया था। क्या वैसा ही कुछ प्रसंग आज भी है? क्या यह भी किसी संग्रामकी पूर्व तैयारी है? या केवल शुद्धीकरणका प्रयास है?

गांधीजी : मैंने किसीको नालायक नहीं कहा और कहता भी कैसे? जब तक आप-जैसे लायक व्यक्ति मौजूद हैं। लेकिन यह तो विनोद हुआ। दरअसल बात ऐसी है कि हम अधिक शुद्ध होना चाहते हैं। मैं किसीको नालायक नहीं मानता या कहता। मैंने साबरमती आश्रमके भी किसी व्यक्तिको नालायक नहीं ठहराया। अगर आप मेरे भाषणोंका ऐसा अर्थ करेंगे, तो मेरे साथ अन्याय करेंगे। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि हम जिस गजको लेकर बैठे हैं उससे नापनेपर हम परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हुए। अगर हमने दरअसल सत्य और अहिंसा की नीतिसे काम लिया है, तो ये लोग यहाँपर क्यों आकर 'गांधीवादका ध्वंस हो' के नारे लगाते हैं? ये हमें शिक्षा देते हैं कि हम अभी तक अशुद्ध हैं। नहीं तो ये इस तरहके नारे क्यों लगाते?[2] इन्हे पैसा दिया जाता हैं या नहीं, यह

१. मार्च, १९३० में

२. यहाँ किसी व्यक्तिने कहा कि कुछ लोगोंका कहना है कि इन्हें इसके लिए पैसे दिये गये हैं।

तो न आप जानते है, न मै। लेकिन अगर यह सच भी हो, तो भी हमारे लिए सोचनेकी बात है। जो लोग इन्हें पैसा देकर इस तरहके नारे लगवाते है, वे ऐसा क्यों करते है? उनके दिलमें इतनी कटुता क्यों पैदा हुई? हमें तो इसका सार लेना चाहिए। मुझे आपके दर्शनोंसे जो शिक्षा नही मिली, वह इनके विरोधी प्रदर्शनसे मिली। इन्होंने मेरी बुद्धिको गति दी। आपमें से बहुत कम लोगोंने अहिंसाका प्रयोग किया होगा। इस सम्बन्धमें हमें इतिहाससे भी कोई मार्गदर्शन नही मिलता; क्योंकि इतिहासमें हमें इसके प्रयोगका कोई नमूना नही मिलता। लेकिन अगर आप मेरी-जैसी सूक्ष्म बुद्धि रखेंगे, तो आपको इस सृष्टिमें सर्वत्र अहिंसाका दर्शन होगा। यह जगत प्रति क्षण बदलता है। इसमें संहारकी इतनी शक्तियाँ है। कोई स्थिर नही रह सकता। लेकिन फिर भी मनुष्य-जातिका संहार नही हुआ इसका यही अर्थ है कि सब जगह अहिंसा ओतप्रोत है। मै उसका दर्शन करता हूँ। गुरुत्वाकर्षण शक्तिके समान अहिंसा संसारकी सारी चीजोंको अपनी तरफ खीचती है। प्रेममें यह शक्ति भरी हुई है। मै तो अपनेको अहिंसाका साइन्टिस्ट मानता हूँ न? इसलिए मै उसके नियमोंको जानता हूँ और देखता हूँ। हमारे दिलमें सबके प्रति समभाव न हो तो हम अहिंसाके पुजारी नही है। अगर आपके पास ऐसा समभाव है तो यदि कोई 'आपका ध्वंस हो' की आवाज लगाने आये तो आप प्रतिकार या हिंसाका आश्रय न ले। जिस व्यवहारके कारण दूसरों के दिलमें हिंसाके भाव पैदा होते है, ऐसा व्यवहार छोड़ दें। हम इसी दृष्टिसे सघका रूपान्तर कर रहे है। ये इतने आदमी यहाँ मुझे देखनेके लिए चले आते है। ये समझते है कि मै ईश्वरका अवतार हूँ। ईश्वरका अवतार कोई नही है। और है तो सभी है। मै हूँ तो वे भी है। फिर वे इस तरह मेरी तरफ क्यों खिच रहे है? यह तो अहिंसाका नियम काम कर रहा है। मुझमें अनासक्ति भी तो है? इसलिए मै तटस्थ होकर देख सकता हूँ कि यह मेरी शक्ति नही है; अहिंसाकी शक्ति है। मुझमें क्या है? हजार दोषोंका पुतला हूँ। आत्म-निरीक्षण करता हूँ तो दोष-ही-दोष नजर आते है। अगर आप मेरे-जैसा आत्म-निरीक्षण करें, तो आप भी पागल हो जायेंगे। हमें अपने हर एक विचारपर अंकुश रखनेकी कोशिश करनी चाहिए। मै ऐसी कोशिश करता हूँ। अपने विरोधियोंमें भी ईश्वर का दर्शन करता हूँ। वह दर्शन आप भी करें।

प्रभुदास : किशोरलालभाईने 'सर्वोदय' में कहा है कि अपूर्ण अहिंसावादियोंको भी संगठनकी जरूरत है। उनमें भी एक प्रकारकी संघ-शक्ति आनी चाहिए। लेकिन आपके भाषणोंसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अपूर्ण अहिंसावादियोंका कोई संगठन ही नहीं हो सकता।

गांधीजी : तुम्हारी बात मै तुम्हारे शब्दोंमें ही कबूल नही करता। गांधी सेवा-संघ जैसी संस्था अहिंसावादियोंका सगठन नही हो सकती। यह संघ तो एक विशेष परिस्थितिमें बना। पाँच-दस, बीस-तीस आदमियोंको आर्थिक सहायता देकर उनके कामपर देखभाल करना, इस बातको ध्यानमें रखकर यह संघ बना।

फिर बढ़ता ही गया। उसमें सुधार करनेकी आवश्यकता रही। लेकिन अब उसका कोई खास प्रयोजन नहीं रहा। अपूर्ण अहिंसावादियोंकी उन्नतिके लिए इस तरहके संघकी जरूरत नहीं है। संस्था तो अपूर्ण मनुष्योंकी ही बनती है। मनुष्य पूर्ण हो तो संस्थाकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। चरखा संघ, हरिजन सेवक-संघमें भी अहिंसा तो है ही। वे भी शान्तिके मार्गपर चलना चाहते हैं। गांधी सेवा-संघके पास कोई विशेष कार्यक्रम हो तभी तो वह अहिंसाधर्मियोंका संघ बन सकता है। लेकिन केवल अहिंसाधर्मियोंका संघ क्या मानी रखता है? वह तो अव्यक्त धर्म है। जब हम अमुक साधन द्वारा अहिंसा सिद्ध करना चाहते हैं तब संघ बन जाता है। इस तरहका कोई विशेष साधन गांधी सेवा-संघने अपनाया नहीं है। प्रत्येक विशिष्ट विभागके लिए हमारे पास संस्थाएँ हैं। उनके द्वारा वे रचनात्मक कार्य नियमित हो गये। लेकिन उन कामोंमें से कितनी अहिंसा निकली, यह देखना उन संस्थाओंका काम नहीं है। मैं शंकरलाल[1]से यह पूछूँगा कि कितने आदमियोंको मजदूरी दी? यह नहीं पूछूँगा कि तुमने अहिंसाका कितना विकास किया। मजदूर संघसे यह पूछूँगा कि तुमने शान्तिके उपायोंसे मजदूरोंकी क्या उन्नति की? यह नहीं पूछूँगा कि मजदूर-आन्दोलनका अहिंसाके साथ कैसा अनुसन्धान है। ग्रामोद्योग-संघकी भी वही बात है। सतीशबाबूकी भी वही बात है। खादी-प्रतिष्ठानमें अहिंसाका कितना विकास हुआ, इसकी परीक्षा थोड़े ही उन्हें देनी है? उनसे तो यही पूछना होगा कि उन्होंने कितना अच्छा तेल, कागज, खादी या चमड़ा बनाया है। इन सबके बाद जो बात शेष रह जाती है, वह यह है कि इनके द्वारा हम अहिंसक संस्कृतिका निर्माण किस तरह कर सकते हैं, इसकी खोज करें। उसके लिए तो एक संस्था रह सकती है। लेकिन केवल अहिंसा-धर्मको माननेवालोंके लिए संघकी क्या जरूरत है? उन्हें जो बल या मार्गदर्शन चाहिए, वह मेरे कामोंसे अपने-आप मिल जायेगा। ईश्वर ही उन्हें प्रेरणा देगा। उनका बिना किसी संस्थाके ही संगठन हो जायेगा।

जाजू: जो लोग राज-प्रकरणमें है वे संघके सदस्य नहीं रहेंगे, यह तो तय-शुदा समझना चाहिए। अब संघका आगे क्या हो, इसका विचार करना है।

दादा धर्माधिकारी: हम इस संघको आज बन्द कर दें। आगे फिर यह जो कमेटी बननेवाली है, वह आवश्यक समझे तो एक नया संघ बना ले।

शंकरराव देव: मैं दादाकी सूचनाका समर्थन करता हूँ। जो राज-प्रकरणमें पड़े है वे संघके सदस्य न रहें और बाकीके सदस्योंका संघ कायम रहे, ऐसा पंक्ति-प्रपंच करना ठीक नहीं है।

गांधीजी : हम इस बातको न भूले कि जो लोग राज-प्रकरणमें पड़े हैं, उनको संघमें न रखकर हम कोई पंक्तिभेद नहीं कर रहे हैं। हम तो संघके नाते राज-प्रकरणमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। अगर हम राज-प्रकरणमें पड़नेवालोंको दूसरो

१. शंकरलाल बैंकर, अखिल भारतीय चरखा-संघके मंत्री

की अपेक्षा कम दर्जेके समझते, तो उनको भी राज-प्रकरणमें रहने नहीं देते। लेकिन हम तो उन्हें राज-प्रकरण से हटनेको नहीं कह रहे हैं।

शंकरराव: यह सारा धर्मसंकट इसलिए पैदा होता है कि हम संघके सदस्य रहकर राज-प्रकरणमें भाग लेते हैं। इसलिए बापूजी ने संघका वर्तमान रूप बदल देनेकी कल्पना पैदा की है। संघका आजका जो रूप है, वह उसका मौलिक रूप नहीं है। इसलिए मैं कहता हूँ कि इसका आजका रूप समेटकर उसे फिर उसके मौलिक रूपमें रखें।

गांधीजी : वैसा कीजिए।

मगनभाई: राज-प्रकरणमें सत्ताके लिए स्पर्धा होती है और उससे ईर्ष्या पैदा होती है; इसलिए आप संघके सदस्योंको राज-प्रकरणसे हट जानेके लिए या जो राज-प्रकरणमें हैं उनसे संघसे हट जानेके लिए कहते हैं। लेकिन जिन्हें सत्ताके लिए ही स्पर्धा करनी है, वे रचनात्मक कार्य में भी वही करेंगे; रचनात्मक कार्यमें सत्ताके लिए स्पर्धा और ईर्ष्या या द्वेष न हो ऐसी बात तो आज भी नहीं है। केवल रचनात्मक कार्य करनेवालोंके लिए किसी खास संशोधक (खोज करनेवाली) संस्थाकी भी आवश्यकता मैं नहीं देखता। भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें काम करनेवाले लोग अपनी-अपनी संस्थामें रहकर खोजबीन करते रहेंगे। उन्हें अगर कोई कठिनाई होगी, तो वे उस विभागके प्रमुख व्यक्तिसे यानी अपने मण्डलेश्वरसे पूछ लेंगे। या जिस व्यक्तिपर उनकी विशेष श्रद्धा होगी, उससे मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे। उदाहरणार्थ, मैं विद्यापीठमें काम करता हूँ। राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें संशोधन करनेकी आवश्यकता तो मुझे अपना कार्य करते हुए ही प्रतीत होगी। उसमें से यह शक्ति पैदा होगी। मुझे किसी विषयमें मार्गदर्शनकी आवश्यकता हो, तो मैं अपनी संस्थाके प्रमुखसे प्राप्त करूँगा। या अगर उनमें वह शक्ति न हो तो जिनके प्रति मेरी श्रद्धा होगी, जैसे किशोरलालभाई हैं, बापूजी हैं, या फिर धोत्रे, दादा हैं, उनसे पूछूँगा। इसके लिए किसी संस्थाकी जरूरत नहीं है। संशोधन करनेवाली एक संस्था अगर आप बना लेंगे, तो वह छोटी-बड़ी खोजें करती रहेगी और दूसरी संस्थाओंपर नाहक हुकूमत करेगी। संशोधनके अलावा सत्य और अहिंसासे अनुसन्धान करना भी उसका काम होगा। तो वह एक वरिष्ठ नैतिक सत्ता हो जायेगी। ऐसी वरिष्ठ सत्ताके लिए मैं कोई गुंजाइश नहीं देखता। मेरी रायमें १९३४ के सालमें आपने संघको जो नया रूप दिया उसीको आप आज रद्द कर रहे हैं। और जब हम यह साफ देख रहे हैं कि उस हालतमें उसके लिए कोई खास काम नहीं रह जाता, तो उसका विसर्जन ही क्यों न कर दें?

गांधीजी: मगनभाई, मैं तुम्हारी बात समझ गया हूँ। यहाँ तुम्हारी बात कुछ अप्रस्तुत-सी हो जाती है। कृष्णन नायरने उस दिन ठीक ही कहा कि यह तो केवल एक संशोधन करनेवाली संस्था रहेगी। वह अपने संशोधनोंका नतीजा लोगोंके सामने पेश करेगी। जो उससे फायदा उठाना चाहें वे उठायें। जो उसे

उपयोगी न समझें वे उसे न लें। यहाँ किसीपर हुकूमत करनेका सवाल ही नहीं आता। 'सुपीरियर मॉरल अथॉरिटी' जैसी कोई बात इसके पीछे है ही नहीं। जब हुक्म करनेकी कोई बात हो नही तो उससे झगड़ा पैदा हो ही कैसे सकता है?

चरखा सघ आदि रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओंमें थोड़ा-बहुत वैमनस्य या अधिकारका दुरुपयोग अथवा सत्ताका अभिमान हो सकता है। लेकिन जिसे हम सत्ताका राज-प्रकरण कहते हैं, वह वहाँ कहाँ है? वह कोई चुनावसे बनी हुई प्रातिनिधिक संस्था नही है। जैसे बैंक होता है, वैसी ही वह एक संस्था है। उसमें सत्ताका राज-प्रकरण कहाँसे आया? कांग्रेस व्यापक संस्था है, वह करोड़ों की संस्था है। वह एक प्रातिनिधिक संगठन है। वहाँ सत्ताके राज-प्रकरणके लिए पूरी-पूरी गुंजाइश है। आज गांधी सेवा-संघके पास इतनी शक्ति या सामग्री नहीं है कि वह सत्ताके राज-प्रकरणमें भी संघकी हैसियतसे प्रवेश करे। इसलिए हम कहते हैं कि राज-प्रकरणमें प्रत्यक्ष भाग लेनेवाले संघमें न रहें। हम यह कब कहते है कि वे राज-प्रकरण छोड़ दें? अगर वे देखें कि उनके वहाँ रहनेसे कोई सेवा तो नही होती, बल्कि जहर-ही-जहर फैलता है, तो उन्हें वहाँसे हट जाना होगा। लेकिन आज तो हम उनसे इतना ही कहते है कि संघके नाते वे वहाँ न जायें। इतना इकरार तो हमें करना ही है।

तब यह सवाल होता है कि फिर संघ कौनसे रूपमें रहे? वह रूप मैंने आपके सामने रख दिया है। दूसरा कोई तरीका मेरे खयालमें नहीं आता। जो दूसरी प्रवृत्तियाँ करना चाहते हैं वे अलग कर सकते हैं; जैसे राज-प्रकरणका अध्ययन है। वह मेरे क्षेत्रमें नही आता। मेरे नजदीक तो रचनात्मक कार्यको स्वराज्यसे अनुसन्धान करना ही सच्चा राज-प्रकरण है। जिसे लोग राज-प्रकरण कहते है, उसका अभ्यास तो मैंने कभी नही किया। दक्षिण आफ्रिकामें भी मैंने आन्दोलन चलाया, लेकिन राज-प्रकरणका अभ्यास नहीं किया। जो मैंने किया वही मेरा राज-प्रकरण था। मैं यह तो नहीं कहता कि मैंने राज-प्रकरणमें हिस्सा ही नही लिया। हिन्दुस्तानमें आया, तो नसीबसे कांग्रेसकी बागडोर ही मेरे हाथमें आ गई। उसके द्वारा जब तक सेवा कर सका तब तक वहाँ रहा। बादमें वहाँसे हट गया।[1] मैं समझता हूँ कि मैंने कांग्रेससे हटकर बड़ी भारी सेवा की। यह मेरी अहिंसा वृत्ति थी। मेरी अहिंसा वृत्तिने काफी काम कर लिया। मेरे हट जाने पर भी कांग्रेसमें अहिंसाका स्थान रहा। अब कांग्रेसका जितना राज-प्रकरण है, वह राजेन्द्रबाबू, वल्लभभाईपर छोड़ देता हूँ। अगर वे देखें कि उनके वहाँ रहनेसे जहर पैदा होता है, तो वे भी हट जायें। लेकिन हटना आसान बात नहीं है। लोग उनसे कहें कि तुम्हें तो रहना है। कांग्रेस और उसके अध्यक्ष, उनका वहाँ रहना जरूरी समझें, तो उनके लिए वहाँसे हटना मुश्किल हो जाता है। लेकिन उस हालतमें उन्हें संघमें नहीं रहना चाहिए।

१. १९३४ में

हमें संघको सत्ताके राज-प्रकरण और दलबन्दीसे अस्पृष्ट रखना है। हमें तो मुनी (मौनी) बनकर काम करना है। तब सच्चा राज-प्रकरण शुरू होगा। रचनात्मक काम इतना व्यापक है, उसके अभ्यासी बनें। उस क्षेत्रमें संशोधन (गवेषणा) और आविष्कार करें। यह बोझ शंकरलाल [अकेला] नहीं उठा सकता। संघके लिए यही कार्यक्रम मेरे पास है। जो-कुछ मेरे पास है, वही तो मैं दे सकता हूँ। अहिंसा के प्रयोगका एक नया क्षेत्र आपके सामने खुल जाता है। उसे आप चाहे जितना बढ़ा सकते हैं। न बढ़ा सकें तो इतना ही काफी है। आपके कार्यसे दूसरोंको भी संशोधन की प्रेरणा मिलेगी। मैं मामूली शोध (आविष्कार) की बात नहीं कह रहा हूँ। चाहे-जैसी शोधोंसे थोड़े ही मुझे सन्तोष होनेवाला है? जिसके पास कोई बड़ी भारी वस्तु हो, वही उसे जगतके सामने रखे। वह चीज ऐसी अनोखी हो कि जगत देखकर आश्चर्यचकित हो जाये। ऐसा संघ बनानेके लिए आदमी भी ऐसे ही चाहिए जो इसी कार्यके पीछे पागल हो जायें।

मैंने सीधी-सादी भाषामें सारी बात आपके सामने रख दी थी। हमें जो कुछ करना है वह सत्ताके और दलबन्दीके राज-प्रकरणसे अलिप्त रहकर करना है। सारे देशका राज-प्रकरण कांग्रेस चलाती है। हममें से जो उसकी कमेटियोंमें रहकर सेवा करना चाहते हैं, वे अबसे संघमें नहीं रहेंगे। सविनय भंगकी तैयारी कांग्रेसके बाहर रहकर भी हो सकती है। कांग्रेस सारे देशका प्रतिनिधित्व करती है इसलिए उसे अपना कार्यक्रम और प्रस्तावोंमें अपना मत प्रतिबिम्बित करना पड़ता है। हमें तो अपने स्वतन्त्र क्षेत्रमें मूकभावसे सेवा और खोज करनी है।

कृष्णन नायर: संघके रहनेसे एक डर यह भी है कि कहीं आपका एक सम्प्रदाय न बन जाये। जिस प्रकार दलबन्दीके राज-प्रकरणसे हम घबराते हैं, उसी तरह किसी संघके रूपमें आपके नामसे कोई सम्प्रदाय बनानेसे भी घबराना चाहिए। आपकी जिन्दगीमें ही आपके नामसे चलनेवाले इस संघने कोई विशिष्ट कार्य नहीं कर दिखाया है। तो आपके बाद क्या होगा, कौन जानता है? इसलिए संघको तोड़ देना ही अच्छा है।

गांधीजी: सम्प्रदाय बन जानेका डर तो है ही। इस विषयमें मुझसे जितनी हो सकती है, उतनी सावधानी ले लेता हूँ।

मूलचन्द अग्रवाल: बापूजीने जो बातें पन्द्रह-बीस सालसे कही हैं वे ही इन दो-तीन दिनोंमें भी कही हैं। उन्होंने कुछ नयी चीज नहीं कही। संघके सदस्योंको राजनैतिक क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी इजाजत देनेके कारण यह झगड़ा पैदा हुआ है। इसलिए उतना संशोधन कर लेना काफी है। संघको बन्द करके एक नई संस्था बनाना अव्यवहार्य-सा मालूम होता है। इसीमें संशोधन कर लें। नया निर्माण करने की जरूरत नहीं है।

जाजू: तोड़ देनेकी बात नहीं है। हम इसका पुनः संगठन कर रहे हैं। जो बन्द कर देनेके पक्षमें हैं, वे भी दरअसल पुनर्रचना ही चाहते हैं। १९३४ में हमने संघकी पुनर्रचना की, १९४० में फिर कर रहे हैं।

वल्लभभाई : चरखा संघ आदि संस्थाओंमें से ही संशोधक आविष्कारक उत्पन्न होंगे। वे ही अपने-अपने विषयके विशेषज्ञ होंगे। उनके लिए किसी रिसर्च इन्स्टीट्यूट की जरूरत नहीं है। अपने कार्यका सत्य और अहिंसाके साथ अनुसन्धान वे कर सकते हैं।

गांधीजी : आप इसका जवाब तो नहीं चाहते हैं न? मैंने जो-कुछ कहा है, उसमें इसका जवाब आ जाता है।

पुंडलीक : संघकी हैसियतसे सत्ताके राज-प्रकरणमें प्रवेश न करनेके मानी क्या यह है कि सत्ताका राज-प्रकरण ही बुरी चीज है? संघके बाहर रहकर हम शुद्ध साधनोंसे सत्ताका राज-प्रकरण क्यों न करें? दुनियाको यह क्यों न बतायें कि अच्छे-से-अच्छे साधनोंसे भी सत्ताका राज-प्रकरण किया जा सकता है?

गांधीजी : संघमें रहते हुए हम सत्ताके राज-प्रकरणमें क्यों पड़ें? व्यक्ति भी करे, या न करे, इसके विषयमें आज मैं अपना मत नहीं दे सकता। उसके लिए मेरे पास काफी सामग्री नहीं है। मैं नहीं जानता कि जो सत्ता ग्रहण करते हैं, वे अहिंसाको कहाँ तक निबाहते हैं। सत्यकी कहाँ तक रक्षा करते हैं? सत्ताके राज-प्रकरणमें आप हिस्सा लेंगे, तो वहाँ आपकी परीक्षा होगी। आप कहाँ तक उत्तीर्ण होते हैं, यह मैं नहीं कह सकता। वल्लभभाई राज-प्रकरणमें रहकर प्रयोग कर रहे हैं। जब उनको ऐसा लगेगा कि उनका वहाँ रहना उचित नहीं है, तो वे छोड़ देंगे। इस विषयमें संघ कोई जवाबदारी नहीं लेना चाहता। वह हर एक व्यक्तिके दिलपर छोड़ दिया जाता है। हर एक अपने हृदयको प्रमाण माने। उस विषयमें दूसरा कोई शख्स निर्णय नहीं दे सकता। उदाहरणार्थ, वल्लभभाई काम करते हैं, उनके दिलका हाल मैं नहीं जानता। मैं न वल्लभभाईके हृदयको जानता हूँ, न आपके। मैं ईश्वर थोड़े ही हूँ?

स्वामी आनन्द : 'रूरल रिकंस्ट्रक्शन बोर्ड' सरकारने बनाये हैं। क्या उनमें से भी हट जायें? दो साल बाद ये बोर्ड चुनावसे बनेंगे। बम्बईके बोर्डका चुनाव छह महीनेके बाद होगा।

गांधीजी : जब तक वहाँ सत्ताका राज-प्रकरण नहीं है, तब तक रहें। अगर सत्ताका राज-प्रकरण आ जाये तो छोड़ दें। यह अपने-अपने लिए स्वतन्त्र रीतिसे निर्णय करनेकी बात है।

शायद यह कमेटी जो हम बनाना चाहते हैं, अपना काम मलिकन्दामें ही समाप्त न कर सके। लेकिन, फिर भी उसके लिए अपना निर्णय पेश करनेकी कोई काल-मर्यादा बना देनी चाहिए। अगर कोई अपना-अपना नाम नहीं देते है, तो किशोरलाल तो है ही। मैं भी हूँ।[1]

गांधी सेवा-संघके छठे अधिवेशन (मलिकन्दा, बंगाल) का विवरण, पृ० ३४-५२

१. विचार-विनिमयके बाद एक उप-समिति बना दी गई जिसमें गांधीजी, किशोरलाल मशरूवाला, वल्लभभाई पटेल, श्रीकृष्णदास जाजू, गोपबन्धु चौधरी, गंगाधरराव देशपाण्डे, वी० वी० दास्ताने और प्रफुल्लचन्द्र घोष थे।

२७८. भाषण : गांधी सेवा-संघमें – ४

मलिकन्दा
२२ फरवरी, १९४०

'निम्नलिखित सदस्योंको छोड़कर बाकी सदस्य हट जायें' ऐसा लिख सकते हैं।[1]

यह जो परिवर्तन आज हमने किया है, यह सम्पूर्ण तो नहीं हुआ। हम संघको जो नया रूप देना चाहते थे, वह नहीं दे सके। जो समिति आपने बनाई उसने सोचा कि संघके भावी रूपका कुछ चित्र खीचकर रखें, लेकिन जब हम विचार करनेके लिए बैठे, तो हमें हमारी कंगालीका अनुभव हुआ। हमारे पास ऐसे आदमी कहाँ हैं जो इस नये संघके उपयोगी हों? नयी कार्यवाहक-समितिके लिए भी हम बड़ी मुश्किलसे कुछ नाम सोच सके। साथ-साथ यह भी लगा कि अगर काबिल आदमी मिल भी जायें, तो वे सभी हिल-मिलकर काम करेंगे इसका क्या भरोसा? यह हमारे लिए लज्जाकी बात है। जो अहिंसाको मानते हैं, उनके बीच वैमनस्यकी आशंका क्यों रहे? अगर ऐसी स्थिति है, तब तो गांधीवादकी कोई ऐसी हस्ती नहीं है जिसपर हम अभिमान कर सकें। यह एक ही कारण संघको बन्द करनेके लिए काफी है। इसलिए हमने एक कामचलाऊ प्रस्ताव कर लिया है। आज अपने दिवालियेपनके अनुभवके बाद हम यह नहीं कह सकते कि गांधीवादी कोई कर्णमधुर नाम है। वह कोई ऐसा शब्द नहीं है जिससे हम लोगोंके दिलपर असर डाल सकें। संघको बन्द करनेका यह एक प्रबल कारण हो जाता है। अगर आप मेरे मजबूर करनेपर संघको बन्द करें, तो वह मेरे लिए भी शर्मकी बात होगी और आपके लिए भी। संघकी उपाधिसे मुक्त होकर हमें उज्ज्वल बनना चाहिए, कुछ करके दिखाना चाहिए। कम-से-कम हिन्दुस्तानके सामने तो अहिंसाकी शक्तिकी श्रेष्ठताका सबूत पेश करना चाहिए। जब हम ऐसा नहीं कर सकते, तो क्यों नाहक एक संघ बनाकर उसे बदनाम करें? जब मैं आत्म-निरीक्षण करके देखता हूँ, तो पता चलता है कि हमारे पास लोगोंको बताने लायक कोई चीज नही है। उस दशामें संघ तो एक बोझ हो जाता है। किशोरलालको उस बोझने दबा दिया है। धोत्रे काम करते-करते पिस गया है। अहिंसामें यह दोष नहीं होना चाहिए। अहिंसाकी साधना करनेवाले के आनन्दमें वृद्धि होनी चाहिए। हम अपने-आपको देखें और पूछें कि

१. गांधीजी के भाषण आरम्भ करने से पूर्व उप-समिति द्वारा तैयार किये गये प्रस्तावपर विचार किया गया था। देखिए परिशिष्ट ५।

क्या हम परीक्षामें उत्तीर्ण होते है? नही। यहाँकी चर्चाका मुझपर यही असर पड़ा। जो कार्य हम कर रहे है, क्या वह हम स्वधर्म समझकर वुद्धिपूर्वक कर रहे है? नही। गांधी कहता है, इसलिए हम कई बातें कर लेते है।

इसलिए मै यह कहता हूँ कि आज संघ वन्द होता है, तो इसमें आप लोगोंकी भलाई है। आप समझते थे कि आपको सघ आश्रय और प्रेरणा देता था। लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नही थी। वह तो एक भ्रमजाल था। आप आज उस भ्रमजालको तोडकर स्वावलम्वी और स्वतन्त्र हो जाते है। जब आप स्वतन्त्र रूपसे अहिंसाको चला सकेंगे तभी सच्चा गांधी सेवा-संघ पैदा होगा। संघके वन्द होनेपर आप अपने वलपर अहिंसाको कहाँ तक निवाह सकते है, इसका पता चलेगा। इसलिए संघका विसर्जन हमारे कल्याणकी ही बात है।

मैंने जव सत्याग्रह आश्रम वन्द किया, उस वक्त भी मेरे सामने यही दृश्य था। ऐसे ही सवाल और इसी तरहकी चर्चा भी।[1] पहले कोई-कोई आश्रमवासी आपसमें जरा-जरा सी वातपर लड़ पड़ते थे। सत्याग्रह-आश्रमके नामको कलंकित करते थे। मैंने सोचा, मनुष्यको यदि सच्ची उपासना करनी है, तो कम-से-कम अपनी कमजोरियोंको समझ ही लेना चाहिए। ईमानदारी पहला कदम है। मैंने देखा कि हम एक कुटुम्व-जैसे नही रहते है, झगड़े-झमेले चलते रहते है। हमें तो सत्याग्रह-आश्रममें हिल-मिलकर रहना चाहिए था। स्वभावसे ही, न कि जोर जवरदस्ती या वलात्कारसे। जव मैंने देखा कि हम अपने स्वभावको नही जीत सके है, तो आश्रम नाम छोड़कर उद्योग-मन्दिर नाम दिया और उसका रूप वदल दिया। लेकिन उससे भी मुझे सन्तोष नही हुआ। उद्योग-मन्दिरके लिए कुछ दूसरे प्रकारकी योग्यता चाहिए। उद्योग-मन्दिर भी नहीं चला, तो आगे चलकर वह हरिजन-आश्रम वन गया। जो सवसे पतित समझे जाते है, उनकी सेवाका पवित्र स्थान अव वह वन गया।

लेकिन मै उस वक्तका जिक्र कर रहा था जव कि मैंने सत्याग्रह-आश्रमको तोड़ दिया। उस वक्त मैंने कहा कि आश्रमका अव जो रूपान्तर हो रहा है वह भव्य है। आप लोग सव सत्याग्रह-आश्रमको अपने-अपने साथ लेकर जाते है। एक-एक आश्रमवासी एक-एक जंगम आश्रम हो जाता है। इसमे विलक्षण और भव्य परिवर्तन और क्या हो सकता है? मेरी इस कसौटीपर सभी आश्रमवाले खरे नही निकले, लेकिन इससे मुझे क्या मतलव? उसमें से कम-से-कम यह तो निकला कि सवने अपना-अपना रास्ता ढूंढ लिया। जो लोग वृत्ति और स्वभावसे आश्रम-धर्मीय हो गये थे, वे आज भी एक-एक जंगम आश्रम है। जो लोग भिन्न रुचि और भिन्न प्रकृतिके थे, वे एक कैदखानेसे छूट गये। दोनोंका कल्याण ही हुआ।

जिस तरह सत्याग्रहमें श्रद्धा रखनेवाले आश्रमवासी एक-एक जंगम आश्रम वन गये, उसी तरह आप सव सदस्योंको एक-एक जंगम गांधी सेवा-संघ वन जाना है। आप सव गांधी सेवा-सघको अपने साथ लेकर जाते है। आपका वोझ

१. जुलाई, १९३३ में; देखिए खण्ड ५५, पृ० ३०८-९।

हलका भी होता है और बढ़ भी जाता है। अब आप स्वयं अपनेको चलायेंगे। जिस तरह मैं अपना ही अनुयायी हूँ, लेकिन एक अशक्य और अपूर्ण अनुयायी हूँ, उसी तरह आप भी अपने अनुयायी बनें। मैं अपूर्ण हूँ। किसीकी कैदमें रहना पसन्द नही करता; लेकिन परिश्रमसे नहीं भागता। एक-एक कदम हलके-हलके बढ़ानेकी कोशिश करता हूँ। आप भी यही करें। इसमें आपको किसीकी मदद-की दरकार नही। ईश्वरकी मदद काफी है।

हर सदस्य, उसने अपने सामने जो काम रखा है, उसे पूरा करनेकी तैयारी करे। परमात्मासे मदद माँगे। हिन्दुस्तानके लड़वैयोंमें हम अग्रगामी रहें। जीवन-को मृत्युकी शय्या समझकर चले। इस मौतके बिछौनेपर अकेले न सोयें। हमेशा यमदूतको साथ लेकर सोयें। मृत्यु (देवता) से कहें कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है, तो ले जा। मैं तो तेरे मुँहमे नाच रहा हूँ। जब तक नाचने देगा, नाचूँगा; नही तो तेरी ही गोदमें सो जाऊँगा। अगर आपने इस तरह मृत्युका भय जीत लिया, तो यह संघ अमर हो जायेगा। अगर आप इस तरहके हैं, तो किसी संघकी क्या जरूरत है? तब तो आप खुद ही एक संघ है।

हम एक भ्रमजालसे छुटकारा पाकर अपनी ताकत बढ़ाते हैं। अगर आप यह कदम ज्ञानपूर्वक रखते है, तो नया बल प्राप्त करते है। आप मूर्च्छित अवस्था-मे रहना नही चाहते, यह मुझे प्रिय है। आपने सभी सदस्योंकी सदस्यता खत्म कर दी, यह बात मुझे पसन्द है। आज आपने संघके मौजूदा रूपका अन्त किया है। अगर आपने यह काम आवेशमें आकर किया हो तो उसका नतीजा अच्छा नही आनेवाला है। क्योंकि आपने वह अहिंसाका काम नही किया है, सत्यवादी-का काम नही किया है। परन्तु यदि आपने शान्त चित्तसे सोच-समझकर यह कदम उठाया है, तो हम सत्यकी शोधमें अवश्य आगे बढ़नेवाले है।

आपने समितिको सारे अधिकार तो दे दिये थे; लेकिन उन अधिकारोंपर अमल करनेके लिए हमारे पास कोई सामान नही था। बडी मुश्किलसे पाँच-सात आदमी ढूँढ़ सके। अव बोझ उनपर रहेगा। लेकिन आप भी जिम्मेवारीसे मुक्त नही होते। आपको इस नये संघके लिए सामग्री देनेकी जिम्मेवारी उठानी चाहिए। आप संघमें से चले तो जाते है, लेकिन अपने साथ यह ज्ञान लेकर जाते है कि हमने इस संघमें रहकर कुछ भी तो नही किया। एक नये संघके लिए सामान भी तो तैयार नहीं कर सके। तब इस संघने क्या कमाया? आपके लिए यह गम्भीर विचारका विषय होना चाहिए। ऐसे संघमें हम क्यों पड़े रहें? हमें कमजोरोंका संघ थोड़े ही बनाना है? हम अपने अन्दर जितनी अपूर्णता है, उसे देखें। अपनी अपूर्णता और संघकी अपूर्णता महसूस करके जाते है, तो आप पूर्णताकी तरफ कदम बढ़ायेंगे। संसारमें जन्मसे ही सिद्ध कोई नही है। हमको अपने दोष देखने चाहिए। हमारे दोप दूसरा क्या वताये? अपनी अपूर्णता हम जितना जानते है, दूसरा क्या जाने? इसलिए दूसरे जब मेरी स्तुति करने लगते है, तव मैं परेशान हो जाता हूँ। सघकी अपूर्णता हमारी सबकी अपूर्णताका जोड है। हमें हैरान होना चाहिए कि हम ऐसे कंगाल क्यों रहें? नई शक्ति हासिल करनी चाहिए।

अपनी अपूर्णता महसूस करना प्रगतिका पहला कदम है। जो यह भी नही जानता कि वह कुछ नही जानता, वह मूर्ख-शिरोमणि है।

आप सघके नये प्रमुख (अध्यक्ष) को लिखे कि आप हमें विशेषज्ञ मानें। उनसे कहे कि हम खोज करना चाहते हैं। साल-भर जाजूजीसे अनुसन्धान करके या वर्धामें रहकर खोजका काम करें। गुप्त (अज्ञात) वासमे रहकर मूक सेवा करते रहें। उससे यह आशा की जा सकती है कि जो शक्ति हम चाहते है वह हमें मिलेगी। यह भी आशा है कि अपनी उम्र-भर सशोधनके कार्यमें एकाग्र होकर लग जानेवाले 'रिसर्च-स्कालर्स' (विद्वान सशोधक) निकलेगे। वे मेरे पास अपनी खोजके परिणाम लेकर आयेंगे। जब मैं देखूंगा कि ये लोग वह चीज खोजकर लाये है जो मै चाहता था, लेकिन जिसे लानेकी मेरी शक्ति नही थी, तो मैं नाचूंगा। तब संघका काम बढेगा। तब अहिंसाका कदम आगे बढेगा।

अगर इस तरह हमारा काम न बढ़ा तो हम गाधीवादी क्यो रहे? आप अगर अपने-आपको गाधीवादी मानते है, तो आपकी परीक्षा क्या है? आप केवल कातनेका शास्त्र जानते हैं, इतना काफी नही है। यहाँ प्रदर्शनीमें जो आदमी है, वे आपसे बढ़िया कातनेवाले है। लेकिन आठ आने रोजाना लेकर नाचते है। वे कातनेका शास्त्र नही जानते। केवल अच्छा कातना काफी नही है। उसका विज्ञान होना चाहिए, यानी अहिंसाके साथ अनुसन्धान होना चाहिए।

इस तरह सघ आज एक छोटी-सी चीज रह जाती है। आप उसमें से बुलन्द शक्ति पैदा कर सकते है। यह शक्ति पैदा करनेके लिए हम उसके स्थूल रूपका निवारण करते है। संघको पातालमें भेज देते है। उसे लुप्त कर देते है। अब उसका न तो जाजूजीपर कोई बोझ है, न आपपर। अगर सघमें कोई बल था, तो आप उसे अपने साथ लेकर जाते है। हिन्दुस्तानमें जो जहर फैल रहा है उसे मिटानेके लिए आप उस बलका उपयोग करेंगे, जिससे आपकी शक्ति बढेगी और संघ की भी। अगर इस चीजको आप समझ गये है, तो संघको लुप्त कर देनेमें हमने कोई जल्दबाजीका या विनोदका काम नही किया है। जो-कुछ किया वह जान-बूझकर और विचारपूर्वक किया है। सघका जो विधान है उसके बनानेमें मेरा हाथ रहा है। किशोरलालको जबरदस्ती अध्यक्षकी गद्दीपर खीचनेकी जिम्मेदारी मेरी ही रही है। मै जानता हूँ कि किशोरलालने उस विधानको बनानेमें कितना परिश्रम किया। ऐसा विधान जो दूसरे संघोके लिए आदर्श हो सकता है, उस विधानको आज मैं अपने हाथो जमीदोज कर रहा हूँ। यह कोई विनोदका काम नही है।

अगर आप यह महसूस करते है कि मैं बूढा और मूर्ख बन गया हूँ, इसलिए मनमानी बकवास करता हूँ, तब तो बात दूसरी है। लेकिन अगर आप यह मानते हो कि मेरा दिमाग अब तक ठीक-ठीक काम करता है, और मैंने अपने अनुभवसे कुछ शिक्षण लिया है, तो मैं आपसे कहता हूँ कि इसमें से आपको सत्य-अहिंसाका अधिक ज्ञान होगा। जब यह संघ मेरी प्रेरणासे टूटा है, तो आप निश्चय

जानें कि इसमें जरूर कुछ-न-कुछ है। आप अन्तर्मुख होकर सोचेंगे, तो आपकी बुद्धि खुल जायेगी और आप समझ जायेंगे कि आजकी परिस्थितिमें यही सबसे भारी, अच्छा और सही कदम उठाया गया है।

बस, मैं आपसे मुक्ति चाहता हूँ। प्रफुल्लबाबू कहते हैं कि मुझे इतवार तक यहाँ रहना चाहिए। बंगालमें आया हूँ, लेकिन बंगालियोंका अभी कुछ काम नहीं किया है। मलिकन्दा फिरसे आनेकी आशा नहीं है। इसलिए चाहता हूँ कि बंगालको कुछ वक्त दे दूँ। दूसरे भी कई काम पड़े हैं। थोड़ा-बहुत समय उन्हें भी देना ही पड़ेगा। इसलिए आपसे छुट्टी चाहता हूँ, मैं सिर्फ सूत्रयज्ञमें शामिल हो जाऊँगा।

गांधी सेवा-संघके छठे अधिवेशन (मलिकन्दा, बंगाल) का विवरण, पृ० ५४-५८

२७९. पत्र: अमृत कौरको

मलिकन्दा
२३ फरवरी, १९४०

प्रिय पगली,

हमें विरोधी नारे तो सुननेको मिल रहे हैं,[1] फिर भी कुल मिलाकर काम ठीक चल रहा है। वैसे कौन जाने, कब स्थिति खराब हो जाये। निःसन्देह वातावरण तो खराब है ही। मौसम उत्तम है। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और दिनचर्या नियमित रूपसे चल रही है। रक्तचाप काबूमें है।

संघके गठन और काममें मूलभूत परिवर्तन किये गये हैं।[2] तुमने यह देख ही लिया होगा।

हम लोग यहाँसे रविवारको चलेंगे और मंगलवारको कलकत्ता से पटनाके लिए रवाना होंगे।[3]

आज इतना ही। कामका ढेर लगा है।

वहाँकी पारिवारिक खबरें उत्साहजनक हैं। पूनमचन्द राँका[4] ने मुझे कहा था कि छिदवाड़ाके बारेमें बालकृष्णसे वे खुद ही पत्र-व्यवहार करेंगे। लगता है कि उन्होंने अभी तक कुछ नहीं किया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है।

सबको प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६२) से; सौजन्य: अमृत कौर। जी० एन० ७२७१ से भी

१. देखिए "भाषण: खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीमें", पृ० २९७-९८।
२. देखिए "भाषण: गांधी सेवा-संघमें-४", पृ० ३१२-१६।
३. कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकके लिए
४. नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष

२८०. पत्र : मीराबहनको

मलिकन्दा
२४ फरवरी, १९४०

चि० मीरा,

इधर इतना व्यस्त रहा हूँ कि किसीको पत्र लिखते बना ही नहीं। तुम्हारे हरियाणा पहुँचनेके बादके दो उत्साहजनक पत्र मिले। तुम मजेमें हो और पण्डित-जी एक अच्छे साथी साबित हो रहे हैं, यह बड़ी खुशीकी बात है। यह जानकर मुझे और भी अच्छा लगा कि तुम्हारी तबीयत ठीक बनी हुई है।

यहाँ भी साथी अच्छे हैं। मैंने प्यारेलालसे तुम्हें कुछ कतरनें भेजनेको कहा है। उनसे तुम्हें कुछ अनुमान हो जायेगा।

हम लोग यहाँसे कल रवाना होंगे, २७ तक कलकत्ता रुकेंगे, २८ से अधिक-से-अधिक १ तक पटना। उसके बाद वर्धा जायेंगे जहाँसे ९ को रामगढ़[1] रवाना हो जायेंगे।

पृथ्वीसिंह यहीं हैं। वे हमसे पहले ही रामगढ़ चले जायेंगे। वे जापानी भिक्षु आनन्दको साथ ले जा रहे हैं।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

पण्डितजीको स्नेह।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५०) से; सौजन्य : मीराबहन: जी० एन० १००४५ से भी

१. कांग्रेस अधिवेशनके लिए

२८१. बातचीत : कार्यकर्ताओंके साथ[1]

मलिकन्दा
[२४ फरवरी, १९४०][2]

इन बेमेल तत्वोंके मिश्रणका विस्फोट होना अवश्यम्भावी है।[3] आपको तो साफ-सीधा व्यवहार करनेका ही संकल्प लेना चाहिए। और जहाँ आपको महत्त्व-हीन बातोंके सम्बन्धमें समझौता करनेको तैयार रहना चाहिए, वही अपने-आपको कभी भी ऐसा समझौता करनेकी स्थितिमें नही डालना चाहिए जिससे सत्यको आँच आनेकी आशंका हो। ऐसी तमाम स्थितियोंसे आप बचे रहें। यही समझौतेका मर्म है। सेवाको आप अपना धर्म मानें। निकटस्थ अथवा दूरस्थ किसी प्रकारका स्वार्थ इसमें नही होना चाहिए। आपके चारों ओर गरीबी-ही-गरीबी है। जो इससे त्रस्त है, आप उन सबकी सेवा करें, चाहे वे मुसलमान हो या नामशूद्र अथवा और कोई। सत्याग्रह दलों, वर्गों अथवा धर्मोंके भेदोसे परे है। इसे तो हमारे सम्पूर्ण जीवन तथा समाजमें व्याप्त हो जाना चाहिए। कांग्रेसकी सदस्य-संख्या बढानेका सवाल आपके सामने नही है। रजिस्टर भरनेके लिए सदस्य बनानेका खयाल आप बिलकुल छोड दें। यह तो सत्ताकी राजनीति है। फर्जी सदस्योंके नाम लिखकर रजिस्टर भरनेसे बेहतर तो यह है कि कोई रजिस्टर रखा ही न जाये। आप अगर ऐसे मूक कार्यकर्ता बन जायेंगे तो आप लोगोंमें से कोई एक भी कांग्रेसके बाहर रहते हुए प्रान्तीय कांग्रेसका सही ढंगसे नेतृत्व और संचालन कर सकेगा।

आशा है, अब आप यह सवाल नही उठायेंगे कि कांग्रेसपर अगर विरोधियोंका कब्जा हो जाये तो क्या होगा। उपनिषदकी यह उक्ति तो आप जानते ही हैं कि 'तेन त्यक्तेन भुजीथा'[4] — त्याग द्वारा ही भोग किया जा सकता है। अगर कांग्रेसका उपभोग करना चाहते हैं, उसे अपने बसमें रखना चाहते है, तो उसके प्रति जो मोह है उसका त्याग कीजिए। मनमें जिस क्षण किसी चीजकी प्राप्ति की आकाक्षा आई कि समझिए, आप पराजित हुए। कांग्रेसको अपने बसमें रखनेके लिए कोई चाल न चलिए, सही रास्तेसे विचलित न होइए। फिर आप देखेंगे कि आपके सारे विरोधी निरस्त हो गये हैं। क्या आप कागजकी नावमें बैठकर

१ और २. महादेव देसाई के लेख "गांधी सेवा-संघ—२" से उद्धृत। यह बातचीत बंगाल कार्यकर्ता सम्मेलनमें गांधीजी के भाषणके ठीक पहले हुई थी। देखिए अगला शीर्षक।

३. महादेव देसाईके अनुसार, गांधीजी बंगालमें शिक्षित और त्यागी स्त्री-पुरुषोंकी एक दीर्घ परम्पराके बावजूद वहाँ हो रही तोड़फोड़की कार्रवाइयोंका जिक्र कर रहे थे।

४. ईशोपनिषद, १

पद्मा नदी पार करनेकी कल्पना कर सकते हैं? उसी तरह कांग्रेस सदस्योंके फर्जी रजिस्टरके बलपर आप स्वराज्य भी प्राप्त नहीं कर सकते।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०

२८२. भाषण : बंगाल कार्यकर्ता सम्मेलनमें[1]

मलिकन्दा

२४ फरवरी, १९४०

गांधीजी ने कहा कि वक्त कम है और मैं आप लोगोंसे कुछ कहना चाहता हूँ। उनके मनमें जो पहला सवाल उठा वह यह था: आपको जो ये नई-नई बातें देखनेको मिल रही हैं इनका आखिर मतलब क्या है? कुछ लोगोंने 'गांधीवाद मुर्दावाद' ("गांधीवाद ध्वंस हउक") का नारा क्यों लगाया?[2]

हम इस बातको समझ लें कि वातावरणमें एक तरहका जहर घुला हुआ है। इससे आखिर हम कैसे निवटें? जिन लोगोंने ये नारे लगाये हैं उनकी संख्या ५० हो अथवा ५००। हम उन्हें नजर-अन्दाज नहीं कर सकते। उनकी क्या शिकायतें हैं, यह जाननेकी कोशिश हमें अवश्य करनी चाहिए। अगर अहिंसामें हमारा विश्वास है तो हमें उनके साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। यहाँ कोई प्रतितर्क देनेसे काम नहीं चलनेवाला है। ये भाड़ेके टट्टू हैं, ऐसा कहना कोई जवाब नहीं है, क्योंकि आप यह समझ लीजिए कि रेलका किराया और मजदूरीसे ही हर कोई यहाँ आनेको राजी नहीं हो जायेगा। यहाँ वे तभी आये होंगे जब किसी हद तक उन्हें अपने उद्देश्यमें विश्वास होगा।[3]

आपको यह समझ लेना चाहिए कि कुछ ऐसी चीजें हैं जो इन लोगोंको अच्छी नहीं लगती होंगी। इनके यहाँ आनेका बस यही कारण है। एक बात तो आप लोगोंको समझ ही लेनी चाहिए कि ऐसा कुछ है जिसका आप सृजन करना चाहते हैं, किन्तु जिसे लोग नष्ट करना चाहते हैं।

और उनके मनमें कुछ ऐसी धारणा है कि उन्हें जो चीजें प्रिय हैं, गांधीवाद उन्हें नष्ट करनेपर तुला हुआ है। अगर यह सच है तो गांधीवादको खत्म करनेकी उनकी इच्छा ठीक ही है। वस्तुस्थितिको यदि हम इस दृष्टिकोणसे देखें तो हमें अपने क्रोधपर काबू रखनेमें कोई दिक्कत नहीं होगी। उस हालतमें तो

१. पूर्व बंगालके लगभग २०० रचनात्मक कार्यकर्ताओं और मलिकन्दाके स्वयंसेवकोंकी एक सभा हुई थी।

२. यह अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

३. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

हम उनसे मिलने, उन्हें समझाने और यह आश्वासन देनेकी कोशिश करेंगे कि हमारी यह कतई इच्छा नहीं है कि हम उनके काममें बाधा डालें।[१] मैं यह नही कहता कि आप उन्हें तुरन्त अपनी बातका कायल कर लेंगे, लेकिन यह तय है कि जो जहर फैल रहा है आप उसपर काबू पा लेंगे। प्रतिशोध तो दूसरी तरहका जहर ही है, तथा जहरसे और जहर पैदा होता है। मात्र स्नेहरूपी अमृत ही घृणारूपी जहरको नष्ट कर सकता है।[२]

ये लोग दिनमें अनेक बार अपनी आवाजें बुलन्द करते हैं और फिर बादमें अपने-आप ठंडे पड़ जाते हैं। यदि आप इन आवाजोंको चुपचाप बर्दाश्त कर लें तो हो सकता है कि इनका आक्रोश और बढ़े, पर इसे झेलनेके लिए आपको तैयार रहना चाहिए। आप इन्हें चुपचाप सह लेंगे, इसलिए नहीं कि आप कमजोर हैं, बल्कि इसलिए कि आपके अन्दर धैर्य है और इस धैर्यसे आपमें शक्ति आयेगी।

अतः इस नारेसे आपको नाराज नही होना चाहिए। आप लोगोंमें से किसीको 'महात्मा गाधीकी जय' का नारा लगाकर उनकी आवाजको दबा देनेकी बात नही सोचनी चाहिए। उनके नारोंके जवाबमें आप लोगोंने नारेबाज़ी नहीं की, यह बहुत अच्छा किया। ऐसा करके आप लोगोंने उन्हें निष्प्रभ कर दिया है, जिससे ज्यादा गड़बड़ी नही हो पाई है। आपका यह धैर्य अगर अहिंसापर आधारित है तो मुझे यकीन है कि वे अपने-आप खामोश हो जायेंगे।[३]

कार्यकर्ताओंको गांधीजी ने रचनात्मक कार्य करनेकी सलाह दी और कहा कि उन्हें कांग्रेस संस्थाको अच्छे-बुरे हर तरीकेसे अपने कब्जेमें रखनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। अगर उनके रचनात्मक कार्य करनेमें बाधा पहुँचती है तो उन्हें कांग्रेस छोड़नेके लिए तैयार रहना चाहिए। चार आनेका सदस्यता-शुल्क दे देने मात्रसे कांग्रेस की सेवा नहीं हो जाती। ऐसे करोड़ों लोग हैं जो हैं तो कांग्रेसके बाहर लेकिन कांग्रेससे उन्हें प्रेम है, उसकी वे कद्र करते हैं, और उन लोगोंकी अपेक्षा कांग्रेसकी कहीं अधिक सेवा करते हैं जो अधिकार और प्रतिष्ठा पानेके लिए कांग्रेसपर काबिज हैं। गांधीजी ने कहा, मैं तो कहूँगा कि जिन लोगोंने चुपचाप चरखेको अपना लिया है वे देशकी सेवा उन लोगोंसे कहीं बेहतर कर रहे हैं जो कांग्रेसमें तो हैं पर रचनात्मक कार्य नहीं कर रहे हैं।

इसीलिए मैंने आपसे कहा है कि जिन लोगोंने चरखेको, इसके सभी फलितार्थोंके ज्ञानके साथ, अपनाया है वे कांग्रेसियोंकी अपेक्षा अधिक कांग्रेस-कार्य कर रहे हैं।[४]

१. **अमृत बाजार पत्रिका** में यहाँ इस तरह है: "आप लोगोंने अगर विरोध नहीं किया तो वे दिल खोलकर नारेबाजी करेंगे और फिर थककर वापस चले जायेंगे। और इस तरह जहर नहीं फैलेगा।"

२. इसके आगेका अनुच्छेद **अमृत बाजार पत्रिका** से लिया गया है।

३. इससे आगेका अनुच्छेद **अमृत बाजार पत्रिका** से लिया गया है।

४. इससे आगेका अनुच्छेद **अमृत बाजार पत्रिका** से लिया गया है।

यह जानकर उन्हें खुशी हुई कि बंगालके जो कार्यकर्ता रचनात्मक कार्यमें लगे हुए हैं उन्होंने यह संकल्प किया है कि सालमें ६०,००० गजसे कम सूत वे नहीं कातेंगे। उन्होंने कहा कि अगर आप बिना नागा आधा घंटा रोज कातें तो सालमें एक लाख गज सूत कातना कोई मुश्किल बात नहीं है। अगर यह मुश्किल हो तो भी आपको अपने हितका खयाल करके इसे करना चाहिए। बुनाईकी लागत ज्यादा नहीं बैठती। अगर आप कताई करते हैं तो यह देशकी सेवा होगी। इस सम्बन्धमें आप प्रतिज्ञा लेते हैं तो यह बहुत अच्छी बात है। इससे आपको अपने कामको नियमित रूपसे करनेकी शक्ति और दृढ़ता प्राप्त होगी।

तथापि अगर आपके अन्दर तनिक भी हिचकिचाहट है तो मैं तो कहूँगा कि आप प्रतिज्ञा न लें, बल्कि प्रतिज्ञा लिये बगैर आप अपने हिस्सेकी कताई करनेकी कोशिश करें।[1]

गांधीजी ने कहा कि यद्यपि यह हो सकता है कि कताई नीरस लगे, पर चरखे को मैंने 'दरिद्रनारायण अन्नपूर्णा' कहा है। ५०० या १००० आदमी अगर रचनात्मक कार्य करने की प्रतिज्ञा लेते हैं तो इससे गरीब बुनकरोंको पैसे मिलेंगे। यही वजह है कि चरखेको मैं 'अन्नपूर्णा' कहता हूँ।

तथापि खुद कताई करनेमें एक दोष रह जाता है, जिसकी ओर मैं आप लोगोंका ध्यान दिलाना चाहूँगा। आप जो कताई करेंगे वह निस्सन्देह अपने कपड़ेके लिए करेंगे, लेकिन ऐसा करनेसे आप गरीब कतैयोंकी अधिक रोजी मारेंगे।[2] चरखा तो उन्हींके लिए है। लेकिन यद्यपि यह दोष इसमें है, फिर भी मैं आप लोगोंसे कताई करनेको इसलिए कहता हूँ ताकि इसका व्यापक प्रचलन हो जाये।[3]

अगर खादीको केवल पहननेके लिए ही नहीं बल्कि घरके और कामोंमें भी इस्तेमाल करें तो इससे खादीकी ज्यादा खपत होगी तथा गरीबोंको अधिक रोटी मिलेगी।

आपमें से जो लोग इतने गरीब हैं कि खादी खरीद ही नहीं सकते उन्हें तो बेशक अपने लिए धुनाई और कताई भी खुद ही करनी चाहिए। लेकिन जो लोग इस योग्य हैं कि अपनी जरूरतकी खादी खरीद सकें वे चरखा संघको ६०,००० गज सूत भेजें। आपके सूतका यह उपहार भंडारमें मिलकर खादीकी कीमत कम करेगा।[4] इससे गरीब लोग, जो आज न तो अपने लिए कताई कर सकते हैं और न खादी खरीद सकते हैं, खादी खरीद सकेंगे; तब यह उनके लिए सस्ती पड़ेगी।[5]

१. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।
२. अमृत बाजार पत्रिका में यहाँ ऐसा है: "उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस तर्कमें कि खादीका प्रयोग करके किसी हद तक वे मिल मजदूरोंकी रोटी छीनते हैं, कुछ सच्चाई जरूर है।"
३. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।
४. अमृत बाजार पत्रिका में यहाँ इस तरह है: "और बुनकरोंको अधिक पैसे मिलेंगे।"
५. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

दूसरे देशोंमें करोड़ों लोग अनिवार्य रूपसे फौजमें भरती किये जाते रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि देशकी सेवाकी खातिर देशके सभी लोग एक घंटे कताई अपने लिए अनिवार्य कर दें और यह अनिवार्य भरतीका सुन्दर विकल्प होगा।

इसे मैं स्वैच्छिक श्रम-कर कहता हूँ। यूरोपमें सैनिक सेवा अनिवार्य है। यहाँ हम असैनिक सेवा अनिवार्य 'कर दें।[1]

गांधीजी ने आगे कहा, हमने अहिंसाका तरीका अपनाया है, इसलिए हम हिंसात्मक तरीकेका सहारा नहीं लेंगे। मैं तो आपसे केवल इतना ही कहता हूँ कि आपमें से हर-एक राष्ट्रकी सेवाके निमित्त प्रतिदिन घंटे-भरका यह श्रम अर्पित करे। इससे गरीबों और निस्सहाय लोगोंको रोटी मिलेगी।

आप जो-कुछ भी करें, अकलमन्दीसे करें, स्वेच्छासे करें और सेवाकी भावनासे करें।[2]

अन्तमें गांधीजी ने कहा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक आप लोग इस ढंगसे अपनेको उसके लिए तैयार नहीं करेंगे। मेरी समझसे तो मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलन तब तक नहीं आरम्भ कर सकूँगा जब तक कि आप रचनात्मक कार्य करके हिंसाका बिल्कुल त्याग न कर दें।

खादीके साथ-साथ और भी दूसरे कुटीर उद्योग हैं, हरिजन सेवा तथा अन्य रचनात्मक कार्य हैं, जिन्हें यदि अच्छी तरह किया गया तो उससे ऐसी शक्ति प्राप्त होगी जो तथाकथित राजनीतिक कार्यसे नहीं मिल सकती। हो सकता है, उसके बाद सविनय अवज्ञाकी जरूरत ही नहीं रह जाये। हिन्दू-मुस्लिम तनाव, अस्पृश्यता-निवारण, वाम पंथियों और दक्षिण पंथियोंकी तू-तू मैं-मैं, यह सब तो इससे अपने-आप खत्म हो जायेगा और तब हमारी दासताकी बेड़ी अपने-आप टूट जायेगी। मेरी समझसे तो यही सबसे बडा राष्ट्र-धर्म है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०, और अमृत बाजार पत्रिका, २५-२-१९४०

१. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

२. इससे आगेका अनुच्छेद अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

२८३. भाषण : बंगालकी कार्यकर्त्रियोंके समक्ष

मलिकन्दा
२४ फरवरी, १९४०

राजनीतिका अर्थ कांग्रेस कार्यकारिणीका सदस्य-भर बन जाना नहीं है। असली राजनीति तो कताई है।[1]

गांधीजीने पुरुष कार्यकर्ताओंकी साल-भरमें साठ हजार गज सूत कातनेकी प्रतिज्ञा की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और कहा कि महिलाओंको तो इससे भी अधिक सूत कातना चाहिए।

पुरुषवर्गने कातनेका काम शुरू किया है, पर मैं मानता हूँ कि यह कला आप लोग ज्यादा सहजता से अपना सकती हैं। इसका एक कारण यह भी है कि पुरुषोंके लिए रोजगारके बहुत-से अन्य रास्ते भी हैं। अगर स्वराज्य चरखेके बल पर प्राप्त होना है, तो स्वतन्त्रता-संग्राममें आप लोगोंका योगदान अधिक होना चाहिए। और अगर अहिंसाके जरिये स्वराज्य मिलनेवाला है, तब भी आपका स्थान संघर्षमें सबसे आगे होगा, क्योंकि प्रकृतिने आप लोगोंको कष्ट-सहनकी शक्ति पुरुषोंसे अधिक दी है। पुरुषोंने महिलाओंपर जो यह कलंक थोप दिया है कि वे पुरुषोंसे हीन और उनके अधीन हैं, उसे मिटानेके लिए भी आपको इस संघर्षमें अपना विशिष्ट योग देना चाहिए और इस प्रकार दुनियाको यह दिखा देना चाहिए कि आप स्वतन्त्रताके लिए पुरुषोंसे अधिक अच्छा संघर्ष कर सकती हैं।[2]

महात्मा गांधीने उन्हें सेवा-संघ सम्मेलनके दौरान खाने-पीनेका प्रबन्ध संभालनेके लिए बधाई दी और उनसे अपना अवकाशका सारा समय कताईमें लगानेका आग्रह किया, क्योंकि उनके विचारसे वही भारतको स्वराज्य दिलायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०, और बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-२-१९४०

१. यह तथा अगला अनुच्छेद बॉम्बे क्रॉनिकल से लिये गये हैं।
२. इससे आगेका अंश बॉम्बे क्रॉनिकल से लिया गया है।

२८४. पत्र : रामनारायण चौधरीको

२५ फरवरी, १९४०

चि० रामनारायण,

तुमारा समय भरा है। अब ज्यादा काम नही लेना। तुमारा मुख्य काम खादीशास्त्रमें प्रावीण्य पाना है। आंध्रकी पद्धतिसे धुननेमें कुछ भी कष्ट नही होता है। कृष्णदाससे पूछो।

बापु

बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा, पृ० १३३

२८५. भाषण : सार्वजनिक सभामें[1]

मलिकन्दा
२५ फरवरी, १९४०

सभाके आरम्भमें गांधीजी ने बहुत वर्षों बाद मलिकन्दामें इतने लोगोंसे एक साथ मिल पानेपर खुशी जाहिर की। उन्होंने कहा :

मुझे १८,००० रु०[2] की थैली भेंट की गई है। इस धनका उपयोग बंगालके गरीबोंके हितके लिए किया जायेगा। मैं आपको कोई नई बात बतानेवाला नही हूँ। नागपुर कांग्रेस अधिवेशन[3] में चार प्रस्ताव पारित किये गये थे। मैं उन्हें देशकी स्वतन्त्रताके चार आधार-स्तम्भ मानता हूँ। वे प्रस्ताव हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता, मद्य-निषेध और चरखेके बारेमें थे। अगर हम उपरोक्त चारों प्रस्तावोंपर अमल कर सकें तो स्वतन्त्रता हमें अपने-आप मिल जायेगी। आज भी मेरे मनमें इन चारों कार्यक्रमोंके प्रति कम-से-कम उतनी श्रद्धा तो है ही जितनी पहले थी।[4] इस कार्यक्रममें जन-साधारण लाखों-करोड़ोंकी तादादमें भाग ले सकता था। मैं यहाँ उपस्थित इस बड़े जन समुदायसे, जिसमें हरिजन और मुसलमान भी हैं, इन चारों कार्यक्रमोंको पूरा करनेकी आशा रखता हूँ।

१. गांधीजी ने तीसरे पहर कलकत्ताके लिए रवाना होनेसे पहले ५०,००० लोगोंके समक्ष भाषण दिया था।

२. यह गांधी सेवा-संघके अधिवेशनके लिए इकट्ठे किये गये कोषकी बकाया रकम थी।

३. दिसम्बर, १९२० में

४. इससे आगेका वाक्य अमृत बाजार पत्रिका से लिया गया है।

चरखेका कार्यक्रम तो चाहे बूढा हो चाहे बच्चा, कोई भी अपना सकता है। यह खेदकी बात है कि अभी तक सबने चरखेको अपनाया नही है। मुझे इस बातसे दुःख होता है कि यहाँ उपस्थित अधिकाश लोगोने खादी नहीं पहन रखी है। अगर आप कातना शुरू कर देंगे तो मुझसे खादीके महँगे होनेकी शिकायत नहीं करेंगे। सिर्फ आधा घटा रोज कातनेसे ही आप अपनी कपड़ेकी जरूरत पूरी कर सकते हैं। अगर आप कताईके लिए एक घटा रोज भी देनेको तैयार नही हैं तो हम स्वराज्य पानेका दावा कैसे कर सकते हैं?

स्वतन्त्रता कायम रखनेके लिए दूसरे देशोके लोग बडे-बड़े बलिदान देते हैं। अगर हम अहिंसामें पूरी श्रद्धा रखें तो हमें न करोडो रुपये खर्च करने पडेगे और न लाखों लोगोके बलिदानकी आवश्यकता होगी। अपनी अन्तिम साँस तक भी मैं स्वतन्त्रताके लिए अहिंसाके सिवाय और किसी साधनकी चर्चा नही करूँगा। जो कार्यक्रम मैंने देशके सामने रखा है, उसीको मैं दोहराता रहूँगा। अहिंसाके माध्यमसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें स्त्रियाँ पुरुषोकी अपेक्षा अधिक कारगर भूमिका अदा कर सकती हैं। देशकी स्वतन्त्रताके लिए स्त्रियोका काम करना भी उतना ही जरूरी है जितना कि पुरुषोका। इसलिए पुरुषोंके साथ-साथ स्त्रियोको भी काम करना चाहिए। चाहे चरखा हो या अस्पृश्यता-निवारण, स्त्रियोंको पुरुषोंसे पीछे नही रहना है। भारतमें स्त्रियाँ अनादिकालसे कातनेका काम करती आ रही थी। आज भी वे पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक कातती हैं। अगर स्वराज्य पानेका एकमात्र साधन चरखा है, तो देशकी स्वाधीनतामें स्त्रियाँ पुरुषोकी अपेक्षा अधिक हाथ बँटा सकती हैं[1]।

भगवानसे मेरी यही प्रार्थना है कि भारतीय स्त्रियाँ चरखेके आदर्शसे अनुप्रेरित हो और अपने सम्बन्धियोंको भी चरखा अपनानेको प्रेरित करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-२-१९४०, और अमृत बाजार पत्रिका, २६-२-१९४०

२८६. प्रश्नोत्तर

रचनात्मक संस्थाएँ

प्र० : चूँकि आपने गांधी सेवा-संघमें राजनीतिको कोई स्थान नहीं दिया है,[2] इसलिए हरिजन सेवक संघके बारेमें आपका क्या कहना है? क्या उसे अपनी विभिन्न संस्थाओंपर राष्ट्रीय झण्डे फहराने चाहिए?

उ० : मुझे यह कहनेमें कोई झिझक नही हो रही है कि आज हम राजनीतिको जिस रूपमें जानते हैं उस रूपमें उससे सभी रचनात्मक संस्थाओंको दूर

१. अमृत बाजार पत्रिका में यहाँ इतना और जोड़ दिया गया है: "और इस तरह विश्व इतिहासमें एक मिसाल कायम कर सकती हैं"।

२. देखिए "भाषण: गांधी सेवा-संघ में–३", पृ० २९२-३११।

रहना चाहिए। यह बात विचित्र तो लग सकती है लेकिन है सच कि ये संस्थाएँ केवल अपने-अपने निश्चित कार्योंपर जितना अधिक ध्यान और शक्ति लगायेंगी, उतना ही ज्यादा ये प्रगति करेंगी और राष्ट्र-कार्यमें उतनी ही अधिक सहायता पहुँचायेंगी। इतना ही काफी होना चाहिए कि इन संस्थाओंके अधिकांश कार्यकर्ता कांग्रेसी या कांग्रेसी विचारधाराके लोग हों। लेकिन वे दलगत राजनीतिसे अछूती हैं और उन्हें अछूती ही रहना चाहिए। वे सभी दलोंके सहयोगका स्वागत करेंगी और उन्हें करना भी चाहिए। वे विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओंके लोगोंके गैर-राजनीतिक मिलन-स्थलका काम करती हैं। जब दलगत राजनीति हमें विवाद-रहित विषयोंमें भी एक-दूसरेसे अलग कर देती है, तो यह इस बातका निश्चित लक्षण है कि व्यवस्थामें कहीं कोई खराबी है। यह असहिष्णुताका एक निश्चित लक्षण है। जो-कुछ मैंने कहा है उससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि रचनात्मक संस्थाओंको राष्ट्रीय झण्डा नहीं फहराना चाहिए — खासकर इस स्थितिमें यह हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़ेका कारण बन गया है।

कलकत्ता, २६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २-३-१९४०

२८७. मैंने शान्तिनिकेतनमें क्या देखा

शान्तिनिकेतनकी यात्रा मेरे लिए एक तीर्थ यात्राके समान थी। बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा वहाँ जानेकी थी, लेकिन यह अवसर मलिकन्दा जाते समय ही मुझे मिल सका। मेरे लिए शान्तिनिकेतन नया नहीं है। १९१५ में जब यह अपना रूप ग्रहण कर रहा था तब मैं वहीं था — इसका यह मतलब नहीं कि अब इसका निर्माणका काम रुक गया है। गुरुदेवका खुदका विकास हो रहा है। वृद्धावस्थाके कारण उनके मनके लचीलेपनमें कोई फर्क नहीं पड़ा है। इसलिए जब तक गुरुदेवकी भावनाकी छाया उसके उपर है तब तक शान्तिनिकेतनका विकास रुक नहीं सकता। शान्तिनिकेतनका हर व्यक्ति और वहाँकी हर वस्तु उनकी प्रेरणासे अनुप्राणित है। वहाँ हर आदमीमें उनके प्रति जो श्रद्धा है वह ऊपर उठानेवाली है, क्योंकि वह सहज है। मुझे तो इसने अवश्य ही ऊपर उठाया। कृतज्ञ छात्रों और अध्यापकोंने उनको जो उपाधि (गुरुदेवकी) दे रखी है उससे शान्तिनिकेतनमें उनकी स्थिति ठीक-ठीक प्रकट होती है। उनकी यह स्थिति इसलिए है कि वे उस स्थान और वहाँके समूहमें निमग्न हो गये हैं — अपनेको भूल गये हैं। मैंने देखा कि वे अपने प्रियतम कृतित्व — विश्वभारतीके लिए ही जी रहे हैं। वे चाहते हैं कि यह फूले-फले और अपने भविष्यके विषयमें निश्चिन्त हो जाये। इसके बारेमें उन्होंने मुझसे देर तक बातचीत की। लेकिन इतना भी उनके लिए काफी नहीं था, इसलिए जब हम विदा हो रहे थे तब उन्होंने मुझे नीचे लिखा बहुमूल्य पत्र दिया:

प्रिय महात्माजी,

आपने आज सुबह ही हमारी प्रवृत्तियोंके केन्द्र विश्वभारतीका विहंगावलोकन किया है। मैं नहीं जानता कि इसकी गुणवत्ताके बारेमें आपने क्या धारणा बनाई है। आप जानते हैं कि यद्यपि अपने वर्तमान रूपमें यह संस्था राष्ट्रीय है, तथापि अन्तःभावनाकी दृष्टिसे यह एक सार्वदेशिक संस्था है और अपने साधनोंके अनुसार भरसक शेष जगतको भारतकी संस्कृतिका आतिथ्य प्रदान करती है।

एक बड़े संकटकी घड़ीमें आपने इसे टूटनेसे बचाया और अपने पाँवपर खड़े होनेमें इसकी सहायता की।[1] आपके इस मित्रतापूर्ण कार्यके लिए हम आपके सदा आभारी हैं।

और अब शान्तिनिकेतनसे आपके विदा होनेके पहले मैं आपसे एक आग्रहपूर्ण अनुरोध करता हूँ। यदि आप इसे एक राष्ट्रीय सम्पत्ति समझते हैं तो इस संस्थाको अपने संरक्षणमें लेकर इसे स्थायित्व प्रदान करें। विश्वभारती उस नौकाके समान है जो मेरे जीवनके सर्वोत्तम रत्नोंसे भरी हुई है और मुझे आशा है कि अपनी रक्षाके लिए अपने देशवासियोंसे यह विशेष देखरेख पानेका दावा कर सकती है।

सप्रेम,

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इस सस्थाको अपने संरक्षणमें लेनेवाला मै कौन होता हूँ? चूंकि यह एक ईमानदार आत्माका कृतित्व है, इसलिए ईश्वरका संरक्षण इसके साथ है। यह कोई दिखावेकी चीज नही है। गुरुदेव स्वय सार्वदेशिक हैं, क्योंकि वे सच्चे रूपमें राष्ट्रीय हैं। इसलिए उनकी सम्पूर्ण कृतियाँ सार्वदेशिक हैं और विश्वभारती उन सबमें श्रेष्ठ है। मुझे इसमें किसी तरहका सन्देह नही कि जहाँ तक आर्थिक बोझका सम्बन्ध है, इसके भविष्यके बारेमें गुरुदेवको सम्पूर्ण चिन्तासे मुक्त कर देना चाहिए। उनके हृदयग्राही अनुरोधके जवाब[2] में जो-कुछ सहायता करने लायक मै हूँ, वह करनेका मैंने उन्हें वचन दिया है। यह टिप्पणी उस प्रयत्नका आरम्भ है।

कलकत्ता, २६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-३-१९४०

१. देखिए खण्ड ६२, पृ० ३०४।
२. देखिए पृ० २६५।

२८८. नोआखलीके हिन्दुओंको मेरी सलाह

मेरे मलिकन्दा-प्रवासके समय नोआखलीसे मनोरंजन बाबू और अन्य मित्र अपने इलाकेके हिन्दुओंकी मुसीबतोंके बारेमें मुझसे मिलने आये। मनोरंजन बाबू कुछ दिनोंसे इस विषयमें मुझसे पत्र-व्यवहार भी करते रहे हैं। मैंने शिकायतोंकी जाँच नही की है। इसके लिए मेरे पास न वक्त था, न इच्छा थी। यह प्रान्तीय कांग्रेस तथा अन्तमें केन्द्रीय संस्थाके अधिकार-क्षेत्रकी बात है। लेकिन मुझे मोटे तौरपर सलाह देनेमें कोई दिक्कत नही हुई। उनका मामला, कमोबेश, सक्खर-प्रकरण[1] जैसा ही है। मात्रामें बहुत ज्यादा अन्तर है। लेकिन मैं पूरी तरह अनुभव करता हूँ कि नोआखलीमें जिस तरह गुण्डागर्दी खूब फैली बताई जाती है उसका मुकाबला कोई भी लोक-निर्वाचित सरकार सफलतापूर्वक नही कर सकती। यह तत्वत: एक आत्मरक्षाका मामला है। आत्म-सम्मान और आबरूकी रक्षा दूसरोंके जरिये नही की जा सकती। इनकी रक्षा तो हर एक स्त्री-पुरुषको खुद करनी चाहिए। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना कर सकती है कि अपराध हो जानेके बाद अपराधीको सजा दे दे। पर वह ऐसी स्थिति उत्पन्न नही कर सकती कि अपराध हो ही नही। इस दिशामें तो वह वही तक कुछ कर सकती है जहाँ तक दण्ड-भय अपराधको रोकनेमें कारगर हो सकता है। आत्मरक्षा हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो तरीकोंसे की जा सकती है। मैंने सदा अहिंसात्मक रक्षाकी सलाह दी है और उसीपर जोर दिया है। लेकिन मैं इतना मानता हूँ कि हिंसात्मक रक्षाकी तरह ही अहिंसात्मक रक्षाकी कला भी सीखनी पड़ती है। हिंसात्मक रक्षाके लिए जिस तरहकी शिक्षा और तैयारीकी जरूरत पडती है उससे इसकी शिक्षा और तैयारी भिन्न हैं। इसलिए अगर अहिंसात्मक ढंगसे आत्मरक्षा करनेकी शक्तिका अभाव है, तो हिंसात्मक साधनों और उपायोंका आश्रय लेनेमें कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिए। किन्तु चूँकि मनोरंजन बाबू एक पुराने कांग्रेसी हैं, इसलिए उन्होंने कहा — "आप तो कहते हैं कि आत्मरक्षाके लिए भी प्रत्याक्रमण नही करूँगा ?" मैंने उत्तर दिया — "अवश्य, मेरा मत तो यही है। लेकिन गया-कांग्रेस[2] में एक प्रस्ताव पास हुआ था कि आत्मरक्षार्थ बलप्रयोगकी कांग्रेसियोंको अनुमति है। मैंने कभी इस प्रस्तावको उचित नही बताया है। अगर आत्मरक्षाके लिए हिंसाकी अनुमति दे दी जाये तो अहिंसा निरर्थक हो जाती है। किसी आक्रमणकारी राष्ट्रके विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरोध आत्मरक्षणके सिवा और क्या है ? इसलिए आपने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमें अपनी रक्षाके लिए यदि

१. देखिए "सिन्धकी दुःखद घटना", पृ० ८३-८६।

२. १९२२ में

हिंसात्मक उपायोंका सहारा लेनेकी सोचते हों तो मैं आपको कांग्रेससे अलग हो जानेकी सलाह दूँगा।"

मनोरंजन बाबूने पूछा· "लेकिन मान लीजिए मैंने गया वाला प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो क्या पीड़ित हिन्दुओंकी रक्षा करनेमे मुझपर साम्प्रदायिकता-का आरोप लगाया जा सकेगा?" मैंने उत्तर दिया — "हर्गिज नही। पहली बात यह कि कांग्रेसी होनेसे आपका हिन्दू होना खत्म नही हो जाता। साम्प्र-दायिकताके दोषी आप तब होंगे जब गलत या सही हर हालतमे हिन्दुओंका पक्ष लें। इस मामलेमें आप हिन्दुओंकी रक्षा इसलिए नही करते कि वे हिन्दू है, बल्कि इसलिए करते हैं कि वे पीड़ित हैं। मैं आशा करूँगा कि अगर आप मुसलमानोंको हिन्दुओं द्वारा पीड़ित होते देखें तो उनकी भी रक्षा करेंगे। कांग्रेसी कोई सम्प्रदाय-भेद [नही] मानता, [न] उसे मानना चाहिए।"

इसके बाद मिलनेवालोंने कांग्रेसके झगड़ोंपर बातचीत की और मुझसे कहा कि कांग्रेसकी तरफसे सहायता पानेसे निराश हो जानेके कारण बहुतेरे हिन्दू हिन्दू महासभा में शामिल हो गये हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हम लोग भी ऐसा कर सकते हैं। मैंने उनसे कहा कि सिद्धान्ततः तो मुझे इसमें आपत्तिकी कोई बात दिखाई नही देती। पर मैं इसका निर्णय नही कर सकता कि स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार यह उचित होगा या नही। लेकिन अगर मैं कांग्रेसी होऊँ और मुझे महसूस हो कि उस हैसियतसे मैं प्रभावशाली ढंगपर कुछ नही कर सकता, तो मैं किसी ऐसी संस्थामें शामिल होनेसे नही हिचकूँगा जो प्रभावशाली ढंगपर सहायक हो सके। पर इसके साथ मैंने यह भी कह दिया कि कोई जिम्मेदार कांग्रेसी इस संस्थामें पदाधिकारी होते हुए हिन्दू महासभाका, जो स्पष्टतः एक साम्प्रदायिक संस्था है, सदस्य नही हो सकता। सारा सवाल कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। इस अवसर पर शान्ति, सचाई और हिम्मतकी जरूरत है। अगर कांग्रेस अहिंसा-धर्मका आच-रण सार्थक और प्रभावकारी ढंगसे नही करती तो साम्प्रदायिकताकी विजय निश्चित है। अगर वह अहिंसासे खिलवाड़ करेगी तो आचरणतः खुद ही साम्प्रदायिक बन जायेगी। क्योंकि कांग्रेसियोंमें हिन्दुओंका बहुमत है और अगर उन्हें अहिंसाके प्रभावकारी उपयोगका ज्ञान नही होगा तो फिर उनका हिंसाकी तरफ बहक जाना निश्चित है। मेरे मनमें तो यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि कांग्रेस तभी असाम्प्रदायिक रह सकती है जब वह सभी मामलोंमें अहिंसात्मक रहे। ऐसा नही हो सकता कि यह सिर्फ शासकोंके प्रति अहिंसात्मक रहे और दूसरोंके प्रति हिंसात्मक हो। यह मार्ग तो अपयश और विनाशका मार्ग है।

कलकत्ता, २६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-३-१९४०

२८९. सही कदम

गांधी सेवा-संघने जो महत्त्वपूर्ण निश्चय किया है[1] वह निश्चय करनेकी सलाह देते वक्त मुझे कुछ कम पीड़ा नहीं हुई। यह 'हाराकीरी' (आत्महत्या) तब हुई जब संघ जीवनके पूरे ओजपर था। किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्ताओंमें से एक हैं। काम करते हुए वे कभी थकते नहीं। उनमें धर्मबुद्धि तो कह सकते हैं, जरूरतसे ज्यादा है। उनकी जागरूक दृष्टिसे ब्योरेकी कोई बात नहीं छूट पाती। वे एक तत्त्ववेत्ता और गुजरातीके लोकप्रिय लेखक हैं। गुजरातीके वे जैसे विद्वान हैं वैसे ही मराठीके भी हैं। वे प्रजातीय, जातीय, साम्प्रदायिक या प्रान्तीय अहंकार और दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त हैं। वे एक स्वतन्त्र चिन्तक हैं। वे राजनीतिज्ञ नहीं, एक जन्मजात समाज-सुधारक हैं। वे समस्त धर्मोंके अध्येता हैं। उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नहीं है। वे जिम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापनबाजीसे भागते हैं। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी नहीं मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। बड़ी मुश्किलसे मैं उन्हें गांधी सेवा-संघका अध्यक्ष बननेको राजी कर सका था। उनकी परिश्रमशीलता और सरल निष्ठाके कारण ही संघको इतनी महत्ता और उपयोगिता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने स्वास्थ्यके प्रति पूरी लापरवाही रखकर (मैं सार्वजनिक कार्यकर्तामें इसे कोई गुण नहीं, बल्कि अवगुण मानता हूँ) अपना द्वार सदा सत्यशोधकोंके लिए खुला रखा। कोई आश्चर्य नहीं कि इस सबसे वे संघके लिए अनिवार्य बन गये। असीम सावधानीके साथ उन्होंने संघके लिए एक ऐसा विधान बनाया जो ऐसी किसी भी संस्थाके लिए नमूनेका काम दे सकता है।

ये बातें मैं किशोरलालकी कुछ तारीफ करनेके खयालसे नहीं लिख रहा हूँ। उन्हें तारीफकी जरूरत नहीं है। इनका जिक्र तो मैं खुद अपने सन्तोषके लिए और पाठकोंको, तथा विशेष रूपसे संघके अवकाश ग्रहण करनेवाले सदस्यों और बहुसंख्यक प्रेमियोंको यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि जो निर्णय किया गया है वह अत्यधिक चिन्तन और विचारके बाद ही किया गया है। पिछले दो सालोंसे हम, संघके निर्माता लोग, अन्धेरेमें टटोलते रहे हैं। हम महसूस करते हैं कि संघ अपने आदर्शोंके योग्य कार्य नहीं कर रहा है। यह सदा दलबन्दी और सत्ताकी राजनीतिसे अछूता रहा है। इसका जन्म कांग्रेस-कार्यक्रमके रचनात्मक अंशका समर्थन करने और जनतामें उसका प्रसार करनेके लिए हुआ था। इसे प्रभावकारी बनानेमें किशोरलाल अपने शरीर तककी परवाह नहीं करते

१. संघ की २२ फरवरी, १९४० की बैठक में; देखिए परिशिष्ट ५।

थे। लेकिन हमें परिणामसे सन्तोष नहीं था। हम शेखी मारते हैं कि गीता-अनुगामी होनेसे हमारा कर्म-फलसे कोई सम्बन्ध नहीं था, किन्तु ऐसी अवस्थामें तो संघमें कोई भीतरी असन्तोष भी नहीं होना चाहिए था; पर असन्तोष था। जैसाकि मालूम हुआ, फलाभाव कारण नहीं था, बल्कि उद्देश्यका अभाव कारण था। हम लोग अन्धेरेमें टटोल रहे थे — कम-से-कम मैं तो टटोल ही रहा था — कि रचनात्मक कार्य करनेवाले कांग्रेस-कार्यकर्ताओंकी सहायताके लिए जमनालालजी द्वारा एकत्र किये हुए या दान दिये हुए धनका वितरण करनेवाली एजेंसीके सिवा संघका असली उद्देश्य क्या है? मलिकन्दामें मुझे मुख्य रोग और उससे मुक्ति पानेके उपायका पता लगा। जहाँ तक सिर्फ रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करनेका सम्बन्ध है, संघ एक फालतू संस्था थी, क्योंकि जरूरतके कारण अ० भा० चरखा संघ, अ० भा० ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ और तालीमी संघका जन्म तो हो ही चुका था। फिर क्या संघके लिए दूसरा कोई ऐसा काम करनेको नहीं था जो किशोरलाल-जैसे कार्यकर्ताओंकी योग्यता और त्यागके काबिल होता?

मलिकन्दामें इसका दु:खद उत्तर मिला। संघको जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अहिंसाकी सम्भावनाओंका शोध करना है। उसे इसका पता लगाना है कि क्या रचनात्मक कार्योंका राष्ट्रीय जीवनमें अहिंसाके प्रयोगसे वस्तुत: जीवन्त सम्बन्ध है, या वे उसके अनिवार्य परिणाम हैं। कोई अहिंसाको सिद्धान्त-रूपमें नहीं जानता; वह ईश्वरकी भाँति ही व्याख्यातीत है। किन्तु जैसे हमारे बीच और हमारे द्वारा कार्य करते हुए ईश्वरकी झलक हमें मिल जाती है, वैसे ही इसके आचरणमें हम इसकी झलक पा जाते हैं। यह संघका काम है कि इस कठिन कार्यमें वैज्ञानिकोंकी तरह वह अपनी बुद्धि लगाये। अपनी खोजके लिए संघको विविध संस्थाओंके रचनात्मक कार्योंमें काफी सामग्री मिल सकती है। जब हमें संघके उद्देश्यका ज्ञान हुआ तब पता लगा कि इस जबरदस्त जिम्मेदारीको उठानेवाले मिशनरियोंकी हममें बहुत कमी है। इस बातका पता चला, यह अच्छा है। गत पाँच वर्षोंके निरन्तर श्रमके बिना कदाचित् यह शोध सम्भव न होता। संघको इस आशाके साथ जीवित रखा गया है कि योग्य पुरुष या स्त्रियाँ इस उद्देश्यको, जिससे श्रेष्ठ उद्देश्य और कोई हो ही नहीं सकता, पूरा करनेके लिए आगे आयेंगी। अवकाश ग्रहण करनेवाले सदस्योंको भी जान लेना चाहिए कि उनके लिए भी कामकी शुरुआत तो अब हुई है। उन्हें शोध-सम्बन्धी इस प्रयोगशालाके अदृश्य और मौन कार्यकर्ता बन जाना चाहिए और संघके पास अपने परिणामोंकी सूचना भेजनी चाहिए। किशोरलालके साथ उनका जो वैधानिक सम्बन्ध था वह समाप्त हो गया है। अधिक पवित्र और अटूट सम्बन्ध तो अब शुरू हुआ है। नये अध्यक्षके रूपमें संघको पूर्व अध्यक्षकी भाँति ही एक सुपरीक्षित और धर्म बुद्धिवाला कार्यकर्ता मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नहीं हैं; वे लेखक भी नहीं हैं। किन्तु वे अधिक व्यवहारदक्ष हैं।

वे अ० भा० चरखा संघकी महाराष्ट्र शाखाके प्रधान व्यवस्थापक रहे हैं। उनके परिश्रमसे ही उसे आज इतनी सफलता मिली है।

पुनर्निर्माण एक सही कदम है। इसका उचित परिणाम अवश्य निकलेगा।

कलकत्ता, २६ फरवरी, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-३-१९४०

२९०. पत्र : अमृत कौरको

कलकत्ता
२६ फरवरी, १९४०

प्रिय पगली,

मैंने तुम्हें भुला नहीं दिया, जैसा तुम समझती हो। मैंने शान्तिनिकेतनमें एक पत्र लिखा था,[1] लेकिन प्यारेलाल उसे डाकमें डालना भूल गया, जिसकी याद मलिकन्दा पहुँचकर आई। फिर म[लिकन्दा]से एक पत्र लिखा।[2] मैं लिखना तो रोज चाहता रहा हूँ। पर यह असम्भव ही रहा। मीरा लिखती रही है। वह पहलेसे अच्छी है। पी० अब भी मनपर छाया हुआ है। मीराका पता है, मार्फत पण्डित जगतराम, हरियाणा। वह उन्हींकी सलाह पर अपनी गतिविधि तय करती रही है।

चार्ली पहलेसे अच्छा है। अब तक उससे मिल नहीं पाया हूँ। कल मिलूँगा। वा खाट पकड़े हुए है। बुखार और तेज खाँसी है। उसे यहीं छोड़के जाना पड़ेगा। सुशीलाको बता देना।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६३) से; सौजन्य : अमृत कौर। जी० एन० ७२७२ से भी

१. देखिए पृ० २५७-५८।
२. देखिए पृ० ३१६।

२९१. सन्देश : मणिपुरके लोगोंको[1]

[२७ फरवरी, १९४० से पूर्व][2]

अपने सन्देशमें गांधीजी ने बताया कि मणिपुरके लोगोंकी जो दशा है उसके प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है। उनकी रायमें अपनी शिकायतें दूर करवानेके लिए मणिपुरके लोगोंका आन्दोलन करना उचित है।

लेकिन साथ ही गांधीजी ने यह भी कहा कि वे इस बातको समझ लें कि सिवाय नैतिक समर्थन देनेके वे उनकी और कोई सहायता करनेमें असमर्थ हैं। उन्होंने उन्हें अपना आन्दोलन पूर्णतः शान्तिमय और अहिंसक ढंगसे चलानेकी सलाह दी।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-२-१९४०

२९२. पत्र : कनु गांधीको

२७ फरवरी, १९४०

चि० कनैयो,

अगर तेरा यह कहना हो कि दूसरोंको रोटी मिलनेपर ही तू सुबह रोटी खायेगा तो अपनी यह जिद छोड़ देना। तुझे उसकी जरूरत है, दूसरोंको नहीं। जिसे जिस चीजकी जरूरत हो, सो वह ले। यदि अब भी कोई शंका हो तो मुझसे पूछना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

१. यह ललित माधव शर्मा तथा मणिपुरके एक अन्य नेताकी मार्फत भेजा गया था।
२. रिपोर्ट दिनांक "गौहाटी, २७ फरवरी, १९४०" के अन्तर्गत छपी है।

२९३. विदाई-सन्देश : बंगालको[1]

कलकत्ता
२७ फरवरी, १९४०

मैं बंगालको हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ, क्योंकि मैं अपनेको जितना गुजराती मानता हूँ उतना ही बंगाली भी।

[अंग्रेजीसे]
अमृत बाजार पत्रिका, २८-२-१९४०

२९४. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[2]

कलकत्ता
२ मार्च, १९४०

लन्दनसे एक प्रश्न पूछा गया है कि क्या कांग्रेसने बातचीत और समझौतेका दरवाजा बन्द कर लिया है। प्रस्ताव[3] का अर्थ मैं तो यह लगाता हूँ कि कांग्रेसने दरवाजा बन्द नहीं किया है। बन्द किया है लॉर्ड जेटलैण्डने[4]। जहाँ तक कांग्रेसका सम्बन्ध है, लॉर्ड जेटलैण्डकी शर्तोंपर कोई बातचीत नहीं हो सकती। विदेशी भारतका शोषण करें और उसपर अपना प्रभुत्व जमाये रखें और भारत इस सबमें उसका असहाय साझीदार बना रहे, यह नही हो सकता। जब तक भारत ब्रिटेनकी तरह स्वतन्त्र देश नही बन जाता, कांग्रेस चैनकी साँस नही लेगी। और अगर भारत अहिंसाको अपनी स्थायी नीतिकी तरह अपना लेता है तो वह ब्रिटेनसे अधिक स्वतन्त्र होगा। समुद्रपर शासन करनेवाले इंग्लैंडपर आज अपनी स्वतन्त्रता खो बैठनेका खतरा आ गया है। मैंने एक ऐसा उपाय सुझाया है जो सर्वथा अचूक है। कांग्रेस भारतकी स्वतन्त्रताकी प्राप्तिमें साधन बन सकेगी या नहीं, यह तो अलग बात है। प्रस्तावमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि कांग्रेस

१. यह सन्देश गांधीजी ने पटनाके लिए प्रस्थान करते समय अखबारोंके रिपोर्टरोंको दिया था।
२. यह *हरिजन* में "व्हाट रिजोल्यूशन मीन्स" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।
३. देखिए परिशिष्ट ६।
४. देखिए "क्या यह लड़ाईकी घोषणा है?", पृ० २४३-४५, "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० २४९-५० और "एक और अंग्रेजका पत्र", १६-३-१९४०।

ऐसे किसी भी समझौतेमें शरीक नहीं होगी जिसमें भारतको स्वतन्त्रतासे कुछ कम दिया जायेगा। दूसरी बात जो कांग्रेसने स्पष्ट कर दी है वह यह है कि चूंकि यह मालूम हो गया है कि ब्रिटेनका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यको सुदृढ़ करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिए भारतके वे लोग जिनपर कांग्रेसका प्रभाव है, युद्धमें शरीक नहीं हो सकते। दूसरे शब्दोंमें, कांग्रेस ब्रिटेनको अपना नैतिक समर्थन नहीं दे सकती। तीसरी बात जो प्रस्तावमें स्पष्ट की गई है वह यह कि जब भी संघर्षका समय आयेगा, संघर्ष विशुद्ध रूपसे अहिंसक और इसलिए कठोर अनुशासनके अधीन होगा। तब यह तय करना कांग्रेसका नहीं ब्रिटेनका काम होगा कि क्या भारतको एक बार फिर उन लोगोंके लिए जेलखाना बना देना है जो अपने देशको निरन्तर ग्रेट ब्रिटेन या किसी अन्य शक्तिकी पराधीनतामें लाचारीसे देखते रहनेकी अपेक्षा कैदी बनना या उससे भी बड़े कष्ट उठाना कहीं ज्यादा पसन्द करते हैं।

कलकत्ता, २ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०, और अमृत बाजार पत्रिका, ३-३-१९४०

२९५. अंग्रेजोंके चले जाने पर[1]

> **आप सर्वदलीय सरकार बनानेकी पद्धति नहीं स्वीकार करेंगे, तो इसका मतलब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना होगा जिसमें अंग्रेजोंका संरक्षण हट जानेके बाद हिन्दू और मुसलमान आपसमें झगड़ पड़ेंगे। कांग्रेसकी सत्ता जो कायम रही वह अहिंसाके कारण नहीं रही, बल्कि आपके जबरदस्त व्यक्तिगत आकर्षण और अंग्रेजी संगीनोंकी मददसे रही। इन दोनोंके बिना आप दो-तीन महीने ही अहिंसाको आजमाके देख लीजिए, इस बातकी सच्चाई जाहिर हो जायेगी।**

यह मुझे एक आदरणीय मित्रने लिखा है। मुझे इस खयालका समर्थन करनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं है कि ब्रिटिश सेनाके सहारे ही कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंकी सत्ता कायम रही। मेरा 'आकर्षण' चुनाव जीतनेमें कुछ सहायक हुआ होगा, मगर मन्त्रिमण्डलोंकी सत्ता कायम रखनेमें वह बिलकुल बेकार साबित हुआ। उन्हें कायम रखनेवाली ताकत तो अंग्रेजी संगीनोंकी ही थी। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि अभी तक सर्वसाधारणने अहिंसाका पाठ हृदयंगम नहीं किया है।

मगर इसका इलाज सर्वदलीय सरकार नहीं है। ऐसी सरकार जनताकी सरकार नहीं होगी, जनताके लिए नहीं होगी। यह एक छोटेसे गुटकी सरकार होगी जो अपने स्वार्थके लिए शासन करेगा। उनका काम कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंसे ज्यादा सुचारु

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

ढंगसे नही चलेगा, और उसे भी अंग्रेजोंकी संगीनोंका सहारा लेना पड़ेगा। जब तक अंग्रेजी सत्ता नही हट जाती तब तक देशमें वीरोचित शान्ति नही होगी। दंगोंकी जोखिम तो उठानी ही पड़ेगी। अगर अहिंसाको राष्ट्रीय जीवनका कभी-न-कभी अंग बनाना है तो वह अहिंसा ऐसी जोखिम उठानेसे ही पैदा होगी। यह बात दिन-दिन बिलकुल साफ होती जा रही है कि जब तक अंग्रेजी सेना जनताकी स्वतन्त्र भावनाको कुचलती रहेगी, तब तक सच्ची एकता नही होगी। इसने बलपूर्वक जो शान्ति थोप रखी है वह तो श्मशानकी शान्ति है। मुझे लगता है कि अगर आजादीके लिए हमें दंगोंके रूपमें भी कीमत चुकानी पड़े तो दंगोंका होना भी अच्छी बात होगी, क्योंकि उनमें से मैं शान्ति-स्थापनाकी सम्भावनाकी कल्पना कर सकता हूँ। मगर आजकी इस झूठी सुरक्षामें से तो मैं सच्ची शान्तिकी कल्पना भी नही कर सकता। एक तरफ दंगे और दूसरी तरफ अंग्रेजोंकी संगीनें — इन दोनोसे बचनेका यही एक उपाय है कि अहिंसाको खुले दिलसे स्वीकार कर लिया जाये। इसी कामके लिए मेरा जीवन समर्पित है और मेरा शरीर जब पंचमहाभूतमें मिल जायेगा तब भी अहिंसाकी सम्भावना और क्षमतामें मेरा विश्वास कायम रहेगा।

वर्धा जाते हुए रेलगाड़ीमें, ३ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०

२९६. पत्र : निर्मला गांधीको

रेलगाड़ीमें
३ मार्च, १९४०

चि० नीमु,

तुम्हारे पत्र मिले। रा[मदास] के नाम लिखे पत्रसे और सब खबर मिलेगी। ट्रेन तो लगता है कि तुम्हारी खातिर ही रुक गई है! कानम जोर-जबरदस्तीसे वशमें नहीं आयेगा। प्रेमसे उससे जितना कुछ करा सकें उसीपर हम सन्तोष मानें। वह अवश्य प्रगति करेगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे : निर्मला गांधी पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२९७. पत्र : प्रभावतीको

[३ मार्च, १९४०][1]

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला था। तू मजेमें है, यह जानकर बहुत प्रसन्न हुआ। बा अच्छी है और मेरे साथ है। वह रामगढ़ नहीं आयेगी। हम लोग १० को वहाँ पहुँचेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३७) से

२९८. एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक

खादी प्रतिष्ठानवाले श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तने हालमें 'होम ऐण्ड विलेज डॉक्टर' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है (कपड़ेकी जिल्दवाली प्रतिका मूल्य ५ रुपये और चमड़ेकी जिल्दवालीका ६ रुपये)। इसमें १३८४ पृष्ठ हैं और मानव शरीर, शरीर-तंत्रोंकी देखभाल, पोषण, स्वास्थ्य-रक्षा और सफाई, रोगीकी सेवा, दुर्घटनाओं, घरेलू इलाज, सस्ते उपचार, अलग-अलग अंगोंकी बीमारियों, गर्भिणी और बच्चेकी देखभाल, छूतके और शरीर-रचना-सम्बन्धी रोगों और खास तौरपर स्त्री-रोगो पर १८ परिच्छेद हैं। खास-खास विषयोंपर विस्तारसे लिखा गया है और अन्तमें ३२ पृष्ठोंकी लम्बी सांकेतिका दी गई है। २१९ शिक्षाप्रद चित्र हैं। जब मैं हिन्दुस्तानमें दूसरी बार जेल गया तब मैंने डाक्टर मित्रोंको लिखा और उनसे कहा था कि वे 'मूर्स फैमिली मेडिसिन' जैसी कोई बढ़िया पुस्तक तैयार करके दें। मगर मैंने उससे भी अच्छी और अधिक स्वदेशी चीज चाही थी — इस अर्थमें कि गाँवोंकी सेवा करनेवाला मामूली आदमी भी उससे आसानीसे काम ले सके। एक किताबका वादा भी किया गया था, मगर वह पूरा न हो सका। सतीशबाबूने लाज रख ली और अब आश्चर्यजनक परिश्रम करके ऐसी पुस्तक तैयार की है जिससे मेरी जरूरत पूरी हो जानी चाहिए। जैसा उन्होंने प्रस्तावनामें लिखा है उन्होंने कह दिया था कि जब तक मैं इसे सारी न पढ़ जाऊँ और यह सनद न दे दूँ कि पुस्तक सन्तोषप्रद है तब तक वे इसे छपायेंगे

१. जी० एन० रजिस्टर से

नही। पहले जैसे-जैसे परिच्छेद तैयार होते जाते थे वे मेरे पास भेजते रहते थे। फिर जब सारी पुस्तक तैयार हो गई तब उन्होंने उसकी जिल्द बँधवाकर भेज दी। मैं इसे साल-भर या इससे भी अधिक समय तक अपने पास रखे रहा, मगर पढ़नेका समय नहीं मिला। निराश होकर मैंने सतीशबाबूको लिखा कि यह जैसी है उसी रूपमें इसे प्रकाशित करवा दें। वे इसके अप्रकाशित रहने पर भी सन्तोष करने को तैयार थे, मगर मैं यह कल्पना भी नही कर सकता कि जो काम इतने प्रेमपूर्ण परिश्रम और इतनी सावधानीसे किया गया हो उसे बेकार जाने दिया जाये। मैं स्वीकार करता हूँ कि पुस्तकका इतना भारी-भरकम हो जाना मुझे बहुत पसन्द नही आया। मैं इसे पढकर सुधार सका होता, तो शायद यह कुछ छोटी हो जाती। मगर सतीशबाबूने अगर गलती भी की है तो अच्छाईके लिए ही की है। मुझे आशा है कि अंग्रेजी जाननेवाला हर ग्रामसेवक इसकी एक प्रति जरूर रखेगा। यह खादी-प्रतिष्ठान, १५ कॉलेज स्क्वायर, कलकत्तासे मिल सकती है।

सेवाग्राम, ४ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-३-१९४०

२९९. पत्र : बालकृष्ण भावेको

रात १२-३० बजेके बाद
५ मार्च, १९४०

चि० बालकृष्ण,

विनोबाको पत्र लिखनेके लिए उठा हूँ, इसलिए तुम्हें भी लिखे देता हूँ। विनोबाको तो गांधी सेवा-संघके बारेमें लिखा है। तुम्हारे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है:

स्रावके बारेमें कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। यदि नसें कमजोर पड़ गई हों, तो मनमें विकार उत्पन्न हुए बिना भी स्राव हो जाता है। वैसे यह स्थिति अत्यन्त कमजोरीकी है। यदि मनमें विकार उत्पन्न होनेके बाद स्राव हो तो विकारपर विजय प्राप्त करनी चाहिए। दोनों विकल्पोंमें, सहन करनेके सिवा हमारे लिए और कोई चारा नहीं है। स्राव जितने कम हों, उतना अच्छा, यह तो स्पष्ट ही है। कितनोंसे हर्ज नही होता, इसका कोई जवाब नही है। कुछ लोग एक ही स्रावसे बिलकुल पस्त हो जाते है। कुछको हर हफ्ते होता है, लेकिन ऊपरसे देखनेमें कोई क्षति नही दिखाई देती। इसलिए मेरी सलाह यह है कि चाहे जितने स्राव हों, उनकी चिन्ता न करके धैर्य तथा विश्वासपूर्वक

उन्हें रोकनेके सतत उपाय किये जायें। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन[1]" यह सिद्धान्त यहाँ भी सर्वथा लागू होता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

हिमालय जाना तुम्हारे लिए कभी भी कर्तव्य हो जायेगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

तुम्हें फिलहाल तो जेल नहीं जाना है, लेकिन अभी मैंने इस सम्बन्धमें पूरी तरह सोच-विचार नहीं किया है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८०५) से, सौजन्य : बालकृष्ण भावे

३००. प्रश्नोत्तर

क्या यह स्वैच्छिक है?

प्र० : स्थानीय राजकर्मचारी युद्ध-कोषके लिए लोगोंसे पैसा उगाह रहे हैं। लेकिन जिस ढंगसे यह काम हो रहा है वह भले ही राजीखुशीसे दिया हुआ दान समझा जाये, मगर है असलमें यह दबाव ही। इस सिलसिलेमें एक नाटकका इन्तजाम किया गया, मगर सरकारी अफसरोंकी हिदायतके अनुसार गाँवके शिक्षक (जिनमें से कुछको १२ या १५ रुपया मासिक मिलता है), गाँवका मुंसिफ, बाजारवाले, सभी को टिकट खरीदने पड़े। एक टिकटका मूल्य १ रुपयेसे लेकर १५ रुपये तक था। एक टुटपुंजिये दुकानदारको, जिसकी आमदनी लगभग १५ रुपये मात्र है, ५ रुपयेका टिकट खरीदना पड़ा, हालाँकि वह नाटक देखने भी नहीं गया। उसने मुझसे कहा कि स्थानीय उप-जिलाधीश, तहसीलदार और पुलिसका सर्किल इन्सपेक्टर सब-के-सब खुद पैसा वसूल करने चले आये, इसलिए मुझे देना पड़ा। मुझे बताया गया है कि इस तरह मेरे गाँवसे एक रातमें ३,५०० रुपया इकट्ठा किया गया। आप सलाह देंगे कि क्या करना चाहिए?

उ० : आपने जो कहा वह अगर सही हो तो यह खुल्लमखुल्ला दबाव है। लोगोंने जो-कुछ किया, उसमें स्वेच्छाका नाम भी नहीं है। मैं तो यही आशा रख सकता हूँ कि ऐसी मनमानी कार्रवाइयोंका ऊँचे अफसरोंको कुछ भी पता न होगा। आपका कर्तव्य स्पष्ट है। आपको लोगोंसे कहना चाहिए कि वे दबावमें न आयें। उन्हें आजादी है कि इच्छा हो तो टिकट खरीदें और न इच्छा हो

1. भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक ४७

तो इनकार कर दें। इसमें जो जोखिम है उसे आपको और उन्हें उठाना चाहिए, आपके लिए लोगोंको समझानेमें और लोगोंके लिए रुपया देनेसे इनकार करनेमें।

एक नौजवानकी दुविधा

प्र० : मैं २२ बरसका नौजवान हूँ। अगर खुद मेरी इच्छा शादी न करनेकी हो तो पिताकी इच्छा पूरी करनेसे मेरा इनकार कर देना उचित होगा या नहीं?

उ० : शास्त्र और बुद्धि दोनोंके अनुसार, बालक जब समझदार हो जाते हैं —और इसके लिए शास्त्रोंने १६ वर्षकी आयु बताई है—तो माता-पिताको उन्हें मित्र समझना चाहिए, यानी उनपर अपनी इच्छा नहीं लादनी चाहिए।[1] फिर भी उनका धर्म तो है कि माता-पिताकी सलाह लें और जहाँ बने उनकी इच्छाओंका लिहाज रखें। आप सयाने हैं और शादी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामला है। इसलिए कन्या आपको पसन्द न हो या और कोई उचित कारण हो तो आपको पिताकी बात माननेसे सादर इनकार कर देना चाहिए।

एक घरेलू कठिनाई

प्र० : मैं २३ बरसका नवयुवक हूँ। पिछले दो सालसे शुद्ध खादी ही इस्तेमाल कर रहा हूँ। पिछले २८ दिनसे फुरसतके समय नियमसे कातता हूँ। मगर मेरी पत्नी खादी पहननेसे इनकार करती है। कहती है, मोटी बहुत है। क्या मैं उसे खादी इस्तेमाल करनेके लिए मजबूर करूँ? मैं यह भी बता दूँ कि हमारे स्वभाव नहीं मिलते।

उ० : भारतीय जीवनमें सब जगह यही रोना है। मैंने अक्सर कहा है कि पति ज्यादा बलवान और शिक्षित होता है, इसलिए उसे अपनी पत्नीका गुरु बन जाना चाहिए और उसमें कोई दोष हो तो सहन करना चाहिए। आपकी बात यह है कि आपको पत्नीका बेमेल स्वभाव सहन ही करना है और अपनी पत्नीको प्रेमसे जीतना है, दबाव डालकर हरगिज नहीं। इससे यह नतीजा निकला कि आप अपनी पत्नीको खादी इस्तेमाल करनेके लिए भी मजबूर नहीं कर सकते। पर आपको विश्वास रखना चाहिए कि आपका प्रेम और आचरण उससे सही बात करवा लेगा। याद रखिए, जैसे आप उसकी सम्पत्ति नहीं हैं वैसे ही आपकी पत्नी आपकी सम्पत्ति नहीं है। वह आपकी अर्द्धांगिनी है। आप उसके साथ यही समझकर व्यवहार कीजिए। आपको इस प्रयोगपर अफसोस नहीं होगा।

एक और घरेलू कठिनाई

प्र० : मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी एक भली स्त्री है। हमारे बच्चे भी हैं। अभी तक हम लोग शान्तिपूर्वक साथ रहे हैं। दुर्भाग्यवश, उसकी जान-पहचान

१. लाडयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रसमाचरेत् ॥

एक ऐसी औरतसे हुई जिसे उसने अपना गुरु बना लिया है। उसने उस स्त्रीसे गुरुमन्त्र लिया है और अब मेरी पत्नीका जीवन मेरे प्रवेशसे बिलकुल परे हो गया है। इसकी वजहसे हमारे बीच उदासीनताका भाव पैदा हो गया है। मेरी समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ। तुलसीदास द्वारा चित्रित राम मेरे आदर्श नायक हैं। क्या मुझे वही नहीं करना चाहिए जो रामने किया था, यानी क्या मैं अपनी पत्नीसे सब तरहका सम्बन्ध तोड़ न लूँ?

उ० : तुलसीदासने हमें सिखाया है कि हमें समर्थ लोगोंका अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। महापुरुष या समर्थ लोग जो बिना किसी हानिके कर सकते हैं वह हम नही कर सकते। सीताके प्रति रामके प्रेमका खयाल कीजिए। तुलसीदास हमें बताते हैं कि स्वर्णमृगके दर्शनके पहले ही वास्तविक सीता, रामके आदेश से, लुप्त हो गई थी और उनकी छाया मात्र रह गई थी। यह बात लक्ष्मण तकसे छिपाई गई। कविने आगे और बताया है कि रामके सामने दैवी हेतु था। स्वर्णमृगके प्रगट होनेके बाद रामका वास्ता सीताकी इसी छायासे पड़ा था। फिर भी सीताने कभी रामके किसी कार्यका विरोध नही किया। संसारी पुरुषके विषयमें इस प्रकारकी सारी बातोंका अभाव होता है, जैसाकि आपके मामलेमें है। इसलिए मेरी सलाह है कि अपनी पत्नीके साथ निवाहिए और तब तक हस्तक्षेप न कीजिए जब तक कि आपके पास उसके आचरणके विरुद्ध शिकायत करने की कोई वजह न हो। अगर आपने किसीको अपना गुरु बनाया होता और उससे गुरुमन्त्र लिया होता और अगर आप यह भेद अपनी पत्नीपर प्रगट न करते, तो मुझे विश्वास है कि आप भी भेद बतानेसे इनकार करनेपर अपनी पत्नी द्वारा हस्तक्षेप किया जाना पसन्द न करते। मैं मानता हूँ कि पति-पत्नीके बीच कोई भेद या गोपनीयता नही होनी चाहिए। विवाह-बन्धनके प्रति मेरे मनमें बड़ी ऊँची धारणा है। मैं मानता हूँ कि पति-पत्नी एक-दूसरेमें अपनेको विलीन कर देते हैं। वे दो शरीरोंमें एक प्राण और एक प्राणमें दो शरीर हैं। पर ये बातें यान्त्रिक रूपमें नही लागू की जा सकती। इसलिए जब आप एक उदार विचारके पति हैं तो आपको अपनी पत्नीकी भेद बतानेमें हिचकिचाहटकी कद्र करनेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए।

मुसलमान जुलाहे और मिलका सूत

प्र० : सिर्फ प्रमाणित खादीके इस्तेमालपर जोर देकर आपने एक तरफ मुसलमान जुलाहों और दूसरी तरफ ग्राहकोंपर बड़ी सख्त चोट की है, क्योंकि मुसलमान जुलाहे ज्यादातर मिलका सूत ही काममें ला रहे हैं और खरीदारोंको आपकी प्रेरणा पर महँगा प्रमाणित खद्दर खरीदना पड़ता है। मैं जुलाहा-समाजके उत्थानका काम करनेवाला एक मुसलमान हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि हाथसे बनी हुई मिलके सूतकी खादीको मंजूरी देकर इस दोहरी मुसीबतको दूर कीजिए।

उ० : खादीमें हिन्दू-मुसलमानका सवाल नहीं है। चरखा संघके रजिस्टरोंमें दर्ज हजारों कत्तिनें और सैकड़ों बुनकर मुसलमान हैं। खादीने अभी तक मिलका सूत बुननेवालोंपर कोई खास असर नहीं डाला है। खादीसे तो यह हुआ है कि जो हिन्दू और मुसलमान बुनकर मिलकी स्पर्धाके कारण बेकार हो गये थे उन्हें रोजगार मिल गया है। जो जुलाहे हाथ-कता सूत बुनना शुरू नहीं कर रहे हैं वे अपने हाथों अपना गला काट रहे हैं, क्योंकि मिलोंके प्रचारका स्वाभाविक नतीजा यह होगा कि जैसे हाथसे कातनेवाले अपने धन्धेमें जमे नहीं रह सके वैसे ही बुनकर भी अपने पेशेसे उखड़ जायेंगे। हाथके करघेपर काम करनेवाले जो बुनकर अब तक बचे हुए हैं, वे ऐसे बुनकर हैं जो खास नमूने बुनते हैं। अगर खादीका प्रचार सब जगह हो गया तो जो मुसलमान और दूसरे बुनकर आज मिलका सूत बुनते हैं वे अपने-आप हाथका सूत बुनने लग जायेंगे। इस तरह खादीसे कभी किसी भी बुनकरको नुकसान पहुँचनेकी कोई बात ही नहीं है। सच तो यह है कि बुनकरोंका एकमात्र रक्षक ही खद्दर है।

टेढ़ा सवाल

प्र० : मैं एक हिन्दू विद्यार्थी हूँ। एक मुसलमान सज्जनसे मेरी बड़ी दोस्ती है, पर मूर्ति-पूजाके सवालपर हममें अनबन हो गई है। मुझे मूर्ति-पूजासे सन्तोष मिलता है, मगर मैं अपने मुस्लिम मित्रको ऐसा जवाब नहीं दे सकता जिसे कि यकीन करानेवाला कहा जा सके। क्या आप 'हरिजन' में मूर्ति-पूजाके बारेमें कुछ लिखेंगे?

उ० : मेरी सहानुभूति आप और आपके मुसलमान मित्र दोनोंके साथ है। मेरी रायमें आप इस विषयपर 'यंग इंडिया' में प्रकाशित मेरे लेख पढ़ जाइए और आपको कुछ भी सन्तोष मिले तो आपके मुसलमान दोस्त भी उन्हें पढ़ ले। अगर आपके मित्रको आपसे सच्चा प्रेम है तो वे मूर्ति-पूजाके प्रति अपनी घृणा छोड़ देंगे। उस मित्रताका बहुत मूल्य नहीं होता जो एक-सी राय और एक-से आचरणके लिए जबरदस्ती करती है। सिवाय उन बातोंके जिनमें कि मौलिक मतभेद हो, मित्रोंको एक-दूसरेके भिन्न विचार और तरीके सहन करने पड़ते हैं। हो सकता है कि आपके मित्रका यह विचार हो गया हो कि आप मूर्तिको ही ईश्वर समझते हैं, इसलिए आपके साथ सम्बन्ध रखनेमें पाप है। मूर्तिको ही ईश्वर समझना बुरा है; मूर्ति-पूजा बुरी नहीं है। मूर्तिको ही ईश्वर समझनेवाला मूर्तिका जड़पूजक होता है। लेकिन मूर्तिपूजक पत्थरमें भी ईश्वरको देखता है और इसलिए ईश्वरके साथ एकात्मता स्थापित करनेके लिए वह मूर्तिकी मदद लेता है। हिन्दुओंके बच्चे-बच्चेको मालूम है कि बनारसके प्रसिद्ध मन्दिरका पत्थर काशीविश्वनाथ नहीं है, मगर उसका विश्वास यह अवश्य है कि उस पत्थरमें खास तौरपर भगवान विश्वनाथ विराजमान हैं। कल्पनाकी इस उड़ानमें कोई हानि नहीं, लाभ ही है। पुस्तकोंकी दुकानों पर 'गीता' की जितनी प्रतियाँ रखी रहती हैं, उनमें मुझे पवित्रताका वह भाव नहीं दीखता जो मैं अपनी 'गीता' की पुस्तकमें देखता हूँ। तर्कसे तो यह मालूम होता है कि मेरी 'गीता' में उतनी ही पवित्रता

है जितनी और किसीमे। असलमें पवित्रता तो मेरी कल्पनाकी वस्तु है। लेकिन ऐसी कल्पनाके विलक्षण ठोस परिणाम निकलते है। उससे मनुष्यका जीवन पलट जाता है। मेरी रायमें, हम माने या न मानें, हम सब मूर्तिपूजक है। अवश्य ही पुस्तक, इमारत, चित्र और प्रतिमा सभी मूर्तियाँ है, जिनमें ईश्वरका निवास है, मगर वे ईश्वर नही है। जो यह कहता है कि वे ईश्वर है वह भूल करता है।

पढ़े-लिखे बेकार

प्र० : पढ़े-लिखोंमें बेकारीकी समस्या बुरी तरह बढ़ रही है। आप तो उच्च शिक्षाको बुरा बताते हैं, मगर हममें से जिन्होंने विश्वविद्यालय स्तरकी शिक्षा पाई है, वे महसूस करते हैं कि उससे हमारा मानसिक विकास होता है। आप किसीको विद्या प्राप्त करनेमें क्यों हतोत्साह करें? क्या बेरोजगार स्नातकोंके लिए यह उपाय बेहतर न होगा कि वे सर्वसाधारणको शिक्षा देनेमें लग जायें और उसके बदलेमें गाँववाले उन्हें खानेको दें? और क्या प्रान्तीय सरकारें भी उन्हें कुछ रुपया और कपड़ा देकर मदद नहीं दे सकतीं?

उ० : मैं उच्च शिक्षाके खिलाफ नही हूँ, मगर मैं इस बातके विरुद्ध हूँ कि दो-चार लाख लड़के-लड़कियोको गरीबोंसे टैक्स वसूल करके उच्च शिक्षा दी जाये। साथ ही, जिस ढंगकी उच्च शिक्षा दी जाती है उसका मैं विरोधी हूँ। इसमें तो पहाड खोदकर चूहा निकाला जाता है। उच्च शिक्षाकी सारी पद्धतिमें, या यूँ कहिए कि समूची शिक्षामें ही नीचेसे लेकर ऊपर तक परिवर्तन करनेकी जरूरत है। मगर आपकी कठिनाई तो बेकारीके बारेमें है। इसमें आपके साथ मेरी सहानुभूति और सहयोग है। इस सिद्धान्तके अनुसार कि हर मजदूर अपनी मजदूरीका हकदार है, जो स्नातक किसी गाँवमें जाकर उसकी सेवा करता है उसका हक है कि गाँववालोंसे उसे रोटी, कपड़ा और घर मिले। और वे देते भी हैं। मगर जब वह वहाँ साहब बनकर रहता है और गाँववालोंके बूतेसे दस-गुना खर्च करता है तब वे नही दे सकते। उसका जीवन, जहाँ तक हो सके, देहातियों के जीवनसे मिलता-जुलता होना चाहिए और उसका उद्देश्य उनकी समझमें आना चाहिए।

सेवाग्राम, ५ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०

३०१. सेगाँव सेवाग्राम हो गया[1]

वर्धाके पास सेगाँव नामक एक गाँव है, जहाँ मैं ग्रामीण बननेकी कोशिश कर रहा हूँ। वर्धासे १३२ मील पश्चिम मुख्य लाइनपर एक स्टेशन शेगाँव भी है। फलस्वरूप सेगाँव, वर्धाको भेजे गये बहुत-से पत्र और तार शेगांव स्टेशन पहुँच जाते थे। इस गड़बड़को दूर करनेके विचारसे गाँववालोंकी ओरसे सेगाँव नाम बदलकर सेवाग्राम करनेके लिए अधिकारियोंको आवेदन-पत्र भेजा गया। इस नामका अर्थ भी है — अर्थात् सेवाके लिए समर्पित गाँव। जिन ग्रामवासियोंने आवेदन-पत्रपर हस्ताक्षर किये उन्होंने इसके महत्त्वको पूरी तरहसे जानते हुए वैसा किया। हमें आशा करनी चाहिए कि उन्होंने अपने गाँवका जो नाम चुना है, अपने जीवनको वे उसके अर्थानुरूप ढालेंगे। पत्र-व्यवहार करनेवाले कृपया इस परिवर्तनका ध्यान रखें।

सेवाग्राम, ५ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०

३०२. लड़ाई कब?

सब लोग मुझसे एक ही सवाल कर रहे हैं — यह नहीं कि मैं देशको सविनय अवज्ञा करनेके लिए आमन्त्रित करूँगा या नहीं, बल्कि यह कि आह्वान कब करूँगा। इन जिज्ञासुओंमें कुछ तो निहायत संजीदा किस्मके साथी कार्यकर्ता हैं। उनके खयालमें पटना-प्रस्ताव[2] का यही अर्थ है कि लड़ाई तो होनी ही है; सवाल सिर्फ समयका है। इससे साबित होता है कि देश या देशका वह हिस्सा, जिसने अब तक आजादीकी लड़ाईमें भाग लिया है, इन्तजार और अनिश्चयसे उकता गया है। यह सोचकर मन उत्साहसे भर जाता है कि आजादी हासिल करनेकी खातिर चाहे जितना त्याग करनेको तैयार इतने अधिक लोग देशमें हैं।

इसलिए जहाँ मैं सवाल करनेवालोंके जोशकी सराहना करता हूँ, वहाँ मुझे यह चेतावनी भी देनी पड़ेगी कि वे अधीर न हों। प्रस्तावमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसके आधारपर यह माना जा सके कि सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी घोषणा करनेके लिए अनुकूल वातावरण विद्यमान है। जब खुद कांग्रेसके भीतर ही इतनी

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए परिशिष्ट ६।

अनुशासन-हीनता और हिंसा भरी है, ऐसे वक्तमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन का ऐलान करवा आत्महत्या करना होगा। कांग्रेसी मेरे शब्दोको पूरा महत्त्व नही देंगे तो भारी गलती करेंगे। जब तक मुझे यह भरोसा नही हो जायेगा कि कांग्रेसके सिपाहियोंमें काफी अनुशासन और अहिंसा आ गई है, तब तक मैं न सविनय अवज्ञा शुरू कर सकता हूँ और न करूँगा। रचनात्मक कार्यक्रम यानी कताई और खादीकी बिक्रीके बारेमें जो उदासीनता दिखाई दे रही है, वह उसमें हमारे अविश्वासकी साफ निशानी है। ऐसे सिपाहियोके भरोसे लडना हार ही मोल लेना है। ऐसे लोगोंको यह जान लेना चाहिए कि मैं उनके कामका आदमी नही हूँ। जिस अनुशासन और अहिंसाकी जरूरत है उतना अनुशासन और अहिंसा प्राप्त होनेकी आशा यदि मुझे न हो तो मुझे नेतृत्वसे हट जाने देना बेहतर होगा।

यह साफ समझ लेना चाहिए कि मुझे कोच-कोचकर मुझसे जल्दबाजीमें लडाई नही छिड़वाई जा सकती। जो लोग यह सोचते है कि तथाकथित वाम-पंथियोकी उकसाहटमें आकर मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी घोषणा कर सकता हूँ, वे भारी भूल करते हैं। मेरी नजरमें वामपंथी और दक्षिणपंथीका कोई भेद नही है। दोनो मेरे साथी और मित्र है। वामपंथियो और दक्षिणपंथियोके बीच निश्चित अन्तर कर सकना किसीके लिए भी दुःसाहस होगा। कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी सभीको समझ लेना चाहिए कि सारा देश मेरे खिलाफ हो जाये तो भी समय आनेपर मैं अकेला ही लड लूँगा। औरोंके पास अहिंसाके सिवाय कोई दूसरे हथियार भले ही हो, पर मेरे पास तो यह एक ही शस्त्र है। राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसात्मक युद्ध-कौशलके जनकके नाते, जब मुझे भीतरसे प्रेरणा अनुभव होगी तो लड़ना मेरे लिए अनिवार्य हो जायेगा।

उस कौशलकी यह अपनी विशेषता है कि मुझे पहलेसे यह कभी मालूम नही होता कि किस समय क्या करना है। अन्दरसे पुकार किसी भी वक्त आ सकती है। इसे यो कहनेकी जरूरत नही कि पुकार ईश्वरकी तरफसे आई है। 'भीतरी प्रेरणा' शब्द आम तौरपर प्रचलित है और आसानीसे समझा जा सकता है। सभी लोग कभी-कभी भीतरी प्रेरणासे काम करते हैं। ऐसा आचरण हमेशा सही हो, यह जरूरी नही। मगर कुछ आचरण ऐसे होते है जिनके लिए और कोई कारण दिया ही नही जा सकता।

अक्सर मुझे खयाल आता है कि अगर कांग्रेस मुझे भुला दे तो अच्छा हो। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि जीवनके बारेमें मेरे जो विशिष्ट विचार है उनके कारण मैं कांग्रेसके अनुपयुक्त हूँ। मुझमें जो भी विशेषताएँ हो और कांग्रेस और देशके लिए उनका कुछ उपयोग हो सकता हो तो उनसे शायद उस हालतमें अधिक लाभ उठाया जा सकता है जब मैं कांग्रेससे सम्बन्ध बिलकुल तोड़ लूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सम्बन्ध-विच्छेद यान्त्रिक रूपसे या जबरन नही हो सकता। ऐसा होना ही है तो समयपर अपने-आप होगा। बात इतनी ही है कि कांग्रेसियोको मेरी सीमाएँ समझ लेनी चाहिए और मेरी दृढ़ता या अटलताको देखकर उन्हे आश्चर्य या दुःख नही होना चाहिए। उन्हे मेरे इस

कथनपर विश्वास करना चाहिए कि सामूहिक सविनय अवज्ञा छेड़नेके लिए जो शर्तें तय कर दी गई हैं उनके पूरा हुए बिना कोई कार्रवाई करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।

सेवाग्राम, ५ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-३-१९४०

३०३. पुर्जा: एम० वी० नागलिंगम[1]को

सेवाग्राम
५ मार्च, १९४०[2]

यह शरीर पानीपर लिखे गये अक्षरकी तरह क्षणभंगुर है।

मो० क० गांधी

तमिलकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७४) से

३०४. पत्र: मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेवाग्राम
[५ मार्च, १९४० या उसके पश्चात्][3]

चि० मणिलाल और सुशीला,

मणिलालका पत्र मिला। श्रीमती फैंगसनके नाम लिखा पत्र इसके साथ है। उनसे अच्छी मुलाकात हुई। वे बहुत भली महिला हैं। वेस्ट[4] का काम कैसा चल रहा है? सोराबजी कैसे हैं? वहाँके पूरे समाचार लिखना। यहाँ सब ठीक चल रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८७३) से

१. एम० वी० नागलिंगम उन दिनों आश्रममें सफाईका काम करते थे।

२. तिथि-पंक्ति देवनागरी लिपि में है।

३. साधन-सूत्रमें सेगाँवको काटकर सेवाग्राम किया गया है। इस परिवर्तनकी सूचना ५ मार्च, १९४० को दी गई थी; देखिए "सेगाँव सेवाग्राम हो गया", पृ० ३४४।

४. इंडियन ओपिनियन के मुद्रक तथा दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके निकट सहयोगी ए० एच० वेस्ट

३०५. तार : गुजरात विद्यापीठको

[६ मार्च, १९४० या उससे पूर्व][1]

प्रसन्नताका विषय है कि डॉ० मॉन्तेसोरी अहमदावाद आ रही हैं। आशा है, माननीया अतिथिकी उपस्थितिसे विद्यापीठ लाभान्वित होगा।

वापू

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ७-३-१९४०

३०६. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
६ मार्च, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। भगवान तुझे यह नया भार[2] वहन करनेकी शक्ति दे। मुझे विश्वास है, तू इस काममें चार चाँद लगायेगी।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३८) से

३०७. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

सेवाग्राम, वर्धा
७ मार्च, १९४०

प्रिय चार्ली,

लिलियन[3] का पत्र आया है। वह साथमें भेज रहा हूँ। मैंने उसे सान्त्वनापूर्ण उत्तर लिख दिया है। तुम्हारा पत्र मिल गया है। वहनोंकी चिन्ता बिलकुल

१. रिपोर्ट दिनांक "अहमदाबाद, ६ मार्च, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है।

२. रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशनके लिए स्वयंसेविकाओंके संगठनका; देखिए पृ० १९०, पाद-टिप्पणी १।

३. एन्ड्रयूजकी बहन

न करो। कैलेनबैंकके पैसेके बारेमें तुम्हें बता चुका हूँ। लेकिन तुम्हारे पास सहायताके लिए चाहे जैसी भी प्रार्थनाएँ आयें, उसे किसी और मदमें खर्च मत करना।

आशा है, तुम्हारी तबीयतमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा होगा।

हम सबकी ओरसे स्नेह।

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९३) से

३०८. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
७ मार्च, १९४०

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला। माउंट आबूपर क्या तू बिलकुल अकेली ही चढ़ी थी? अगर बादमें कोई तकलीफ न हुई हो तो मानना पड़ेगा तेरी तबीयत बहुत सुधर गई है।

क्या नानाभाई[1] बिलकुल अच्छे हो गये?

बा अच्छी हो गई है। मैं यहाँसे बहुत करके १३ को रामगढ़के लिए रवाना होऊँगा। बा साथ नहीं जायेगी। दोनों शालाएँ[2] ठीक चल रही हैं, यह खुशीकी बात है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२४) से। सी० डब्ल्यू० ४६१६ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१. नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट

२. भावनगरका 'होम स्कूल' जिससे नानाभाई सम्बद्ध थे और आंबलाका स्कूल जहाँ विजया-बहनके पति काम करते थे

३०९. निर्देश: आश्रमवासियोंके लिए

सेवाग्राम
७ मार्च, १९४०

मैं सूनता हूं कि कई सज्जन जब खाना छोड़ते हैं तो उसकी खबर रसोडेमें पहोचाते नही है। इसका नतीजा यह आता है खाना पडा रहता है। इसलिए प्रार्थना है कि जो पहलेसे जानते है कि अमूक समयका खाना छोडना है वे वखतसर रसोडेमें खबर भेज दें।

यह नोंध और ऐसी दूसरी जो नित्यकी है उसे दिवालपर रखनी चाहिए।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से

३१०. पत्र: एफ० मेरी बारको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मार्च, १९४०

प्रिय मेरी,

. . . बापूका कहना है कि पढ़ते समय तकलीपर सूत कातना तुम छोड़ दो। यह तुम्हारी आंखोंके लिए नुकसानदेह है। और तुम्हें अपनी गति बढ़ानेपर अवश्य ध्यान देना चाहिए। अभी वह बहुत कम है। . . .

तुम्हारी,
अमृत

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०७८) से। सी० डब्ल्यू० ३४०८ मे भी; सौजन्य: अमृत कौर

३११. पत्र : विनायकप्रसाद ग० पंड्याको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मार्च, १९४०

भाई विनायकप्रसाद,

तुम्हारे पत्र तक आज ही पहुँच पाया हूँ। विरोधको सहन करके यदि तुम एकनिष्ठाके साथ अपना काम करते चले जाओगे, तो किसी दिन चरखेका प्रयोग अवश्य व्यापक हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री विनायकप्रसाद ग० पंड्या
बाजवाड़ा, खत्री पोल
बड़ौदा

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३६८) से

३१२. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मार्च, १९४०

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। मणिलालका उलाहना सही है। वहाँके संघर्षके बारेमें तो मैं जानता ही था, लेकिन मुझसे जो हो सकता था, वह मैंने किया। यहाँ बैठे मैं दूसरी कोई सलाह नही दे सकता। जवाहरलाल क्या कर लेता? उसपर मैं इस प्रकारका बोझ नही डाल सकता। मैंने जो किया या जो सलाह दी उसके बारेमें मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। अन्तिम निर्णय तो वहाँ तुम्हें ही लेना होता है न?

मेढ लिखता है कि वह यहाँ आकर मेरी सलाह लेना चाहता है। ठीक है, आये और ले। मैं समझता हूँ कि उसे आना तो है ही।

बा अच्छी है। जरा-सी भूल करते ही बीमार पड़ जाती है। कुँवरजी भी अच्छे हैं। वालजीभाई आज बम्बई और अहमदाबाद जा रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०९) से

३१३. पत्र : सीता गांधीको

८ मार्च, १९४०

चि० सीता[1],

तेरे पत्रका उत्तर आज ही दे पा रहा हूँ। तुझे स्याहीसे लिखना चाहिए। अंग्रेजी अक्षर सुन्दर हैं, लेकिन वर्तनी बहुत खराब मानी जायेगी। 'कॉपीजीशन' नहीं बल्कि 'कॉम्पोजीशन,' 'ज्योराफी' नहीं बल्कि 'ज्योग्राफी', है।[2] गुजरातीके अक्षर तो समझमें ही नहीं आते। अब देखूं, प्रत्युत्तर कैसा आता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१०) से

३१४. पत्र : रसिकलालको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मार्च, १९४०

भाई रसिकलाल,

मैं ७ फरवरी, १९४० का आप का पत्र आज ही पढ पाया हूँ। आपका उत्सव तो समाप्त हो गया। आपका काम मैं ध्यानपूर्वक देख रहा हूँ। मैं अपने उसी मतपर दृढ हूँ। जो लोग अटल रहेंगे वे अपना आत्म-सम्मान ही नहीं बनाये रखेंगे, बल्कि वे लीम्बडीकी प्रजाकी नाक भी ऊँची रखेंगे।[3] जो सच्चे, भले लोग बिना किसी लालचके बाहर रह रहे हैं उनकी आपने जो गिनती की है वह संख्या मेरी दृष्टिमें खासी है। परन्तु बल भारी संख्याका नहीं, गुणका होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. मणिलाल गांधीकी पुत्री
२. मूलमें ये शब्द रोमन लिपिमें हैं।
३. देखिए खण्ड ७०, पृ० १६१-६२।

३१५. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
१० मार्च, १९४०

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी श्रद्धा फले-फूले। सरदारको लिखते रहा करो। नानालालको तो सब समाचार देते ही होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३१६. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

१० मार्च, १९४०

क्या २ किया वह बताओगे तब ही मुझे पता मिलेगा। इतना तो है ही कि हमारे जीवनमें काफी वैभव आ गया है। कहाँ तक सहन करना योग्य है सो समझनेकी बात है।

बापु

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३३९) से

३१७. अंग्रेजोंके लिए

एक बहुत जिम्मेदार अंग्रेज सज्जनने ऐसे एक व्यक्तिको पत्र लिखा है जो पत्र-लेखक और मेरे, दोनोंके मित्र हैं। उन मित्रने उन्हें जवाब देनेके लिए वह पत्र मेरे पास भेजा है। पत्र इस प्रकार है :[1]

> कार्य-समितिने कल जो प्रस्ताव[2] पास किया उसे मैंने अभी-अभी बहुत चिन्ताके साथ पढ़ा है। मैं यह एक ऐसे अति साधारण अंग्रेजकी हैसियतसे लिख रहा हूँ जो काफी वर्षोंसे भारतमें दिलचस्पी लेता रहा है।... भारतकी आकांक्षाओंके प्रति मेरा जो सहानुभूतिपूर्ण रवैया है, मैं नहीं समझता कि वह

१. केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

२. देखिए परिशिष्ट ६।

कुछ खास मेरा ही है, बल्कि मेरे जो विचार हैं. . . साधारणतया वही विचार अधिकांश अंग्रेजोंके भी हैं। मैं इस विषयपर काफी विश्वासके साथ विचार रख सकता हूँ, क्योंकि मैं ऐसे बहुत-से लोगोंके निकट सम्पर्कमें हूँ जिनका अंग्रेजी लोकमतपर कुछ हद तक प्रभाव है और जो पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्यकी भारत की माँगकी मंजूरीके अनुकूल वातावरण तैयार करनेमें उत्तरोत्तर सफलतापूर्वक कार्य करते रहे हैं। समितिकी हालकी कार्रवाई और औपनिवेशिक स्वराज्यकी माँगकी जगहपर पूर्ण स्वतन्त्रताकी माँगका — जो एक आकस्मिक और उग्र परिवर्तन जान पड़ता है — हम क्या अर्थ लगायें? गांधीजी और जिन दूसरे कांग्रेसी नेताओंसे मैं मिल चुका हूँ उनकी मैं इतनी अधिक इज्जत करता हूँ कि मैं यह सोच भी नहीं सकता कि यह प्रस्ताव एक झाँसा है अथवा आरम्भिक वार्ताके दौरान हमने जो अहितकर रवैया अपनाया था उसके विरुद्ध तुरन्त उत्पन्न रोषका फल है। अब तक वे हमें इतना तो जान ही गये होंगे जो यह समझ सकें कि सुन्दर कामको सुन्दर ढंगसे करना हमारे लिए कितना कठिन है। कुल मिलाकर मेरे खयालमें हमारे इरादेसे ज्यादा हमारे तरीके अक्सर दोषपूर्ण होते हैं।

अतः प्रस्तावमें जो-कुछ कहा गया है यदि उसे सच मान लिया जाये और हमें तत्काल बोरिया-बिस्तर गोल करके जानेके लिए कहा जा रहा है तो मैं गम्भीरतापूर्वक आपसे यह पूछे बिना नहीं रह सकता कि बिना हमारी मदद के आप क्या वास्तवमें भारतका शासन चलानेमें समर्थ हैं। पिछली गर्मियोंमें मैं जब सीमा प्रान्तमें था तो मुझे ऐसे बहुत-से लम्बे-तगड़े और डरावने महाशय मिले जो यह सोच-सोचकर प्रसन्न हो रहे थे कि ज्योंही अंग्रेज भारत छोड़ें त्योंही हम भारतकी कीमतपर गुलछर्रे उड़ायें। मुझे विश्वास है कि ऐसे दूसरे भी पक्ष हैं जो नये भारतीय गणतन्त्रकी कठिनाइयोंसे फायदा उठानेमें नहीं झिझकेंगे। मैं मानता हूँ कि अहिंसा ऐसे लोगोंके विरुद्ध एक शक्तिशाली अस्त्र है जिन्हें आत्मरक्षा न करनेवालोंपर बलप्रयोग करना अच्छा नहीं लगता। किन्तु जो लोग अहिंसाके सिद्धान्तको ही हेय दृष्टिसे देखते हैं उनपर इसका कुछ असर होगा, इसमें मुझे सन्देह है। क्या आप इन तत्वोंपर अंकुश रख सकते हैं, या फिर हम भारतको प्रशासनिक अव्यवस्था तथा सम्भाव्य गृह-युद्धकी विभीषिकामें झोंक देनेका इरादा करें? आप कह सकते हैं कि यह हमारा निजी मामला है और यदि इस प्रकारकी कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं तो हम उन्हें अपने ढंगसे निपटायेंगे, किन्तु इससे मेरे मनको तसल्ली नहीं होती। जिन परिस्थितियोंमें हमने भारतपर अधिकार जमाया उनकी पैरवी करने — १८ वीं शताब्दीके पिछले भागमें भारतकी असुरक्षित स्थितिको देखते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमने नहीं तो दूसरी किसी शक्तिने उसका फायदा उठा लिया होता — या तबसे उसके साथ जो सलूक

किया है उसकी ही पैरवी करनेसे मुझे कोई मतलब नहीं है। क्योंकि मेरे खयालसे हमारा रेकार्ड जितना ही अधिक खराब दिखे उतना ही हमारे लिए यह लाजिमी है कि हम अपनी जिम्मेदारियोंसे और अपने दुष्कर्मोंके दंडसे तब तक नहीं भागें जब तक कि हमारा स्थान लेनेके लिए हमारे जितना ही स्थायी तथा हमसे कहीं अधिक प्रबुद्ध प्रशासन तैयार न हो। मैं जानता हूँ कि हमारे भारत छोड़नेके छः महीने बाद यदि मैंने सुना कि हिन्दू और मुसलमान एक कमजोर सरकारकी उपस्थिति में एक-दूसरेका खून बहा रहे हैं तो मैं स्वयंको दोषी माने बिना नहीं रह सकता और मुझे यकीन है कि बहुत-से भारतीय और दूसरे लोग भी इसे ब्रिटिश हुकूमतका कुफल बतायेंगे। अतः मैं यह माननेके लिए राजी नहीं हो सकता कि भारतको अपने पैरोंपर दृढ़तापूर्वक खड़े होनेकी स्थिति तक पहुँचाये बिना हम अंग्रेज लोग बिना किसी रोषके भारत छोड़ सकते हैं। जब भारत ऐसी स्थितिमें हो जायेगा तो मैं खुशी-खुशी वहाँसे चला जाऊँगा। मैंने सोचा था कि अब वह दिन दूर नहीं है, लेकिन मेरे अनुभवसे तो यह लगता है कि वह दिन अभी आया नहीं है। औपनिवेशिक दर्जा मुझे इस दिशामें उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम प्रतीत होता है, अतः वह अमान्य क्यों है?

. . . मैं लन्दनके ईस्ट ऐण्ड क्षेत्रको काफी अच्छी तरह जानता हूँ, और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि यह कहना निरी मूर्खता है कि सिल्वर-टाउनके मतदाता ब्रिटिश साम्राज्यवादको सहारा देनेके लिए लड़ रहे हैं या मतदान कर रहे हैं। उन्हें इस बातकी समझ है कि हम अनिष्टकर तत्वोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं, और वे यह भी जानते हैं कि नाजीवादके अधीन जैसा जीवन होगा, उसके मुकाबले तो गोदी-क्षेत्र तककी दशाओंमें रह कर जीना बेहतर है। वे यह भी जानते हैं, और अगर नहीं जानते तो मुझे डर है कि जल्दी ही उन्हें पता चल जायेगा कि यह संघर्ष अत्यन्त घोर संघर्ष होगा, और यदि कभी विजय मिली भी तो उसके लिए बहुत भारी कीमत चुकाई गई होगी। भारतके उन लोगोंके बारेमें उनकी भावना क्या होगी जिन्होंने इस नाजुक घड़ीमें हमारे युद्ध-प्रयत्नोंमें बाधा डालनेकी कोशिश कर पलड़ेको इस तरह असंतुलित करनेकी भरसक कोशिश की जिसका परिणाम हमारी पराजय हो सकता था?

आप कह सकते हैं, "इंग्लैंडका हमारे ऊपर क्या अहसान है, और वह जीते या हारे, हमें क्या परवाह? यही वह अवसर है जिसकी हमें प्रतीक्षा थी और हम इसे छोड़ेंगे नहीं।" . . . सविनय अवज्ञा, और उससे निश्चित रूपसे उत्पन्न होनेवाली मुसीबतोंसे हमें गम्भीर परेशानी का सामना करना पड़ेगा और उससे उन दो जातियोंके बीच जिन्हें परस्पर मित्र होना चाहिए ज्यादा कुछ नहीं तो भी क्षोभकी भावना तो अवश्य उत्पन्न होगी। लेकिन मैं यह नहीं

समझ पाता कि सविनय अवज्ञाके द्वारा हमसे किस तरह छुटकारा पाया जा सकता है, खास करके जबकि हम सैनिक दृष्टिसे पूरी तरह संगठित हैं। यदि सविनय अवज्ञा असफल रही और हम उसके बावजूद भी युद्ध जीत गये, तो वे ही लोग, जिन्होंने, मेरा पक्का विश्वास है कि हमारी मुसीबतोंमें इजाफा न करनेकी भारतकी नीतिका प्रत्युत्तर अत्यन्त उदार मनसे दिया होता, ऐसी नाराजगी महसूस करेंगे जिसे दूर होनेमें बरसों लग जायेंगे। दूसरी ओर, यदि आपकी कोशिशोंसे हम युद्ध हार जायें, तो क्या आप सचमुच ऐसा मानते हैं कि जर्मनी या रूस भारतपर हाथ नहीं डालेंगे, अथवा उसे पूर्ण स्वराज्य देनेमें हमारी अपेक्षा ज्यादा सरगर्मी दिखायेंगे? यदि आपका जवाब 'नहीं' है, तो क्या आप हमारी अपेक्षा नाजियों या बोल्शेविकोंका शासन ज्यादा पसन्द करेंगे?

मेरा विश्वास है कि कांग्रेसकी आकांक्षाओंके प्रति मेरे मनमें सच्ची सहानुभूति रही है और अपने सीमित अनुभवके अनुसार मैंने उन आकांक्षाओंको इंग्लैंडके मित्रोंके सामने रखनेकी कोशिश ईमानदारीके साथ की है। लेकिन यह जो नई बात पैदा हुई है, वह मेरी समझमें नहीं आती और न ही मैं उसे तर्ककी दृष्टिसे और न कार्य-साधकताके आधारपर उचित ठहरा सकता हूँ। क्या आप मेरी सहायता कर सकते हैं? मैं जानता हूँ कि जल्दी ही स्वदेशसे मेरे पास इस सम्बन्धमें प्रश्न आयेंगे, और मैं उनका जवाब सही-सही देना चाहूँगा। साथ ही, जब सेनानायक युद्धके दाँव-पेंच लगानेमें व्यस्त हैं, तब क्या मेरे जैसा साधारण सिपाही किसी प्रकारकी मदद कर सकता है? सद्भावकी कमी नहीं है, लेकिन डर है कि कहीं यह व्यर्थ न चला जाये।

यह पत्र कांग्रेसके प्रति सद्भाव रखनेवाले बहुत-से अंग्रेजोंके विचार प्रकट करता है। फिर भी इससे पता लगता है कि उनमें भारतीय विचारोंके बारेमें कितना भयंकर अज्ञान फैला हुआ है। इसीलिए तो लेखकने लिखा है, "समितिकी हालकी कार्रवाई और औपनिवेशिक स्वराज्यकी माँगकी जगहपर पूर्ण स्वतन्त्रता की माँगका — जो एक आकस्मिक और उग्र परिवर्तन जान पड़ता है — हम क्या अर्थ लगायें?" बात यह है कि १९२९ से पूर्ण स्वाधीनता ही कांग्रेसका निश्चित ध्येय रहा है[1] और हजारों मंच हर साल उसीकी घोषणासे गूँजते रहे हैं। उस वर्षसे इस वर्ष तक कांग्रेसने औपनिवेशिक स्वराज्यका कभी नाम तक नहीं लिया है। इसलिए कांग्रेसकी माँगमें किसी भी तरहका परिवर्तन नहीं हुआ है। आकस्मिक और उग्र परिवर्तनका तो सवाल ही नहीं उठता। गलतफहमी मेरे एक पत्रसे पैदा होती है, जो मैंने १९३७ में श्री हे० सा० लि० पोलकको लिखा था और जिसका बहुत बार हवाला दिया जाता है। उसमें मैंने कहा था कि साझेदारीसे अलग होनेके अधिकारके साथ भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य

1. देखिए खण्ड ४०, पृ० ३२९, ३५६।

दे दिया जाये तो मैं तो स्वीकार कर लूँ।[1] अपने इस बयानसे और किसीको बाँधनेका मुझे अख्तियार नहीं था। कहना न होगा कि वह दर्जा देनेकी बात कभी नहीं की गई। मेरे लिए कुछ भी कहा जाये, मगर कांग्रेसपर तो नीति-परिवर्तनका दोष नहीं लगाया जा सकता। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने राय बदली है। उस समयके बाद मुझे जो अनुभव हुआ और मैंने जो गहरा विचार किया उससे मेरी यह राय बनी कि वेस्टमिन्स्टर कानूनवाला औपनिवेशिक दर्जा भी हिन्दुस्तानके लिए अनुकूल नहीं पड़ेगा। अपनी राय बदलनेके कारण मैंने हालमें ही बता दिये हैं,[2] इसलिए उन्हें यहाँ दोहरानेकी जरूरत नहीं।

और जब पत्र-लेखक यह समझते हैं कि हिन्दुस्तान अभी अपने पैरोंपर खड़ा नहीं हो सकता, तब तो यही मानना पड़ता है कि उनके ध्यानमें औपनिवेशिक स्वराज्य भी नहीं है। कारण, वह औपनिवेशिक स्वराज्य ही क्या जिसका मतलब यह न हो कि सम्बन्धित उपनिवेशमें अपने पैरोंपर खड़े होनेकी ताकत है?

कांग्रेसने ब्रिटेनसे जो निश्चित माँग की है वह यह घोषणा करनेकी है कि नियमित चुनावसे बनी हुई संविधान-सभा जो निर्णय करेगी, ब्रिटेन उसपर अमल करेगा। दूसरे शब्दोंमें, ब्रिटेनको हिन्दुस्तानका यह हक स्वीकार कर लेना चाहिए कि हिन्दुस्तान किसी बाहरी दबाव या दखलके बिना अपने भाग्यका निपटारा आप कर सकता है। इस निपटारेमें औपनिवेशिक स्वराज्यको भी स्वीकार किया जा सकता है। पूरी आजादीसे कम या उसकी कोई बदली हुई सूरत भी मंजूर की जा सकती है और पूरी आजादीके पक्षमें भी मत व्यक्त किया जा सकता है। कांग्रेस तो अपना झण्डा नीचा नहीं करेगी। मगर संविधान-सभा और कांग्रेस दोनों एक चीज नहीं हैं। इस सभामें पर्याप्त मत प्राप्त करनेवाले सभी दलोंके प्रतिनिधि होंगे, इसलिए सभी अल्पसंख्यक समुदायोंके नुमाइंदे पूरी संख्यामें होंगे।

यह बड़े दुःखकी बात है कि आम तौरपर अच्छे-से-अच्छे अंग्रेजोंमें भी हिन्दुस्तानके दावेके बारेमें भयंकर अज्ञान है। उन्हें अपनी बातपर इतना ज्यादा इत्मीनान है कि वे भारतीय पक्षका अध्ययन करनेका कष्ट ही नहीं उठाते। वे राष्ट्रीय अखबार नहीं पढ़ते। वे ऐंग्लो-इंडियन पत्रोंसे अपनी राय बनाते हैं, और ये पत्र खुद प्रायः ऐसी बातें कहते हैं जिनसे मालूम होता है कि उन्हें भी राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानके विचारों, आकांक्षाओं और कार्योंके बाबत भयंकर अज्ञान है। कांग्रेसकी बातें शुरूसे ही गलत रूपमें पेश की जाती रही हैं। मेरी राय है कि जिम्मेदार अंग्रेज नरम और गरम दलके जाने-माने कांग्रेसियोंसे मिलें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इससे बहुत-सी गलतफहमी मिट जायेगी। यह हो सकता है कि बादमें भी वास्तविक मतभेद बाकी रहें। मगर ये तो सदा ही रहेंगे।

लेखकको इस बातकी कल्पना करते हुए भी डर लगता है कि अंग्रेज बोरिया-बिस्तर उठाकर इस देशको खाली कर गये तो हिन्दुस्तानका क्या होगा। अहिंसक

१. देखिए खण्ड ६४, पृ० ३५८-५९।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", पृ० २६-२७।

लड़ाईमें ऐसी स्थिति उत्पन्न होनेकी कल्पना नहीं की जा सकती। अहिंसक कार्रवाईका अन्त यही हो सकता है कि आपसमें मित्रतापूर्ण समझौता हो जाये। यदि लेखकका अभिप्राय अंग्रेज सिपाहियोंसे है तो मैं यह कहूँगा कि अगर वे स्वाधीन भारतकी सेवा नहीं करना चाहेंगे या महँगे होनेके कारण या और किसी वजहसे भारत उन्हें नहीं रखना चाहेगा तो उन्हें जाना तो पड़ेगा ही। यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध अंग्रेज-विरोधी या विदेशियोंके खिलाफ नहीं, शोषण और विदेशी राजके विरुद्ध है। लेखकके भयकी तहमें यह बात है कि शायद हिन्दुस्तान अपने बूतेसे बाहरका कोई फैसला कर डाले। अंग्रेजोंको सचमुच जो यह विश्वास हो गया है कि हिन्दुस्तानमें समझदारीके साथ फैसला करने या गृह-युद्ध अथवा विदेशी हमलेसे अपना बचाव करनेकी शक्ति नहीं है, शायद यही सम्मानपूर्ण समझौतेके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट है। अगर यह अन्देशा ठीक है तो इसकी काट यही हो सकती है कि जोखिम उठाकर भी हिन्दुस्तानको आजाद होकर बुद्धिमानी और आत्मरक्षाकी कला सीखनेका मौका दिया जाये। अन्य किसी भी उपायका अर्थ यही होता है कि वह सदा असहाय और पराधीन रहे। यह लाचार उपमहाद्वीप रोगी रहकर अपने और जगतके गलेका भार बना रहे, इससे अच्छा तो निस्सन्देह स्वयं इस उपमहाद्वीपके लिए, इंग्लैंडके लिए और दुनियाके लिए भी यह है कि यह अपनी खुदमुख्तियारी हासिल करनेके लिए बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाये। मालूम होता है कि ब्रिटेनने हिन्दुस्तानके साथ जो अन्याय किया है उसे तो मान्य पत्र-लेखक स्वीकार करते हैं। मगर वह अन्याय इस तरह नहीं मिटेगा कि अंग्रेज हिन्दुस्तानके भाग्य-विधाता बनें और यह आशा रखें कि सुदूर भविष्यमें किसी-न-किसी दिन हिन्दुस्तान भीतरी और बाहरी रक्षाकी पूरी जिम्मेदारी उठानेके योग्य हो जायेगा। लेखकने भारतके आत्म-निर्णयके संकल्पके खिलाफ जो दलील दी है वही मुझे भारतमें ब्रिटिश राजके जल्दी-से-जल्दी खत्म किये जानेके पक्षमें अन्तिम तर्क जान पड़ती है।

मैंने जो स्थिति अपनाई है वह सही हो तो राष्ट्रवादी भारतके लिए नाजी या बोलशेविक खतरेका कोई अर्थ नहीं है — खासकर इसलिए कि भारतकी रक्षाका आधार तो अहिंसा है।

मगर लगता है लेखकको बलवानोंकी अहिंसामें श्रद्धा नहीं है। मैं उनके इस कथनसे बिलकुल सहमत नहीं हो सकता कि "मैं मानता हूँ कि अहिंसा ऐसे लोगोंके विरुद्ध एक शक्तिशाली अस्त्र है जिन्हें आत्मरक्षा न करनेवालोंपर बलप्रयोग करना अच्छा नहीं लगता। किन्तु जो लोग अहिंसाके सिद्धान्तको ही हेय दृष्टिसे देखते हैं उनपर इसका कुछ असर होगा, इसमें मुझे सन्देह है।" अहिंसाकी सच्ची परीक्षा तो उसी वक्त होती है जब उसका वास्ता उसका तिरस्कार करनेवालोंसे पड़ता है। लेखक यह कहें कि कांग्रेसने अभी तक इतनी विशुद्ध अहिंसासे काम ही नहीं लिया तो उनका कहना सही होगा। इसका जवाब यह होगा कि मैं भारतके सामने और भारतके जरिये संसारके सामने पूर्ण अहिंसाका उदाहरण

पेश करनेकी जी-तोड़ कोशिश कर रहा हूँ। हो सकता है कि मुझे सफलता न मिले। मगर अंग्रेजोंसे मेरा अनुरोध है कि यदि उन्हें जरा भी विश्वास हो कि इस तरहकी अहिंसापर अमल हो सकता है तो इस प्रयोगमें वे मेरी मदद करें।

लेखककी अहिंसाके कार्य कर सकनेके बारेमें जब अच्छी राय नहीं है तो कोई आश्चर्य नही कि वे "उन लम्बे-तगड़े और डरावने महाशयों" का खयाल करके ही काँप उठते हैं "जो यह सोच-सोचकर प्रसन्न हो रहे थे कि ज्योंही अंग्रेज भारत छोड़ें त्योंही हम भारतकी कीमत पर गुलछर्रे उड़ायें।" कहीं यह भी हो सकता है कि निर्वाचित स्त्री-पुरुषोंकी सभाको अगर ऐसा ही डर हो तो वे अपने ही हाथों अपनी मौत बुलानेके लिए अंग्रेजोंसे कहेंगे कि आप चले जाइए ताकि हमें सीमा-प्रान्तके "लम्बे-तगड़े और डरावने महाशय" लील लें? मैं लेखकसे कहता हूँ कि अगर अंग्रेज चले गये तो जिस दिन वे गये उसी दिन मुसलमान और हिन्दू दोनोंको यह मालूम हो जायेगा कि अंग्रेजोंके आनेसे पहले वे जैसे आपसमें मेलसे रहते थे उसी तरह रहनेमें दोनोंका फायदा है। पहले अगर रात-दिन आपसमें लड़ाई रही होती तो दो में से एक का सफाया जरूर हो जाता। जब हिन्दुस्तानमें सच्ची स्वाधीनता आयेगी तब कांग्रेस और लीग-जैसी संस्थाओंने अगर देशके सच्चे लोकमत का प्रतिनिधित्व नहीं किया तो उनका अस्तित्व भी नही रहेगा। भारतमें अंग्रेजोंकी संगीनोंकी उपस्थितिसे ऐसी कृत्रिम हालत पैदा हो गई है जिसमें मानव क्रियाओंको स्वाभाविक अभिव्यक्तिका अवकाश ही नहीं मिलता और इससे दबने और दबानेवाले दोनोंका पतन होता है। मैं यह भी कह दूँ कि अंग्रेजी सेनाकी उपस्थितिके बावजूद सक्खरके जैसे दंगे या सीमा-प्रान्तके आये दिनके छापे और मनुष्योंको उड़ा ले जानेकी घटनाएँ नही रुक सकी हैं। फौजको जो-कुछ कामयाबी मिलती है वह घटनाओंके हो जानेके बाद मिलती है। मगर न तो बादमें सजा देनेकी कार्रवाइयोंसे पीडितोंकी हालतमें कोई सुधार होता है और न यही होता है कि नुकसान उठानेवाले सब लोगोंकी नहीं तो कम-से-कम अधिकांशके ही नुकसानकी भरपाई हो जाये।

हाँ, यह हो सकता है कि इस मौकेपर कांग्रेसके विरोधसे अंग्रेजोंके दिलमें कटुता पैदा हो और भविष्यमें उसकी याद बनी रहे। मगर मनुष्य-स्वभावका मेरा अनुभव तो यह है — और अंग्रेज उससे बाहर नहीं है — कि जब दो पक्ष मेल करना चाहते हैं तब कटुता भूल जाते हैं। लेखकने पहले ही मान लिया है कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन कुचल दिया जायेगा। सविनय अवज्ञाके कोशमें इसकी गुंजाइश नहीं होती। हिंसा होगी तो वह जरूर कुचल दी जायेगी, क्योंकि हिंसाका परिणाम तो बुरी तरह मार खाकर भागना ही हो सकता है। उसकी पहलेसे कोई तैयारी नहीं है, इसलिए जनता खुद हक्की-बक्की रह जायेगी है। उसे यही पता नही चलेगा कि क्या करे। लेकिन मैं अहिंसक संघर्षमें पूरी सावधानी रखूँ और फिर भी कटुता रह ही जाये, तो यह जोखिम भी उठानी ही पड़ेगी। भगवानके दरबारमें मनुष्यका फैसला उसके कामोंसे नही, उसकी नीयतसे किया जायेगा, क्योंकि ईश्वर ही हृदयकी बात जान

सकता है। आजादीकी लड़ाइयाँ भारी कीमत चुकाये बिना नहीं लड़ी जातीं। जैसे मनुष्यको अपने सिवाय किसी दूसरे शरीरमें निवास करनेका विचार अच्छा नहीं लगता, वैसे ही राष्ट्र यह पसन्द नहीं करते कि दूसरे राष्ट्रोंके शासनमें रहें, फिर भले ही दूसरे राष्ट्र कितने ही उच्च और महान क्यों न हों। जब अंग्रेज अपनी आजादीकी रक्षाके लिए इतना भीषण त्याग कर रहे हैं तो उन्हें भारतकी पीड़ा अनुभव करनेमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए। कांग्रेस यह नहीं कहती कि 'हम कांग्रेसवाले जो मांगते हैं वह हमें दे दो।' वह तो शासकोंसे यह कहती है कि 'आपके हाथों नहीं, राष्ट्रके चुने हुए प्रतिनिधियोंके हाथों उनकी किस्मतका फैसला होना चाहिए।' इतनी माकूल तजवीज भी न मानी जाये तो कांग्रेसको क्या करना चाहिए?

सेवाग्राम, ११ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-३-१९४०

३१८. स्त्रियाँ और यज्ञार्थ श्रम

श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर लिखती हैं[1]:

...हालमें मैंने अखिल भारतीय महिला परिषद्[2] की सभी शाखाओंको पत्र लिखकर उनसे कहा है कि जिसे आप 'यज्ञार्थ कताई' कहते हैं उसे अपनाकर वे खादी-कार्यमें व्यावहारिक रूपसे सहायता दें। जिनके पास अवकाश है, उन वर्गोंकी बहनें अगर नियमित रूपसे कातें और अपना सूत अ० भा० च० संघको दे दें तो उसके बलपर, संघने हालमें कतैयोंकी मजदूरी में जो वृद्धि की है, उसे कायम रखा जा सकता है। ... कातनेका काम स्त्रियाँ करती हैं; खादी है तो वे हैं। अगर हम उनकी आमदनी इतनी बढ़ा सकें कि कताईसे वे गुजारा कर लें तो इसका मतलब उन्हें न केवल आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करना होगा, बल्कि उनके श्रमकी गरिमामें भी वृद्धि करना होगा।

...जो नहीं कातना चाहें उन्हें पैसेका दान देनेकी पूरी छूट है, लेकिन श्रमका, कातनेका महत्त्व ही कुछ और है। यह हमें भावनातः गरीबोंसे जोड़ता है। इससे श्रमकी गरिमा, विशेष रूपसे स्त्रियोंके श्रमकी गरिमामें वृद्धि होती है और साथ ही इससे हाथ-कती और हाथ-बुनी खादीके प्रति हममें ऐसा प्रेम जगता है जैसा अन्य किसी प्रकारसे नहीं हो सकता। इस सबका मूल्य भला पैसेमें आंका जा सकता है?

१. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

२. जिसका वार्षिक अधिवेशन २७ से ३१ जनवरी, १९४० तक इलाहाबादमें हुआ था

कालेजोंकी छात्राएँ मुझसे अक्सर पूछती हैं कि वे देशकी सेवा किस प्रकार कर सकती हैं। उनमें से भी प्रत्येक इस तरहसे अपना अंश-दान दे सकती है।

यदि आप इस योजनाको अपना आशीर्वाद और सहमति देकर मेरे अनुरोधको बल प्रदान करें तो आभारी होऊँगी। बेशक हमें इस यज्ञमें हाथ बँटानेके लिए ३००० से बहुत अधिक स्वयंसेविकाएँ तैयार कर सकना चाहिए। . . .

इस अनुरोधका मैं हार्दिक समर्थन करता हूँ। यदि देशमें भूखों मरते करोड़ों लोगोंके लिए मेहनत करनेवाली तीन हजार बहनें भी न मिल सकें तो यह बड़ी लज्जास्पद बात होगी। स्वेच्छासे और खुशी-खुशी श्रम करके गरीबोंसे अपना तादात्म्य स्थापित करनेपर राजकुमारीने जो जोर दिया है वह सर्वथा उचित है।

सेवाग्राम, ११ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-३-१९४०

३१९. खादी बैंक[1]

एक भाई लिखते हैं :[2]

खादीमें मेरा विश्वास है। . . . लेकिन मेरे पास साधनकी कमी है। अतः मैंने यह फैसला किया है कि इसके लिए १ रुपया प्रतिमास अलग निकाल कर रख दूँ। फिर भी मुझे इस बातका भय है कि दूसरी जरूरतें, जो मुझे परेशान करती रहती हैं, इस सुरक्षित राशिको आसानीसे अपनी पकड़ में ले लेंगी। इसलिए मैं 'खादी बैंकों' की एक योजनापर विचार कर रहा हूँ। . . . अ० भा० चरखा संघ द्वारा प्रमाणित किसी खादी भण्डारमें कुछ रकम एक बार अथवा सुविधानुसार समय-समयपर जमा करा दी जाये। यह बैंक रुपया जमा करनेवाले दूसरे बैंकों-जैसा नहीं होगा। इसमें एक बार रुपया जमा कर देनेके बाद उसे फिर निकाला नहीं जा सकेगा। केवल उस रुपयेकी कीमतकी खादी-भर खरीदी जा सकेगी। अ० भा० च० सं० को चाहिए कि वह इन ग्राहकोंको हुंडीकी किताबें दे, ताकि वे समय-समयपर भण्डारोंसे उपयुक्त मूल्यकी हुंडियाँ निकालकर खादी खरीद सकें।

इस तरहके बैंकोंसे जो लाभ होंगे वे स्पष्ट हैं। . . . अ० भा० च० सं० की स्थिति ऐसी हो जायेगी कि वह मजदूरोंको उनकी मजदूरीके लिए

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

आश्वस्त कर सकेगा।...अ० भा० च० सं० को व्याजकी जो उपलब्धि होगी उससे उसके कोषमें वृद्धि होगी और मजदूरकी मजदूरीमें बिना कटौती किये खरीदारोंको घटे दामपर खादी देनेके लिए इस धनका इस्तेमाल किया जायेगा।

सुझाव अच्छा लगा। अ० भा० च० संघ के विशेषज्ञ इसपर विचार करें। खरीदार अगर अपने जमा पैसेपर व्याज न लें और काफी संख्यामें लोग रुपये जमा करें तो खादीका सस्ता किया जाना सम्भव हो सकेगा।

सेवाग्राम, ११ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-३-१९४०

३२०. बातचीत : एक मिशनरीके साथ[1]

सेवाग्राम

[१२ मार्च, १९४० से पूर्व][2]

[प्र० :] क्या आप बतायेंगे कि ईसामसीहके सन्देशको प्रस्तुत करनेके लिए किन बातोंसे बचना चाहिए?

[उ०:] यह सोचना छोड़ दीजिए कि आपको सारी दुनियाको ईसाई-धर्मके उस रूपमें दीक्षित करना है जिस रूपमें उसे आप मानते हैं। आपको बता दूं कि 'बाइबिल' पढ़नेके बाद मेरे मनपर ऐसी कोई छाप नहीं रह गई कि आज ईसाका नाम लेनेवाले ज्यादातर लोग जो-कुछ कर रहे हैं वह वही है जो ईसा उनसे करवाना चाहते थे। जिस क्षण आप मेरा सुझाया रुख अपनायेंगे उसी क्षण आप पायेंगे कि आपके सामने सेवाका असीम क्षेत्र पड़ा हुआ है। हमें तो दूसरोंका धर्म-परिवर्तन करना ही है, ऐसा सोचकर और कहकर आप अपनी क्षमताको बहुत मर्यादित कर देते हैं।

आपकी बात मैं समझता हूँ। हम सम्प्रदायों और मनुष्यकी बनाई तरह-तरहकी मान्यताओंके दुर्वह भारसे दबे हुए हैं। हमें लगता है कि हमें ऐसी स्थितिमें होना चाहिए जहाँ किसी प्रकारका कोई भेद-भाव न हो।

गांधीजी ने कुछ ईसाइयोंके उदाहरण देकर कहा कि उन लोगोंने इस मूल तत्वको समझा — कि अगर उन्हें ईसाकी शिक्षाके अनुरूप जीवन जीना है तो उन्हें इन शब्दोंका अक्षरशः पालन करना चाहिए : "'प्रभु, प्रभु' की रट लगानेवाला नहीं, बल्कि परम पिताकी इच्छाका पालन करनेवाला ही स्वर्गके साम्राज्यमें प्रवेश पा सकेगा।"[3]

१. महादेव देसाईके "अकेन्नल नोट्स" से उद्धृत।
२. यह बातचीत १२ मार्चको गांधीजी के रामगढ़के लिए प्रस्थान करनेसे पूर्व हुई थी।
३. सेंट मैथ्यू, ७, २१

आप तो ईश्वरके मार्ग-दर्शनमें अपने जीवनका संचालन करते हैं। क्या इस मार्ग-दर्शनका अपना कुछ अनुभव बतायेंगे?

मैं ईश्वरको व्यक्ति नहीं मानता। मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है और ईश्वरका विधान और ईश्वर, ये दोनों उस अर्थमें दो अलग-अलग चीजें या अलग-अलग तथ्य नहीं है जिस अर्थमें पार्थिव राजा और उसका विधान एक-दूसरेसे अलग हैं। चूँकि ईश्वर एक विचार है, वह स्वयं विधान है, अतः यह सोचना असम्भव है कि वह उस विधानको तोड़ भी सकता है। इसलिए ऐसा नहीं है कि वह हमारे कर्मका नियमन करे और स्वयं उससे अलग रहे। यह कहना कि वह हमारे कर्मोंका नियमन करता है, मात्र मानवीय भाषाका प्रयोग करना और असीम ईश्वरको सीमामें बाँधनेकी कोशिश करना है। सच तो यह है कि वह और उसका विधान, दोनों सर्वव्यापी हैं, दोनों सबका नियमन करते है। इसलिए मैं यह नही समझता कि वह हमारी हर प्रार्थनाका उसकी हर तफसीलकी दृष्टिसे उत्तर देता है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वह हमारे कर्मोंका नियामक है और मैं इस कथनमें अक्षरशः विश्वास करता हूँ कि उसकी इच्छाके बिना पत्ता भी नहीं हिलता। हमें अपनी इच्छाके अनुसार बरतनेकी जो स्वतन्त्रता है वह किसी खचाखच भरे जहाजके यात्रियोंकी अपनी इच्छानुसार बरतनेकी स्वतन्त्रतासे भी कम है।

क्या आप ईश्वरके सान्निध्यमें स्वतन्त्रताकी अनुभूति करते हैं?

. अवश्य करता हूँ। यात्रियोंसे भरे किसी जहाजपर मैं अपनेको जैसा अवरुद्ध अनुभव करूँगा वैसा ईश्वरके सान्निध्यमें नहीं करता। यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरी स्वतन्त्रता उस यात्रीकी स्वतन्त्रतासे कम है, फिर भी मैं उस स्वतन्त्रताका सही मूल्य समझता हूँ, क्योंकि मैंने 'गीता' की इस मुख्य शिक्षाको अपने जीवनमें पूरी तरह उतार लिया है कि मनुष्य अपना भाग्य-निर्माता स्वयं है[1] — इस अर्थमें कि उसे अपनी स्वतन्त्रताका प्रयोग चाहे जिस ढंगसे करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। लेकिन परिणाम उसके हाथोंमें नहीं है। यह सोचना कि परिणाम भी मेरे हाथोंमें है, कष्टको न्योता देना है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-३-१९४०

१. भगवद्गीता, अध्याय ६, श्लोक ५

३२१. जयप्रकाश नारायण[1]

श्री जयप्रकाश नारायणकी गिरफ्तारी दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्ता नहीं हैं। वे समाजवादके पण्डित हैं। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवादके विषयमें जो-कुछ उनको मालूम नहीं है वह किसी भी भारतीयको मालूम नहीं है। वे एक सुलझे हुए संघर्षकर्ता हैं। भारतकी मुक्तिके लिए उन्होंने अपना सब-कुछ त्याग दिया है। उनमें अविश्रान्त श्रम करनेकी क्षमता है। उनकी कष्ट-सहनकी क्षमताको कोई मात नहीं दे सकता। मुझे नहीं मालूम कि उनके किस भाषणके कारण उनके खिलाफ कानूनी कदम उठाया गया है।[2] लेकिन यदि धारा १२४ ए या भारत-रक्षा अधिनियमकी अत्यन्त कृत्रिम धाराओंका प्रयोग सरकारके लिए असुविधाजनक लोगोंको पकड़नेके लिए किया जा सके, तब तो अधिकारी चाहे जिस आदमीको कानूनके चंगुलमें फँसा सकते हैं। यो मैं पहले भी कह चुका हूँ कि अगर सरकार भारतमें जल्दी ही संकटकी स्थिति उत्पन्न करना चाहती है तो उसे इसकी पूरी छूट है। उसे ऐसा करनेका पूरा अधिकार है। लेकिन मैं तो बराबर यही आशा करता हूँ कि जब तक संघर्ष विशुद्ध रूपसे अहिंसात्मक बना रहेगा तब तक उसे अपनी स्वाभाविक गतिसे ही चलने दिया जायेगा। भ्रमजाल नहीं फैलाया जाना चाहिए। अगर श्री जयप्रकाश नारायण हिंसाके दोषी हैं तो उनकी हिंसा सिद्ध की जानी चाहिए। इस गिरफ्तारीसे हुआ यह है कि लोग मानने लगे हैं कि ब्रिटिश सरकार लड़नेपर आमादा है। ऐसा हुआ तो इसका मतलब यह होगा कि इतिहासने अपने आपको दोहराया है। प्रथम सविनय अवज्ञाके समय सरकारने अली-बन्धुओंको गिरफ्तार करके[3] संघर्षको न्योता दिया था। क्या यह गिरफ्तारी किसी पूर्व निर्धारित योजनाके अनुसार की गई है या यह किसी अत्युत्साही अधिकारी द्वारा की गई भारी भूल है? अगर यह ऐसी भूल हो तो इसे ठीक कर लेना चाहिए।

सेवाग्राम, १२ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १६-३-१९४०

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए "एक साहसपूर्ण बयान", २९-३-१९४०।
३. उन्हें १ नवम्बर, १९२१ को दो सालकी जेलकी सजा दी गई थी।

३२२. प्रश्नोत्तर

क्या मुझे वाइसरायमें अविश्वास है?

प्र० : पटनामें कार्य-समितिने जो प्रस्ताव[1] पास किया है उससे आपने अपनी सहमति प्रकट की है। आपने तो यह लिखा था कि लॉर्ड लिनलिथगोकी ईमानदारीमें आपका विश्वास है। पर इससे क्या उनकी ईमानदारीमें आपका अविश्वास प्रकट नहीं होता?

उ० : प्रस्तावका आपने जो मतलब निकाला है वह बिलकुल निराधार है। मुझे वाइसरायकी ईमानदारीमें सन्देह नहीं है। ऐसा कोई दूसरा वाइसराय मैंने नहीं देखा जो अपने शब्दोंको ऐसे तोल-तोलकर रखता हो जैसे लॉर्ड लिनलिथगो रखते हैं। उनके साथ बातचीत करनेमें बड़ा आनन्द आता है, क्योंकि वे बहुत सोच-समझकर बोलते हैं। इसीलिए उनकी बात सदा संक्षिप्त और मुद्दे की ही होती है। हमारी पिछली मुलाकातके बारेमें मैंने जो कहा था उसीपर मैं कायम हूँ कि यद्यपि हम सहमत नहीं हो सके तो भी एक-दूसरेके अधिक निकट आये हैं।[2] हम कुछ दिन और बातें करते रह सकते थे, लेकिन इधर-उधरकी बात करके फिर मतभेदके उसी बिन्दुपर पहुँचते। मैं तो सिर्फ अपनी ही ओरसे बात कर रहा था, इसलिए मुझे तो कोई बाधा नहीं थी। लेकिन वे तो प्राप्त आदेशोंके अनुसार ही बातें कर सकते थे, इसलिए उनके लिए भारी कठिनाई थी। वे प्राप्त निर्देशोंसे बाहर नहीं जा सकते थे। इसलिए हम बिलकुल मित्र-भावसे जुदा हुए। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे तो और भी कई मुलाकातोंकी आशा है। इस प्रस्तावसे कांग्रेसकी स्थिति असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट हो जाती है। मेरी रायको भी यह प्रकट करता है। अगर ब्रिटिश सरकार सचमुच पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य, जिसमें साम्राज्यसे पृथक् होनेका भी अधिकार हो, देना चाहती है तब तो कांग्रेसकी माँग पूरी करनेमें कोई कठिनाई हो नहीं सकती। लेकिन जैसा लॉर्ड जेटलैंडकी भेंट-वार्ता[3] से जाहिर हुआ, दुर्भाग्य तो यह है कि ब्रिटेन हिन्दुस्तानके भविष्यका निर्णय करनेका अधिकार अपने हाथमें रखना चाहता है। यह तो किसी प्रकारका औपनिवेशिक स्वराज्य भी नहीं हुआ। एक बार जब ब्रिटिश सरकारको यह निश्चय हो जायेगा कि वह अब हिन्दुस्तानको अपने कब्जेमें नहीं रख सकती, तब वे नव

१. देखिए परिशिष्ट ६।

२. देखिए "हमारा कर्तव्य", पृ० २१९-२१।

३. देखिए "क्या यह लड़ाईकी घोषणा है?", पृ० २४३-४५, "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", पृ० २४९-५० और "एक और अंग्रेजका पत्र", पृ० ३८३-८८।

कठिनाइयाँ, जो आज हमारे सामने पेश की जा रही हैं, उसी तरह उड़ जायेंगी जैसे प्रभातके समय अँधेरा मिट जाता है। कारण, वे कठिनाइयाँ उनकी अपनी ही बनाई हुई हैं। शोषणके साथ वे स्वाभाविक ही होती हैं। मुझे आशा है कि अब आप समझ गये होंगे कि यहाँ वाइसरायके प्रति अविश्वासका कोई सवाल नही है। सचाई यह है कि कालकी गति ही ऐसी थी।

'वादों' का डर

प्र० : आप कहते हैं कि गांधीवाद-जैसी कोई चीज है ही नहीं और आप जिसका प्रतिपादन कर रहे हैं वह कोई नई चीज नहीं है। मैं मुसलमान हूँ। मुझे तो गांधीवादमें इस्लामी ज्योतिकी चमक दिखाई देती है। धर्मतत्त्वका अध्येता होनेकी हैसियतसे मुझे गांधीवादमें हिन्दू धर्मका गौरव और ईसाई धर्मका ओज खूब खिलता हुआ मालूम देता है। इसमें सारे पूर्वका विशुद्ध तत्वज्ञान भी बहुत हद तक शामिल है। मैंने भारतके प्राचीन इतिहासके पन्ने उलट डाले, मगर उसमें आपके बताये हुए मार्गका कहीं पता नहीं लगता। तो फिर यह नया कैसे नहीं है, और हममें से जो लोग आपपर और इसलिए आपके बताये मार्गपर विश्वास रखते हैं उनके लिए इसे गांधीवाद नाम क्यों न दिया जाये?

उ० : 'वादों' से और खासकर जिनका विशेष व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता है ऐसे वादोंसे मुझे बड़ा डर लगता है। आपने मेरे बारेमें जो-कुछ कहा है, वह सब-का-सब सही हो तो भी उससे कोई नया पंथ नही बनता। मेरी कोशिश तो यह है कि नये पंथोंका ही नही, पुराने और फालतू पंथोंका भी सफाया हो जाये। अहिंसाको पंथोंसे घृणा है। अहिंसा तो सबको मिलाकर एक करनेवाली ताकत है। यह विविधतामें एकताकी खोज करती है। आप जो-कुछ कहते हैं, सब अहिंसासे पैदा होनेवाली चीजें हैं। कोई नया पंथ चलाना अहिंसाके विरुद्ध है और मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ, उसके खिलाफ है। इस तरह मुझे आशा है कि आप समझ जायेंगे कि 'गांधीवाद' के लिए कोई स्थान नही है।

स्त्रियाँ और उनका काम

प्र० : आप कहते हैं, "मेरी दृष्टिमें तो यह बात स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए पतनकारी है कि स्त्री से अपनी घर-गृहस्थीके दायित्वोंका त्याग करके उस गृहस्थीकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा जाये या प्रेरित किया जाये। यह फिरसे बर्बरताकी स्थितिमें लौट जाना और विनाशका आरम्भ है।"[1] लेकिन उन करोड़ों स्त्रियोंके लिए क्या कहा जायेगा जो खेतों और कारखानों वगैरह में मजदूरी करती हैं? उन्हें घर छोड़कर कमाई करनेपर मजबूर होना पड़ता है। क्या आप औद्योगिक समाज-व्यवस्थाको मिटाकर फिरसे पाषाण युग लाना चाहते हैं? क्या यह फिरसे बर्बरताकी स्थितिमें लौट जाना और विनाशका आरम्भ नहीं होगा?

१. देखिए "स्त्रियोंकी भूमिका क्या है?", पृ० २३९-४३।

आपकी कल्पनामें समाजकी वह नई व्यवस्था कौन-सी होगी जिसमें स्त्रियोंको काम करनेपर मजबूर करनेका पाप नहीं होगा?

उ० : करोड़ों स्त्रियोंको घर छोड़कर रोजी कमानी पड़े तो बुरी बात है, लेकिन इतनी बुरी नहीं है जितनी कि बन्दूक उठाना। मजदूरीमें दरअसल बर्बरता की कोई बात नहीं है। अपने घरोंकी देखभाल करते हुए स्त्रियाँ स्वेच्छासे अपने खेतोंमें भी काम करें तो मुझे इसमें कोई बर्बरता नहीं दीखती। मेरी कल्पनामें समाजकी जो नई व्यवस्था है उसके अनुसार सभी अपने-अपने बूतेके अनुसार काम करेंगे और उन्हें अपनी मेहनतका पूरा फल मिलेगा। उस व्यवस्थामें स्त्रियाँ थोड़े समय मेहनत करेंगी, क्योंकि उनका मुख्य काम घरकी देखभाल करना होगा। चूंकि मैं नहीं समझता कि बन्दूकके लिए नई समाज-व्यवस्थामें स्थायी जगह होगी, इसलिए जहाँ तक पुरुषोंका सम्बन्ध है उनमें भी उसका इस्तेमाल धीरे-धीरे कम किया जायेगा। जब तक उसका उपयोग होता रहेगा तब तक भी उसे एक जरूरी बुराई समझकर ही सहन किया जायेगा। पर मैं जान-बूझकर इस बुराईकी छूत स्त्रियोंको नहीं लगने दूंगा।

रोमन लिपि

प्र० : अशिक्षित जनताको रोमन लिपि क्यों न सिखाई जाये? इससे उर्दू-हिन्दी का यह मौजूदा झगड़ा मिट जायेगा।

उ० : हिन्दी और उर्दूके बजाय रोमन लिपि सिखाना ऐसा ही है जैसा कि घोड़ेको पीछे और गाड़ीको आगे रख देना। हमारे बच्चोंको पहले हिन्दी और उर्दू दोनों लिपियाँ सीखनी ही होंगी। कठिन सवालोंको उनकी उपेक्षा करके या उनके बजाय आसान दिखनेवाले विकल्प सुझाकर हल नहीं किया जा सकता। जब तक दिलोंमें फर्क है तब तक रोमन लिपिसे उनमें मेल नहीं होगा, इससे तो बोझा बढ़ेगा। कम-से-कम राष्ट्रभाषाकी पहेली सुलझानेका सबसे अच्छा और आसान तरीका तो दोनों लिपियाँ सीख लेना ही है। इससे हिन्दू और मुसलमान लड़के और लड़कियाँ दोनोंके लिए हिन्दी और उर्दू दोनों साहित्योंके विचार जाननेका रास्ता खुल जाता है और आजके लड़के-लड़कियाँ ही तो अगली पीढ़ीके स्त्री-पुरुष होंगे। उचित समयपर, यानी जब हमारे लड़के-लड़कियोंको अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जायेगी तब, रोमन लिपि भी सीख ली जायेगी, क्योंकि कुछ लोग तो जरूर अंग्रेजी सीखेंगे।

कैसे शुरू करें?

प्र० : कांग्रेस 'एकता-एकता' चिल्लाती है, लेकिन यह एकता लानेके लिए जिन सिद्धान्तोंका पालन करना जरूरी है — यथा हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा, जातियोंके बीच भेदभावका अन्त, एक-दूसरेके प्रति अथवा विदेशियोंके प्रति घृणाका त्याग, सहकारी प्रयत्न — उनकी चर्चा तो सभाओंमें लाउडस्पीकरोंके जरिये ऊँची आवाजमें की जाती है, लेकिन इनपर आचरण नहीं किया जाता। मुझे बताइए कि एक कांग्रेस-जनका

क्या कर्तव्य है? मैं कांग्रेसमें शामिल होकर अपनी सामर्थ्य-भर देशके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करना चाहूँगा।

उ० : आपको यह चिन्ता नही करनी चाहिए कि और लोग क्या करते है अथवा उन्हें क्या करना चाहिए। शुभ कार्योंका आरम्भ अपने घरसे ही होता है। आप अपने कामकी शुरुआत स्वयसे कीजिए। आप अपने मनसे जाति और धर्मके भेद मिटा दीजिए। हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, अंग्रेज आदि सबके प्रति उसी प्रकार सच्चे बनिए जिस प्रकार मैं समझता हूँ आप अपने प्रति है। ऐसा करने पर आप देखेंगे कि, जहाँ तक आपका सम्बन्ध है, आपकी समस्या हल हो गई है और अन्य लोग भी आपके उदाहरणका अनुकरण करने लगे है। आप अपने मनसे सब प्रकारकी घृणा निकाल दें और बिना किसी राजनीतिक अथवा अन्य उद्देश्यके अपने पड़ोसीको अपने समान ही मानकर उससे प्रेम करें और उसकी सेवा करें।

सेवाग्राम, १२ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १६-३-१९४०

३२३. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ मार्च, १९४०

चि० मीरा,

तुम्हारा दूसरा पत्र मिल गया है। पी०[1] के बारेमें मुझे जो-कुछ भी मालूम था, वह सब मैंने तुम्हे बता दिया है। तुम्हे किसी आदेशका उल्लंघन नही करना है। अभी किसीको सविनय अवज्ञा नही करनी है। जब इसकी घोषणा होगी तब भी जो रचनात्मक काममें लगे हुए है उनपर इसका कोई असर नही होगा। तुम ऐसे ही काम में लगी हुई हो। तुम ऐसा मानकर क्यों चल रही हो कि तुम्हें तो मैं आदेश दूँगा ही? पिछली बार तो तुम राजनीतिक हलचलोंसे सम्बद्ध थी। इस बार नही हो। सत्याग्रही दमनके लिए सदा तैयार रहता है, लेकिन वह ऐसा मानकर नही चलता कि दमन होगा। वह अपने प्रतिद्वंद्वीको बुरा नही मानता। बाधा पड़ गई; यही रोक रहा हूँ।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५१) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० १००४६ से भी

१. सम्भवतः पृथ्वीसिंह

३२४. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ मार्च, १९४०

चि० विजया,

आंबलासे आबू-सम्बन्धी तेरा पत्र आया था, उसका जवाब दे चुका हूँ।[1] कल वराडसे तेरा पत्र आया। पिताजी[2] को बहुत कष्ट हो रहा है, भगवान उन्हें मुक्त करे। आशा है, वे खूब शान्त रहते होंगे। मैं आज शामको रामगढ़ जा रहा हूँ। बा यहीं रहेगी। अमृतलाल सफरसे लौट आये हैं। तुझे पत्र लिखते होंगे।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती विजयाबहेन
[मारफत] नारणभाई पटेल
वराड, बरास्ता बारडोली
टी० वी० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२५) से। सी० डब्ल्यू० ४६१७ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

३२५. पत्र : श्रीकृष्णदास जाजूको

सेवाग्राम
१२ मार्च, १९४०

भाई जाजूजी,

खादीका प्रश्न तो मेरे सामने शुरूसे ही हमेशा रहा है। पहले मेरा आग्रह था कि यज्ञके निमित्त कातनेवालेको महीन ही कातना चाहिए। हम लोग ४० अंक तक आ गये थे। बादमें मेरा वह आग्रह नहीं रहा। पहली बात तो है उस प्रथाका पुनरुद्धार करना, और दूसरी बात है कातनेवालियोंको महीन कातना सिखाना और खुद भी सीखना। साथ ही महीन कातनेके साधनोंमें और भी सुधार करना।

१. देखिए पृ० ३४८।
२. नारणभाई वल्लभभाई पटेल

वार्षिक सम्मेलन होना तो अच्छा ही है। गांधी सेवा-संघके नामसे हो, इसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखाई देता। दूसरा नाम कहाँसे और क्यों लाया जाये? खर्चके बारेमें जो तुम कहते हो, वह ठीक है। केन्द्रको यह खर्च हर्गिज नहीं उठाना चाहिए। जो प्रान्त अपने यहाँ सम्मेलन करना चाहे, वह खर्च उठाये। हर प्रान्त अपने-अपने प्रतिनिधियोंके आने-जानेका खर्च उठाये। ऐसा करनेसे निःस्वार्थ भावना बढ़नेकी सम्भावना है। ये नई शर्तें पेश करते हुए जहाँसे [सम्मेलन करनेकी] माँग आई हो, वहाँ लिखिए। जवाब आनेपर स्थानका निर्णय करेंगे। मैं जरूर हाजिर होनेका प्रयत्न करूँगा।

किशोरलालकी जगह गोपबन्धु बाबू[1] ठीक रहेंगे।

रिसर्च[के] लिए इतना तो कहूँगा [ही]:[2]

१. खादी आदिका और अधिक व्यापक प्रसार कैसे किया जा सकता है, यह प्रश्न तो है ही।

२. क्या चरखे आदि देहाती उद्योगोंका अहिंसाके साथ कोई अनिवार्य सम्बन्ध है? यदि है, तो किस तरहका?

३. ऐसे कौन-से उद्योग हैं जो अहिंसाके बिना चल ही नहीं सकते? और वे कौन-से उद्योग हैं जिनमें हिंसा अनिवार्य हो जाती है? अथवा इस तरहका भेद ही गलत है?

४. अहिंसाकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानमें कौन-सी विशेषता है?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

३२६. बातचीत : ईसाई मिशनरियोंके साथ[3]

सेवाग्राम
[१२ मार्च, १९४०][4]

प्र० : आप जन-नेतृत्व अपनानेको कैसे प्रेरित हुए?

उ० : यह तो मेरे पास मेरे माँगे बिना, कोई कोशिश किये बिना अपने-आप आ गया। मैं तो यह भी नहीं जानता कि मैं कैसा नेता हूँ, और मैं जो-कुछ कर रहा हूँ वह नेतृत्व है या सेवा। लेकिन वह चाहे कुछ भी हो, मुझे तो बिना माँगे ही मिला है।

१. गोपबन्धु चौधरी
२. यह वाक्य हिन्दी में है।
३. महादेव देसाई के "वीकेजनल नोट्स" शीर्षक लेखसे उद्धृत
४. १२ मार्चको गांधीजी रामगढ़के लिए रवाना हुए थे, और यह बातचीत उसी दिन हुई थी।

लेकिन जो लोग मिलने आये थे वे अपने-आपको नेता मानते थे और ईसाई विचारधाराके नेताओंके रूपमें ही उन्होंने गांधीजी से मार्गदर्शन माँगा।

मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि आप जो भी कहें और करे उसमें धर्मशास्त्र कम और सचाई अधिक हो।

कृपया आप अपने कथनको स्पष्ट करें।

जो स्पष्ट है उसे मैं और स्पष्ट कैसे करूँ? जिन अनेक माध्यमोंसे दुनियामें तरह-तरहके असत्योंका प्रतिपादन किया गया है उनमें से एक प्रमुखतम माध्यम धर्मशास्त्र है। मैं यह नही कहता कि उसकी माँग नही है। दुनियामें अनेक संदिग्ध वस्तुओंकी माँग है। लेकिन जिन लोगोंका कार्यके रूपमें धर्मशास्त्रसे सम्बन्ध है उन्हें भी उससे ऊपर अवश्य उठना है। मेरे दो घनिष्ठ ईसाई मित्रों[1] ने धर्मशास्त्रको त्यागकर ईसामसीहकी शिक्षाके अनुसार अपने जीवनको ढालनेका निश्चय किया।

क्या आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ईसामसीहके अध्ययनसे स्वयं आपको कोई बड़ी उपलब्धि नहीं हुई है?

क्यों? बेशक, मुझे ऐसी उपलब्धि हुई है, लेकिन मैं आपको बता दूँ कि वह ईसाई धर्मशास्त्र या धर्मशास्त्रियों द्वारा उसकी साधारण व्याख्याके कारण नही हुई है। क्योंकि उनमें से बहुत-से कहते हैं कि 'गिरि-प्रवचन' (सरमन ऑन द माउंट) साधारण सांसारिक कार्योंके लिए नही है; और वह केवल उन बारह शिष्योंके लिए था। मैं इस बातको नहीं मानता। मेरे विचारसे अगर हम सबके दैनिक जीवनमें उसका महत्त्वपूर्ण उपयोग नही है तो वह व्यर्थ है।

क्या ईसामसीहकी शिक्षाओंमें वर्तमान समस्याओंका हल नहीं मिल सकता?

देखिए, अब आप मुझे गहरे पानीमें खीच रहे हैं। इसमें तो मैं डूब ही जाऊँगा।

नये भारतकी वर्तमान विचारधारा क्या है?

इस प्रश्नका उत्तर तो एक साहसी और जानकार व्यक्ति ही दे सकता है। लेकिन मै आपको बता दूँ कि आप दिये गये समयसे अधिक देर तक बातचीत कर चुके हैं।[2] अगर आप सवालोंपर सवाल करते चले जायेंगे तो मैं निरस्त जरूर हो जाऊँगा, लेकिन उससे आपको भी कोई लाभ नहीं होगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-३-१९४०

१. सैम्युअल ई० स्टोक्स और सी० एफ० एन्ड्र्यूज

२. गांधीजी रामगढ़ जानेकी तैयारीमें व्यस्त थे, फिर भी उन्होंने मिशनरियोंको पाँच मिनटका समय दिया था।

३२७. तार : कार्ल हीथको

[१३][1] मार्च, १९४०

कार्ल हीथ
फ्रेंड्स हाउस, यूस्टन, लन्दन

आपका पत्र[2] मिला। कांग्रेस किसीपर हुक्म नहीं चलाती। संविधान-सभा या उसके-जैसी सभामें सभी विचारधाराओंके लोग शामिल होंगे। कांग्रेसी, मुस्लिम लीगवाले और अगर निर्वाचित प्रतिनिधियोंके रूपमें आयेंगे तो देशी नरेश भी। ऐसी सभाका मतलब अपने आपमें सहमति है, न कि जबरदस्ती। परिस्थिति अब जटिल है। कुछ महीने पहले ऐसी नहीं थी। कांग्रेसके रुखको ईमानदारी-भरा और युक्तियुक्त मानता हूँ तथा वर्तमान परिस्थितिके तकाजेको पूरा करनेवाला। प्रतिनिधियोंकी प्रारम्भिक छोटी बैठकपर आपत्ति नहीं है। कठिनाई यह है कि उन्हें चुनेगा कौन ? हम सब समझौता चाहते हैं, लेकिन लक्षण इसके विपरीत संकेत देते हैं।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३५) से

३२८. पत्र : कार्ल हीथको

रामगढ़ जाते हुए रेलगाड़ीमें
१३ मार्च, १९४०

प्रिय मित्र,

आपके २३ फरवरीके पत्र[3] को मैंने कई बार पढ़ा।

हम दोनोंमें तो कोई मतभेद होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि हमारे बीच पूर्ण हार्दिक तादात्म्य है और साधन तथा साध्यके सम्बन्धमें पूर्ण सहमति है।

१. साधन-सूत्रमें "१४ मार्च" है, लेकिन १३ मार्चको एगथा हैरिसनको लिखे पत्रमें इस तारके उल्लेखसे प्रकट होता है कि इसका मसविदा तो १३ मार्चको ही तैयार किया गया, लेकिन इसे भेजा गया १४ मार्चको हजारीबागसे।

२ और ३. देखिए "एक और अंग्रेजका पत्र", पृ० ३८३-८८।

इसलिए यदि हमारे बीच कोई मतभेद शेष भी है तो वह तथ्योंके अधूरे बोधके कारण ही हो सकता है।

कांग्रेस किसीपर जबरदस्ती अपना आदेश नहीं चलाती और न उसका यही दावा है कि उससे कोई भूल हो ही नहीं सकती। अलबत्ता वह किसीकी — उदाहरणके लिए, मुस्लिम लीगकी — तानाशाही स्वीकार करनेको तैयार नहीं है; यहाँ तक कि वह ब्रिटिश सरकारकी भी तानाशाही स्वीकार करनेको तैयार नहीं है, यद्यपि वास्तविकता यही है कि वह सरकार तानाशाह है। इसलिए यदि वह अपनी तानाशाही नहीं छोड़ती तो उसे उस स्थानसे च्युत करनेके लिए, जिस पर उसे कभी आसीन ही नहीं होना चाहिए था, कांग्रेसको मजबूर होकर अपने एकमात्र अहिंसात्मक अस्त्रका उपयोग करना पड़ेगा।

कांग्रेसकी माँग है क्या? यह कि सभी सम्बन्धित पक्ष मिलकर एक ऐसे न्यायाधिकरणकी नियुक्ति करें जो सही निर्णयपर पहुँचनेमें भूल न करे — मतलब यह कि वयस्क-मताधिकारके आधारपर चुने गये प्रतिनिधियोंकी एक संविधान-सभा या उसके-जैसी और कोई सभा बुलाई जाये। पूर्ण स्वराज्य या ठीक ढंगके औपनिवेशिक स्वराज्यका भी कोई मतलब नहीं है, यदि उसका आधार भारतकी जनताके आत्मनिर्णयके अधिकारकी स्वीकृति नहीं है। संविधान-सभामें अल्पसंख्यक समुदायोंके प्रतिनिधि अपनी इच्छानुसार संरक्षात्मक उपायोंकी व्यवस्था करवा पायेंगे। ऐसी निर्वाचित सभाकी कार्यवाहीमें किसीको बाधा नहीं डालने दिया जा सकता — न कांग्रेसको और न मुस्लिम लीगको। जो कोई ऐसा करता है वह तानाशाही चला रहा है।

अब सवाल रहा देशी राजाओंका। वे संविधान-सभामें आनेके लिए स्वतन्त्र हैं, बशर्ते कि वे सामान्य मतदाताओं द्वारा नहीं, स्वयं [अपनी][1] ही प्रजा द्वारा बालिग मताधिकारके आधारपर निर्वाचित होकर आयें। याद रखिए कि वे ब्रिटिश सरकारकी सृष्टि हैं। जो सन्धियाँ जन-अधिकारोंके विरुद्ध हैं उनका कोई महत्त्व नहीं है, लेकिन कांग्रेसने कभी भी किसी सन्धिसे जुड़े दायित्वोंको भंग करनेका सुझाव नहीं दिया है। भारतमें ब्रिटिश हुकूमतका इतिहास तोड़ी गई सन्धियों और भंग किये गये वचनोंके विवरणसे भरा पड़ा है। लेकिन स्वयं मैं इस विषयमें ब्रिटिश सरकारकी कठिनाईको समझता हूँ। उसने जिस दानवकी सृष्टि की है उसे एकाएक मिटा नहीं सकती। इसीलिए मैंने कहा है, "केवल ब्रिटिश भारतकी समस्या ही निबटाइए।" ब्रिटिश सरकारने देशी राजाओंकी कोई बात उठाये बिना प्रान्तोंको — अर्थात् ब्रिटिश भारतको — स्वायत्त शासनके नामपर वह चीज दी है जो व्यवहारतः ऐसा स्वायत्त शासन सिद्ध हुई है जैसा नगरपालिकाओंको दिया जाता है। अब वह ब्रिटिश भारतकी जनताको, जैसा ऊपर सुझाया गया है उस ढंगसे निर्वाचित प्रतिनिधियोंके द्वारा, अपनी शासन-पद्धतिका निर्णय करनेका अधिकार देनेकी उदारता दिखाये।

१. साधन-सूत्र में अस्पष्ट है।

आपने कहा है, "कोई छोटी-सी, किन्तु बहुत ही जिम्मेदार ढंगकी परिषद्, जिसमें देशका प्रतिनिधित्व करनेवाले दर्जन-भर भारतीय शामिल हों, खानगी तौर पर बैठे और वांछित विधानकी मुख्य-मुख्य बातोंके सम्बन्धमें विचार करके एक रायपर पहुँच जाये।" वाइसरायने इस सुझावपर चर्चा की। कठिनाई यह है कि उन लोगोंको चुनेगा कौन? आजके कृत्रिम वातावरणमें निर्वाचित प्रतिनिधियों से कम किसी भी चीजसे कोई नई बात होनेवाली नहीं है। ऐसी समितिका चुनाव तो स्वभावतः बृहत्तर संविधान-सभा ही करेगी।

जो बात मैंने कही है वह तानाशाही ढंगसे कभी नहीं की जा सकती। वह की जा सकती है तो सम्बन्धित पक्षोंकी सहमतिसे ही। यदि हम छद्मावरण हटा कर देखें तो इस प्रश्नका सीधा-सादा यही रूप बनता है। क्या ब्रिटिश सरकार इस आशयकी घोषणा करनेको तैयार है कि अगर सम्भव हो तो देशी राज्यों-सहित सारे भारतके लिए और अगर देशी नरेश राजी न हों तो केवल ब्रिटिश भारतके लिए शासनका रूप तय करनेके निमित्त वह शीघ्र-से-शीघ्र — और युद्धकी समाप्ति तक तो अवश्य ही — वयस्क-मताधिकारके आधारपर निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी संविधान-सभा या इससे मिलती-जुलती कोई सभा बुलायेगी? जब तक ऐसी सभा नहीं बुलाई जाती तब तक भारत सरकारका संचालन यथा सम्भव इस तरह किया जायेगा मानो वह केन्द्रीय विधान-सभाके सरकारी[1] सदस्योंको छोड़कर शेष सदनके प्रति उत्तरदायी हो। और वाइसरायकी परिषद्‌के बहुसंख्यक सदस्य विधान-सभाके निर्वाचित सदस्योंमें से लिये जायेंगे।

ऊपर मैंने जो-कुछ कहा है उसमें अगर आपको हुक्म चलाने-जैसी कोई चीज दिखे या समझौतेकी भावनाका अभाव अथवा ब्रिटेनकी कठिनाईको समझनेकी अनिच्छाका आभास मिले तो आप मुझे वैसा लिखिए और बताइए कि जो कसौटी मैंने रखी है उसमें दोष कहाँ है। फिर मैं आपका समाधान करनेकी कोशिश करूँगा। जिम्मेदार कांग्रेसी ब्रिटिश सरकारसे ख्वाहमख्वाह झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते। इसके विपरीत वे समझौतेके हर उपायको आजमाकर देखनेको उत्सुक हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३४) से

१. साधन-सूत्रमें "गैर-सरकारी" लिखा है।

३२९. पत्र : एगथा हैरिसनको

रेलगाड़ीमें
१३ मार्च, १९४०

प्रिय एगथा,

भाई कार्ल हीथके पत्रके उत्तरमें उन्हें एक तार भेज रहा हूँ। उनको लिखे पत्र[1] और उस तारकी[2] नकलें साथमें हैं।

बात बिगड़ती जा रही है। इस स्थितिको रोकनेकी पूरी कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन शायद यह रुकनेवाली नहीं है। अंग्रेज सत्ताका त्याग करनेमें डरते हैं। फिर भी तुमसे यही कहूँगा कि चिन्ता मत करो। मैं तो नहीं करता। अगर हम अपना काम सही ढंगसे कर रहे हैं तो फिर परिणामोंकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। आखिर परिणामोंपर हमारा कोई वस तो है नहीं। जब तक देशी नरेशों और मुस्लिम लीगको रास्तेमें विघ्न बनाकर खड़ा किया जाता रहेगा, तब तक समझौतेकी कोई सम्भावना नहीं है। देशी नरेशोंके रूपमें एक नई बाधा खड़ी की गई है। पहले कभी उन्हें सामने नहीं लाया गया था। मुस्लिम लीग अपनी असम्भव माँगोंके साथ देशकी प्रगतिमें बाधा डालनेकी कोशिश कर रही है। उसे वैसा नहीं करने दिया जा सकता। बहुत-से निजी संगठन भी हैं। लेकिन उनकी कोई खास बात नहीं है, क्योंकि वे कमोबेश कांग्रेसका ही समर्थन करते हैं। उनको सन्तुष्ट करनेके लिए इससे अधिक क्या कहा जा सकता है, क्या किया जा सकता है कि उनके लिए संरक्षणात्मक उपाय स्वयं उन्हींके चुने हुए प्रतिनिधि तय करेंगे? युद्धकी व्यस्तता तो है ही। लेकिन भारतीयोंकी माँग युद्ध-सम्बन्धी चिन्ताओंका ही एक हिस्सा है। अंग्रेज कांग्रेसपर सिर्फ इसलिए अकृतज्ञताका आरोप लगा रहे हैं कि उसने एक उचित सवाल उठाया है। अब इसपर भला मैं क्या कह सकता हूँ? क्या मुझे एक उच्च नीति अपनानेके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए? क्या कांग्रेस वैसी अहिंसावृत्तिका दावा कर सकती है जैसी उसमें है नहीं? मगर यहाँकी परेशानियोंको लेकर मुझे तुम्हें परेशान नहीं करना चाहिए। वहीं क्या तुम्हें कम परेशानियाँ हैं? मैं जानता हूँ कि तुम अपनी शक्ति-भर सब-कुछ कर रही हो और यह सोच कर मुझे प्रसन्नता होती है। चार्ली मजेमें हैं।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१६) से

1 और 2. देखिए पिछले दो शीर्षक।

३३०. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

रेलगाड़ीमें
१३ मार्च, १९४०

बा,

तुझे छोड़कर आना बिलकुल अच्छा नहीं लगा। सुशीला जैसा कहे उसके अनुसार दवा और खुराक लेना। मैं तो रास्तेमें खूब सोया। स्टेशनोंपर हल्ला-गुल्ला कम था। महिला आश्रमकी बारह-एक लड़कियाँ साथ हैं। मेरी चिन्ता मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

३३१. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

१३ मार्च, १९४०

चि० बबुड़ी,

आनन्द[1] मजेमें होगा। तेरे उसे गोदमें लेकर घूमनेमें कोई हर्ज नहीं है। सुशीला इसमें तेरी मदद कर सकती है। पाँव और पेट अच्छी तरह ढँके होने चाहिए। तुझे दोनों वक्त घूमने निकलना चाहिए। शकरीबहनको भी जरूर घूमना चाहिए। बा के पास खूब बैठा करना, और भजन गाकर सुनाना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२७) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

१. शारदाबहनका पुत्र

३३२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

रेलगाड़ीमें
१३ मार्च, १९४०

चि० कृष्णचन्द्र,

शक्तिसे ज्यादा काम करनेका दोष मेरेमें कम है। कहनेका मतलब यह है कि अहिंसा प्रवृत्तिमें मर्यादासे बाहर काम करनेको स्थान ही नहीं है। जिसमें मर्यादा नही है इसमें अहिंसा नही है। मेरेमें तो कमी है ही।

रूचिकर बोलनेका तो धर्म है हि लेकिन इसमें असत्य आ जानेका भय रहता है। मेरेमें रुचिकर सत्य कहनेकी आदत है, होनी चाहीये। इसलिये मैंने लिखा कि इस गुणकी अतिशयता तो मेरेमें ही घुसी होगी। इतना पर्याप्त है न?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४०) से

३३३. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

रामगढ़
१४ मार्च, १९४०

सर माइकेल ओ'डायर[2] की मृत्यु तथा लॉर्ड जेटलैंड, लॉर्ड लैमिंग्टन और सर लुइस डेनको चोटें पहुँचनेके समाचारसे मुझे घोर पीड़ा हुई है। मैं मृतकके परिवारके प्रति संवेदना प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि घायल व्यक्ति शीघ्र ही ठीक हो जायेंगे। इसको मैं एक पागलपनका काम मानता हूँ। ऐसे कृत्य जिन उद्देश्योंकी खातिर किये जाते हैं, उन्हींके लिए घातक सिद्ध होते

१. यह हरिजन में "ऐन इनसेन ऐक्ट" शीर्षकसे छपा था।

२. १९१९ में हुए जलियाँवाला-काण्ड के समय पंजाब के ले० गवर्नर। १३ मार्च, १९४० को कैक्सटन हॉल, लन्दन, में हुई ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की सभामें ऊधमसिंहने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी थी।

आये हैं। मुझे आशा है कि इस घटनाका राजनीतिक निर्णयोंपर कोई असर पड़ने नहीं दिया जायेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-३-१९४०

३३४. भाषण : खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीमें

मझरपुरी, रामगढ़
१४ मार्च, १९४०

प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए . . . महात्मा गांधीने कहा :

मुझे विश्वास है कि हम खादी द्वारा भारतके ग्रामीणोंको सजग और आत्मनिर्भर बना सकते हैं और ऐसी शक्ति प्रदान कर सकते हैं कि वे अपने उद्धारके लिए कदम उठाने योग्य हो जायें।[2]

आप गाँववालोंको दिखा सकते हैं कि उनके पास अनेक दस्तकारियाँ हैं, जिनका विमानोंसे गिराये गये बमोंसे भी कुछ नहीं बिगड़ सकता। लेकिन वे नहीं जानते कि उनके पास कैसे खजाने हैं, अधिकांश तो लूटे जा चुके हैं, और आज वे विनाशके कगारपर हैं। अपने इन खजानोंको पहचाननेके लिए हमें उनको जगाना है, तथा उनके अज्ञान और अन्धकारको दूर करना है। इन प्रदर्शनियोंका यही उद्देश्य है।

महात्मा गांधी ने . . . अ० भा० चरखा संघके श्री शंकरलाल बैंकरको, जिन्होंने खादी और ग्रामोद्योगोंके उत्कर्षके लिए लगनसे कार्य किया है, बड़ी प्रशंसा की। प्रदर्शनीमें दिखाई गई अनेक वस्तुओंकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने घोषणा की कि भारत ने कुटीर-उद्योगोंके क्षेत्रमें निश्चय ही प्रगति की है। अनेक बाधाओंके होते हुए भी प्रगति अच्छी हुई है। वास्तवमें ग्रामोद्योग महान आर्थिक सम्भावनाओंसे आपूरित हैं।

उन्होंने जोर देकर कहा कि ग्रामीण लोगोंको बाहरी दुनियाकी स्थितिकी जानकारी कराई जानी चाहिए और यह बताया जाना चाहिए कि किस प्रकार उनका शोषण किया जा रहा है। धनी लोगोंपर एक बड़ी जिम्मेदारी है, क्योंकि ग्रामोद्योगों को

१. रामगढ़ में १५-१९ मार्चको कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक हुई जिसमें यह प्रस्ताव पास किया गया: "कार्य-समितिको यह समाचार पाकर अत्यन्त खेद हुआ है कि भारतीय कहे जानेवाले एक व्यक्तिने सर माइकेल ओ'डायरकी हत्या कर दी तथा मार्क्विस ऑफ जेटलैंड तथा कुछ अन्य व्यक्तियोंको घायल कर दिया। समिति हिंसाके इस दुर्भाग्यपूर्ण कृत्यको कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं देती। फिर भी समिति अपने इस विश्वासको दोहराना चाहती है कि ऐसे सब कार्य राष्ट्रीय हितोंके लिए हानिकर हैं।"

२. अगला अनुच्छेद *हरिजन* से लिया गया है।

सहायता देकर वे ग्राम्य जीवनका उत्थान कर सकते हैं और उसको समृद्ध बना सकते हैं। कांग्रेस पिछले पचास वर्षोंसे इस प्रकारकी सहायता जुटानेमें व्यस्त रही है।

उन्होंने आगे कहा कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए कोई संघर्ष करनेकी जरूरत नहीं है। इसे बड़ी आसानीसे और शान्तिपूर्वक प्राप्त किया जा सकता है और इसी प्रकार साम्प्रदायिक एकता भी स्थापित की जा सकती है।

महात्मा गांधीने ग्रामीण लोगों को ऐसा ज्ञान देनेकी आवश्यकतापर जोर दिया जिससे उन्हें अपनी क्षमताओंका भान हो सके। उन्होंने कहा, यदि वे बेकार हो गये हैं या उनका शोषण हो रहा है तो इसका कारण मुख्यतः उनका अज्ञान ही है। इस अज्ञानको हर कीमतपर दूर करना चाहिए और लोगोंको समझाना चाहिए कि उन्हें, जिस प्रकार वे पहले जीते रहे हैं और निराशाके दलदलसे निकलनेमें असमर्थ रहे हैं, उसी प्रकार जीनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें बाहरी दुनियाकी भी कुछ जानकारी होनी चाहिए और यह मालूम होना चाहिए कि उनके देशका किस प्रकार शोषण होता रहा है। इस प्रकारके शोषणको रोकनेका सबसे प्रभावकारी तरीका यह है कि ग्रामोद्योगोंका, विशेष रूपसे चरखेका, पुनरुद्धार किया जाये। कांग्रेस पिछले पचास वर्षोंसे ग्रामोंके उद्धारके लिए प्रयत्नशील है। इन्हीं प्रयत्नोंके क्रममें खादी संघ और तालीमी संघका जन्म हुआ। खादी संघ चरखेका प्रचार-प्रसार कर रहा है, और तालीमी संघ लोगोंको यह शिक्षा दे रहा है कि किस प्रकार साम्प्रदायिक एकता स्थापित की जा सकती है।[1]

सच्ची भारतीय सभ्यता भारतीय ग्रामोंमें ही है। आधुनिक शहरी सभ्यता हमें यूरोप और अमेरिकामें तथा अपने यहाँके उन चन्द नगरोंमें देखनेको मिलती है जो पाश्चात्य नगरोंकी नकल हैं और जिनका निर्माण विदेशियों द्वारा और विदेशियोंके लिए किया गया था। लेकिन वे टिक नहीं सकते। कालके थपेड़ोंको झेलकर खड़ी रहनेवाली और उसकी कसौटीपर खरी उतरनेवाली सभ्यता तो दस्तकारियोंपर आधारित सभ्यता ही है। लेकिन यह सभ्यता भी तभी टिक सकती है, कालकी कसौटीपर तभी खरी उतर सकती है जब हम शरीर-श्रमके साथ बौद्धिकताका सम्मिश्रण करें। स्वर्गीय मधुसूदन दास कहा करते थे कि हमारे किसान और मजदूर बैलोंके साथ काम करते-करते और बैल बन गये हैं; और वे ठीक ही कहते थे। हमें उन्हें जानवरकी स्थितिसे उठाकर मनुष्यकी स्थितिमें लाना है, और यह हम केवल बौद्धिकताका शरीर-श्रमके साथ सम्मिश्रण करके ही कर सकते हैं। जब तक वे बुद्धिपूर्वक काम करना और प्रति-दिन कुछ नया बनाना नहीं सीख लेते, जब तक उन्हें काम करनेसे होनेवाली प्रसन्नताका अनुभव करना नहीं सिखाया जाता, तब तक हम उन्हें उसकी निम्न स्थितिसे नहीं उबार सकते।

१. अगला अनुच्छेद **हरिजन** से लिया गया है।

सच्चे भारतका प्रतिनिधित्व बम्बई या कलकत्ता नहीं करता, अपितु वास्तविक भारत तो समूचे देशमें फैले हुए सात लाख गाँव ही हैं। ग्रामीण जनोंको, उनके अन्दर जो क्षमता और योग्यता सहज ही विद्यमान है, उसका बोध कराना है और उन्हें अपनी मूलभूत आवश्यकताओंके लिए स्वयं अपनेपर आश्रित रहना सिखाना है। उन्हें इस लायक बनाना चाहिए कि वे अपनी जरूरतकी खाद्य सामग्री और वस्त्रोंका उत्पादन स्वयं कर सकें। यह खादी तथा ग्रामोद्योगोंके कार्यक्रमको सफलतापूर्वक कार्यान्वित करके ही किया जा सकता है।

भाषण जारी रखते हुए महात्मा गांधीने तालीमी संघ (बुनियादी शिक्षा) पर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा कि यह साम्प्रदायिक समस्याका समाधान कर सकता है। सच तो यह है कि अब तक इस योजनापर जितना काम किया गया है उससे प्रकट होता है कि इसके बलपर यह ध्येय प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने दावा किया कि बुनियादी शिक्षाकी योजना पक्षपातकी भावनासे तनिक भी प्रेरित नहीं है। यह बिलकुल असाम्प्रदायिक है। बहुत-से लोगोंने अलग-अलग दृष्टिकोणोंसे अक्सर इस योजनाकी आलोचना की है, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि यह योजना हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पूर्ण एकता स्थापित कर सकती है।

भाषण जारी रखते हुए गांधीजी ने कहा कि भारतके किसी भी सुधारको गाँवों से ही शुरू करना चाहिए। . . .

गांधीजी ने यह स्वीकार किया कि गाँवकी दस्तकारियोंसे बनी चीजोंका निर्यात नहीं किया जा सकता। मगर मैं चाहता भी नहीं कि उनका निर्यात किया जाये। मैं तो यह चाहता हूँ कि गरीब ग्रामवासी अपनी रोटी और कपड़ा कमा सकें। खादी का सन्देश देशके सामने १९१९ से ही रखा जा चुका है। चरखा संघ, ग्रामोद्धार योजना और तालीमी संघ भी उसीके परिणाम हैं। उन्होंने आशा व्यक्त की कि लोग प्रदर्शनीको और अधिक समय देंगे।

ग्रामोद्योगोंके महत्त्वपर दोबारा जोर देते हुए महात्मा गांधीने हार्दिक अनुरोध किया कि भारतकी मुक्तिकी खातिर प्रत्येक भारतवासीको इन उद्योगोंको गम्भीरतापूर्वक अपनाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजार पत्रिका, १५-३-१९४०, और हरिजन, ३०-३-१९४०

३३५. चर्चा : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें[1]

रामगढ़
१५ मार्च, १९४०

गांधीजी : यदि कांग्रेसकी ओरसे इस प्रकारका कोई वक्तव्य[2] निकाला जाये तो उससे जन-सामान्यको शिक्षित करनेमें सहायता मिलेगी। इससे हमारा लक्ष्य जिस प्रकारकी स्वाधीनता प्राप्त करना है उसका एक चित्र देशके सम्मुख प्रस्तुत हो जायेगा। . . .[3]

गांधीजी ने यह प्रस्ताव छोड़ दिया, फिर भी उनका मत था कि वर्तमान स्थिति में ऐसी घोषणा करना गलत नहीं होगा। जनताको अपनी आजादीका अर्थ समझा देनेमें हमारा भला होगा।

गांधीजी ने समितिके सदस्योंसे कहा कि आप लोग मुझे इन तीन प्रश्नोंके बारेमें बतायें: (१) यदि कांग्रेसके सामने हिन्दू भारत और मुस्लिम भारतके रूपमें भारतका विभाजन किये जानेकी माँग हो तो उस समय कांग्रेसकी क्या स्थिति होनी चाहिए? (२) क्या देश सविनय अवज्ञा आन्दोलनके लिए तैयार है? (३) संविधान-सभाके सम्बन्धमें आप लोगोंकी सही-सही कल्पना क्या है?[4]

गांधीजी : संविधान-सभाका मैं जो अर्थ समझता हूँ उसका चित्र मैं आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। हम संक्रमण कालमें ब्रिटिश सरकारके लिए कोई शर्तें नहीं रखेंगे। उनकी सेना देशमें रहेगी, और उनका प्रशासनिक तन्त्र भी रहेगा। संविधान-सभा बननेसे पहले और उसके बाद ब्रिटिश सरकारसे एक समझौता होगा। यदि सभामें हमारी अल्पसंख्या हो तो संविधान-सभाके निर्णयोंको, वे चाहे जो हों, हम और किसी खातिर नहीं तो अनुशासनकी ही खातिर

१. इस बैठकमें अबुल कलाम आजाद, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, अब्दुल गफ्फार खाँ, जमनालाल बजाज, पट्टाभि सीतारमैया, भूलाभाई देसाई, शंकरराव देव, प्रफुल्लचन्द्र घोष, हरेकृष्ण मेहताब और जे० बी० कृपलानी उपस्थित हुए थे। राजेन्द्रप्रसादने अध्यक्षताकी थी। च० राजगोपालाचारी और गांधीजी विशेष आमन्त्रण पर उपस्थित थे। कार्य-समिति की बैठकें १५ से १९ मार्च, १९४० तक हुईं।

२. इससे पूर्व गांधीजीने जयप्रकाश नारायण द्वारा भेजा गया एक प्रस्तावका मसविदा पढ़कर सुनाया था; उसके पाठके लिए देखिए "जयप्रकाश द्वारा प्रस्तुत चित्र", १४-४-१९४०।

३. इस प्रस्तावका अबुल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू और वल्लभभाई पटेलने विरोध किया।

४. इसके बाद भूलाभाई देसाई, प्रफुल्लचन्द्र घोष, पट्टाभि सीतारमैया, और राजेन्द्रप्रसाद आदि अन्य लोगोंने भाषण दिये।

मान लेंगे। यदि सभा सेनाको कायम रखना चाहे तो हम विरोध नही करेंगे। यदि कोई अल्पसंख्यक लोग सेनाको रखना चाहें तो मैं उसके हटाये जानेकी जिद भी नही करूँगा। यदि असम्भव माँगें पेश की जायें तो भी हमें उनके सामने सिर झुकाना होगा। यदि भ्रष्टाचारी लोग आ जायें और सारा मामला चौपट कर दें तो हम लाचार हैं। संविधान-सभाके लिए मताधिकार जितना व्यापक होगा उतना ही अच्छा है। संविधान-सभाके बनने और सुचारु रूपसे काम करनेके लिए आपसी सौहार्द आवश्यक है। इसके अभावमें ब्रिटिश सरकार अवश्य ही हमारा पलड़ा हलका करनेके लिए राजाओं और मुसलमानोंका प्रयोग कर सकती है।

आपसे मैंने जो-कुछ सुना है उससे मेरा यह विश्वास और भी पुष्ट हो गया है कि हमारा देश सविनय अवज्ञा आन्दोलनके लिए तैयार नही है। अपनी तैयारियाँ बढ़ानेकी मुझे कोई विशेष सम्भावना दिखाई नही पड़ती। संयुक्त प्रान्तमें जो-कुछ सम्पन्न हुआ है वह अच्छा है। परन्तु वहाँ जवाहरलालजी ने जो जागृति उत्पन्न की है उससे मैं अहिंसाका विकास नही कर सकता। खादी जनतामें अहिंसाकी शक्ति पैदा करेगी। मुझे इस बातमें जरा भी सन्देह नही है कि हम अहिंसासे पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। छोटी-सी अनुशासनपूर्ण कांग्रेसको लेकर मैं पूरे विश्वसे लड़ सकता हूँ। किन्तु हमारे पास यह जो बड़ी कांग्रेस है यह दुर्वह और लचर है। यदि सविनय अवज्ञा शुरू कर दी जाये तो 'अवज्ञा' ही रह जायेगी और 'सविनय' लुप्त हो जायेगा। जैसी हालत है, उसमें मैं सविनय अवज्ञा आरम्भ नही कर सकता। यदि कांग्रेससे [मेरा] वर्तमान सम्बन्ध टूट जाये तो शायद मैं कोई राह ढूँढ़ निकालूँ। मैं अपना कार्यक्रम नही छोड़ सकता। मैं हठी नही हूँ। मुझे विकल्पके रूपमें कोई दूसरा कार्यक्रम नही दिया गया है। प्रचार द्वारा पैदा किये हुए उद्वेलनमें से मैं कोई अहिंसक सेना तैयार करनेमें असमर्थ हूँ। लोगोंको काममें लगाकर उन्हे अनुशासित बनाना है। ऐसी सेना लक्ष्यसे भटक नही सकती। जन-सामान्यमें सुगमतासे अहिंसा पैदा की जा सकती है।

सर मॉरिस ग्वायरने भूलाभाईके साथ मुलाकातके दौरान कहा था कि गांधीजी ध्येयके सम्बन्धमें और कड़े हो गये हैं। बात सच है। मुझे दूसरे पक्षसे कोई सच्चा प्रत्युत्तर नहीं मिलता।

देशके अन्दर मेरे सामने कठिनाइयाँ हैं। मुझे संघर्षके लिए उपयुक्त उपकरण दिखाई नही पड़ता। जब तक मेरी शर्तें पूरी नही हो जातीं, तब तक मैं संघर्ष आरम्भ नही करूँगा। मैं नही चाहता कि जनता कुचल दी जाये। समुचित तैयारियोंके बिना ही यदि संघर्ष आरम्भ कर दिया जाये तो गरीबोंको कष्ट भोगना पड़ेगा। मुझे राजकोटसे हट जाना पड़ा था, क्योंकि वहाँ आन्तरिक शक्ति का अभाव था। वहाँ जो-कुछ शक्ति थी उसमें नाटकीयता थी। मेरे हट जानेमें राजकोटकी जनताकी भारी सेवा थी, क्योंकि अन्यथा वहाँ प्रतिक्रिया होती और लोगोंको कष्ट होता। मैं ऐसा कुछ नही करना चाहता जिससे पस्तहिम्मती

आये। यदि संघर्ष तो आरम्भ हो जाये, परन्तु अनुशासनमें ढिलाई हो और प्रत्येक समुदाय अपनी मनमानी करे तो सत्यानाश होगा और उद्देश्यको क्षति पहुँचेगी। सभी लोग मानते हैं कांग्रेसमें अनुशासनका अभाव है, परन्तु फिर भी सभी उसमें भाग लेते हैं। मुझे कोई परवाह नही यदि इन्तजार करनेके फल-स्वरूप लोग हतोत्साह हो जायें। उसमें अपेक्षाकृत कम बुराई है।

एक दूसरा उपाय मुझे सूझा है। आपके साथ मेरा जो सम्बन्ध है उसके भारसे मुझे मुक्त कर दिया जाये और आप लोग आगे बढ़ें। मैं अपने-आपको आगेके लिए तैयार रखूँगा। यदि जरूरत पड़ेगी तो बादमें आपके साथ शामिल हो जाऊँगा।[1] सम्भवतः मैं भरोसा रखने लायक नही हूँ और हो सकता है कि मैं आपको अप्रत्याशित मुसीबतोंमें डाल दूँ। शायद मैं अनिश्चित काल तक आन्दोलन आरम्भ ही न करूँ और एकाएक समाप्त भी कर दूँ। आप मुझसे चाहे जितना एकमत हों, परन्तु आपकी अहिंसा मेरी अहिंसाकी सीमा तक नही पहुँचती। और बीस साल तक अहिंसाका प्रयोग करनेके बाद भी यदि मैं मुसलमानोंका प्रेम और विश्वास प्राप्त करनेमें असमर्थ रहा हूँ तो मेरी अहिंसा वास्तवमें निकृष्ट कोटिकी ही हो सकती है। तो फिर मुझे और आत्म-निरीक्षण करने दीजिए, ताकि मैं अहिंसामें और शोध कर सकूँ।

मौलाना आजादकी ओर मुड़कर उन्होंने कहा :

मेरे मनमें जरा भी सन्देह नही है कि मेरे इस कदमसे कांग्रेस और देशको हानि तो कुछ भी नही पहुँचेगी, केवल लाभ-ही-लाभ होगा। यहाँ ऐसी कोई बात नही कि आपपर या कार्य-समितिके अन्य सदस्योंपर या राष्ट्रपर मैं विश्वास नहीं रखता। यहाँ तो सवाल यह है कि मुझे स्वयंपर विश्वास नही है। मुझे भरोसा है कि यदि आप मुझे छुटकारा दे दें तो मैं सम्भवतः सविनय अवज्ञा आन्दो-लनको एक शुद्धतर और अधिक उदात्त स्वरूप दे सकूँगा।

परन्तु मौलाना इस बातपर आपत्ति करने लगे। उनका मन किसी भी तरह इस प्रस्तावको मान ही नहीं रहा था। उन्होंने कहा, "आपको भूलना नहीं चाहिए कि आपके आदेशपर ही मैंने इस साल पद-ग्रहण करना स्वीकार किया था और अब आप मुझे छोड़ नहीं सकते। आपके बिना सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी बात कोई सोच ही नहीं सकता।"

राजाजी : क्या सविनय अवज्ञा ही एकमात्र उपाय है? क्या हम कोई और तरीका नहीं आजमा सकते? यदि हम समझते है कि हमारी शक्ति कम है तो हमारी माँग हमारी शक्तिके अनुरूप ही होनी चाहिए।

१. *हरिजन* की रिपोर्टमें यहाँ यह भी लिखा हुआ है: "आप लोगोंपर एक प्रकारका जो प्रतिबन्ध हो जाता है उससे आप मुक्त हो जायेंगे। और इसके साथ-साथ मैं भी इस बातके लिए स्वतन्त्र हो जाऊँगा कि जो लाखों-करोड़ों जनता मार्ग-दर्शन के लिए मेरा मुँह देखती है उसकी चिन्ता किये बिना मैं और प्रखर रूपसे अहिंसाके अपने प्रयोग कर सकूँ।"

गांधीजी : मैंने संघर्षका विचार छोड़ा तो नही है, किन्तु मुझे उसके लिए उपयुक्त वातावरण दिखाई नहीं देता। जिस आदमीने अपने जीवन-भर यह प्रयोग किया है वह उसको एक बार फिर अवश्य ही आजमायेगा। किन्तु मुझे अपने कन्धो पर कांग्रेस-संस्थाका भार ढोना पड़ रहा है। यदि मुझे मुक्त कर दें तो मैं जो दृष्टिकोण अपनाऊँगा उसमें मुझे कांग्रेसका ध्यान नही रखना पड़ेगा। मैं जब भी अपने सहयोगियोंको तैयार पाऊँगा तभी मैं संघर्ष शुरू कर सकता हूँ। अगर ऐसी स्थिति आ पड़े तो मैं अकेला भी जूझ सकता हूँ। चम्पारनमें मैंने यही किया था।[1] उस समय कांग्रेसकी प्रतिष्ठा या उसका प्रभाव मेरे पीछे नही था। मैं आपको अपने विचार बता रहा हूँ, क्योंकि यह जरूरी है कि आप मेरी स्थिति जान ले। प्रस्ताव तो अभी पास नहीं हुआ है।

मौलाना साहब : आपका लोगोंसे यह कहते रहना कि वे सत्याग्रहके लिए तैयार नहीं हैं, उनको हतोत्साह कर देता है।

गांधीजी : यदि ऐसी बात है तो मैं लाचार हूँ। जनतासे या सरकारसे मेरी जो माँग है उसको मैं घटा नही सकता। आज हमारी माँग संविधान-सभा की है। अब मैं औपनिवेशिक स्वराज्यके ढर्रेपर बात नही करता। कांग्रेसकी वह स्थिति नही रही है, वह तो मेरी स्थिति थी। अंग्रेज लोग तो उस हद तक भी जानेको राजी नही है। जो-कुछ भी हो, मैं अब वह स्थिति छोड़ रहा हूँ।[2]

[अंग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस सत्याग्रह फाइल, १९४०-४१; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३३६. एक और अंग्रेजका पत्र

पिछले सप्ताह मैंने एक प्रसिद्ध अंग्रेजके पत्रका जवाब दिया था,[3] जो हिन्दुस्तानमें है। अब मुझे इंग्लैंडसे एक दूसरे जिम्मेदार अंग्रेज मित्र[4] का पत्र मिला है। मैं नीचे उस पत्रके वे सब हिस्से उद्धृत करता हूँ, जिनकी जानकारी पाठकोंके लिए जरूरी है :

> **हमें पूरा निश्चय है कि 'दरवाजा बन्द करने'-जैसी कोई बात नहीं हुई है। अब भी सरकार किसी समझौतेपर पहुँचनेके लिए उत्कण्ठित है। चाहे साधारण तौरपर वह ऐसा न भी चाहती रही हो, पर जिस भीषण**

१. १९१७ में

२. इसके उपरान्त सभामें जवाहरलाल नेहरू, अबुल कलाम आजाद और च० राजगोपालाचारीने भाषण दिये।

३. देखिए "अंग्रेजोंके लिए" पृ० ३५२-५९।

४. देखिए "पत्र : कार्ल हीथको" पृ० ३७१-७३।

युद्धमें यह देश आज लगा हुआ है, उसे देखते हुए इस वक्त तो वह ऐसा करनेके लिए मजबूर है। किन्तु सरकारी आदमियोंके मनमें ऐसा भाव पैदा होता जा रहा है कि कांग्रेसमें यह माननेकी प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है कि 'समझौते' का मतलब वही है जो उसके खयालमें ठीक है। अगर इस बातको छोड़ भी दें कि यह समझौतेका ढंग नहीं बल्कि एकतरफा आदेश-पालन कराना है, तो भी मैं आपको यह याद दिलानेको बाध्य हूँ कि युद्ध की स्थिति इन्सानके हृदयकी उदारतामें वृद्धि नहीं करती, बल्कि इसके विपरीत, वह राजनीतिमें एक तरहका भय और कठोरता पैदा कर देती है, क्योंकि ऐसे वक्त लोग आवश्यकतावश अपने भीषण प्रयत्नमें तन्मय होते हैं और विरोधको सहन करनेमें अधिकाधिक असमर्थ होते जाते हैं।

इसलिए अगर कांग्रेस समझौतेकी भावनाको ठुकरा देती है और अटल विरोधका रास्ता अख्तियार करती है, तो ज्यादा सम्भव है कि युद्धकालिक ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल भी ऐसा ही करे। शान्तिमय समझौतेका वक्त बीत जायेगा, तो भारत और ब्रिटेन दोनोंके लिए एक भारी अनर्थ होगा। इसके बारेमें ज्यादा-कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। इसके परिणाम साफ हैं। पर मैं इतना कहना चाहता हूँ कि भारतके स्वतन्त्रता-प्राप्तिके ध्येयके प्रति अत्यधिक सहानुभूति रखनेवाले बहुतेरे लोग भी यहाँ यह महसूस कर रहे हैं कि कांग्रेस ऐसा सख्त रुख ग्रहण करके, और ब्रिटेन जिन गम्भीर, बल्कि भयंकर समस्याओं का सामना कर रहा है और जिन समस्याओंके ही कारण वह कांग्रेसकी माँग का संतोषजनक उत्तर नहीं दे रहा है, उनकी उपेक्षा करके कोई बुद्धिमानी नहीं कर रही है।

सबसे पहले भारत आत्मनिर्णयकी दृष्टिसे अपनी स्वाधीनताका दावा करता है। यहाँ लोग यह सवाल पूछते हैं: सम्पूर्ण भारत — जिसमें कांग्रेस दल, मुसलमान तथा अन्य जातियाँ और राजा भी शामिल हैं — भारतके लिए कैसी सरकार चाहता है? इसका निर्णय करनेके लिए कांग्रेस संविधान-सभाकी माँग करती है। लेकिन यह तो साफ मालूम पड़ता है कि अगर ऐसी सभा एक रायपर पहुँचने की किसी उम्मीदके साथ इस सवालको हल करनेका सफल प्रयत्न करना चाहती है, तो उसके पहले भी कुछ काम करना पड़ेगा। तब क्या यह अच्छा नहीं होगा कि सबसे पहले कोई छोटी-सी किन्तु बहुत ही जिम्मेदार ढंगकी परिषद्, जिसमें देशका प्रतिनिधित्व करनेवाले दर्जन-भर भारतीय हों, खानगी तौरपर बैठ और वांछित विधान की मुख्य-मुख्य बातोंके सम्बन्धमें विचार करके एक रायपर पहुँच जाये?

अगर यह मान लें कि यह छोटी-सी परिषद् प्रतिनिधि होगी और इसे भारत और ब्रिटेन दोनों एक जिम्मेदार समितिके रूपमें स्वीकार कर लेंगे,

रामगढ़ कांग्रेसमें डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के साथ

और अगर यह मान लें कि यह परिषद् उचित समझौतेपर पहुँच जायेगी, तो करीब-करीब यह निश्चित है कि ब्रिटिश सरकार इसके निर्णयको मंजूर कर लेगी। और यह भी मान लिया जा सकता है कि सम्पूर्ण भारतकी राष्ट्रीय विधान-सभा भी, चाहे वह समझौतेमें छोटे-मोटे जो भी परिवर्तन करना चाहे, सारतः तो उसे स्वीकार कर लेगी।

कांग्रेस हाई कमान जितना चाहता है उतना तो यह सब नहीं होगा। लेकिन अगर कांग्रेस 'लड़ाई' के लिए ही तैयार न हो, तो दूसरे पक्षोंके विचारोंसे कुछ-न-कुछ मेल-मिलाप करना ही पड़ेगा, और वस्तुतः कायम सरकारसे कार्य-पद्धतिके बारेमें समझौता करनेको उसे तैयार होना ही पड़ेगा।

यहाँ किसी हलपर पहुँचनेकी तीव्र आकांक्षा और तत्परता है। हर तरहसे इसकी जरूरत है, और इंग्लैंड तथा भारतके आपसी सम्बन्धोंके बारेमें आज यहाँ जितनी चर्चा हो रही है उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। दूसरी तरफ, लोगोंमें एक तरहका कठोर निश्चय आता जा रहा है कि कांग्रेसके आदेशके सामने सिर न झुकाया जाये। वैसे सब कांग्रेसको भारतका प्रधान राजनीतिक दल मानते हैं, लेकिन यह भी सत्य ही है कि उसका निर्णय ब्रिटेनको हल खोजनेमें भाग लेनेसे विरत नहीं कर सकता और न उसे संधियों, दायित्वों तथा वचनोंके बन्धनसे ही छुटकारा दिला सकता है।

इस समय परिस्थिति इतनी गम्भीर है कि मैं आपसे अन्तःकरणसे प्रार्थना करता हूँ कि आप धैर्यपूर्वक सहमतिपर पहुँचनेकी चेष्टाके उस अद्भुत मार्गको न छोड़ें जो हमेशा आपका रहा है और उस तरहकी विगत परिस्थितिमें न लौटें, जिसे हम दोनों समान रूपसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।

भारतीय स्वाधीनताके एक पुराने मित्रकी हैसियतसे मैं अपना यह गहरा विश्वास भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि इस लड़ाईका अन्त मित्रता और समानतामें ही होना चाहिए और हो सकता है — और सो भी इन दोनों शब्दोंके सम्पूर्ण फलितार्थोंको स्वीकार करते हुए। इसके लिए इंग्लैंडको अपना नियन्त्रण और शासन, जिसका उपयोग उसने किया है, किसी कीमत या बदलेकी माँग किये बिना भारतको लौटा देना होगा; और भारतको इंग्लैंडकी मंजूरी माँगनी होगी, उससे आत्म-समर्पणकी माँग नहीं करनी होगी। सिर्फ इसी उपायसे स्थायी शान्ति प्राप्त की जा सकती है। परन्तु यदि यह बात ठीक है तो इसकी पूर्तिके उपायोंपर भी दोनोंके बीच सहमति होनी चाहिए।

मैं बेशक यह विश्वास कर सकता हूँ कि 'सरकारी लोग' दरवाजे बन्द करना नहीं चाहते थे, किन्तु लॉर्ड जेटलैंडकी भेंट-वार्ताने सन्देहकी कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी। उनके शब्द ये थे :

मि० गांधीके इस वक्तव्यका जिक्र करते हुए कि अगर ब्रिटिश सरकार संविधान बनानेका काम भारतीयोंके जिम्मे ही छोड़ दे, तो प्रतिरक्षा, अल्पसंख्यकों, राजाओं और यूरोपीय हितोंके मसले अपने-आप हल हो जायेंगे, लॉर्ड जेटलैंडने कहा कि यद्यपि मैं मि० गांधीकी आशावादिताकी बड़ी कद्र करता हूँ, किन्तु खेद है कि मैं खुद ऐसी आशावादिता अनुभव करनेमें बिलकुल असमर्थ हूँ और महसूस करता हूँ कि जब तक कांग्रेसके नेता अपना मौजूदा रवैया जारी रखेंगे तब तक सम्मानपूर्ण समझौतेके मार्गकी कठिनाइयाँ बढ़ती ही जायेंगी।

लॉर्ड जेटलैंडने कहा कि यह बदकिस्मतीकी बात है कि कांग्रेसके प्रवक्ता 'स्वतन्त्रता' (इंडिपेंडेंस) शब्दकी अन्ध-पूजा कर रहे हैं, क्योंकि मुझे यकीन है कि इससे भारतीयोंके एक बहुत बड़े बहुमतका जिस लक्ष्यपर ध्यान है उसके बारेमें ब्रिटेनमें एक गलत धारणा फैल गई है। "मैं इसमें शक नहीं करता कि वे अपनेपर खुद हुकूमत करनेकी आजादी चाहते हैं, पर वे ब्रिटिश राष्ट्रकुलके दायरेसे अलहदा होना चाहते हैं, इसे मैं एक क्षणके लिए भी नहीं मानता। एक वहशी दुनियामें जमीन और समुद्रपर ब्रिटेन की फौजी ताकतसे उनको जो संरक्षण मिला हुआ है उसको वे बखूबी समझते हैं।"

मुझे पत्र लिखनेवाले सज्जन भारतकी समसामयिक घटनाओंका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहे हैं। वे अपने शब्दोंका सोच-समझकर इस्तेमाल करते हैं। फिर भी जाहिर है कि वे सरकारी हल्कोंमें फैले इस भ्रमको दूर करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं कि "कांग्रेसमें यह माननेकी प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है कि 'समझौते'का मतलब वही है जो उसके खयालमें ठीक है।" कांग्रेसने दुराग्रही रुख तो कभी अपनाया ही नहीं और अपनी माँगकी सीमाओंके अन्दर हमेशा ही 'समझौते'के लिए तत्परता जाहिर की है। उसकी माँग बिलकुल साफ है। वह ब्रिटिश सरकारसे कहती है: "अगर आपका इरादा सचमुच सत्ता छोड़नेका हो और आपका युद्ध अपने साम्राज्यको सुदृढ़ बनानेके लिए नहीं, बल्कि चतुर्दिक् लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए है, तो आपको भारतको स्वतन्त्र देश घोषित कर देना चाहिए और बालिग मताधिकारके आधारपर चुनी हुई संविधान-सभाको उसकी सरकारकी रूप-रेखाका निर्णय करने देना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि देशकी रक्षा, अल्पसंख्यकों, राजाओं आदिके बारेमें कठिनाइयाँ हैं, लेकिन इन कठिनाइयोंको हल करनेका बोझ आपके कन्धेसे हटकर संविधान-सभाके ऊपर आ जायेगा। अगर सभा इन कठिनाइयोंको सन्तोषजनक रूपमें हल न कर सकेगी, तो वह खुद अपना दिवालियापन साबित करेगी। आपका कर्तव्य तो पूरा हो जायेगा।" निस्सन्देह, इसमें एकतरफा आदेश-पालन करानेकी कोई बात नहीं है।

पत्र-लेखक मुझे लड़ाईके हालातकी याद दिलाते और कहते हैं कि इससे आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है। मैं कहना चाहता हूँ कि भारतका मसला इस

युद्धका एक सीधा सवाल है; और शायद युद्धका परिणाम राष्ट्रीय भारतके व्यवहार पर ही निर्भर करेगा। युद्धमें लगे हुए लोग ऐसी वातोंपर गुस्सा नही करते जिनसे युद्धके परिणामपर असर पडता हो।

मुझे इस सुझावको माननेमें कोई कठिनाई नही मालूम होती कि संविधान-सभा वुलानेके पहले कुछ और काम करना भी जरूरी है। पत्र-लेखकने "एक वहुत जिम्मेदार ढंगकी परिषद् जिसमें देशका प्रतिनिधित्व करनेवाले दर्जन-भर भारतीय हो" वुलानेका सुझाव भी रखा है। पर कठिनाई तो प्रतिनिधियोको चुननेके वारेमें है। उन्हें चुनेगा कौन? जव तक वे वाकायदा निर्वाचित न हो तव तक वे लोगोंका विश्वास नही प्राप्त कर सकते। जहाँ तक मै देख सकता हूँ, इस तरह की परिषद् सिर्फ संविधान-सभाके सदस्यों द्वारा ही नियुक्त की जा सकती है। मेरा खयाल है कि वे दिन बीत गये जब कोई भी दल, जो दल कहलाने लायक हो, सरकार द्वारा नामजद किये आदमियोंको प्रतिनिधि स्वीकार कर लेता था, जैसा कि गोलमेज परिषद्के वक्त हुआ था।

कांग्रेसको 'लड़ाई' के लिए तैयार तो होना ही पड़ेगा, और वह तैयार भी है। लेकिन वह 'लड़ाई' को वचाना चाहती है। वह मनमाने ढंगसे कोई ऐसा काम नही करेगी जिससे जनसाधारणको अपार यातनाएँ सहनी पड़ें। "वस्तुत. कायम सरकारसे कार्य-पद्धतिके वारेमें समझौता करने" के लिए कांग्रेस सदा तैयार है। क्या यह सरकार भारतको स्वतन्त्र देशके रूपमें स्वीकार करनेके लिए राजी और तैयार है? कांग्रेसके इतिहाससे प्रकट है कि उसने सदा ज्यादातर मामलोंमें दूसरे पक्षोके विचारोसे समझौता किया है और आज भी ऐसा करनेको वह तैयार है। जो वात करनेके लिए वह तैयार नही है वह है लक्ष्यमें परिवर्तन। अपने लक्ष्यकी रक्षाके लिए यदि उसे सिर्फ मुट्ठी-भर समर्थकोंवाला नगण्य दल वन जाना पड़े तो उसे इसीमें सन्तोष मानना पड़ेगा। यह एक ऐसी धरोहर है जिसे वह अपने अतीतके प्रति वेईमान हुए वगैर नही छोड़ सकती। अहिंसात्मक 'युद्ध' का अन्त तो सदा ही समझौतेमें होता है, जवरदस्ती अपना आदेश मनवानेमें कभी नही —विरोधीका तिरस्कार तो दूर की वात है। कांग्रेस व्रिटेनसे अपने न्यायपूर्ण दायित्वों और संधियोंसे मुकर जानेके लिए कहेगी या उससे ऐसी आशा करेगी, यह तो कल्पनातीत वात है।

व्रिटेनमें जिस वातका अभाव मै पाता हूँ वह है भारतके प्रति ठीक वैसा ही सलूक करनेका सच्ची इच्छा जैसा कि अगर उसकी स्थिति भारतवाली और भारतकी व्रिटेनवाली होती तो वह खुद अपने प्रति चाहता। यदि कांग्रेसका आजादीकी उस भावनाको मन्द करनेसे इनकार करना गलती है जिसके लिए दादाभाईने इतनी कोशिश की, जिसे तिलकने भारतको अपना जन्मसिद्ध अधिकार माननेकी शिक्षा दी, और जिसके लिए हजारों स्त्री-पुरुषोने प्रसन्नता-पूर्वक जेलके कष्ट और अपनी सम्पत्ति-हानि वर्दाश्त की, तो कांग्रेसका रुख जरूर अयुक्तियुक्त है। अगर इसे एक उचित भावनाके रूपमें स्वीकार कर लिया जाये तो कांग्रेसको

कोई सन्देह नही है कि और सब दृष्टियोंसे उसका रुख बहुत ही युक्तियुक्त माना जायेगा।

रामगढ़, १६ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-३-१९४०

३३७. प्रश्नोत्तर

देशी नरेश

प्र० : मुझे भय है कि आपने देशी नरेशोंके प्रश्नको टाल दिया है। सामान्यतः आप अपने विषयपर सीधे पहुँचते हैं, लेकिन न जाने क्यों आप इस विषयके इर्द-गिर्द ही घूमते रहे हैं।

उ० : इस तानेमें, यथार्थमें नही किन्तु जाहिरा तौरपर कुछ तथ्य है। बात यह है कि अबसे पहले देशी नरेशोंका प्रश्न किसी कठिनाईके रूपमें कभी सामने नही लाया गया। ब्रिटिश तरकशका यह एक नया तीर है। ब्रिटिश भारत ही आजादी के लिए लड़ रहा है। देशी राज्योंकी प्रजा भारी विषमताओंके खिलाफ अपनी-अपनी रियासतोंमें अपनी अलग लड़ाई लड़ रही है। देशी राज्यों और ब्रिटिश भारतके लोग एक ही हैं। बनावटी सरहद उनके लिए कोई मतलब नहीं रखती। लेकिन शासकोंके हिसाबसे सरहदें अत्यन्त वास्तविक हैं। ब्रिटिश कानूनने राजाओंको छूट दे दी है कि वे उन लोगोंको, जो ब्रिटिश भारतसे राज्योंमें या एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जायें, विदेशी समझें। फिर भी सचाई यह है कि राजाओंकी हस्ती केवल अंग्रेजोंकी दयापर निर्भर है। ब्रिटिश सत्ताकी इजाजतके बिना वे हिल भी नही सकते। उनके वारिस ब्रिटिश राजकी स्वीकृतिसे चुने जाते हैं। वारिसोंकी शिक्षा भी अंग्रेजोंकी देखरेखमें होती है। वे ब्रिटिश सरकारकी मरजीसे गद्दीसे उतारे जा सकते हैं। इस प्रकार जहाँ तक ब्रिटिश अंकुशका सम्बन्ध है, उनकी स्थिति सामान्य ब्रिटिश प्रजासे भी बुरी है। लेकिन जहाँ तक राज्योंकी प्रजाका सम्बन्ध है, उनपर राजाओंका असीमित नियंत्रण है। अपनी मरजीसे वे जिसे चाहें गिरफ्तार कर सकते हैं, मार भी सकते हैं। सैद्धान्तिक रूपसे ब्रिटिश राजका देशी राज्योंकी प्रजाके प्रति भी कुछ धर्म है, लेकिन उसपर क्वचित् ही अमल किया जाता है। इसलिए देशी राज्योंकी प्रजाको दोहरी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। ऊपरके वर्णनसे आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको बीचमें लाये बिना अन्य किसी रीतिसे देशी राजाओंपर प्रभाव नही डाल सकती। वास्तवमें ब्रिटिश सरकार देशी राजाओंके साथ कोई सम्पर्क होने ही नहीं देना चाहती। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं राजाओंका नाश नही चाहता। लेकिन यह मैं बेशक चाहता हूँ कि देशी राजा समयको पहचानें और अपनी

निरंकुशताको अधिक-से-अधिक सीमा तक छोड़ दें। शक्तिशाली ब्रिटिश संगीनके बावजूद ब्रिटिश भारत और देशी राज्योंकी प्रजाके बढ़ते हुए कदमोंको रोका नही जा सकता। मै तो आशा कर रहा हूँ कि देशी राजाओं और वर्तमान ब्रिटिश शासकों सहित राजा-प्रजा सबकी सम्मिलित बुद्धि इस जन-आन्दोलनको प्रचण्ड रूप धारण करनेसे रोकेंगी। कारण कि अगर इस आन्दोलनको सीधा रास्ता न दिया गया तो यह प्रचण्ड हुए विना नही रहेगा। मै तो यथाशक्य अधिक-से-अधिक अहिंसात्मक प्रयत्न कर रहा हूँ, लेकिन मेरी अहिंसा मेरी अपूर्णताओके कारण कदाचित् असफल रहे। मै उस लोगोकी सहायता माँगता हूँ जो भारतके ध्येयको विना रक्तपातके पूरा होते देखना चाहते है।

लेकिन अगर राजा नही मानते तो उनको दवानेकी माँग मै नही करता। यदि अकेला ब्रिटिश भारत स्वतन्त्र हो जाये तो मै जानता हूँ, और देशी राजा भी जानते है, कि ब्रिटिश भारतकी सच्ची आजादीका अर्थ उनकी प्रजाकी आजादी भी है। कारण, जैसा कि मै कह चुका हूँ, वे दोनों एक है। दुनियाकी कोई शक्ति हमेशाके लिए उन्हें पृथक् नही रख सकती।

मुसलमानोंके विरुद्ध बल-प्रयोग

प्र० : आप अंग्रेजी शासनसे पूर्ण स्वतन्त्रताकी बात करते हैं और साथ ही अल्पसंख्यकोंके प्रश्नको एक संविधान-सभा द्वारा तय करनेकी बात भी करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर मुसलमान आपकी बात नहीं मानते तो अपनी मर्जीके आगे उन्हें झुकानेके लिए आप ब्रिटिश सेनाका उपयोग करना चाहेंगे।

उ० : यह प्रश्न पूछनेमें मेरी स्थितिका और, जहाँ तक मै जानता हूँ, काग्रेसकी स्थितिका भी ध्यान नही रखा गया है। काग्रेस आजादी और ब्रिटिश सेनाका उपयोग एक साथ नही माँग सकती। लेकिन इतना ही नही है। काग्रेस मुसलमानोपर या अन्य किसी भी अल्पसंख्यक वर्गपर दबाव नही डालेगी। ऐसा करना अहिंसक तरीका नही होगा। सबसे बड़ा दबाव तो ब्रिटिश दबाव है, और काग्रेस उस दबावसे मुक्त होनेके लिए अधीर है। संविधान-सभा चाहनेमें मेरी आशा यह रही है कि मुसलमानोका प्रतिनिधित्व चाहे लीगी मनोवृत्तिके लोग करें या कोई और, प्रतिनिधियोंके सामने जब वास्तविकता आयेगी तो वे भारतको धर्मोके अनुसार बाँटनेका विचार नही करेंगे, बल्कि भारतको एक अविभाज्य इकाई मानेंगे और विशेष मुस्लिम प्रश्नोका भी राष्ट्रीय यानी भारतीय हल निकालेंगे। लेकिन अगर मेरी यह आशा न फली तो कांग्रेस भारतके मुसलमानोंकी स्पष्ट इच्छाका विरोध बल-प्रयोग द्वारा नही कर सकती। यह कहनेकी जरूरत ही नही है कि काग्रेस राष्ट्रके विभाजनको रोकनेके लिए ब्रिटिश फौजकी मदद कभी नही ले सकती। मुसलमान ही ऐसे हैं जो अकेले या ब्रिटिश सहायतासे प्रतिरोध न करनेवाले भारतपर बलपूर्वक अपनी इच्छा लादना चाहेंगे। अगर काग्रेसको मै अपनी राहपर चला सकूँ तो मैं मुसलमानोको बल-प्रयोग करनेका कष्ट न दूँ। मै उनके शासनमें रहना स्वीकार कर लूँ, क्योंकि फिर भी आखिर शासन

तो भारतीय ही होगा। दूसरे शब्दोंमें, कांग्रेस प्रत्येक प्रश्न और हर एक कठिनाई-का हल अहिंसक ढंगसे ढूंढ़ेगी। लेकिन जैसे यह सम्भव है कि संविधान-सभाके मुस्लिम प्रतिनिधि मुस्लिम लीगसे अलग विचारोंके हों, वैसे ही यह भी सम्भव है कि अन्य प्रतिनिधियोंका रुख कांग्रेसी रुखसे भिन्न हो। उस हालतमें, ब्रिटेनका स्थान पूर्ववत् कायम रहेगा, केवल इतना होगा कि दोनों पक्षोंमें से कभी यह और कभी वह उसे रिझायेगा और ब्रिटेन भारतका भाग्य-विधाता बना रहेगा। कारण, कांग्रेसके उखड़ जानेपर अहिंसा हवामें उड़ जायेगी और रिझानेवाले पक्षके स्वेच्छापूर्ण सहयोगसे ब्रिटेनकी प्रबलतर हिंसा-शक्ति भारतपर आसानीसे शासन करेगी। क्योंकि ब्रिटिश शक्तिकी बराबरी करनेवाली एकमात्र शक्ति — भले ही वह अधूरी हो — कांग्रेसकी अहिंसा ही है।

संस्कृतकी उपेक्षा

प्र० : क्या आप जानते हैं कि पटना विश्वविद्यालयने एक तरहसे संस्कृतकी पढ़ाईपर निषेध लगा दिया है? क्या आप इस कार्रवाईको सही मानते हैं? यदि नहीं तो क्या 'हरिजन' में इसपर अपनी राय जाहिर करेंगे?

उ० : मुझे मालूम नहीं कि पटना विश्वविद्यालयने क्या किया है। मगर मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि संस्कृतकी पढ़ाईकी बुरी तरह उपेक्षा की जा रही है। मैं तो उस पीढ़ीका आदमी हूँ जिसका प्राचीन भाषाओंकी पढ़ाई-में विश्वास था। मैं यह नहीं मानता कि ऐसी पढ़ाईसे समय और शक्ति बरबाद होती है। मैं मानता हूँ कि इससे आधुनिक भाषाओंकी पढ़ाईमें मदद मिलती है। यह बात, जहाँ तक भारतवर्षका सम्बन्ध है, अन्य किसी भी प्राचीन भाषाकी अपेक्षा संस्कृतपर अधिक लागू होती है, और हर राष्ट्रवादीको संस्कृत पढ़नी चाहिए। क्योंकि इससे प्रान्तीय भाषाओंका अध्ययन आसान हो जाता है। इसी भाषामें तो हमारे पूर्वजोंने सोचा और लिखा था। अगर हिन्दू बच्चोंको अपने धर्मकी भावना हृदयंगम करनी है तो एक भी लड़के या लड़कीको संस्कृतका प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं रहना चाहिए। देखिए, गायत्री मंत्रका अनुवाद ही नहीं हो सकता। मूल मन्त्रमें जो संगीत है वह अनुवादमें कहाँसे आयेगा, और मेरी रायमें उसका एक अपना अर्थ है। मैंने जो-कुछ कहा है, गायत्री तो उसकी सिर्फ एक मिसाल है।

रामगढ़, १७ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २३-३-१९४०

३३८. टिप्पणियाँ

लन्दनमें हुई हत्या

सर माइकेल ओ'डायरकी हत्या[1] और लॉर्ड जेटलैंड, लॉर्ड लैमिंग्टन तथा सर लुइस डेनकी हत्याके प्रयत्नका और भी जो विवरण अखबारोंके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे मेरी इस राय की पुष्टि होती है कि यह पागलपनका काम था। लेकिन इसी कारण यह कम मलामतके काबिल नही है। सर माइकेल ओ'डायरके साथ हमारा मतभेद जरूर था, लेकिन उनकी हत्यापर हमारे दु.खी होने या उनकी पत्नी और कुटुम्बियोंके प्रति समवेदना प्रकट करनेमें उस मतभेदसे कोई रुकावट नही होनी चाहिए। मै चाहूँगा कि हर-एक देशभक्त भारतीय मेरी ही तरह इस कृत्यपर लज्जा अनुभव करे और इस वातपर हर्षानुभव करे कि तीन प्रतिष्ठित अंग्रेजों की जानें तो बच गईं। लॉर्ड जेटलैंडसे हमें शिकायत जरूर है। उनकी प्रतिक्रियावादी नीतिसे हमें लड़ना चाहिए, लेकिन हमारे प्रतिरोधमें द्वेष या प्रतिहिंसा नहीं होनी चाहिए। अखवार हमें वताते है कि अभियुक्त जव अदालत और दर्शकोंके सामने लाया गया तो उसने मस्ती-भरी वेपरवाही दिखाई। लेकिन मै इसकी प्रशंसा नहीं करता। मेरे लिए तो यह पागलपन जारी रहनेकी ही निशानी है। अभियुक्त अपनी वहादुरीके मदमें चूर है। मै ऐसे लोगोंको जानता हूँ जिन्होंने शरावके नशेमें ऐसी अन्धाधुन्धीसे काम किया जैसा वे अपने होश-हवास दुरुस्त होनेपर नही कर सकते थे। यह भी मुझे मालूम हुआ है कि जिन सैनिकोंको खास तौरसे खतरनाक कामोंके लिए भेजा जाता है उनके लिए अतिरिक्त रमका इन्तजाम किया जाता है। उस कामके लिए मै किसकी प्रशंसा करूँ — रमकी या उसके असरकी? 'एसेसिन' (हत्यारा) शब्दकी व्युत्पत्ति ही मादक भंग 'हशीश' से है, जो भावी हत्यारोंको इसलिए खिलाई जाती थी जिससे उनका विवेक कुण्ठित हो जाये। अभियुक्तके इस सतत उन्मादसे हमारे अन्दर तरस और रंजकी भावना आनी चाहिए।

अगर हमें ईमानदारी और सचाईके साथ लड़ना है, तो हमें, जहाँ तक इन्सानसे मुमकिन है, ऐसा करना चाहिए जिससे हर-एक अंग्रेज यह महसूस करे कि हमारे वीच भी वह अपने घरकी ही तरह सुरक्षित है। इस बातसे मुझे वड़ी शर्म है और रंज होता है कि कमसे-कम कुछ समय तक तो लन्दनमें हर-एक हिन्दुस्तानीको सन्देहकी नजरसे ही देखा जायेगा। क्या हम सवके लिए यह महसूस करना सम्भव नही है कि हत्याके द्वारा जनसाधारण को कभी स्वतन्त्रता नही मिलेगी? मैं चाहूँगा कि इन पंक्तियोंको पढनेवाला हर-एक व्यक्ति यह जान ले कि ऐसे प्रत्येक

१. देखिए 'वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", पृ० ३७६-७७ भी।

कार्यसे हमारी अहिंसात्मक लडाईको नुकसान पहुँचता है, और इसलिए वह पागल-पनके ऐसे कार्योंसे मन ही मन या खुले तौरपर अपना कोई सम्बन्ध न रखें।

राष्ट्रीय सप्ताह

६ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक हर साल राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता रहा है। ६ अप्रैल, १९१९ को भारतकी सामान्य जनताने अपने पैरों पर खडा होना सीखा था।[1] इसी दिन सविनय अवज्ञा आन्दोलनका उद्घाटन हुआ था। इसका अहिंसात्मक स्वरूप उपवास और प्रार्थनासे व्यक्त हुआ था। उस दिन हिन्दुओं और मुसलमानोंने जैसे भाईचारेका परिचय दिया वैसा उन्होने इससे पहले कभी नही दिया था। लाखों व्यक्तियोंने स्वदेशीका व्रत लिया। १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बागका हत्याकाण्ड हुआ जिसमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखोंका खून मिलकर बहा। राष्ट्रीय सप्ताहको आत्म-शुद्धिके सप्ताहके रूपमें मनाया जाता है। इस सप्ताहके दौरान खादी तथा ग्रामोद्योगोंकी अन्य वस्तुओंकी बिक्री बडे पैमानेपर की जाती है। मैंने पहले भी कहा है, और उसे फिर दोहराता हूँ कि सर्वसाधारणको खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगोंके जरिये ही स्वराज्य मिल सकता है, अन्य किसी प्रकार नही। कारण, विना अनवरत रचनात्मक कार्यके अहिंसात्मक अवज्ञा सम्भव ही नही है। किसी ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमके बिना, जिसमें कार्यकर्ताओंका सर्वसाधारण जनता-से प्राय: प्रतिदिन सम्पर्क होता रहे, जनताके साथ जीवन्त और लगातार सम्पर्क और सम्बन्ध रखना असम्भव है। अतः मुझे आशा है कि आगामी राष्ट्रीय सप्ताह को सभी ईमानदार कार्यकर्तागण गम्भीरतापूर्वक मनायेंगे और बडे पैमानेपर खादी तथा ग्रामोद्योगों द्वारा तैयार अन्य वस्तुओंकी बिक्री करेंगे।

रामगढ, १७ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २३-३-१९४०

३३९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१७ मार्च, १९४०

भाई घनश्यामदास,

तुमारा खत और तुमारी नोट[2] पढ़ गया। तुमारे दुखसे दुखी होता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम इस मोकेपर कुछ भी कमसे राजी नही हो सकते

१. देखिए खण्ड १५, पृ० १८९-९४।

२. पत्र और नोट दोनों महादेव देसाईके नाम लिखे गये थे। इनमें घनश्यामदास बिड़लाने लिखा था: "मुझे इसके सिवा और कुछ काम नहीं था कि मैं बापूसे इस बातको फिर ज़ोर देकर कहूँ कि, मेरे खयालसे, हम गलत कदम उठा रहे हैं और चूँकि स्थिति बहुत नाजुक है, इसलिए हममें से कुछ लोगोंके विचारोंको ध्यानमें रखते हुए उन्हें अपने रुखपर पुनर्विचार करना चाहिए।"

है। मेरी योजनामें मैं कुछ भी दोष नहीं पाता हूं। उसमें उनका भला ही है। वे राजी नही होते है वह सिद्ध करता है कि वे हिंदुस्तानकी आझादी ही नही चाहते हैं। राजा लोगोंकी वात तो असह्य है। तुमसे किसने कहा कि मै राजा लोगोको मिलना नही चाहता हूं। जरा इशारेसे भी मै मिलुगा। वात यह है कि वे नही मिलना चाहते है।

वापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अगर चाहोगे तो मै सेवा सदनके लिये कलकत्ता आनेको तैयार हू।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०३५) से, सौजन्य : घनश्यामदास विड़ला

३४०. भाषण : विषय-समितिमें[1]

रामगढ
१८ मार्च, १९४०

जबसे मै वम्वईमें काग्रेससे अलग हुआ,[2] तभीसे मुझमें और कार्य-समितिमें यह समझौता रहा है कि मुझे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमें, विषय-समितिमें या खुले अधिवेशनमें वोलनेको नही कहा जायेगा, और[3] मुझमें जो थोडी-सी शक्ति बची हैं उसे संचित करने दिया जायेगा। मै आम तौरपर कार्य-समितिकी बैठकोंमें हाजिर रहता हूँ। इस अवसरपर मैंने खुद सुझाया कि मै विषय-समितिसे और प्रतिनिधियोंसे भी कुछ कहना चाहूँगा। कार्य-समितिने यह मंजूर कर लिया। मैं तो चाहता था कि प्रस्ताव[4] पास होनेसे पहले ही आप लोगोके सामने वोलूं, मगर समितिने राय दी कि प्रस्तावके निपटनेके वाद वोलूं।

मेरी इच्छा थी कि आप सबके मुंह देख लूं और आपको मेरा मुंह देखनेका और वम्वईमें कांग्रेससे हट जानेके वाद मुझमें कोई परिवर्तन हुआ हो तो उसका पता लगानेका भी मौका दूं। पचास सालके सार्वजनिक जीवनसे मुझमें आपके चेहरों-से दिलकी वात जान लेनेकी शक्ति आ गई है। मैंने इन वर्षोमें बहुत-सी संस्थाएँ खड़ी की, हजारों और लाखों लोगोसे मै मिला हूँ। इसके अतिरिक्त, मैं कार्य-समिति-के सम्पर्कमें रहा हूँ और आपमें से कई लोग मुझसे पत्र-व्यवहार भी करते रहे हैं।[5]

१. गाधीजी हिन्दीमें ही बोले थे, लेकिन भाषणका कोई प्रामाणिक हिन्दी विवरण उपलब्ध नहीं है।

२. अक्तूबर, १९३४ में; देखिए खण्ड ५९।

३. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "मुझमें जो भी शक्ति शेष है, उसके सहारे मुझे देशकी सेवा अपने तरीकेसे करने दी जाये।"

४. देखिए परिशिष्ट ६।

५. यह वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिया गया है।

इस कारण आपके मनकी तह तक पहुँचना मेरे लिए मुश्किल तो नहीं होना चाहिए।[1] लेकिन आपसे मिलनेकी इच्छा तो इसलिए थी कि मुझे मालूम हो जाये कि मैं कहाँ हूँ।

मैं देखता हूँ कि आप लोगोंने वाद-विवादकी कलामें खासी प्रगति की है। मैं आपको बधाई देता हूँ, क्योंकि लोकतान्त्रिक संस्थाके लिए समझाने-बुझानेकी शक्ति और ऊँचे दर्जेकी बहस जरूरी गुण है। मैंने यह भी देख लिया कि जो संशोधन आप लोग पेश करते हैं उनकी संख्या भी बढ़ गई है और यह अच्छी बात है कि आप सब नये-नये दृष्टिकोणोंपर जोर देनेको उत्सुक हो[2]। हाँ, कुछ संशोधनोंके लिए मैं आपको बधाई नहीं दे सकता, क्योंकि वे या तो ओछे थे या अनर्गल थे।

आपने प्रस्ताव प्रायः एकमतसे पास किया है, क्योंकि विरोधमें सिर्फ सात या आठ ही आदमी थे।[3] इससे मेरी जिम्मेदारी बढ़ गई है, क्योंकि मैंने इस वाद-विवादको खुद देखा है। मैं चाहता तो राय लिये जानेसे पहले आपको चेतावनी दे देता, लेकिन मैंने कार्य-समितिका यह सुझाव स्वीकार कर लिया कि प्रस्ताव पास होनेसे पहले मैं न बोलूँ।

बहसके दौरान आपमें से कुछ लोगोंने जो बातें कही हैं उनका मैं उत्तर देना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह जरूर कहना चाहता हूँ कि भले ही मेरे जीवनमें ऐसा समय रहा है जब मैंने अपनी कुछ शर्तें पूरी न होनेपर भी आन्दोलन छेड़ दिये हैं, पर अब मैं सख्तीसे काम लूँगा। यह इसलिए नहीं कि सख्ती मुझे पसन्द है, बल्कि इसलिए कि एक सेनापतिको, जिसे अपनी फौजकी रहनुमाई करनी है, पहलेसे ही सेनाको अपनी शर्तें बता देनी चाहिए।

तो मैं आपसे कहे देता हूँ कि इस घड़ी तो तुरन्त आन्दोलन छेड़नेके अनुकूल परिस्थिति मुझे नहीं दीखती। पहलेकी अपेक्षा आज हम कहीं ज्यादा भारी कठिनाइयोंसे घिरे हुए हैं। ये भीतरी और बाहरी दोनों तरहकी हैं। बाहरी मुश्किलें तो इस वजहसे हैं कि हमने भी साफ-साफ घोषणा कर दी है कि हमें क्या चाहिए और सरकारने भी अपने इरादोंका यथासम्भव स्पष्ट ऐलान कर दिया है। और फिर यह बात भी है कि ब्रिटिश-सरकार विश्वव्यापी युद्धमें फँसी हुई है और यदि हम भी उसमें लड़ाई ठान लें तो स्वाभाविक है कि हम काफी कष्ट मोल लेंगे। यह है पहली कठिनाई।[4]

मगर मुझे जो चीज भयभीत कर रही है वह है हमारी भीतरी कठिनाइयाँ। मैंने अक्सर कहा है कि बाहरी मुश्किलोंसे सत्याग्रहीको कभी डरनेकी जरूरत नहीं।

१. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ यह वाक्य है: "इसलिए आपको याद रखना मेरे लिए मुश्किल नहीं होना चाहिए।"

२. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ यह वाक्य भी है: "ताकि जो मुद्दा आज स्वीकार न हो वह शायद कल स्वीकार हो जाये।"

३. यहाँ कांग्रेस बुलेटिन में यह वाक्य भी है: "उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार था।"

४. यह वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिया गया है।

उलटे उनसे तो वह फलता-फूलता है और दुगुने जोश और जोरके साथ उनका सामना करता है। आज हालत लगभग उलटी है। अपनी बाहरी कठिनाइयोंके कारण हममें अधिक बल और एकता नहीं आई है। हमारी भीतरी मुश्किलें बढ़ रही हैं। हमारे कांग्रेसके रजिस्टर झूठे सदस्योंसे या ऐसे सदस्योंसे भरे पड़े हैं जो यह जानकर बड़ी संख्यामें भरती हो गये हैं कि कांग्रेसमें घुसनेका अर्थ सत्ता हासिल करना है। इस कारण जो पहले कांग्रेसमें शामिल होनेका कभी विचार भी नहीं करते थे वे भी इसमें आ गये हैं और इसे भ्रष्ट कर रहे हैं। जो लोग स्वार्थकी भावनासे ही आयें उन्हें भी लोकवादी संस्थामें आनेसे हम कैसे रोक सकते हैं? हममें न वह अनुशासन है और न लोकमतके समर्थनसे प्राप्त होनेवाली वैसी शुद्धता और बल जो ऐसे लोगोंको अलग रहनेपर मजबूर कर सके।

और जब तक हम प्रारम्भिक सदस्योंके पास वोटकी खातिर सालमें सिर्फ एक बार ही जाते रहेंगे तब तक वह शुद्धता और बल आ भी नहीं सकता। हमारे सदस्योंमें कोई अनुशासन नहीं है। वे गुटोंमें बँटे हुए हैं। ये गुट अधिकाधिक सत्ता हासिल करनेके लिए आपसमें लड़ते हैं। आपसी व्यवहारमें अहिंसासे काम लेनेकी आवश्यकता हमें महसूस नहीं होती।[1] मैं जहाँ भी जाता हूँ मुझे एक ही शिकायत सुननेको मिलती है। मेरी कल्पनाके लोकतन्त्रमें ऐसे गुटोंके लिए स्थान नहीं है जो आपसमें इतना अधिक झगड़ें कि संस्थाको ही नष्ट कर दें। गुट भले ही हो, लेकिन वे संस्थाको बल पहुँचानेके लिए होने चाहिए, उसे कमजोर या नष्ट करनेके लिए नहीं।

हमारी संस्था जब इसे १९२० में फिरसे संगठित किया गया, तभी से लोकतांत्रिक और जंगजू दोनों रही है।[2] अहिंसक अर्थमें ही सही, हमने तो फौजी भाषा तक इस्तेमाल की है। खैर, तो मैं जो बात असंख्य बार कह चुका हूँ वही दोहराना चाहता हूँ कि यदि आप मेरी सेनाके सिपाही बनना चाहते हैं तो समझ लीजिए कि इस संस्थामें लोकतन्त्रकी गुंजाइश नहीं है। सेना भले ही लोकतांत्रिक संस्थाका एक हिस्सा हो, लेकिन सेनामें कोई लोकतन्त्र नहीं हो सकता। सैनिकोंमें लोकतन्त्र नहीं होता, जैसे कि हमारे चरखा-संघ और ग्रामोद्योग-संघ आदि संस्थाओंमें लोकतन्त्र नहीं है। सेनामें तो सेनापतिकी जबान ही कानून होती है और उसकी शर्तें ढीली नहीं की जा सकती।

मैं आपका सेनापति माना जाता हूँ,[3] लेकिन इतिहासमें इतने कमजोर सेनापतिकी मिसाल नहीं मिलती। मेरे पास कोई सत्ता नहीं है।[4] मेरा एकमात्र बल आपका प्रेम और स्नेह है। लेकिन इसमें जैसे बल है वैसे कमजोरी भी है। मैं जानता हूँ

१. आगेके दो वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिये गये हैं।

२. कांग्रेस बुलेटिन में इसके बाद यह वाक्य भी है: "हमारी लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है।"

३. यहाँ कांग्रेस बुलेटिन में यह वाक्य भी है: "इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि मैं आपसे अपनी भावनाएँ छिपाकर रखूँ।"

४. यह वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिया गया है।

कि आपको मुझसे प्रेम है। लेकिन क्या यह प्रेम कार्यमें परिणत होता है?[1] अगर नही होता, और इसके कारण अगर आपमे दिन-दिन अधिकाधिक अनुशासन नही आता और मेरी बातोंपर अमल करनेकी ज्यादा-से-ज्यादा वृत्ति नही जगती, तो मैं घोषणा किये देता हूँ कि मै सविनय अवज्ञा नही छेड़ सकता और आपको दूसरा सेनापति चुनना होगा। आप अपनी शर्तोंपर मुझे अपना सेनापति नही बना सकते।[2] स्वतन्त्रताके प्रतिज्ञा-पत्रमें बताई गई शर्तें आपको पूरी करनी ही है। आपको मुझे यह कहनेकी इजाजत देनी चाहिए कि अगर आप ये शर्तें पूरी नही करते तो संघर्ष करना मेरे लिए असम्भव होगा। . . . आप मुझे अपनी इच्छाके विरुद्ध आपका नेतृत्व करनेको मजबूर नही कर सकते। एक बार मुझे अपना सेनापति बना लेनेके बाद आपको मेरे आदेशोंका पालन करना ही होगा। इस सम्बन्धमें बहसकी कोई गुंजाइश नही है। इसलिए जान लीजिए कि मैं अपनी शर्तोंका आग्रह रखूँगा। वे अनिवार्य है और यदि आप उनका पालन नहीं करेंगे तो मै अपने-आप हट जाऊँगा।

सशस्त्र सेनाका सेनापति कड़े अनुशासनका आग्रह रखता है। मै आपके साथ दलीलें करता हूँ। कारण, मेरा बल सिर्फ प्रेम है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि यदि आपको मेरी शर्तें मन्जूर न हों या मुझमें आपका जितना विश्वास है उतना ही उन शर्तोंमें न हो, तो आपको जेल जानेका खयाल भी नही करना चाहिए। आपको जेल जाना है तो उसकी कीमत चुकानी होगी।[3] हमारी लड़ाई सविनय लड़ाई है और सविनय कैदीके रूपमें जेल जानेके लिए यह जरूरी है कि कार्यक्रमपर कड़ाईसे अमल करके उसकी पात्रता प्राप्त की जाये। क्योंकि वैसे तो चोर-डाकू भी जेलोंमें भरे रहते है, लेकिन उनसे देशको आजादी तो मिल नही जाती।

मैंने शर्तें १९२० में ही रख दी थीं और उन्हें दोहराना कभी बन्द नही किया। आपको उस कार्यक्रमपर भले विश्वास न हो, शायद आप तबसे ज्यादा समझदार हो गये हों, मगर मै तो नही हुआ। समयके साथ-साथ उस कार्यक्रमपर मेरी श्रद्धा और बढ़ी है। मुझे तो उसमें आज पहलेसे भी अधिक गुण दिखाई देते है।[4]

१. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "एक तरहसे यह एक बहुत बड़ी चीज है लेकिन दूसरी तरहसे यह बिलकुल बेकार भी हो सकती है। मैं कह सकता हूँ कि मेरे हृदयमें सबके लिए प्रेम है। शायद आपके हृदयमें भी हो, लेकिन यह प्रेम सक्रिय होना चाहिए।"

२. आगेके पाँच वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिये गये हैं।

३. यहाँ कांग्रेस बुलेटिन में इस प्रकार है: "प्रेममें धैर्यका होना जरूरी है। मैंने मित्रोंको चरखेकी आलोचना करते हुए सुना है। मैं जानता हूँ कि आप सब जेल जानेको तैयार हैं, लेकिन पहले आपको उसका अधिकार प्राप्त करना है और जेल जानेकी कीमत चुकानी है। आप कोई अपराधियों की तरह तो जेल जायेंगे नहीं।"

४. यहाँ कांग्रेस बुलेटिन में इस प्रकार है: "अहिंसाके बारे में मैं जितना सोचता हूँ, उसमें मुझे उतने ही अधिक गुण नजर आते हैं।"

मैं इस सरकारसे १९१९ में बागी हुआ था, लेकिन उससे पहले मैं उतना ही राजभक्त था जितना कोई अंग्रेज हो सकता है।[1] उस विलक्षण राजभक्तिसे ही मुझे सविनय अवज्ञाकी विलक्षण शक्ति और शोधकी न बुझनेवाली प्यास मिली। इसलिए मैं अपने प्रयोग करता ही रहता हूँ और जब कभी मुझे अपनी भूलें मालूम होती हैं तो उन्हें भी प्रगट करता रहता हूँ। मैं भी आपकी तरह भूल करनेवाला प्राणी हूँ।[2] मैंने कभी स्वप्नमें भी खयाल नहीं किया कि मैं महात्मा हूँ और दूसरे लोग अल्पात्मा हैं। अपने स्रष्टाके सामने हम सब बराबर हैं — हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब एक ही ईश्वरके पुजारी हैं। फिर क्यों हम आपसमें लड़ते हैं?

हम सब भाई-भाई हैं — कायदे आज़म भी मेरे भाई हैं। मैंने उनके बारेमें जो-कुछ कहा है वैसा ही मेरा अभिप्राय रहा है। कभी मेरी जबानसे फालतू लफ्ज नहीं निकला। मैं कहता हूँ कि मैं उन्हें अपने पक्षमें करना चाहता हूँ। एक वक्ताने कहा कि जब तक मैं कायदे आजमका दिल नहीं जीत लूँगा तब तक लड़ाई नहीं छेड़ूँगा। उनका कहना ठीक था।[3] एक समय था जब एक भी मुसलमान ऐसा नहीं था जिसका मुझपर विश्वास न हो। आज मैं वह विश्वास खो बैठा हूँ और उर्दूके ज्यादातर अखबार मुझपर गालियाँ बरसाते रहते हैं।[4] लेकिन मुझे इसका दुःख नहीं है। इससे तो मेरा यह विश्वास और भी पक्का होता है कि मुसलमानोंसे समझौता हुए बिना स्वराज नहीं हो सकता।

शायद आप पूछेंगे, 'तो ऐसी हालतमें आप लड़ाईकी बात क्यों करते हैं?' मैं लड़ाईकी बात संविधान-सभाके लिए करता हूँ और उसका अर्थ है समझौता। लेकिन मुसलमान यह कहे कि हमें इससे वास्ता नहीं, तो मैं यह समझ लूँगा कि समझौता नहीं होगा।[5] मैं भी उनकी तरह 'कुरान' पढ़ता हूँ। मैं उनसे कहूँगा कि 'कुरान'

१. कांग्रेस बुलेटिन के अनुसार, "मैं १९१८से ही बागी रहा हूँ। उसके पहले मैं साम्राज्यका इतना अधिक भक्त था कि मैंने लॉर्ड चेम्सफोर्डको लिखा था कि मैं अपने अन्दर वैसी ही साम्राज्य-भक्ति जगानेको लालायित हूँ जैसी किसी अंग्रेजके हृदय में होती है। मैंने वे शब्द इसलिए लिखे कि सत्य में मेरी आस्था है। सत्य मेरा ईश्वर है और अगर मैं अपने प्रति सच्चा रहना चाहता था तो और कुछ लिख ही नहीं सकता था।"

२. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "आपके पास सत्य और अहिंसाके अलावा कोई और रास्ता भले ही हो, लेकिन मेरा तो वही पुराना रास्ता है, और आपकी तरह मनुष्य होनेके नाते मैं भी भूल करता हूँ।"

३. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ यह वाक्य भी है: "अगर वे मुझे अपनी जेबमें रख सकें तो सचमुच मुझे बड़ी खुशी होगी।"

४. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "उर्दू अखबारोंमें जो-कुछ छपता है वह सब तो मैं नहीं पढ़ता, लेकिन शायद उनमें मुझे बहुत गालियाँ दी जाती हैं।"

५. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "जब मुसलमानोंके मतसे चुने जानेवाले संविधान-सभाके मुसलमान सदस्य यह घोषित कर देंगे कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच कहीं कोई समानता नहीं है तभी मैं अपनी आशा छोड़ूँगा। लेकिन तब भी मैं उन्हें समझाता जरूर रहूँगा, क्योंकि वे कुरान पढ़ते हैं और उस पवित्र ग्रन्थका कुछ अध्ययन मैंने भी किया है।"

हिन्दू और मुसलमानमें कोई भेद नहीं करता।[1] लेकिन यदि उन्हें लगता हो कि वे हिन्दुओंके बिना ही स्वर्ग पा लेंगे तो भी मुझे ईर्ष्या नहीं होगी।

मुझे अंग्रेजोंसे वैर नहीं है। जब मैंने सुना कि लॉर्ड जेटलैंड घायल हो गये हैं तो मेरे दिलमें घाव लगा। यह मेरा स्वभाव है।[2] इसलिए मैं सदा उनके प्रति सद्भाव रखकर काम करता हूँ और सद्भाव कायम करनेके लिए कोशिश करता हूँ। यह बात दूसरी है कि मैं ब्रिटिश साम्राज्यवादका नाश करना चाहता हूँ, लेकिन मैं यह करना चाहता हूँ उन लोगोंका हृदय-परिवर्तन करके जो उस साम्राज्यवादके साथ सम्बन्ध रखते हैं।[3] अहिंसामें जो शक्ति मैं बताता हूँ यदि वह हो, तो उसका विरोधी पर जरूर असर होगा। असर न हुआ तो कसूर मेरा होगा, अहिंसाका नहीं।

इसलिए आपको समझ लेना चाहिए कि आपका एक ऐसे खतरनाक आदमीसे पाला पड़ा है जो आपको अप्रत्याशित स्थितियोंमें डाल देगा। समझौता मेरे स्वभावका एक अभिन्न अंग है। मुझे जरूरत महसूस हुई तो वाइसरायके पास पचास बार जाऊँगा। मैं लॉर्ड रीडिंग के पास उस वक्त गया था[4] जब असहयोग चल रहा था। वाइसराय बुलायें तभी मैं उनके पास जाऊँगा, ऐसा नहीं है, बल्कि आवश्यकता हुई तो मैं खुद उनके पास जानेके अवसर ढूँढूँगा। आपको मालूम रहना चाहिए कि यदि मैं ऐसा करूँगा तो अपने पक्षको प्रबल करनेके लिए ही करूँगा, कमजोर करनेके लिए नहीं। जनरल स्मट्सके साथ ऐसा ही हुआ था। मैंने अन्तिम समयमें उन्हें फोन किया।[5] उन्होंने रोषमें फोन पटक दिया, लेकिन मैं तो उनके सिरपर सवार रहा। नतीजा यह हुआ कि वे ढीले पड़े और मेरी स्थिति पहलेसे मजबूत हो गई। आज हम दोनों मित्र हैं। मेरे संघर्षका आधार विरोधीके प्रति मेरा प्रेम है।[6] मेरे दिलमें डच और अंग्रेज लोगोंके प्रति प्रेम न होता और समझौतेके लिए तत्परता न होती तो मैं उनसे[7] नहीं लड़ सकता था। पर मेरे समझौते ध्येयको या देशको हानि पहुँचा कर कभी नहीं होंगे।

एक संशोधन इस आशयका था कि सविनय अवज्ञाके पहले "सामूहिक" शब्द जोड़ दिया जाये। अरे, यह सविनय अवज्ञा सामूहिक नहीं होगी तो क्या मुट्ठी-भर

१. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "मैं उनसे कहूँगा कि ईश्वर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कोई भेद नहीं करता।"

२. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ ये वाक्य भी हैं: "मेरे तरीके यही हैं। आप इन्हें मेरी कमजोरी कह सकते हैं। अगर आप मुझे चाहते हैं तो आपको यह समझना चाहिए।"

३. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "मैं ब्रिटिश साम्राज्यवादसे लड़ता हूँ, लेकिन जो लोग साम्राज्यवादी तन्त्रको चलाते हैं उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। मैं उनका नाश नहीं करना चाहता हूँ, बल्कि उनको बदलना चाहता हूँ।"

४. १३ और १४ मई, १९२१ को; देखिए खण्ड २०, पृ० ४८४।

५. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ यह भी जुड़ा हुआ है: "यह कोशिश करके देखनेके लिए कि क्या संघर्ष बन्द किया जा सकता है।"

६. यह वाक्य कांग्रेस बुलेटिन से लिया गया है।

७. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ "दक्षिण आफ्रिकामें" भी है।

लोगोकी होगी ? उस हालतमें मुझे आपके पास नही आना चाहिए था।[1] शायद आप इन चीजोको गम्भीरतासे न ले रहे हो, लेकिन मेरे मनमें तो कोई और विचार है ही नही। मेरा मन तो आपकी सहायतासे इस महान प्रयोगको सम्पन्न करनेपर पूरी तरहसे केन्द्रित है, क्योकि इससे केवल भारत को ही नही, सारी दुनियाको लाभ होगा। इस सामूहिक सविनय-अवज्ञाके खयालसे ही मेरा मन आठो पहर जाग्रत रहता है। ७० वरसका वूढ़ा आदमी इस तरहकी चीजके साथ खिलवाड कैसे कर सकता है ?

इसलिए मै आपसे कह देता हूँ कि जव तक मुझे यह महसूस होगा कि आप तैयार नही है तव तक सविनय-अवज्ञा नही होगी। इस कारण आपको हर कांग्रेस कमेटीको शुद्ध करना है और उसे सत्याग्रह-इकाई बना देना है। इस मायनेमें वह लोकवादी नही रहेगी, क्योकि मेरी जवान ही कानून होगी। पर हर कांग्रेस कमेटी यदि ऐसी इकाई नही वनी तो हमारे लाखो वेजवान देशवासियोकी कुरवानी होगी। मेरे किसी भी आन्दोलनसे आम जनता न कुचली गई है और न वरवाद हुई है। उनसे उसका दर्जा वढ़ा है और उसे और भी वढ़ानेके लिए ही मै जिन्दा रहना चाहता हूँ। शुरूके आन्दोलनोंमें मन और वचनकी हिंसा तो काफी थी, लेकिन कार्यमें अहिंसा थी और इसलिए आम जनता वच गई। मै आज इस जनताको यो ही खतरेमें नही डालना चाहता, और यही कारण है कि मै अहिंसापर और अपनी शर्तें पूरी होने पर कड़ा आग्रह करता हूँ, क्योकि यही तो वह कड़ी है जो मुझे और उसे वाँधे हुए है।[2] भारतको जो शक्ति प्राप्त हुई है उसे सुरक्षित रखनेके लिए हो सकता है मुझे अपने प्राणोकी वलि चढ़ानी पड़े। आप उस शक्तिको शायद न समझ पायें, लेकिन वह है जरूर। और वह है अहिंसाकी शक्ति।

अगर मै आपका सेनापति हूँ तो आपकी नब्ज मेरे हाथमें होनी चाहिए। नही तो मै आपके जरिये लड़ाई नही लड़ सकता। मै अकेले भी लड़ सकता हूँ, लेकिन उसके लिए मुझे आपके पास आकर दलील करनेकी आवश्यकता नही।

समाप्त करनेसे पहले एक आखिरी वात भी कह दूँ। जो लोग तुरन्त लड़ना चाहते है मै उनका रास्ता रोककर खड़ा नही रहना चाहता। लेकिन यदि उन्हे ईमान-दारीका कुछ भी खयाल हो तो मै उन्हें सलाह दूंगा कि वे कांग्रेससे निकल जानेके वाद लड़ाई छेड़ें। मै उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि यदि उन्होने अहिंसक लडाई शुरू की और उसे वे निभा ले गये तो मै उनके पीछे ही रहूँगा। वेशक वे कांग्रेसमें रहकर भी कांग्रेसके खिलाफ जा सकते हैं, पर यह सत्याग्रह[3] नही होगा। जो आज अधीर हो रहे है वे सत्याग्रहकी शक्तिको नही जानते।

यह प्रस्ताव आपके हाथ-पैर नही वाँधता। अगर आपको शर्तें मंजूर न हो तो अव भी आप ऐसा कह सकते है और प्रस्तावको उलटवा सकते है। इससे आप

१. आगेके दो वाक्य *कांग्रेस बुलेटिन* से लिये गये हैं।

२. इस अनुच्छेदका शेष भाग *कांग्रेस बुलेटिन* से लिया गया है।

३. *कांग्रेस बुलेटिन* में इस वाक्यमें यह भी जुड़ा हुआ है: "जो इसका प्रयोग करनेवालेको कभी कोई हानि नहीं पहुँचाता।"

और मैं दोनों मुक्त हो जायेंगे। पर यदि आपको शर्तें स्वीकार हों और आप सब उनका पालन करें तो विश्वास रखिए कि लड़ाई छेड़नेमें मुझे एक महीना भी नहीं लगेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-३-१९४०, और कांग्रेस बुलेटिन, १२-४-१९४०, खण्ड १, पृ० १०-१६

३४१. भाषण : प्रदर्शनीमें[2]

मझरपुरी, रामगढ़
१८ मार्च, १९४०

प्रार्थनाके बाद उपस्थित जनसमुदायको सम्बोधित करते हुए श्री गांधीने खादीके महत्त्वपर जोर दिया और कहा कि जो लोग कांग्रेसके विधिवत सदस्य नहीं है उनके लिए ऐसी प्रदर्शनियाँ कांग्रेसका ही काम करती हैं। कांग्रेसके सदस्य तो कांग्रेस अधिवेशनोंमें कर्तव्य-भावनाके कारण भी शामिल हो सकते हैं, लेकिन प्रदर्शनी उन लोगोंके लिए कम-से-कम एक आकर्षण तो प्रस्तुत करती है जो कांग्रेसी नहीं हैं। ऐसे लोग प्रदर्शनीमें आकर अपनी जरूरतकी कुछ चीजें खरीद सकते हैं।[3]

यह प्रदर्शनी सर्वसाधारणके लिए असली कांग्रेस है। हमारे चुने हुए प्रतिनिधि तो कांग्रेस अधिवेशनमें शरीक होकर आगे साल-भर हमें क्या-कुछ करना है, इसके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास करेंगे। लेकिन आम जनता क्या करे? यह प्रदर्शनी आम जनताके लिए बौद्धिक खुराक जुटाती है। जो लोग यह प्रदर्शनी देखने आयें उनका कर्तव्य है कि यहाँ वे जो-कुछ सीखें उसे आम जनता तक पहुँचायें और उसके बीच उसका प्रचार करें। ऐसी कोई संस्था नहीं है जहाँ जाकर हमारे ३५ करोड़ देशभाई कुछ सीख सकें। कुम्भ मेलेमें कई लाख लोग जाते हैं, लेकिन ३५ करोड़की आबादीमें यह संख्या भी क्या है? लेकिन प्रदर्शनी देखनेको आये आप लोग यदि यहाँ प्रदर्शित हुनर-कारीगरीमें से कुछ थोड़ा-सा भी गाँवों तक ले जायें, तो आप गाँवोंमें रहनेवाले करोड़ों लोगों तक उसका ज्ञान पहुँचा सकते हैं और उनके जीवनमें क्रान्ति ला सकते हैं।...

१. कांग्रेस बुलेटिन में यहाँ इस प्रकार है: "आपके पास शायद और तरीके भी हों, लेकिन मेरे पास तो बस वही पुराना कार्यक्रम है। मैं जानता हूँ कि उस तरीकेके अनुसार जो भी चला है उसको उसने कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई है और अब भी अगर मुझे आपका हार्दिक सहयोग और समर्थन प्राप्त हो जाये तो मैं आपको दिखा दूँ कि शायद एक ही महीनेके अन्दर क्या-कुछ हासिल किया जा सकता है।"

२. गांधीजी ने यह भाषण प्रदर्शनी-स्थलमें सायंकालीन प्रार्थना-सभामें एकत्र दस हजारसे अधिक लोगोंके समक्ष दिया था।

३. आगेका अनुच्छेद हरिजन से लिया गया है।

श्रोताओंसे खादी खरीदनेका अनुरोध करते हुए उन्होंने कहा कि खादी खरीदकर खादीका सन्देश आप देशके कोने-कोनेमें बसे गाँवों तक पहुँचायेंगे। मैं चाहता हूँ कि खादीसे सबका सम्बन्ध स्थापित हो और वह देशके बड़े-से-बड़े जन समुदायमें एकताकी भावना भरे। कुम्भ मेले या अन्य समारोहोंमें लाखों लोग एकत्र होते हैं; लेकिन जब गाँवोंके घर-घरमें खादी पहुँचा दी जायेगी तो उसका मतलब बड़ी-से-बड़ी संख्यामें ऐसे लोगोंका एकत्रीकरण और एकीकरण होगा जिनके अन्दर सत्यको पानेकी ललक और प्रखर राष्ट्र-बोध होगा। खादीको घर-घरमें पहुँचानेका मतलब उन हजारों गरीबों और विधवाओंकी सहायता करना होगा जो अपनी रोटीके लिए इसी पर आश्रित हैं। बल्कि इसका महत्त्व इससे भी अधिक होगा। वास्तवमें इस तरह आप लोग स्वराज्यके संघर्षमें हाथ बँटायेंगे। स्वराज्य हिंसासे प्राप्त होनेवाला नहीं है। सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेकी चर्चा गरम है, लेकिन उसे आरम्भ करेगा कौन और कैसे करेगा? जब आप लोग चरखा चलायेंगे खादी पहनेंगे और खरीदेंगे तभी यह समझा जा सकेगा कि आपमें सत्य और अहिंसापर डटे रहनेका संकल्प है, क्योंकि खादी सत्य और अहिंसाकी प्रतीक है। अगर आप सोचते हों कि आपको कोई लक्ष्य प्राप्त करना है, कोई उद्देश्य सिद्ध करना है तो खादी ही आपको उस लक्ष्य तक पहुँचनेका मार्ग बतायेगी और आपको वहाँ तक ले जायेगी। दूसरे तरीके अख्तियार करनेका मतलब यह होगा कि जो रास्ता आपने चुना था उससे आप भटक गये हैं। इस तरह आप स्वराज्य नहीं प्राप्त कर पायेंगे।[1]

लोगोंके बीच सविनय अवज्ञाकी चर्चा गरम है। लेकिन सविनय अवज्ञा करने लायक है कौन? जो लोग चरखा नही चलायेंगे, खादी नही पहनेंगे, दस्तकारियोंकी उन्नतिकी फिक्र नही करेंगे वे तो इसके योग्य नही हो सकते। वे और तरहकी अवज्ञा भले कर ले, सविनय अवज्ञा तो नही कर सकते। मैं ऐसी अवज्ञाकी शिक्षा नही देना चाहूँगा, ऐसी अवज्ञाकी खातिर जीना पसन्द नही करूँगा। आपको कताईसे मिलनेवाली शान्त और जीवन्त शक्तिको मैं सविनय अवज्ञाकी राहमें मोड़ देना चाहता हूँ। इसलिए अगर आप इस प्रदर्शनीको मेरी दृष्टिसे देखेंगे तो आप खादी और चरखेके सन्देशको गाँवोंमें ले जायेंगे और इस तरह दस्तकारीकी संस्कृतिकी नींव डालेंगे और खादी तथा दस्तकारियोंको सार्वत्रिक बनायेंगे। अगर आप ऐसा करेंगे तो विश्वास रखिए कि स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए सविनय अवज्ञाकी भी जरूरत नही पड़ेगी। अगर आप ऐसा नही करेंगे, अगर आप चरखा नही चलायेंगे, खादीको सार्वत्रिक नही बनायेंगे तो मेरा जेल जाकर वर्षो कैदमें पड़े रहना भी सर्वथा निरर्थक सिद्ध होगा। खादी और दस्तकारियोंके बिना कांग्रेसकी नैया आपको पार लगानेके बजाय मँझधारमें ही डूब जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजार पत्रिका, २०-३-१९४०, और हरिजन, ३०-३-१९४०

१. आगेका अंश *हरिजन* से लिया गया है।

३४२. भेंट : ऐसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको[1]

रामगढ़
१९ मार्च, १९४०[2]

लोग वहाँसे जानेके निर्देशकी प्रतीक्षामें घुटनों तक पानीमें खड़े थे — यह दृश्य आत्माको उद्वेलित करनेवाला था। मुझे तो लगता है जैसे ईश्वर जनताके पक्षमें आकर खड़ा हो गया था और स्वतन्त्रताकी कीमत चुकानेके लिए जनताको स्वेच्छासे जिन कष्टोंको झेलना होगा उसने उसकी उसे पूर्वानुभूति प्रदान की थी।

हर अधिवेशनका अपना एक सबक होता है। यह अधिवेशन कार्यकर्ताओंको यह सबक दे गया है कि भविष्यमें वह इसके लिए ऐसा स्थान चुने जहाँ खराब मौसमसे बचाव हो सके। ऐसा कहकर मैं अधिवेशनके लिए रामगढ़का चुनाव करनेवालोंको जरा भी दोष नहीं दे रहा हूँ। इस महीनेमें वर्षाकी आशंका करनेका उनके पास कोई कारण नहीं था। जहाँ तक व्यवस्थाका सम्बन्ध है, राजेनबाबूने अपने सहयोगी कार्यकर्ताओंके दलके साथ इस अधिवेशनको सफल बनानेके लिए दिन-रात एक कर दिया था। उनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २०-३-१९४०

३४३. भाषण : कांग्रेसके अधिवेशनमें[3]

रामगढ़
२० मार्च, १९४०

यहाँ आकर मुझे यह तमाम चर्चा सुननेका अवसर मिला, इसकी मुझे खुशी है। जब मैं देखता हूँ कि हर वक्ताकी जिह्वापर 'सविनय अवज्ञा' शब्द ही था तो मुझे 'बाइबिल' की यह उक्ति याद आ जाती है: "'प्रभु-प्रभु'की रट लगानेवाले हर व्यक्तिको स्वर्गके साम्राज्यमें प्रवेश नहीं मिलेगा; जो स्वर्गमें विराजमान मेरे पिता (परमेश्वर)की इच्छाके अनुसार आचरण करेगा, केवल उसीको उस साम्राज्यमें प्रवेश

१. २१-३-१९४० के *हितवाद* के अनुसार, गांधीजी अपनी झोंपड़ीके बरामदेमें इधर से उधर चहलकदमी करते हुए लोगोंसे वर्षाके सम्बन्धमें खबरें सुन रहे थे।

२. तिथि-पंक्ति २१-३-१९४० के *हितवाद* से ली गई है।

३. गांधीजी हिन्दी में बोले थे, किन्तु उनके भाषणका कोई प्रामाणिक हिन्दी विवरण उपलब्ध नहीं है।

मिलेगा।"[1] (हर्षध्वनि) मुझे आपकी तालियोंकी गड़गड़ाहटकी जरूरत नहीं है। मैं तो आपके हृदय और बुद्धिको जीतना चाहता हूँ और तालियोंकी गड़गड़ाहट और वाहवाहीसे मेरे उस विजय अभियानमें बाधा पड़ती है।[2] सविनय अवज्ञाके नारे लगानेवाले लोग सविनय अवज्ञा आरम्भ नहीं कर सकते। उसे आरम्भ करनेकी सामर्थ्य तो केवल उन्हींमें है जो उसके लिए काम करते हैं। सच्ची सविनय अवज्ञाकी दृष्टिसे ऐसे आन्दोलनमें भाग लेनेवालोंके लिए यह जरूरी है कि उन्हें जो करनेका आदेश दिया जाये उसे करें और जो करनेका निषेध किया जाये उसे न करें। सही ढंगसे आरम्भ की गई और सही ढंगसे चलाई गई सविनय अवज्ञाका परिणाम निश्चित तौरपर स्वराज्यके रूपमें प्रकट होगा।

मुझे लगता है कि आप अभी तैयार नहीं हैं।[3] इसलिए जब मैंने आपको उन वक्ताओंको जिन्होंने कहा कि हम तैयार हैं, वाहवाही देते देखा तो मुझे बड़ा आघात पहुँचा। कारण, मैं जानता हूँ कि हम तैयार नहीं हैं। यह सच है कि हम सब यह जानते और महसूस करते हैं कि हम अपने ही देशमें गुलाम बनकर रह रहे हैं। हम यह भी महसूस करते हैं कि स्वतन्त्रता हमारे लिए आवश्यक है। फिर, हम यह भी महसूस करते हैं कि स्वतन्त्रताके लिए हमें लड़ना पड़ेगा। तत्काल सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेकी माँग करनेवाले वक्ताओंको वाहवाही देनेमें मैं भी शरीक हो सकता हूँ। एक चोर मेरे घर घुस आया है और उसने मुझे अपने ही घरसे बाहर निकाल दिया है। मुझे उससे लड़कर अपना घर वापस लेना है, लेकिन वैसा करनेसे पहले मुझे उसके लिए पूरी तरह तैयार हो जाना चाहिए। (हर्षध्वनि) आपकी तालियोंसे केवल यही प्रकट होता है कि इस तैयारीका मतलब क्या है, यह आप नहीं समझते। आपके सेनापतिको लग रहा है कि आप तैयार नहीं हैं, आप सच्चे सिपाही नहीं हैं और अगर हम आपके बताये रास्तेपर बढ़े तो निश्चय ही हमारी हार होगी।[4] और यह जानते हुए मैं आपसे लड़नेको कैसे कह सकता हूँ? मैं जानता हूँ कि आपके जैसे सिपाहियोंको लेकर लड़ूँ तो मेरी पराजय ही होगी।

मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैं ऐसा-कुछ करनेको तैयार नहीं हूँ जिसके लिए मुझे बादमें पछताना पड़े। इतने वर्षोंसे किसी भी संघर्षमें मैंने पराजय स्वीकार नहीं की है। कुछ लोग राजकोटका उदाहरण सामने रख सकते हैं, लेकिन मैं मानता हूँ कि मेरे लिए वह पराजय नहीं थी। यह बात तो भावी इतिहास ही बतायेगा।[5] मेरे कोशमें 'पराजय' शब्द नहीं है, और मेरी सेनामें भरती किया जानेवाला हर आदमी इस बातके लिए आश्वस्त रहे कि सत्याग्रही कभी पराजित नहीं होता।

१. सेंट मैथ्यू, ७, २१
२. यह वाक्य *हरिजन* से लिया गया है।
३ और ४. आगेके दो वाक्य *हरिजन* से लिये गये हैं।
५. यह वाक्य *हरिजन* से लिया गया है।

मै आपको भरोसा दिलाता हूँ और सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा करता हूँ कि जब आप तैयार होंगे, मैं आगे बढ़ चलूँगा और तब हमारी विजय होगी, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नही है। यही बात मैंने विषय-समितिमें कही थी और उसीको यहाँ फिर दोहराता हूँ। अपने दिल और दिमागको शुद्ध कीजिए। यहाँ उपस्थित कुछ लोग जोर देकर कहते रहे हैं कि संघर्ष आरम्भ करनेके लिए चरखेपर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी नही है। मैं उन लोगोंकी ईमानदारी और बहादुरीपर शक नही करता, लेकिन, जैसा कि पण्डित जवाहरलाल नेहरूने आपको बताया है, उनकी बातसे उनके मनकी कुछ कमजोरी प्रकट होती है।[1] खैर, जो बात मैं पिछले २० वर्षोंसे कहता आया हूँ वही आपसे फिर कहता हूँ — सत्याग्रह और चरखेमें गहरा आपसी सम्बन्ध है, और मेरी इस मान्यताको लोग जितनी ज्यादा चुनौती देते है, उसमें मेरी आस्था उतनी ही अधिक दृढ़ होती जाती है। यह बात न होती तो मैं ऐसा मूर्ख नही हूँ कि दिन-रात यहाँ तक कि रेलगाड़ीमें भी और डाक्टरोंकी सलाहके खिलाफ चरखा चलाता रहूँ। डाक्टर तो चाहते है कि मै चरखा चलाना छोड़ दूँ। लेकिन इसपर मैं अधिक ध्यान इसलिए दे रहा हूँ कि मुझे अपने-आपको तैयार करना है।[2] मैं चाहता हूँ कि आप भी इसी आस्थासे चरखा चलायें। और यदि आप ऐसा नही करते और नियमपूर्वक खादी नही पहनते तो आप मुझे धोखा देंगे, सारी दुनियाको धोखा देंगे। जो चरखेमें विश्वास नही करता वह मेरी सेनाका सिपाही नही बन सकता।

मेरे लिए तो अहिंसाके अलावा कोई और रास्ता ही नही है।[3] बेशक मेरी मृत्युके समय भी मेरे अधरोंपर अहिंसाका ही नाम होगा। लेकिन आप मेरी तरह इससे प्रतिबद्ध नहीं है, और इसलिए आपको कोई दूसरा कार्यक्रम अपनाकर देशको स्वतन्त्र करनेकी पूरी छूट है। लेकिन अगर आप न तो यह करना चाहें और न चरखा चलायें और यह इच्छा करें कि मै लड़ाई आरम्भ कर दूँ तो यह तो बड़ी कठिन स्थिति होगी। अगर आपको लगता हो कि आपको लड़ना है और अभी तुरन्त लड़ना है और यदि आपको यह विश्वास हो कि उस लड़ाईको जीतनेका कोई और रास्ता भी है तो मैं आपसे कहूँगा कि आप आगे बढ़िए और अगर आप विजयी हुए तो आपको शाबाशी देनेवालोंमें मै सबसे आगे होऊँगा। लेकिन अगर आप मुझे छोड़ना नही चाहते और साथ ही मेरे रास्तेपर चलना और मेरे निर्देशोंका पालन करना भी नहीं चाहते तो मै जानना चाहूँगा कि आप मुझसे किस प्रकारका सेनापतित्व करनेकी अपेक्षा रखते है।

जो लोग यह रट लगाये हैं कि सविनय अवज्ञा अविलम्ब आरम्भ की जाये वे चाहते हैं कि मै उनका साथ दूँ। क्यों? इसलिए कि वे जानते हैं कि जनसाधारण मेरे साथ है। मैं निस्संकोच कहता हूँ कि मै आम जनताका आदमी हूँ। हर क्षण मै करोड़ों क्षुधार्त्त लोगोंके लिए दुःखका अनुभव करता हूँ। उनके

१,२ और ३. आगेके दो वाक्य *हरिजन* से लिये गये हैं।

कष्ट दूर करने और उनकी तकलीफों को कम करनेके लिए ही मैं जीवित हूँ और इसीके लिए मैं अपने प्राण भी दे देनेको तैयार हूँ। मैं दावा करता हूँ कि उन करोड़ो लोगोंपर मेरा कुछ प्रभाव है, क्योंकि मैं उनका निष्ठावान सेवक रहा हूँ।[1] मैं सबसे अधिक वफादार उन्हींके प्रति हूँ, और आप मेरा साथ छोड़ दें या मुझे मार डाले तब भी अगर मैं चरखेको छोड़नेके लिए तैयार नहीं हूँ तो उन्हींकी खातिर नहीं हूँ। कारण, मैं जानता हूँ कि अगर मैं चरखा-सम्बन्धी शर्तमें ढील दे दूं तो उन करोड़ो मूक लोगोंके विनाशका सामान जुटा दूंगा जिनके लिए मुझे ईश्वरके दरबारमें जवाब देना होगा। इसलिए अगर आप उस अर्थमें चरखेमें विश्वास नहीं करते जिस अर्थमें कि मैं करता हूँ तो आपसे मेरा निवेदन है कि आप मुझे छोड़ दें। आप मुझपर पत्थर बरसायें और मुझे मार डाले तब भी मैं जनसाधारणके लिए काम करनेकी अपनी लगन नहीं छोड़ूंगा। यह है मेरा रास्ता। अगर आप समझते हों कि कोई और रास्ता भी है तो मुझे अकेला छोड़ दें।

स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें चरखके बिना मैं आपको जेल जानेका आदेश नहीं दे सकता। मैं ऐसे किसी आदमीको अपनी सेनामें नहीं लूँगा जो चरखेमें विश्वास नहीं करता। मैं तभी आगे बढ़ूंगा जब मुझे भरोसा हो जायेगा कि चरखेमें आपकी आस्था है, आपका विश्वास है। याद रखिए कि अगर यहाँ एकत्र हम लोग कोई भूल करेंगे तो उससे करोड़ों मूक लोगो पर कष्टोका तूफान फट पड़ेगा। कांग्रेस प्रतिनिधियोंकी जिम्मेदारी बहुत बडी है, और आपके सेनापतिके रूपमें मेरी जिम्मेदारी उससे भी बड़ी है। सेनापतिकी हैसियतसे मुझे आप लोगोंके लिए एक प्रकारसे प्रकाशस्तम्भका काम करना है, और आपको सम्भावित विपत्तिसे सावधान करना है। इसलिए मुझे तो बहुत सावधानीसे आगे बढ़ना है।

बहुत-से वक्ताओंने ब्रिटिश साम्राज्यवादकी बुराइयोंपर अपने विचार व्यक्त किये। उस बातकी मैं और चर्चा नहीं करना चाहता। इतना ही कहूँगा कि हमें उससे छुटकारा पाना है। मैंने आपको इसका गुर बता दिया है। मैं सत्याग्रह तभी आरम्भ करूँगा जब मुझे पूरा विश्वास हो जायेगा कि आपने मेरे उपचारको समझ लिया है।

अगर आप किसी डॉक्टरकी दवा उसकी हिदायतोंके अनुसार लेनेको तैयार नहीं है तो उससे कोई दवा बतानेको कहना बेकार है। ऐसी बात हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप अपने रोगके इलाजके लिए कोई और डॉक्टर ढूंढ़ ले। आज आपने ब्रिटिश साम्राज्यवादके खिलाफ जितने प्रवचन सुने हैं वे सब आपको उससे छुटकारा पानेमें मदद नहीं देंगे। उनसे सिर्फ आपका क्रोध ही भड़केगा। इससे समस्या हल नहीं होगी। क्रोध सत्याग्रहके प्रतिकूल है। ब्रिटेनके लोगोंसे हमारा कोई झगड़ा नहीं है। हम उनके मित्र बनना चाहते हैं और अपने प्रति उनकी सद्भावना कायम रखना चाहते हैं — लेकिन उनकी प्रभुताके आधारपर नहीं, बल्कि स्वतन्त्र और समान दर्जेका उपभोग करनेवाले भारतकी बुनियादपर।

१. आगेके तीन वाक्य *हरिजन* से लिये गये हैं।

स्वतन्त्र देशके रूपमें भारत किसीके प्रति विद्वेष नहीं रखेगा और न किसी अन्य देशको अपना गुलाम बनाना चाहेगा। हम शेष संसारके साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ेंगे — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम संसारसे यह आशा रखेंगे कि वह हमारे साथ कदम मिलाकर चले।[1] इसलिए याद रखिए कि आपको बाहरी और आन्तरिक दोनों शर्तें पूरी करनी हैं। अगर आप आन्तरिक शर्तें पूरी करेंगे तो फिर अपने विरोधीसे घृणा करना छोड़ देंगे। आप उसका विनाश नहीं चाहेंगे और उसके विनाशका प्रयत्न नहीं करेंगे, बल्कि ईश्वरसे प्रार्थना करेंगे कि वह उसपर दया करे। इस-लिए सरकारके कुकृत्यका वर्णन करते रहनेमें अपनी शक्ति न लगायें, क्योंकि हमें उसका संचालन करनेवालों का हृदय-परिवर्तन करके उनकी मित्रता प्राप्त करनी है। और फिर कोई स्वभावसे तो बुरा नहीं होता। और अगर दूसरे बुरे हैं तो क्या हम कुछ कम बुरे हैं? यह दृष्टिकोण सत्याग्रहका सहज गुण है और मैं तो कहूँगा कि यह भी एक ऐसी चीज है जिसको आप नहीं मानते तो मुझे मुक्त कर दीजिए। कारण, मेरे कार्यक्रममें विश्वास रखे बिना और मेरी शर्तोंको स्वीकार किये बिना अगर आप मेरे साथ होंगे तो आप मुझे, स्वयं अपनेको और हमारे उद्देश्यको भी नष्ट कर देंगे।

सत्याग्रह हर कीमतपर सत्यपर दृढ़ रहनेका मार्ग है। अगर आप इस मार्गका अनुसरण करनेको तैयार न हों तो मुझे अकेला छोड़ दीजिए। आप भले ही मुझे निकम्मा कहें, मैं उसका बुरा नहीं मानूँगा। अगर यह बात मैं आपके सामने अभी और यहीं स्पष्ट न कर दूँ तो मैं बरबाद हो जाऊँगा और मेरे साथ यह देश भी बरबाद हो जायेगा। सत्य और अहिंसा सत्याग्रहके मूल तत्व हैं और चरखा उनका प्रतीक है। जिस प्रकार किसी सेनाका सेनापति इस बातका आग्रह रखता है कि उसके सिपाही एक खास किस्मकी ही पोशाक पहनें, उसी प्रकार आपके सेनापति-की हैसियतसे मुझे इस बातका आग्रह रखना है कि आप चरखेको अपनायें और वही आपकी पोशाक होगी। सत्य, अहिंसा और चरखेमें पूरी आस्था रखे बिना आप मेरे सिपाही नहीं बन सकते। और मैं एक बार फिर कहता हूँ कि अगर इसमें आपका विश्वास न हो तो मुझे अकेला छोड़ दीजिए और अपने तरीकोंको आजमाकर देखिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४०, खण्ड–१, पृ० २३०-३१, और हरिजन, ३०-३-१९४०

१. अनुच्छेदका शेष अंश *हरिजन* से लिया गया है।

३४४. भेंट : श्रीलंकाके प्रतिनिधि-मण्डलको[1]

रामगढ़
२० मार्च, १९४०

महात्माजी ने सबसे पहले कहा :

श्रीलंकावासी भारतीयोंपर जो-कुछ बीत रहा है वह बडा दुर्भाग्यपूर्ण है।

हमने उन्हें समझाया कि यह समस्या आर्थिक है और श्रमिकों तथा कुछ अन्य लोगोंको छोड़कर वहाँ जितने भी भारतीय हैं मुख्यतया शोषक हैं। छोटे-मोटे व्यापारियों और चेट्टियारोंने आयात-निर्यातके सारे व्यापारपर अधिकार कर लिया है और मुसीबतमें फँसे किसानोंकी बहुत-सी कृषि-भूमि भी हड़प ली है। श्रीलंकाके लोग भारतके केवल इसी पहलूको देखते हैं। उत्तरमें गांधीजी ने कहा :

हाँ, यह तो सही है। गलती दोनों पक्षों की है।

हमने उन्हें बताया कि जैसा कि श्रीलंका द्वारा किये गये पण्डित नेहरूके स्वागतसे स्पष्ट है, वहाँ भारतीयोंके विरुद्ध कोई प्रजातिगत द्वेष नहीं है। कवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुर, गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू तथा कुछ अन्य प्रमुख भारतीयोंके श्रीलंका आनेसे पूर्व तो हमारी जनताका वास्ता केवल शोषक चेट्टियारों और प्रवासी भारतीय श्रमिकोंसे ही पड़ा था। उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा :

दुर्भाग्यवश हमारे पास अनेक नेहरू और उनकी योग्यताके बहुत-से लोग नहीं हैं। अगर गलत किस्मके लोगोंको भेजा गया तो सब-कुछ चौपट हो सकता है।

हमने उनसे पूछा कि स्वतन्त्र भारतसे श्रीलंका क्या अपेक्षा रख सकता है। श्रीलंकाके बहुत-से लोग ब्रिटिश साम्राज्यके एक उपनिवेशकी तरह रहना अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि उन्हें भय है कि श्रीलंकाके पूर्ण स्वतन्त्र हो जाने पर भारत उसका शोषण कर सकता है और आसानीसे श्रीलंकापर छा सकता है। गांधीजी ने हँसते हुए कहा :

श्रीलंकाको स्वतन्त्र भारतसे डरनेका कोई कारण नहीं है।[2]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २१-३-१९४०

१. भेंट-वार्ताका यह विवरण यूनाइटेड प्रेसको दिया गया था। सिलोनीज नेशनल कांग्रेसका प्रतिनिधि-मण्डल, जिसमें जयवर्धन, एस० जयशेखर तथा अमरतुंग शामिल थे, अपराह्नमें गांधीजीसे मिला था।

२. प्रतिनिधि-मण्डलने श्रीलंकाके एक भिक्षु द्वारा लिखित "द वर्ड ऑफ द बुद्ध" नामक पुस्तक गांधीजीको भेंट की।

३४५. पत्र : अकबर हैदरीको

२१ मार्च, १९४०

प्रिय सर अकबर[1],

राज्य कांग्रेसके विरुद्ध आदेश देनेके लिए आप जिम्मेदार हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। इन आदेशोंसे एक बदमजगी पैदा हो गई है। लेकिन कांग्रेसकी कार्रवाईमें एक कानूनी दोष था। इसीलिए मैंने बिना शर्त माफी माँगनेकी सलाह दी। कितना अच्छा हो कि इस सम्बन्धमें न्याय हो सके![2]

आशा है आप स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०१७) से

३४६. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

रेलगाड़ीमें
२१ मार्च, १९४०

प्रिय सी० आर०,

रामगढ़में तो आपसे बहुत कम मिलना हुआ। यह ठीक नहीं है। अयमुत्तु[3] से भी मिल नहीं पाया। मालूम हुआ है, आप दिल्ली गये हैं। इसलिए लौटती यात्रामें आपको सेवाग्राम या वर्धा, जहाँ भी ठीक लगे, कुछ दिन ठहरना चाहिए। कुछ बातोंपर विचार-विमर्श करना चाहता हूँ।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०७९) से

१. हैदराबाद रियासतकी मन्त्रि-परिषद् के अध्यक्ष
२. देखिए "पत्र : अकबर हैदरीको" १४-४-१९४०।
३. अखिल भारतीय चरखा संघकी तमिलनाडु शाखाके मन्त्री, सी० ए० अयमुत्तु

३४७. पत्र : कुँवरजी खे० पारेखको

रेलगाड़ीमें
२१ मार्च, १९४०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मुझे अभी-अभी मिला। मुझे खुशी है कि तुम्हें वहाँ अच्छा लगता है। मुझे नियमपूर्वक पत्र लिखा करो। मैंने रामीको पत्र लिखा था,[1] परन्तु उसका उत्तर नही आया।

क्या वहाँ तुम्हे अखबार मिलते है ?

कंचनको पढ़ाया करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७४०) से। सी० डब्ल्यू० ७२० से भी; सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

३४८. पत्र : कंचन मु० शाहको

रेलगाड़ीमें
२१ मार्च, १९४०

चि० कचन,

मैंने महादेवसे तेरे पत्रका उत्तर देनेको कहा था। जो सेवा तू वहाँ कर रही है, मेरे विचारसे वह अध्ययनसे कम नही है। बल्कि मैं उसीको सच्ची शिक्षा मानता हूँ। पढ़ना जरूर जारी रखना और मुझे बराबर लिखती रहना।

रामगढ आनेसे जो हासिल होता, उससे सौगुना अधिक तू वहाँ प्राप्त कर रही है, यह तो मानेगी न? और फिर रामगढमें भीगनेसे तू बच गई, यह भी एक अलग बात है ही। इस डिब्बेमें महिला आश्रमकी बारह लड़कियाँ है। आशा देवी और उनकी मीठु भी है।

हम कल सवेरे पहुँचेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८५) से। सी० डब्ल्यू० ७०७७ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. देखिए "पत्र: रामीबहन कु० पारेखको", पृ० २२४।

३४९. पत्र : वालजी गो० देसाईको

रेलगाड़ीमें
२१ मार्च, १९४०

चि० वालजी,

तुम्हारा कार्ड मिला था। बम्बईमें रहते हुए कब्ज और बुखारसे पीछा छूटनेकी कम ही सम्भावना है। फिर भी अगर वहाँ रहना ही पड़े, तो एक होमियोपैथ आग्रह किया करते हैं, उन्हें पत्र लिखूं। दोनों शिकायतोंसे मुक्त होना जरूरी है।

बापूके आशीर्वाद

श्री वालजी देसाई
मारफत श्री वी० जे० रेगे
गवर्नमेंट प्रेस, चर्नी रोड, बम्बई–४

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४९१) से; सौजन्य : वालजी गो० देसाई

३५०. पत्र : अब्दुल मजीद चौधरीको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मार्च, १९४०

प्रिय चौधरी साहब,

मैंने आपका पत्र बड़े ध्यानसे पढ़ा है। स्वयं कांग्रेसमें तो कोई हिन्दू राज नहीं है। एक मुसलमान धर्म-तत्त्वज्ञ[1] उसके अध्यक्ष हैं। कांग्रेसमें बिलकुल ढोंग नहीं है। कांग्रेसपर अंग्रेजों, ईसाइयों, पारसियों और मुसलमानोंका प्रभुत्व रहा है। जो कुछ भी हो, कांग्रेस किसी भी जाति या सम्प्रदायको कांग्रेसमें ही बने रहने के लिए बाध्य नहीं करेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

चौधरी साहब अब्दुल मजीद,
बी० ए०, एल-एल० बी०
गुजरात, पंजाब

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. अबुल कलाम आजाद, जो १६ फरवरी, १९४० को कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये थे

३५१. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मार्च, १९४०

चि० मणिलाल,

साथका पत्र पढ़ना। मैंने भाई हाजी इस्माइल भाभा को लिखा है कि वे तुझसे मिलें और विचार-विनिमय करें। तुम भाई-भाई हो, दुश्मन नही। मैंने उन्हे यह भी लिखा है कि मैं तेरी नीतिमें कोई हस्तक्षेप नहो करता। तू खुद उनसे मिलनेका प्रयत्न करना।

यहांके समाचार तो तू अखबारोसे जान लेता होगा। प्यारेलालसे कहूँगा कि तुझे यहांके कुछ समाचार दें।

बा मजेमें है। मैं भी अच्छा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९११) से

३५२. सर्वोत्तम वृत्तियाँ कैसे जगायें?

ब्रिटेनके एक हिन्दुस्तानी समर्थक लिखते है :[1]

> अगर हमारा उद्देश्य अपनी अहिंसाके जरिये अंग्रेजोंकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत करना और इस तरह आपसमें विश्वास पैदा करना है, तो इसमें हम बुरी तरह असफल हुए हैं।... हमारी अहिंसाका सबसे अच्छा समय वह था... जब प्रान्तोंमें कांग्रेसका शासन था।... अब तो फिरसे सारा वातावरण इंग्लैंडके प्रति घृणाकी भावनासे भर उठा है। सद्भावकी जगह कटुता और विश्वासकी जगह अविश्वास बढ़ रहा है।... हमने अपनी अहिंसाका या सद्भाव बढ़ानेकी इच्छाका क्या प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है? ... तो फिर (१) अहिंसक वातावरण तैयार करने, (२) सद्भाव पैदा करने, (३) अंग्रेजों की सर्वोत्तम वृत्तियां जागृत करने, और (४) पारस्परिक सहयोगके जरिये स्वाधीनता-प्राप्तिका जल्दीका रास्ता खोजनेका अधिक उपयुक्त तरीका क्या लेन-देनके आधारपर किया गया समझौता नहीं है?

१. इसके केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

हिन्दुस्तानमें शासन होगा उस संविधानको अंग्रेज नहीं हिन्दुस्तानी बनायेंगे। वे संविधानके मामलेको चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियोंकी सभाके सुपुर्द करनेको राजी नहीं हो रहे हैं, यह एक खतरनाक खूँट है। अल्पसंख्यकोंको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि उनके लिए जिन संरक्षणोंकी आवश्यकता होगी उनका निर्णय उन्हींके अपने प्रतिनिधि करेंगे। राजाओंको भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि यदि वे न चाहें तो शामिल न हों। जो पक्ष सफल बाधा डाल सकता है और डाल रहा है वह अकेला शासक पक्ष ही है। यह पक्ष जब तक इस नतीजेपर न पहुँच जाये कि वह राज नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता तब तक कोई समझौता नहीं होगा।

सेवाग्राम, २४ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-३-१९४०

३५३. मुख्य न्यायाधीश द्वारा मर्यादाका उल्लंघन

एक भाईने मुझे उस भाषणका अखबारी विवरण भेजा है जो इस लड़ाईमें सरकारको मदद पहुँचानेके लिए हालमें हुई बंगलौरकी एक सभामें मैसूरके मुख्य न्यायाधीशने दिया था। उन्होंने कहा बताते हैं :[1]

> मित्र-राष्ट्र लोकतन्त्र या किसी खास शासन-प्रणालीकी खातिर नहीं लड़ रहे हैं। . . . वे इसलिए लड़ रहे हैं कि भविष्यमें एक राष्ट्र दूसरेपर किसी किस्मका आक्रमण न कर सके। . . . इस देशके एक खास राजनीतिक दलके नेताओंने निश्चय कर लिया है कि अपने राजनीतिक उद्देश्योंके लिए सौदा करनेका यही अच्छा मौका है। उन्होंने धमकी दी है कि हम जो चाहते हैं वह नहीं दिया गया तो हिन्दुस्तानमें झगड़ा खड़ा करके शत्रुकी सहायता करेंगे। . . . मुझे विश्वास है कि जब हिन्दुस्तानका इतिहास लिखा जायेगा तब भारतकी भावी पीढ़ीके बच्चे लज्जित होकर उस हिस्सेसे नजर हटा लेंगे जिसमें मेरे बताये हुए राजनीतिज्ञोंकी चालोंका जिक्र होगा। . . .

ऐसा तो सम्भव नहीं जान पड़ता कि मुख्य न्यायाधीश महोदय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी भेदकी बातें जानते हैं। कुछ भी हो, अगर ब्रिटेन सिर्फ आक्रमणके खिलाफ ही लड़ रहा है, तो यह कोई उचित उद्देश्य नहीं कहा जा सकता। ब्रिटेन आक्रमणकारियोंमें दुनियामें सबसे आगे रहा है, इसलिए विद्वान न्यायाधीशने जो बहाना पेश किया है उसपर तो जर्मनीसे ब्रिटेनका लड़ना उचित नहीं ठहरता।

१. इसके केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

हिन्दुस्तानमें शासन होगा उस संविधानको अंग्रेज नहीं हिन्दुस्तानी बनायेंगे। वे संविधानके मामलेको चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियोंकी सभाके सुपुर्द करनेको राजी नहीं हो रहे हैं, यह एक खतरनाक खूँट है। अल्पसंख्यकोंको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि उनके लिए जिन संरक्षणोंकी आवश्यकता होगी उनका निर्णय उन्हींके अपने प्रतिनिधि करेंगे। राजाओंको भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि यदि वे न चाहें तो शामिल न हों। जो पक्ष सफल बाधा डाल सकता है और डाल रहा है वह अकेला शासक पक्ष ही है। यह पक्ष जब तक इस नतीजेपर न पहुँच जाये कि वह राज नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता तब तक कोई समझौता नहीं होगा।

सेवाग्राम, २४ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-३-१९४०

३५३. मुख्य न्यायाधीश द्वारा मर्यादाका उल्लंघन

एक भाईने मुझे उस भाषणका अखबारी विवरण भेजा है जो इस लड़ाईमें सरकारको मदद पहुँचानेके लिए हालमें हुई बंगलौरकी एक सभामें मैसूरके मुख्य न्यायाधीशने दिया था। उन्होंने कहा बताते हैं:[1]

> मित्र-राष्ट्र लोकतन्त्र या किसी खास शासन-प्रणालीकी खातिर नहीं लड़ रहे हैं। . . . वे इसलिए लड़ रहे हैं कि भविष्यमें एक राष्ट्र दूसरेपर किसी किस्मका आक्रमण न कर सके। . . . इस देशके एक खास राज-नीतिक दलके नेताओंने निश्चय कर लिया है कि अपने राजनीतिक उद्देश्योंके लिए सौदा करनेका यही अच्छा मौका है। उन्होंने धमकी दी है कि हम जो चाहते हैं वह नहीं दिया गया तो हिन्दुस्तानमें झगड़ा खड़ा करके शत्रुकी सहायता करेंगे। . . . मुझे विश्वास है कि जब हिन्दुस्तानका इतिहास लिखा जायेगा तब भारतकी भावी पीढ़ीके बच्चे लज्जित होकर उस हिस्सेसे नजर हटा लेंगे जिसमें मेरे बताये हुए राजनीतिज्ञोंकी चालोंका जिक्र होगा। . . .

ऐसा तो सम्भव नहीं जान पड़ता कि मुख्य न्यायाधीश महोदय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी भेदकी बातें जानते हैं। कुछ भी हो, अगर ब्रिटेन सिर्फ आक्रमणके खिलाफ ही लड़ रहा है, तो यह कोई उचित उद्देश्य नहीं कहा जा सकता। ब्रिटेन आक्रमणकारियोंमें दुनियामें सबसे आगे रहा है, इसलिए विद्वान न्यायाधीशने जो बहाना पेश किया है उसपर तो जर्मनीसे ब्रिटेनका लड़ना उचित नहीं ठहरता।

1. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

मेरे पास अखबारकी कतरन भेजनेवाले सज्जन अपने साथके पत्रमें लिखते हैं :

१. न्यायाधीश महोदयको राजकीय छत्र-छायामें बुलाई निर्दलीय सभामें राजनीतिक विवादकी चर्चा नहीं करनी चाहिए थी।

२. उच्च-न्यायालयके मुख्य-न्यायाधीश होकर उन्होंने एक विशेष दलकी राजनीतिपर खुला आक्षेप करनेमें मर्यादाका उल्लंघन किया है।

३. एक हिन्दुस्तानी रियासतके न्यायिक अधिकारीके नाते उन्हें औचित्य की सीमा पार करके ब्रिटिश भारतकी दलगत राजनीतिमें दखल नहीं देना चाहिए था।

मेरी रायमें यह आलोचना उचित है। कांग्रेस तो इस आक्रमणको झेल जायेगी। मालूम नही अधीश्वरी सत्ताका ध्यान न्यायाधीशके इन असाधारण उद्‌गारोंकी ओर आकृष्ट होगा या नही। कांग्रेसकी नीतिके लिए 'सौदा' शब्दका प्रयोग करके निश्चय ही उन्होंने उसका दुरुपयोग किया है। विदेशी सरकारके संकटमें होनेपर भी कांग्रेस देशको उसके शासनसे मुक्त करनेकी कोशिश करे तो इसमें शर्मिन्दा होनेकी कौन-सी बात है? कांग्रेस अगर शान्तिपूर्ण उपायोसे लड़नेको यह न होती तो उसके लिए प्रतिबहर वाजिब ही नही वल्कि उसका फर्ज भी होता कि वह हर तरहसे देशमें विद्रोहकी हालत पैदा करके अंग्रेजोंकी कठिनाईसे फायदा उठाये। लेकिन कांग्रेसने तो शान्तिकी नीति अख्तियार की है। इसमें शक नही कि अगर वह ईमानदारीके साथ मेरी सलाह मान लेती तो बेहतर होता। मगर कांग्रेसके सामने दो बुराइयोंमें से एकको चुननेका सवाल नही था, वल्कि एक अच्छी और दूसरी उससे भी अच्छी चीजमें से पसन्द करनेका प्रश्न था। दूसरी चीज पसन्द करनेकी उसमें सामर्थ्य नही थी, इसलिए उसको चुननेसे कांग्रेसको हानि होती और उसकी स्थिति कमजोर होती। इसलिए पहली यानी सिर्फ 'अच्छी' चीज ही कांग्रेसके लिए उत्तम थी और इसीलिए मैं भी उसके साथ हो लिया। कांग्रेससे अहिंसाकी नीति मनवा लेनेके बाद यदि मैं अपने उच्चासनपर बैठा रहता और इस महान संस्थाको रास्ता दिखानेमे इनकार करता तो मैं देशके साथ विश्वासघात करता। जिन लोगोंके लिए हिंसक युद्ध एक मानी हुई प्रथा है, उन्हें कांग्रेसपर सौदेकी भावनाका इल्जाम लगाना शोभा नही देता। अपनी आजादीका अधिकार हासिल करनेको कटिवद्ध राष्ट्र द्वारा चलाई जा रही जिन्दगी और मौतकी लड़ाईके लिए ऐसे शब्दका प्रयोग करना विल्कुल गलत है।

सेवाग्राम, २५ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-३-१९४०

३५४. प्रत्येक कांग्रेस कमेटी एक सत्याग्रह समिति है

रामगढ़में कांग्रेसकी विषय-समितिकी बैठक[1] में जब मैंने कहा था कि प्रत्येक कांग्रेस कमेटीको एक सत्याग्रह समिति बन जाना चाहिए, उस समय मैंने यह बात उसी प्रकार अच्छी तरह सोच-समझकर कही थी, जिस प्रकार कि और बातें सोच-समझकर कही थी। मैं चाहूँगा कि सत्याग्रह-सेनामें भाग लेनेका इच्छुक प्रत्येक कांग्रेसी रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशनमें दिये गये मेरे दोनों भाषणों[2] को ध्यानपूर्वक पढ़े, तथा संघर्षके बारेमें मैं 'हरिजन' में जो लिखूं उसे भी पढ़े, और जो आदेश दिये जायें उनको पूरा करे।

आगामी संघर्षमें, यदि उसे आना ही है तो, अधूरी निष्ठासे काम नही चलेगा। किसी ऐसे सेनापतिकी कल्पना कीजिए जिसके साथ युद्धमें जानेवाले सैनिकोंके मनमें शंका हो, जो युद्धके लिए पूरी तरह तैयार न हो। निश्चय ही उसकी युद्धमें पराजय होगी। मैं जान-बूझकर ऐसा कोई घातक प्रयोग नही करूँगा। मेरी इन बातोंका उद्देश्य कांग्रेस-जनोंको डराना नही है। अगर उनमें संकल्प है, तो उन्हें मेरे निर्देशोंका पालन कठिन नही जान पड़ेगा। मुझे पत्र लिखनेवाले अनेक लोग लिखते हैं कि यद्यपि उन्हें मुझमें या चरखेमें कोई विश्वास नही है, फिर भी वे अनुशासन बरतनेकी खातिर चरखा चलाते हैं। यह भाषा मेरी समझमें नही आती। क्या कोई सेनापति ऐसे सैनिकोंके बूतेपर लड़ सकता है जिनके बारेमें उसे मालूम है कि उन्हें उसके नेतृत्वमें विश्वास नही है? इस भाषाका सीधा-सादा अर्थ यह है कि इन पत्र-लेखकोंका सामूहिक आन्दोलनमें विश्वास है। लेकिन यदि उस आन्दोलनको अहिंसक होना है तो उस आन्दोलन और चरखे आदिमें जो सम्बन्ध मैं मानता हूँ, उसमें उनका विश्वास नही है।

वे यह मानते हैं कि सर्वसाधारणपर मेरा प्रभाव है, लेकिन मेरी रायमें जिन चीजोंने मुझे यह प्रभाव प्रदान किया है, उनमें उनका विश्वास नही है। वे केवल मुझसे लाभ उठाना चाहते हैं, और इसके बदलेमें (उनके विचारसे) अपने अज्ञान या हठ-धर्मीके कारण मैं जो कीमत माँगता हूँ, उसे वे बड़ी अनिच्छासे ही चुकानेको तैयार हैं। इसे मैं अनुशासन नही मानता। सच्चा अनुशासन उसे कहते हैं जिसमें व्यक्ति दिये गये निर्देशोंका उत्साहपूर्वक पालन करता है, भले ही उसकी बुद्धिको वे आदेश ठीक न लगते हों। स्वयंसेवक अपने सेनापतिका चुनाव करनेमें अपनी बुद्धिका उपयोग करता है, लेकिन सेनापतिका चुनाव कर लेनेके बाद वह उसके प्रत्येक आदेश

१. १८ मार्चको
२. देखिए "भाषण: विषय-समितिमें", पृ० ३९३-४०० और "भाषण: कांग्रेसके अधिवेशनमें", पृ० ४०२-६।

का पालन करनेसे पहले उन आदेशोंकी जाँच करने और उन्हें अपनी बुद्धिकी कसौटी पर परखनेमें अपना समय या शक्ति नष्ट नही करता। उसको अपने सेनापतिके आदेशोंपर ना नुच करनेका अधिकार नही है।

अब मेरे निर्देशोंको लें।

प्रत्येक कांग्रेस कमेटी सत्याग्रह समिति बन जाये और ऐसे सब कांग्रेसजनोंके नाम दर्ज करे, जो सभी जनोंके साथ सद्भावना कायम करने और बढ़ानेमें विश्वास रखते हैं, जिनके मनमें मैं किसी भी रूपमें अस्पृश्यताकी कोई भावना नही है, जो नियमित कताईको तैयार है और जो खादीके अतिरिक्त और कोई कपड़ा इस्तेमाल नही करते। इस प्रकार समितिमें अपने नाम दर्ज करानेवाले लोगोंसे मैं अपेक्षा करूँगा कि वे अपने खाली समयका उपयोग रचनात्मक कार्यमें करें। अगर लोग ईमानदारीके साथ आगे आते और काम करते हैं तो ये सत्याग्रह समितियाँ कताईके अत्यन्त व्यस्त केन्द्र बन जायेंगी। ये समितियाँ अ० भा० चरखा संघकी शाखाओंके साथ सहयोग करती हुई उनके मार्ग-दर्शनमें इस तरह कामकाजी ढंगसे काम करेंगी जिससे कि उनके क्षेत्रमें एक भी ऐसा कांग्रेसी नही रह जायेगा जो खद्दरके सिवा और किसी प्रकारका कपड़ा इस्तेमाल करता हो। मैं अपेक्षा करूँगा कि सत्याग्रह समितियोंके कामकी प्रगतिकी यथातथ्य रिपोर्टें प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको भेजती रहेंगी। चूँकि इन समितियोंमें नाम दर्ज करानेवाले केवल स्वेच्छासे ही ऐसा करेंगे, अतः इन रिपोर्टोंमें समितिके पास अपने नाम दर्ज करानेवालोंकी संख्या दी जानी चाहिए, और उन लोगोंकी संख्या भी दी जानी चाहिए जिन्होंने नाम दर्ज नही कराये हैं।

नाम दर्ज करानेवाले सत्याग्रही अपने रोजानाके कामका लिखित ब्योरा रखेंगे। स्वयं कताई करनेके अलावा उनका काम यह होगा कि वे कांग्रेसके प्राथमिक सदस्योंके पास जायें और उन्हें खादी पहनने, कताई करने और सत्याग्रह समितिमें अपने नाम दर्ज करानेके लिए समझायें और राजी करें। प्राथमिक सदस्य वैसा करें या न करें, पर उनके साथ सम्पर्क रखना ही चाहिए।

वे हरिजनोंके घरोंमें जायें और जहाँ तक सम्भव हो उनकी तकलीफोंको दूर करें।

कहनेकी जरूरत नही कि केवल उन्ही लोगोंके नाम दर्ज किये जायेंगे जो जेल जाने और कारावास भोगनेको तैयार हों।

सत्याग्रही कैदी अपने या अपने आश्रितोंके लिए किमी प्रकारकी आर्थिक सहायताकी आशा नही करेंगे।

यह तो रही सक्रिय सत्याग्रहियोंकी बात। लेकिन बहुत बड़ी संख्या ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी है जो यद्यपि चरखा तो नहीं चलायेंगे और न जेल जायेंगे, लेकिन जिनका सत्याग्रहके मूल सिद्धान्तोंमें विश्वास है और जिनकी इस लड़ाईके साथ शुभकामना और सद्भावना है। इन्हें मैं निष्क्रिय सत्याग्रही कहूँगा। इस वर्गके सत्याग्रही भी सक्रिय सत्याग्रहियोंके समान ही मूल्यवान सहायता कर सकते हैं, बशर्ते कि वे स्वयंको

गिरफ्तार न करायें, और न प्रयासपूर्वक समयसे पूर्व मजदूरों या विद्यार्थियोंकी हड़तालें करवायें और न उनमें मदद दें, क्योंकि ऐसा करके वे सत्याग्रहकी लड़ाईकी स्वाभाविक प्रगतिमें बाधा डालेंगे। जो लोग अत्युत्साहवश या अन्य किसी कारणसे इन निर्देशोंके विपरीत काम करेंगे वे हमारी लड़ाईको हानि पहुँचायेंगे और मुझे लड़ाई स्थगित करनेके लिए बाध्य भी कर सकते हैं। आज जब संसार-भरमें हिंसात्मक शक्तियोंका नंगा नाच हो रहा है और अत्यन्त सभ्य गिने जानेवाले देश भी जब अपने विवादोंको हल करनेके लिए शस्त्र-बलके प्रयोगके अलावा अन्य किसी तरीकेकी बात सोच नहीं पा रहे हैं, तब मैं आशा करता हूँ कि भारतके लिए यह कह सकना सम्भव होगा कि उसने अपनी आजादीकी लड़ाई बिल्कुल शान्तिपूर्ण साधनोंसे लड़ी और जीती।

मेरे दिमागमें यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि भारतके राजनीतिक दृष्टिसे जागरूक लोग यदि सहयोग करें तो विशुद्ध अहिंसाके जरिये भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करना सर्वथा सम्भव है। संसार हमारे अहिंसाके दावेपर विश्वास नहीं करता। संसारको तो छोड़िए, अपनेको संघर्षका सेनापति माननेवाला स्वयं मैं बार-बार यह स्वीकार कर चुका हूँ कि हमारे मनोंमें हिंसा है, और हम एक-दूसरेके प्रति अपने व्यवहारमें अक्सर हिंसात्मक तरीकोंका प्रयोग करते हैं। मुझे स्वीकार करना होगा कि जब तक हमारे बीच हिंसा विद्यमान है तब तक मैं लड़ाई नहीं कर सकूँगा। लेकिन यदि प्रस्तावित सत्याग्रही-रजिस्टर ईमानदारीसे बनाया जाये, और जो लोग साहसपूर्वक अपनेको इस लड़ाईसे अलग रखें, यदि वे लड़ाईमें किसी प्रकारका दखल देकर उसमें बाधा उत्पन्न न करें, तो मैं अवश्य लड़ूँगा।

अहिंसक कार्यका अर्थ है अपने पक्षमें विश्वका लोकमत तैयार करना। मैं जानता हूँ कि दुनियामें ऐसे विचारशील स्त्री-पुरुषोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है जो युद्धकी भावनासे उकता चुके हैं, वे शान्तिका कोई मार्ग चाहते हैं, और वे मार्गदर्शनके लिए भारतकी ओर निहार रहे हैं। यदि हम लोग ईमानदारीके साथ अहिंसक नहीं हैं तो वैसी दशामें हम उस लोकमतको अपने पक्षमें नहीं कर सकते। मैं इन स्तम्भोंमें बार-बार कहता रहा हूँ और आज फिर दोहराता हूँ कि मैं सच्चे सत्याग्रहियोंकी एक बहुत छोटी फौजको साथ लेकर लड़ाई कर सकूँगा; लेकिन अगर मेरे पास ऐसी बहुत बड़ी फौज भी हो, जिसपर मुझे भरोसा न हो और वह किस प्रकार व्यवहार करेगी, इसका मुझे पता न हो, तो मैं अपनेको कमजोर और अटपटी स्थितिमें महसूस करूँगा।

मैं अ० भा० कांग्रेस कमेटीसे अपेक्षा करता हूँ कि वह सत्याग्रह समितियाँ संगठित करे और इस दिशामें होनेवाली प्रगतिकी मुझे समय-समयपर सूचना दे।

यदि उत्साहपूर्ण उत्तर मिलता है तो एक महीनेके भीतर यह कह सकना सम्भव हो जायेगा कि सत्याग्रह समितियोंकी सुचारु कार्य-व्यवस्था करनेमें कितना समय लगेगा।

सेवाग्राम, २५ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-३-१९४०

३५५. कायदे-आजमको मेरा जवाब

कायदे-आजम जिन्नाने यह कहा बताते हैं[1]:

> श्री गांधी पिछले बीस सालसे कह रहे हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके वगैर स्वराज नहीं मिल सकता। श्री गांधी संविधान-सभाके लिए लड़ रहे हैं। मैं श्री गांधी और कांग्रेसको बताना चाहूँगा कि वे जिस संविधान-सभाके लिए लड़ रहे हैं उसे हम मंजूर नहीं कर सकते। इसलिए संविधान-सभा की कल्पना अव्यावहारिक और अस्वीकार्य है। श्री गांधी मुसलमानोंके विचारों का पता लगानेके लिए संविधान-सभा चाहते हैं, और अगर वे राजी न हुए तो फिर श्री गांधी सब आशाएँ छोड़कर हमसे सहमत हो जायेंगे।[2] अगर उनकी मुस्लिम लीगसे समझौता करनेकी दृढ़ इच्छा है, तो जैसाकि मैंने अनेक बार कहा है, श्री गांधी ईमानदारीके साथ यह क्यों नहीं कबूल कर लेते कि कांग्रेस हिन्दू-संस्था है और पूरे-के-पूरे हिन्दू-समाजके सिवाय यह और किसीकी प्रतिनिधि नहीं है? श्री गांधीको यह कहनेमें गर्व क्यों नहीं होता कि 'मैं हिन्दू हूँ और कांग्रेस हिन्दू-संस्था है'? मुझे तो यह कहनेमें शर्म नहीं आती कि मैं मुसलमान हूँ और मुस्लिम लीग मुसलमानोंकी प्रतिनिधि है। फिर यह सब छद्मावरण क्यों, यह सविनय-अवज्ञाकी धमकी किसलिए, और यह संविधान-सभाके लिए लड़ाई कैसी?
>
> श्री गांधी हिन्दू नेताके रूपमें सामने क्यों नहीं आते? फिर मैं उनसे गर्वके साथ मुसलमानोंका नुमाइन्दा बनकर मिलूँगा।

मेरी स्थिति साफ रही है, और है। मुझे हिन्दू होनेका गर्व है, पर हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करनेके लिए हिन्दूकी हैसियतसे मैं कभी किसीके पास नही गया। मेरा हिन्दू-धर्म किसीसे कौल-करार नही चाहता। खिलाफतको मैंने बिला शर्त मदद दी थी। प्रचलित अर्थमें मैं राजनीतिज्ञ नही हूँ। लेकिन कायदे-आजम या और किन्हीसे भी मैंने जो बातचीत की, वह कांग्रेसकी तरफसे की है और कांग्रेस हिन्दू-संस्था नही है। क्या किसी हिन्दू-संस्थाका अध्यक्ष कोई मौलाना हो सकता है, और उसकी कार्य-समितिके १५ में से ४ सदस्य मुसलमान हो सकते हैं? मेरी अभी भी यही राय है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके वगैर स्वराज नही मिल सकता। मैं मुसलमानों या और किसी दूसरी अल्प-संख्यक जातिको दबानेके काममें हरगिज शरीक नहीं हो सकता। मैंने जिस

१. अ० भा० मुस्लिम लीगके लाहौर अधिवेशन में २२ मार्चको अध्यक्ष-पदसे भाषण देते हुए
२. देखिए "भाषण: विषय-समितिमें", पृ० ३९३-४००।

संविधान-सभाकी कल्पना की है उसमें किसीको दबानेका इरादा नहीं है। उसका एकमात्र उद्देश्य साम्प्रदायिक प्रश्नोंको मिल-जुलकर हल करना होगा। अगर आपसमें समझौता न हुआ तो संविधान-सभा अपने-आप भंग हो जायेगी। संविधान-सभा या चुने हुए प्रतिनिधियोंकी और किसी संस्थाका ही पूरी तरह प्रतिनिधिका दर्जा हो सकता है। कांग्रेसके प्रातिनिधिक दर्जेके बारेमें आपत्ति उठी है और उठ सकती है। मगर संविधान-सभामें जो चुने हुए प्रतिनिधि आयेंगे उनके एकमात्र प्रतिनिधि होनेके दावेपर कौन शंका कर सकता है? मुसलमान प्रस्तावित संविधान-सभाका जो विरोध कर रहे हैं वह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। क्या इन विरोधियोंको यह डर है कि मुसलमान मतदाता मुस्लिम लीगके आदमियोंको नहीं चुनेंगे? क्या वे यह नहीं समझते कि मुसलमान प्रतिनिधि मुसलमानोंके बारेमें जो माँग करेंगे उसको किसी तरह अस्वीकार नहीं किया जा सकेगा? अगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके भारी बहुमतको यह लगे कि वे अपने हिन्दू और दूसरे भाइयों सहित एक राष्ट्र नहीं हैं, तो उन्हें कौन रोक सकेगा? लेकिन इस बातमें शंका जरूर की जा सकती है कि जिन ५० हजार मुसलमानोंने कायदे-आजमका भाषण सुना उन्हें ८ करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके प्रतिनिधि होनेका अधिकार है या नहीं।

सेवाग्राम, २६ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-३-१९४०

३५६. एक साहसपूर्ण बयान

श्री जयप्रकाश नारायणने अदालतके सामने दिये अपने बयानकी एक प्रति मेरे पास भेजी थी। वह नीचे दिया जा रहा है।[1] बयान उनकी मर्यादाके अनुरूप साहस-पूर्ण, संक्षिप्त और प्रासंगिक है। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, विधिकी यह विडम्बना है कि उन्हें उनकी देशभक्तिके लिए दण्डित किया जाये। लाखों लोग जो-कुछ सोचते हैं और हजारों लोग अपनी बातचीतमें जो कहते हैं, उसे श्री जयप्रकाशने सार्वजनिक रूपमें और उन लोगोंके सामने कहा जो युद्धके लिए सामग्री तैयार कर रहे हैं। यह सच है कि अगर उनकी कही बातोंका लोगोंपर असर हुआ और दुबारा इन्हें लोगोंके सामने रखा गया तो सरकार परेशानीमें पड जायेगी। लेकिन इस परेशानीका नतीजा तो यह होना चाहिए कि एक देशभक्तको उसके आजाद खयालके लिए सजा देनेके बजाय सरकार भारतके प्रति अपने रवैयेके सम्बन्धमें सोचे।

बयानका आखिरी हिस्सा लेखकके उत्कट मानवतावादी दृष्टिकोणकी पुष्टि करता है। उनके मनमें किसी तरहका द्वेष नहीं है। उनका मंशा साम्राज्यवाद और नाजी-वादको खत्म करनेका है। अंग्रेजों अथवा जर्मनोंसे उनकी कोई लड़ाई नहीं है। उनका

१. देखिए परिशिष्ट ७।

यह कहना सर्वथा सच है कि अगर इंग्लैंड साम्राज्यवादका त्याग कर दे तो केवल भारत ही नहीं, बल्कि संसारके सभी स्वतन्त्रताप्रेमी खुद-ब-खुद यह कोशिश करेंगे कि नाजीवादकी पराजय और स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्रकी विजय हो।

सेवाग्राम, २६ मार्च, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३०-३-१९४०

३५७. पत्र : एस्थर मेननको

वर्धा

२६ मार्च, १९४०

रानी बिटिया,

लगता है, तुम्हारा पत्र पाये युग बीत गये हैं। इसलिए जब चार्लीने उनके नाम लिखा तुम्हारा पत्र उत्तर देनेके लिए मुझे दिया तो उसे देखकर मेरा मन खुशीसे भर गया। मुझे क्यों नहीं लिखती? यह जानता हूँ कि तुम्हें मेरे समयका बहुत खयाल है। लेकिन कभी-कभी पंक्ति-दो पंक्ति लिख दिया करो, यह तो चाहता ही हूँ।

लड़कियाँ तुम्हारे लिए सबसे बड़ी समस्या है। लेकिन इस सम्बन्धमें भी तुम्हें ईश्वरपर ही भरोसा रखकर चलना है। जिस चीजपर हमारा बस नही चले उसको लेकर परेशान होना बेकार है।

लेकिन खुद तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न?

चार्ली मौतके मुँहसे लौटे। वह अब भी खाटपर ही हैं, लेकिन खतरेसे बाहर। जब मैं कलकत्तामें था, तब अक्सर उन्हें देखने जाता था। महादेव अभी कलकत्तासे आया है। उसने बताया है कि धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे उनकी तबीयतमें सुधार हो रहा है।

अब यहाँके परिवारकी। मैं बिलकुल ठीक-ठाक हूँ। बा बहुत दिनों से खाँसीसे पीड़ित है और कमजोर है। महादेव यही रह रहा है। यहाँ काफी भीड़-भाड़ है। मेरी[1] अब भी अपनी पसन्दके गाँवमें है। तमाम कठिनाइयोंके बावजूद वह वहाँ जमी हुई है।

एम० का पत्र जब-तब आता रहता है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड, पृ० ११५

१. एफ० मेरी बार

३५८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
२६ मार्च, १९४०

चि० कृष्णचंद्र,

सु[शीला] बहनने जो कहा सो प्रस्तुत था, क्योंकि मेरे भाव बता रही थी। मैंने तुमारा खत अ० स० को बताया। सुशीलाने भी देखा। दोनोको देखने जैसा था। तुमारे विगत देनेसे बात बनती नही है ना? जो चीज ले गये उसमें अपने लिए कुछ नही ले गये। छिंदवाडामें मित्र को[ई] नही है जो सब कुछ हाजर करे। इसलिये मैंने मुन्नालालको [एक बार] अगाडीसे भेजा और [फिर] साथमें भी भेजा। अगर अधिक ले गये तो कुछ हानि नही है। अकेले जाते तो न कच्चा अनाज ले जाते, न बरतन।

मेरे विषयमें तुमारी टीका बिलकुल ठीक है। उसमें काफी वैभव भरा है। उसका इलाज कुछ कठिन सा हो गया है। मेरे लिये सामान यहांसे ही जा सकता है। रास्तेमें मेरे लायक सिर्फ फल ही मिल सकता है। लेकिन मेरे लिये वस्तु बनाने में आडंबर ठीक रहता है। दूसरोंके लिये बनता है सो प्रवाह पतित है। कैसे भी हो मैं किसी चीजका समर्थन नही करता हूं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४१) से

३५९. पत्र : एस्थर मेननको

वर्धा
[२६ मार्च, १९४० के पश्चात्][1]

रानी बिटिया,

भगवानपर भरोसा रखकर प्रसन्न रहो। यूरोपमें जो हाहाकार मचा हुआ है उसके आगे सब फीका पड जाता है। क्या तंगई[2] के लिए कुछ किया नहीं जा सकता?

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृ० ११९

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र २६ मार्च, १९४० के पत्रके बाद रखा गया है।
२. एस्थर मेननकी पुत्री

३६०. तार : श्रीमती याकूब हसनको

[२७ मार्च, १९४० या उससे पूर्व][१]

अपने शोकमें मेरी हार्दिक संवेदना स्वीकार करें।[२] ईश्वर आपको यह दुःख सहनेकी शक्ति प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २७-३-१९४०

३६१. पत्र : सी० पी० रामस्वामी अय्यरको

सेवाग्राम
२८ मार्च, १९४०

प्रिय मित्र,

आपने देखा होगा कि इधर हालमें मैंने 'हरिजन' में त्रावणकोरके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है। मेरे इस मौनका कारण यह था कि कुरूप और रंगस्वामीने मुझे लिखा था कि आप मुझसे बातचीत करनेके लिए सेवाग्राम आनेवाले हैं। मैं इसकी उत्सुकतासे राह देखता रहा हूँ। आखिरी सूचना प्राप्त होनेके बादसे काफी समय बीत चुका है। यदि आप मुझे दो शब्द लिख भेजें कि क्या निकट भविष्यमें हमारी मुलाकात होनेकी कोई सम्भावना है, तो मैं अनुगृहीत होऊँगा।

फिलहाल, त्रावणकोरके सम्बन्धमें मुझे जो सबसे ताजा नोट मिला है वह मैं आपको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. रिपोर्ट "मद्रास, २७ मार्च, १९४०" तिथि-पंक्ति के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है।

२. श्रीमती याकूब हसनके पतिकी, जो मद्रासके भूतपूर्व लोक-कार्य मन्त्री थे, मृत्यु हो गई थी।

३६२. पत्र : चिमनदास आई० जगत्यानीको

सेवाग्राम, वर्धा
२८ मार्च, १९४०

प्रिय चिमनदास,

तुमने जो उद्धरण[1] दिया है वह बहुत अच्छा है। आशा है, तुम्हारा चरखा-कार्य उन्नति करेगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७३८) से

३६३. पत्र: मुन्नालाल जी० शाहको

२९ मार्च, १९४०

चि० मुन्नालाल,

अस्पतालके बारेमें तय तो कुछ नहीं किया। सुशीलाबहन कहती है कि काम सारा तीन बजे तक रहता है। अत. यदि तुम १० से २ तक लगातार वक्त दे सको, तो बात बने। इस बीच भोजनके लिए समय निकाला जा सकता है। बीचमें आरामकी जरूरत हो तो भोजनके समयके साथ उसके लिए भी गुंजाइश निकाली जा सकती है। अर्थात् सब मिलाकर पौन घंटा या ज्यादा-से-ज्यादा एक घंटा। यह सुझाव विचारने लायक हो, तो विचार करना।

पुस्तकालयके बारेमें जो तुम लिखते हो, वह मुझे पसन्द है। चिमनलालके साथ परामर्श करके, यदि इसपर तुरन्त अमल किया जा सकता हो, तो करना। मेरी मददकी जरूरत हो, तो लेना। पुस्तकालयको सुन्दर बनाना आवश्यक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४८) से। सी० डब्ल्यू० ७०७८ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

1. सिन्धके प्रसिद्ध सूफी कवि शेख लतीफकी उन पंक्तियोंका अनुवाद इस प्रकार है: जो स्पर्धाकी भावनासे सूत कातते हैं उनका सूत स्वीकार नहीं किया जाता। जो हार्दिक प्रेमके साथ कातते हैं उनका किया जाता है. . .।"

३६४. एक सन्देश

३० मार्च, १९४०

सब स्त्री-पुरुष जब तक अच्छी तरह लिख पढ़ नहिं सकते है हमारी शरम मानी जाय।

मो० क० गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५६१) से

३६५. भाषण: खादी यात्रामें[1]

सेवाग्राम
३० मार्च, १९४०

अभी आपने अपनी प्रार्थनाके अंगके रूपमें ग्यारह प्रतिज्ञाएँ दोहराई। यह आन्तरिक और वाह्य मुक्ति प्राप्त करनेका हमारा सूत्र है। इसकी परिधिमें काम करते हुए कभी-कभी सफलता कठिन जान पड़ सकती है, लेकिन अगर हममें श्रद्धा है तो निराशाका कोई कारण नहीं है। हमारे सामन जितनी अधिक कठिनाइयाँ हों, हममें उतनी ही अधिक श्रद्धा जगनी चाहिए। इसी प्रकार खादी कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेके लिए भी श्रद्धाकी आवश्यकता है।

सेवाग्रामके लोगोंने निमन्त्रण दिया और मैं इस बातपर राजी भी हो गया कि यात्राका आयोजन यहाँ किया जाये। लेकिन इसका मतलव यह नही कि मैं इस स्थानको ऐसी यात्राके उपयुक्त मानता हूँ। मेरी कसौटी तो यह होगी कि खादीको अपनानेवाले लोगोंका प्रतिशत कितना अधिक है। अभी तो शायद सेवाग्रामके २० प्रतिशत लोग ही खादी पहनते हैं। जो लोग पहनते हैं, उन्होंने भी इसे पूरी तरहसे और इसके फलितार्थोंके सही बोधके साथ नही अपनाया है। खादीको उसके तमाम फलितार्थोंके साथ स्वीकार करनेका मतलव व्यक्तिके जीवनमें क्रान्ति आ जाना है। इसका मतलव व्यापक अर्थोंमें शुद्धि है और देशकी आजादीके लिए अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा देनेकी तत्परता है। क्या सेवाग्रामके लोग इस कसौटीपर खरे उतरते हैं? मुझे तो लगता है कि नही उतरते। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह विफलता

१. "सेवाग्राम खादी यात्रा" शीर्षक लेखसे उद्धृत। खादी-यात्रा वर्धा जिलेके खादी-प्रेमियोंका वार्षिक सम्मेलन था। इसका आयोजन विनोबा भावेकी प्रेरणासे और उन्हींके मार्ग-दर्शनमें ग्राम सेवा मण्डल करता था।

अंशतः मेरी है। उन्हें आवश्यक शिक्षा देनेके लिए मैंने पर्याप्त कोशिश नहीं की है। मैं चाहूँगा कि अगली यात्राका आयोजन आप किसी ऐसी जगहमें करें जो मेरी कसौटीको कम-से-कम एक हद तक तो पूरी करती हो।

मलिकन्दामें हमने गांधी सेवा-संघके आकार और उसकी प्रवृत्तियोंको काफी कम कर दिया और उसे संघके सिद्धान्तोंके क्षेत्रमें प्रायोगिक अनुसन्धानका काम करनेवाली संस्थाका रूप दे दिया। उन सिद्धान्तोंके कुछ उदाहरण हैं — सत्य, अहिंसा, खादी और इन सबके पारस्परिक सम्बन्ध। मैंने कहा है कि खादी और अहिंसामें गहरा सम्बन्ध है। लेकिन इसे मैं पूरी तरह सिद्ध नहीं कर पाया हूँ। मेरी बुद्धि मेरे हृदय का अनुसरण करती है। हृदयके बिना तो वह बहक जायेगी। हृदयका सम्बन्ध श्रद्धासे है। बुद्धि उस श्रद्धाको कार्यरूप देनेवाली है। कुछ लोग सोचते हैं कि दोनों परस्पर विरोधी हैं, लेकिन बात ऐसी नहीं है। जिसकी श्रद्धा जितनी प्रबल है, उसकी बुद्धि उतनी ही प्रखर होती है। इसलिए यद्यपि खादीके प्रति मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ रही है, लेकिन मैंने अपनी बुद्धि ताकपर नहीं रख दी है। मैं सभी विरोधी आलोचनाओंको खुले और ग्रहण करनेको तत्पर दिमागसे सुनता हूँ। उनमें जो-कुछ लेने लायक होता है उसे ले लेता हूँ और बाकीको असार मानकर छोड़ देता हूँ। मैं अपनी भूल सुधारनेको हमेशा तैयार हूँ। अपनी भूलकी पूर्ण और स्पष्ट स्वीकृति मनुष्यको उसकी पुनरावृत्तिसे रोकती है। अपनी भूलका पूर्ण बोध सर्वोत्तम प्रकारका प्रायश्चित्त भी है। मैं चाहूँगा कि मैं जो-कुछ कहता हूँ उसे सभी सहयोगी अपनी बुद्धिकी कसौटीपर परखें। जब श्रद्धा अन्धी हो जाती है तब वह दम तोड़ देती है। खादी-कार्यकी यह एक कमजोरी है कि बहुत-से खादी-सेवक अपने काममें अपनी बुद्धिका उपयोग नहीं करते। हमें यह पता लगाना चाहिए कि खादीकी प्रगति धीमी क्यों है? हो सकता है, तफसीलकी बातोंमें हमसे भूल हुई हो; हो सकता है, हमें यह पता चले कि भविष्यमें हमें बिक्रीके लिए उत्पादनकी अपेक्षा स्वेच्छया कताई पर अधिक जोर देना है। किसी समय कतैयेके लिए प्रतिदिन आठ आनेकी मानक मजदूरीकी व्यवस्था अविलम्ब करनेका सुझाव मैंने ही पेश किया था। लेकिन अनुभवी खादी-कार्यकर्ताओंकी सलाहपर हमने फिलहाल तीन आनेकी मानक मजदूरी पर ही सन्तोष माना था और उच्चतर मजदूरीको अपना ऐसा लक्ष्य माना था जिसे प्राप्त करना है। यह वृद्धि भी बहुत है। क्या हम इसे कायम रख सकेंगे?

अब राजनीतिक पहलूको लें। मैंने कहा है कि हम खादीके बलपर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस मान्यतामें आपकी सच्ची श्रद्धा है तो अब आप तब तक चैनकी साँस नहीं लेंगे जब तक कि अपने बुद्धि-बलसे दुनियाके सामने इसे सिद्ध न कर देंगे। खादीके अर्थशास्त्र, राजनीति और समाजशास्त्रके पारस्परिक सम्बन्ध बुद्धिरहित श्रद्धाके आधारपर नहीं टिक सकते। चरखा ही वह चीज है जो सार्वत्रिक बनकर शस्त्रके प्रयोगका स्थान ले सकता है। यदि करोड़ों लोग अपनी आर्थिक मुक्तिके लिए चरखा चलानेमें आपसमें सहयोग करते हैं तो केवल यही चीज उन्हें अजेय शक्ति प्रदान कर सकेगी, जिसके सहारे वे अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकेंगे। आपने

इस बातको लक्ष्य किया होगा कि सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेकी पूर्व शर्तके रूपमें खादी कार्यक्रमके पूरा किये जानेपर मैं कितना अधिक जोर दे रहा हूँ। यदि आपकी तैयारी पूरी हो जाये तो हो सकता है कि संघर्षकी जरूरत ही न पड़े। अगर संघर्ष जरूरी भी हुआ तो वह अल्पकालिक होगा और उसमे हमारी विजय निश्चित होगी। लेकिन अगर थोड़े-से लोग ही चरखेको अपनाते हैं तव तो अपने देशभाइयों और अंग्रेज शासकोंके अन्तःकरणको जाग्रत करनेके लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपना सर्वस्व न्योछावर कर दें। उनके वलिदानकी कार्य-साधक क्षमता इस वातपर निर्भर होगी कि वे कहाँ तक शुद्ध और निर्दोष वन पाये हैं। खादीके फलितार्थोंके ज्ञानके विना केवल खादी पहननेसे कोई लाभ होनेवाला नही है। कारण, खादीका चलन हो जानेपर तो कुकर्मी लोग भी खादी पहनने लगेंगे। ईश्वरके दिये सूर्यके प्रकाश और वायुकी तरह खादी सवके लिए है। लेकिन खादीको अपनाने-भरसे सभी सत्याग्रह करनेके अधिकारी नहीं वन जाते। खादी, शुद्धि और अपना वलिदान देनेकी तत्परता, ये तीनों सत्याग्रहकी आवश्यक शर्तें हैं। चरखा वाहरी प्रतीक है। इसके विना आपका वलिदान अहिंसक नहीं होगा। मेरे पास संघर्षकी कोई पहले-से वनी-वनाई योजना नही है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि अगर मैं पाखण्डी या मूर्ख नही हूँ तो मुझे इसकी तैयारी पूरी करके रखनी है।

और अन्तमें, चूँकि इस यात्राका आयोजन यहाँ किया गया है, इसलिए मेरा निवेदन है कि आप सेवाग्रामको एक वर्षके अन्दर पूर्णतः खादीधारी वना देनेका कार्यक्रम तैयार करें। इस प्रयोगसे आपकी श्रद्धा और वुद्धिका प्रशिक्षण होगा और हो सकता है, इसमें से आपको खादीको सार्वत्रिक वनानेकी कुंजी भी मिल जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-४-१९४०

३६६. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

सेवाग्राम

३१ मार्च, १९४०

प्रिय कु०,

गजानन[1] तो सदावहार हैं। उसने मुझे एक लम्वा पत्र भेजा है और मुझसे आकर मिल भी गया है। वह वता रहा था कि उसका ताड़-गुड़को व्यापारिक उपयोगमें लाना तुम्हे पसन्द नही है, और मन्जूरशुदा खर्चके तरीकोंको भी तुम नियन्त्रित करना चाहते हो। मैंने उससे कह दिया है कि उसके ताड़-गुड़को व्यापारिक उपयोगमें लानेमें जव तक कोई घाटा नहीं होता, तव तक तुम उसपर कोई आपत्ति नहीं कर सकते और स्वीकृत वजटके अनुसार पैसा खर्च करनेमें भी तुम कोई दखल नहीं दोगे। अगर तुम्हारे दृष्टिकोणको मैंने ठीक समझा है तो इस पत्रकी वातोंपर सिर्फ अपनी

१. अ० भा० ग्रामोद्योग संघके गुड़ विभागके सुपरवाइजर, गजानन नायक

सहमति प्रकट कर देना। अगर तुम्हारा दृष्टिकोण समझनेमें मुझसे गलती हुई हो और तुम्हें अवकाश मिले तो गुरुवारको दिनके ४.३० बजे तुम यहां आ जाओ। इसकी चर्चामें हम दोनों अपने ३० मिनट बरबाद होने देंगे।

जो बोतल लौटाई थी पता नहीं उसमें टमाटरकी चटनी भरकर उसे फिर वापस किया गया या नहीं।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१५०) से

३६७. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम
३१ मार्च, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा तार और पत्र मिले। जयप्रकाशका पत्र भी मिला। मैंने तो अधिक सजा की बात सोची थी। एक दृष्टिसे तो मुझे यह सजा[1] अच्छी लगती है। उसे आराम तो मिलेगा। देखना, कि वह खान-पानमें सावधानी बरते। और तू खुद तो वहांके काममें जुट जाना। तुझे सब सखी-सहेलियोंके नाम-पते जानकर उनके लिए चरखे आदि जुटाने चाहिए। वह सब करना चाहिए जिससे उन्हें घरपर ही लिखने और पढ़नेकी तालीम मिल सके। जो पढ़ सकती हैं, उन्हें 'हरिजनसेवक' तथा अन्य साहित्य पहुंचाना चाहिए। सफाईकी तालीम देनी चाहिए। पर्दा-प्रथाका बहिष्कार करनेकी भावना उत्पन्न करनी चाहिए। लेकिन इसमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

मेरी तबीयत ठीक है।

पत्र जयप्रकाशको पहुँचा देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४४) से

१. देखिए "एक साहसपूर्ण बयान", पृ० ४१९-२०।

३६८. पत्र : जयप्रकाश नारायणको

सेवाग्राम
३१ मार्च, १९४०

चि० जयप्रकाश,

तुमारा खत मिला। मैं तो तुमारी बात नही छोडूंगा। तुमारा प्रस्ताव प्रगट करूँगा। उसपर लिखुंगा।[1] तुमारी बात मैं मानता हूँ कि कम-से-कम गाफिल न रहूँ।

डि० बोर्ड इ० के बारेमें, सब ढीले हैं। कोई निश्चय नही कर सके हैं। मैं खुद उन लोगोंका अभिप्राय सुनकर शंकित हो गया। मुझे जाति [व्यक्तिगत] अनुभव नही इसलि[ए] मैं जोर नहीं दे सकता हूँ। नरेन्द्रदेव[2] से इस बारेमें और समझ लूंगा।

प्रभाको जो काम लिया है उसीमें डटे रहनेको प्रोत्साहन दूंगा।

शरीर अच्छा रखना।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२१९)से

३६९. चर्चा : खादी यात्रामें[3]

सेवाग्राम
३१ मार्च, १९४०

प्र० : बुनियादी शिक्षा-योजनामें तकली आर्थिक प्रयोजन, अर्थात् योजनाको स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे दाखिल की गई है या शैक्षणिक दृष्टिकोणसे?

१. देखिए "जयप्रकाश द्वारा प्रस्तुत चित्र", १४-४-१९४०।

२. आचार्य नरेन्द्रदेव (१८८९-१९५६); अखिल भारतीय किसान सभाके अध्यक्ष, १९३९ और १९४२; सोशलिस्ट पार्टी तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टीके प्रमुख नेता; लखनऊ विश्वविद्यालयके तथा बादमें, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके उपकुलपति

३. "सेवाग्राम खादी-यात्रा" शीर्षक लेखसे उद्धृत। विवरणके प्राक्कथनके अनुसार "खादी-यात्रा ३१ मार्चको शाम पाँच बजे समाप्त हो गई थी, लेकिन गांधीजी इस बातपर सहमत हो गये थे कि किसीको कुछ पूछना हो तो वे सायंकालीन प्रार्थनाके बाद उसका उत्तर देंगे। इसलिए बहुत-से लोग उस रात वहीं ठहर गये थे।"

उ० : बुनियादी शिक्षामें जो भी चीज शामिल की जायेगी, एक दृष्टिकोणसे— अर्थात् शैक्षणिक दृष्टिकोणसे ही शामिल की जायेगी। बुनियादी शिक्षाका उद्देश्य दस्तकारी द्वारा बच्चोंका शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करना है। लेकिन मैं मानता हूँ कि जो योजना शैक्षणिक दृष्टिकोणसे सही है और जिसका कार्यान्वयन कुशलतासे किया जाता है वह आर्थिक दृष्टिसे भी निश्चय ही सही साबित होगी। उदाहरणके लिए, हम उन्हें मिट्टीके ऐसे खिलौने बनाना सिखा सकते हैं जिन्हें बादमें तोड़ देना है। उनसे भी उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़ेगी। लेकिन जो खिलौने बादमें तोड़ दिये जायें ऐसे खिलौने बनानेसे एक महत्त्वपूर्ण नैतिक सिद्धान्तकी उपेक्षा होगी। मेरा मतलब इस सिद्धान्तसे है कि किसी मानवीय श्रम और वस्तुका उपयोग निरर्थक या अनुत्पादक ढंगसे नहीं किया जाना चाहिए। अपने जीवनका एक-एक क्षण उपयोगी ढंगसे बितानेके सिद्धान्तपर जोर देना नागरिकताकी सबसे अच्छी शिक्षा है और इससे सहज ही बुनियादी शिक्षाको स्वावलम्बन भी प्राप्त होगा।

प्र० : खादी और कताईसे स्वराज्य कैसे मिल सकता है?

उ० : जब करोड़ों लोग आपसमें सहयोग करते हैं तो उससे अनिवार्यतः भारी शक्ति पैदा होती है, जिसका उपयोग चाहे जिस प्रयोजनके लिए किया जा सकता है। चरखा ऐसे सहयोगका सबसे अच्छा साधन है। इससे दरिद्रनारायणको रोजगार, भोजन और वस्त्र मिलता है। इससे अनिवार्यतः सार्वजनिक जागृति आयेगी और स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अहिंसक शक्ति पैदा होगी।

प्र० : जो खादीको अपनाता है उसके लिए क्या कातना भी जरूरी है?

उ० : आर्थिक दृष्टिसे तो खादी अपनाना ही काफी है। लेकिन अगर खादीको हमारा स्वराज्य-प्राप्तिका साधन बनाना है तो कताई भी उतनी ही जरूरी है। खादी हमें आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करती है, जबकि कताई कम-से-कम मजदूरी पानेवालोंके साथ हमारा सम्बन्ध कायम करती है। सैन्यीकृत देशोंमें सबको सैनिक प्रयोजनोंके लिए कुछ-न-कुछ समय देना पड़ता है। चूंकि हमारा आधार अहिंसक है, इसलिए हरएकको साल-दर-साल कुछ-न-कुछ समय तक यज्ञार्थ कताई अवश्य करनी चाहिए। मौलाना मुहम्मद अली तकली और सूतको स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए हमारा हथियार और गोला-बारूद कहा करते थे। यह उपमा बड़ी सटीक है। क्या स्वैच्छिक भरतीके तौरपर कताईके लिए एक-आध घंटा प्रतिदिन देना हमारे लिए बहुत भारी है? मुझे याद है कि पिछले युद्धके शुरूके दिनोंमें जब मैं इंग्लैंडमें था तब मुझे सिपाहियोंके लिए पैजामा-सूट सीनेका काम दिया गया था। अत्यन्त अभिजात परिवारोंके भी बहुत-से लोग, जिनमें अनेक सम्माननीय वृद्ध स्त्री-पुरुष शामिल थे, इस तरहके काम करते थे। हम सब अपने-अपने हिस्सेका काम अपेक्षित समयपर कर देते थे। कोई भी स्त्री या पुरुष इसे अपनी प्रतिष्ठाके विरुद्ध नहीं मानता था। युद्धके अन्तिम दिनोंमें पूरे राष्ट्रने पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक काम करके दिया, फिर भी किसीने इस बातकी शिकायत नहीं की कि उसे इतना श्रम करना पड़ता है। मैं

आपको सचेत कर देता हूँ कि आज यद्यपि मैं आपसे प्रतिदिन केवल आधा या एक घंटा कातनेको कह रहा हूँ, लेकिन परिस्थिति ऐसी भी हो सकती है जब मुझे आपसे बहुत अधिक करनेको कहना पड़े।

प्र० : सविनय प्रतिरोधी कैदियोंको जेलमें खादी पहनने और नियमित रूपसे कातनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिए सत्याग्रह करना चाहिए या नहीं?

उ० : सत्याग्रही तो खुशी-खुशी जेलके सारे अनुशासनको स्वीकार करता है। वह कभी अधिकारियोंको परेशान नहीं करना चाहता। जब आप जेलसे बाहर पूर्णत: नियमित रूपसे कताई न करते हों तब जेलमें कातनेकी सुविधा देनेका आग्रह करना एक प्रकारकी हिंसा ही होगी। मैं किसीसे भी यह रास्ता अपनानेको नही कहूँगा, यद्यपि अप्पा पटवर्धन-जैसे कुछ अपवाद भी हो सकते हैं, जो वैसी अनुमति पानेके लिए किसी भी सीमा तक कष्ट-सहन कर सकते हैं।[1] अतीतमें हमारा आचरण आदर्श कैदियों-जैसा नही रहा है। हमारे आचरणमें हिंसा और असत्य रहा है। मैं नहीं चाहता कि फिर वही सब हो। हम जेलके अधिकारियोंसे चाहें तो अनुनय-विनय करके यह सुविधा पानेकी कोशिश भले करें। यदि मुझे ये सुविधाएँ न दी जायें तो मैं तो भारी संकटमें पड़ जाऊँगा। जो बात मैंने कताईके बारेमें कही है वही खादीपर भी लागू होती है।[2]

एक अन्य प्रश्नका उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा कि कार्यकर्ताओंको ग्राम-वासियोंसे खूब मिलना-जुलना चाहिए, अपनेको उनके साथ एक कर देना चाहिए और उनका प्रेम प्राप्त करना चाहिए तथा उनकी सेवा करनी चाहिए। उनका कहना था कि अगर हमें एक खासी संख्यामें ऐसे सेवक मिल जायें तो हम जल्दी ही स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्र० : जब आप किसी सभामें प्रवेश करते हैं या बोलते हैं, उस समय क्या हर्ष-ध्वनियाँ और 'महात्मा गांधीकी जय' के नारे आपको अच्छे लगते हैं?

उ० : यहाँ हमारा एक छोटा-सा संगठन है। यहाँ सेवाग्राममें तो हर्ष-ध्वनियों या जयके नारे की नौबत नही आती। आपने जो कहा वह कुछ अच्छा नहीं लगता। यह अपरिष्कृत भी है और त्याज्य भी। किसी परिवारमें सम्मानकी जरूरत नहीं होती। मैं अपने देशको एक बड़ा परिवार मानता हूँ। मैं महात्मा नहीं हूँ, बस सच्चा सेवक बननेकी कोशिश करता हूँ। ऐसा है या नहीं, यह तो ईश्वर ही बता सकता है।

प्र० : जो चीज एकके लिए सत्य है उसे क्या सबको सत्य मानना चाहिए?

उ० : सत्यकी परिभाषा नहीं की जा सकती। वह ईश्वरका ही दूसरा रूप है। ईश्वर, अर्थात् सत्यकी सेवा सत्याग्रह है। सत्य एक सापेक्ष शब्द है। स्वतन्त्रताकी

१. देखिए खण्ड ५२, पृ० १०८-९, १५१-५२ और १५४।

२. इससे आगेका अंश *हितवाद* से लिया गया है।

आराधनाके लिए हमें सत्य और अहिंसा-रूपी साधनोंकी आवश्यकता है। हम सत्यको अहिंसा द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

प्र० : क्या आप स्वराज्यके बाद भी चरखेपर आग्रह रखेंगे?

उ० : ज्यों ही स्वराज्य प्राप्त होगा, मैं आपका सेनापति नहीं रह जाऊँगा। तब आपको अपने राष्ट्रपतिका चुनाव करना होगा। उसके बाद यह तो आप स्वयं तय करेंगे कि आपको कातना है या नहीं। लेकिन अगर मैं जीवित रहा तो उसपर अवश्य आग्रह रखूंगा। क्योंकि आप जानते हैं कि जिस साधनसे हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे उसका हम त्याग नहीं कर सकते। इंग्लैंड या जर्मनीके दृष्टान्तसे यह स्पष्ट हो जाता है। अपने-अपने शत्रुओंको जीतनेके बाद उन्होंने शस्त्रों (हिंसात्मक साधन) का त्याग नहीं किया। चरखा हमारा गोला-बारूद—तोप और बन्दूक है और इसलिए हम इसे छोड़ नहीं सकते। अगर आप चरखा नहीं चलाते तो आपको मैं अपनी सेनामें भरती नहीं कर सकता। कोई जबरदस्ती नहीं है। लेकिन आपने मुझे अपना सेनापति चुन लिया है और ये मेरी शर्तें हैं जिनका आपको पालन करना होगा।

इस प्रश्नके उत्तरमें कि क्या कुछ परिवार सारा समय कताईमें लगाकर अपना गुजारा कर सकते हैं, और अपने बच्चोंकी शिक्षा आदिकी व्यवस्था कर सकते हैं, गांधीजी ने कहा :

मैं ऐसा कभी नहीं कहता, और न यह सम्भव ही है। यह सम्भव है कि हम खादी तैयार करनेसे प्राप्त मजदूरीसे अपना गुजारा कर सकें। लेकिन अगर खद्दरको सभी अपना लें तो यह महँगा हो जायेगा। इस उद्योगमें सबके लिए काम जुटाना सम्भव नहीं है। हमें खाली समयमें कातना चाहिए। खादी हमारी अन्नपूर्णा है, अर्थात् इससे हुई कमाईसे हम जरूरतकी कुछ चीजें खरीद सकते हैं। यदि एक करोड़ लोग कातनेमें लगें तो उससे बड़ी शक्ति पैदा होगी।

क्या आप मशीनोंके खिलाफ हैं, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा :

जो चीजें हम मशीनोंकी सहायताके बिना तैयार कर सकते हैं और जिन्हें तैयार करनेकी हममें क्षमता है उन्हें हमें मशीनोंसे तैयार नहीं करना चाहिए। चूंकि मशीन हमें अपना गुलाम बनाती है और हम स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनना चाहते हैं, इसलिए जहाँ हम मशीनके बिना काम चला सकते हों वहाँ उसकी सहायता हमें नहीं लेनी चाहिए। हम अपने गाँवोंको स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं और उन्हींके जरिये अपने लक्ष्य — स्वराज्य — को प्राप्त करना और उसकी रक्षा भी करना चाहते हैं। मशीनोंमें न तो मेरी कोई रुचि है और न मैं उनका विरोधी हूँ। अगर मैं अपनी जरूरतकी चीजें स्वयं पैदा कर सकता हूँ तो उसका मतलब है कि मैं अपना मालिक खुद हूँ और इसलिए मुझे मशीनोंकी कोई जरूरत नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-४-१९४०, और हितवाद, ५-४-१९४०

३७०. प्रश्नोत्तर

क्या आप विचलित नहीं हुए हैं?

प्र० : आपने श्री जयप्रकाश नारायणके बारेमें लिखा है[1]। लेकिन उन्हें दी गई सजासे क्या आप विचलित नहीं हुए हैं? क्या यह युद्धका आह्वान नहीं है? क्या अब भी आप अपनी असम्भव शर्तोंके पूरे होनेकी बाट जोहते रहेंगे?

उ० : मुझे लगता है, अपनी शर्तोंके पूरे होनेकी बाट तो मुझे जोहनी ही पड़ेगी। आपको इतना मान लेना चाहिए कि सत्याग्रह कैसे चलता है, यह बात आपकी अपेक्षा मैं ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। बेशक, उस बहादुर साथी कार्यकर्ताको दी गई सजासे मैं विचलित हुआ हूँ। काश, मैं आपको उसी तरह विचलित कर पाता जिस तरह मैं हुआ हूँ। यदि आप उस तरह विचलित हो जायें तो स्वयं पूरे मनसे चरखा चलाकर और अपने पड़ोसियों तक उसका सन्देश पहुँचाकर आप चुपचाप और अधिक लगनके साथ चरखेके पंथका प्रचार करने लग जायेंगे। जयप्रकाशने तो जेल जाकर अपना पुरस्कार प्राप्त कर लिया है। उन्हें अन्तःप्रेरणा हुई। वे उस पुरस्कारके योग्य पात्र थे। आप सच मानिए, यह बात अपना असर खुद दिखायेगी। अगर मैं अधीरतावश ऐसी कार्रवाई करूँ जिससे समयसे पूर्व ही संघर्ष छिड़ जाये तो जयप्रकाशकी कैदका सुपरिणाम अंशतः या शायद पूर्णतः मिट्टी में मिल सकता है। मैं भारतमें अराजकताकी स्थिति उत्पन्न करनेमें योग नही दूंगा। और अगर मैं व्यक्तियोंसे जयप्रकाशके चरण-चिह्नोंपर चलते हुए जेल जानेको कहूँ तो उससे भी कोई प्रयोजन सिद्ध होनेवाला नही है। सत्याग्रहकी लड़ाईमें जेल जानेकी कार्रवाई गणितके नियमकी तरह लागू नही होती। केवल एक व्यक्तिका ही जेल जाना भी सबसे अधिक उपयुक्त हो सकता है। इतना कहना काफी है कि जयप्रकाशकी कैदकी ओर मैं पूरी गम्भीरतासे ध्यान दे रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि सभी कांग्रेसी अपने सामने पड़े कार्यको पूरा करनेमें दूने उत्साहसे जुट जायें।

रचनात्मक कार्य और सविनय अवज्ञा

प्र० : रचनात्मक कार्यकी खातिर आपने गांधी सेवा-संघ तथा ऐसी ही दूसरी संस्थाओंमें सत्ताकी राजनीति निषिद्ध कर दी है। क्या इसका मतलब यह है कि इन संस्थाओंमें काम करनेवाला कोई भी कार्यकर्ता सविनय अवज्ञामें भाग नहीं ले सकता? मुझे ऐसी आशंका है कि सविनय अवज्ञा और रचनात्मक कार्यके बीच

१. देखिए "जयप्रकाश नारायण", पृ० ३६३ और "एक साहसपूर्ण बयान", पृ० ४१९-२०।

ऐसी दुर्भेद्य दीवार खड़ी करनेका परिणाम यह होगा कि रचनात्मक कार्य पंगु हो जायेगा, क्योंकि प्रथम कोटिका कोई भी कार्यकर्ता सविनय अवज्ञाका त्याग करके रचनात्मक कार्यको नहीं अपनायेगा।

उ० : जो लोग आपकी तरह बात करते हैं, वे रचनात्मक कार्यका महत्त्व नहीं जानते। रचनात्मक कार्य हर हालतमें सविनय अवज्ञासे श्रेष्ठ है। रचनात्मक प्रयत्नके संबलसे रहित सविनय अवज्ञा न तो सविनय हो सकती है और न अहिंसक। जो लोग सिर्फ सविनय अवज्ञाको ध्यानमें रखकर रचनात्मक कार्य करते हैं वे चीजोंको उलट कर देख रहे हैं, ऐसा माना जायेगा। अभी तो सभी सत्याग्रहियोंको अपनेको तैयार रखना है, लेकिन सम्भव है सबको संघर्षमें भाग लेनेको आमन्त्रित न किया जाये। आरक्षित सैनिक भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है जितना मोर्चेपर डटा हुआ सैनिक। अगर संघर्ष छिड़ ही गया तो मैं यह तो बेहिचक कह सकता हूँ कि मेरी वर्तमान योजना उस हालतमें भी रचनात्मक कार्यमें कम-से-कम व्यवधान डालनेकी है। मैं मानता हूँ कि आपके प्रश्नका सम्बन्ध केवल उन लोगोंसे है जो अ० भा० चरखा संघ, अ० भा० ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघ-जैसी संस्थाओंमें काम कर रहे हैं। इन संस्थाओंके काममें यथासम्भव कम-से-कम व्यवधान आने दिया जायेगा। लेकिन अगर कांग्रेसी संघर्षमें सहायता देना चाहते हैं तो उन सबको व्यक्तिगत रूपसे रचनात्मक कार्यमें लग जाना चाहिए।

खादी और राजनीति

प्र० : खादी-आन्दोलनको राजनीतिक कार्यक्रमसे — खासकर उसके सविनय अवज्ञावाले हिस्सेसे — जोड़कर क्या आप उसे खतरेमें नहीं डाल रहे हैं?

उ० : निश्चय ही नहीं। अगर खादी केवल कांग्रेसियों या सत्याग्रहियों तक सीमित हो तो ऐसा कहा जा सकता है कि मैं उसे खतरेमें डाल रहा हूँ। खादी कांग्रेसी, गैर-कांग्रेसी सबकी राष्ट्रीय पोशाक बताई गई है। इसका उपयोग कुछ अंग्रेज, अमेरिकी तथा अन्य पाश्चात्य लोग भी करते हैं। अगर आपकी आपत्ति उचित हो तो वह साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण और मद्य-निषेधपर भी लागू होगी। इन चारोंको महत्त्व और गति इनके कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममें शामिल किये जानेके बादसे प्राप्त हुई है। अगर इनमें हिंसाका समावेश होता है तो ये सब-के-सब गैर-कानूनी हो सकते हैं। अगर ये गैर-कानूनी हो जाते हैं तो हम समझेंगे कि वास्तवमें इन आन्दोलनोंको नहीं दबाया गया है, बल्कि ये संगठन निर्दोष मुखौटोंकी आड़में वास्तवमें अपनी हिंसापर ही पर्दा डाले हुए थे।

विचारोंकी उलझन

प्र० : अगर आप अल्पसंख्यकोंके लिए केवल 'संरक्षणात्मक उपायोंकी' व्यवस्था करके भारतमें बहुसंख्यकोंकी सरकारकी स्थापनापर आग्रह रखते हैं तो आप एक भारी

अन्यायके भागी बनेंगे। अल्पसंख्यकोंको देशके वास्तविक शासनमें एक प्रभावकारी भूमिका प्राप्त होनी चाहिए।

उ० : स्पष्ट है कि आपने बहुमतके शासनको हिन्दू शासन मान लेनेकी भूल की है और आपकी बातसे लगता है कि हिन्दू बहुमत तो अटल है। सचाई यह है कि सभी प्रान्तोंका बहुमत मिश्रित बहुमत है। मुस्लिम और हिन्दू-जैसा कोई दल नहीं है। ये दल तो कांग्रेसियोंके, इंडिपेंडेंटोंके, मुस्लिम लीगियोंके, मुस्लिम इंडिपेंडेंटोंके और मजदूर आन्दोलनसे जुड़े लोगों आदिके हैं। कांग्रेसका बहुमत सभी जगह मिश्रित बहुमत है और अगर तनावकी स्थिति न हो तो वह बहुमत अधिक सन्तुलित भी हो सकता है। तनाव एक व्याधि है। भारत एक विकासशील समाज है और कोई भी व्याधि किसी विकासशील समाजका स्थायी चिह्न नहीं बन सकती। मुस्लिम लीगके प्रदर्शनों और उसके दावेका चाहे जो नतीजा हो, लेकिन जो सवाल उठे हैं उनके हल एक-न-एक दिन अवश्य निकलेंगे। बहरहाल, नतीजा इस रूपमें तो कभी भी नहीं आयेगा कि किसी भी प्रान्तमें केवल हिन्दुओं अथवा केवल मुसलमानोंका ही बहुमत बन जाये। दोनों पक्ष मिश्रित होंगे और उनके जो अलग-अलग दल बनेंगे उनका आधार अलग-अलग नीतियाँ होंगी। हाँ, अगर सम्पूर्ण भारतमें लोकतन्त्रका गला घोंट दिया जाता है और निरंकुश शासनका बोलबाला हो जाता है या अगर देशको दो या अनेक मृत हिस्सोंमें बाँट दिया जाता है तो बात दूसरी है। यदि आपने मेरी विचारसरणी समझ ली है तो आपको स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जहाँ तक कांग्रेसका सम्बन्ध है, वह किसी भी पक्ष या दलको सत्तासे वंचित नहीं रखेगी। अल्पसंख्यकोंको अपने अधिकारोंके लिए पूरा संरक्षण प्राप्त करनेका हक है, क्योंकि जब तक उन्हें दूसरोंके साथ मिलकर सत्ताका उपभोग करना है तब तक उनके खास अधिकारोंके गड्ड-मड्ड हो जानेका भी खतरा बना हुआ है।

एक उलझन

प्र० : मेरे पिता एस० आई० रेलवेमें काम करते हैं। उनके चार बच्चे हैं — सब मुझसे छोटे। वे चाहते हैं कि मैं एप्रेन्टिसशिपकी शिक्षा लूँ। अगर मैं आगामी सविनय अवज्ञामें भाग लेता हूँ तो उनको बर्खास्त कर दिया जा सकता है, जिससे परिवारको भूखों मरना पड़ेगा। उनका कहना है कि मैं अपने हिस्सेका रचनात्मक कार्य करके राष्ट्रकी सेवा कर सकता हूँ। आपकी क्या सलाह है?

उ० : आपके पिताका कहना ठीक है। अगर आप अपने परिवारके लिए रोटी कमानेवाले अकेले व्यक्ति हैं, तो सविनय अवज्ञामें भाग लेनेके लिए परिवारको भाग्यके भरोसे छोड़ देना आपके लिए उचित नहीं होगा। अगर आप रचनात्मक कार्यक्रमको उत्साहपूर्वक क्रियान्वित करें तो आप सत्याग्रही जितनी ही राष्ट्रकी प्रभावकारी सेवा करेंगे।

व्यर्थ आवृत्ति

प्र० : सभी मानते हैं कि प्रार्थनाको यंत्रवत् दोहराते जाना सर्वथा निरर्थक, बल्कि इससे भी बुरा है। इससे आत्मा कुण्ठित होती है। मैं अक्सर सोचता हूँ कि आप लोगोंको ग्यारह प्रतिज्ञाओंको दिनचर्याके अंगकी तरह सुबह-शाम दोहरानेके लिए बढ़ावा क्यों देते हैं। इससे क्या लड़कोंकी नैतिक चेतना कुण्ठित नहीं हो जायेगी? इन प्रतिज्ञाओंको लोग हृदयमें प्रतिष्ठित कर लें, इसका क्या कोई बेहतर तरीका नहीं है?

उ० : किसी प्रार्थना, प्रतिज्ञा या मंत्रको दोहरानेके अद्भुत परिणाम होते हैं, बशर्ते कि उसे बेमनसे यंत्रवत् न दोहराया जाये। उदाहरणके लिए मैं जपमाला-को अन्धविश्वास नहीं मानता। यह भटकते हुए मनको शान्त-सुस्थिर करनेमें सहा-यक होती है। प्रतिज्ञाओंको रोज दोहरानेकी बात दूसरी कोटिकी है। जागते और सोते समय इन्हें रोज दोहराकर सच्चा साधक अपनेको इस बातका स्मरण कराता है कि वह ग्यारह प्रतिज्ञाओंसे बँधा हुआ है और इन्हींके अनुसार उसे अपने आचरणका नियमन करना है। इसमें सन्देह नहीं कि अगर कोई इन प्रतिज्ञाओंको यंत्रवत् इस भ्रममें रहकर दोहराता है कि इन्हें दोहराने-मात्रसे वह पुण्यका भागी बन जायेगा तो फिर उसका कोई प्रभाव नहीं रह जाता। इसपर आप कह सकते हैं: "प्रतिज्ञाओंको दोहराया ही क्यों जाये? यह तो मालूम ही है कि मैंने ये प्रतिज्ञाएँ ली हैं और इनका पालन करना है।" इस दलीलमें जोर है। लेकिन अनु-भवसे ज्ञात हुआ है कि सोच-समझकर किसी बातको बार-बार दोहरानेसे उसपर आरूढ़ रहनेकी प्रेरणा मिलती है। जो काम कमजोर शरीरके लिए पोषक औष-धियाँ करती हैं, वही काम कमजोर मन और आत्माके लिए प्रतिज्ञाएँ करती हैं। जिस प्रकार स्वस्थ शरीरको पोषक औषधियोंकी जरूरत नहीं होती, उसी प्रकार स्वस्थ-सबल मन भी प्रतिज्ञाओंके बिना और प्रतिदिन उनका स्मरण किये बिना भी अपने स्वास्थ्यको कायम रख सकता है। लेकिन इन प्रतिज्ञाओंपर विचार करनेसे प्रकट होगा कि हममें से अधिकांश इतने कमजोर हैं कि हमारे लिए इनकी सहायता आव-श्यक है।

अपंगोंकी ओरसे

प्र० : आप गरीबों और असहायोंके पक्षधर हैं। क्या आप 'रचनात्मक कार्य-कर्ता' की दिनचर्यामें अपंग भिखारियोंके लिए कमसे-कम एक वक्तके खानेकी व्यवस्था करनेका काम भी शामिल नहीं करना चाहेंगे? भिखारियोंमें बहुत बड़ी तादाद कुष्ठरोगियोंकी है। भारतमें कहनेके लायक ऐसा कोई नगर नहीं है जिसमें ऐसे कुछ-न-कुछ अभागे लोग न हों। उनकी अवस्था आपकी दयाके योग्य हैं।

उ० : यह काम महत्त्वपूर्ण तो अवश्य है, लेकिन रचनात्मक कार्यक्रमका अंग नहीं बन सकता। समाज-कल्याणके हर प्रकारके कार्यको कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममें शामिल नहीं किया जा सकता। इस कार्यक्रममें तो उसके उसी हिस्सेको

शामिल किया जा सकता है जिसके शामिल न किये जानेसे अहिंसाके बलपर स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव हो। इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-निषेध और चरखा उस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए अनिवार्य हैं? लेकिन मेरे इस उत्तरका मतलब यह नहीं है कि शरीरसे असमर्थ लोगोंकी ओर ध्यान देना जरूरी नहीं है। जो स्त्री अथवा पुरुष व्यापकतम अर्थोंमें समाज-सेवाके काममें अपना अंश-दान नहीं करता, उसका जीवन सार्थक नहीं माना जा सकता। यह बात सभी स्त्री-पुरुषोंपर लागू होती है — चाहे वे कांग्रेसी हों या गैर-कांग्रेसी।

सेवाग्राम, १ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-४-१९४०

३७१. जटिल परिस्थिति

मुझसे एक प्रश्न पूछा गया है:

कायदे-आजम जिन्नाने तो हिन्दुओंके खिलाफ जेहाद छेड़ दिया है और मुस्लिम लीगसे भारतके विभाजनके पक्षमें प्रस्ताव पास करवा लिया है।[1] क्या तब भी आप सामूहिक सविनय अवज्ञा छेड़नेका इरादा रखते हैं? अगर रखते हैं तो फिर आपके इस सूत्रका क्या होगा कि साम्प्रदायिक एकताके बिना स्वराज्य नहीं हो सकता?

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुस्लिम लीगने लाहौरमें जो कदम उठाया है उससे एक जटिल परिस्थिति पैदा हो गई है। लेकिन मैं उसे इतना जटिल नहीं मानता कि उसके कारण सविनय अवज्ञा असम्भव हो जाये। मान लीजिए कांग्रेस बिलकुल अल्पमतकी स्थितिमें पड़ जाती है। मेरा कहना है कि उस हालतमें भी वह सविनय अवज्ञा आरम्भ कर सकती है, बल्कि यह भी हो सकता है कि तब यह उसका कर्तव्य ही हो जाये। संघर्ष बहुमतके खिलाफ नहीं, बल्कि विदेशी-शासकके खिलाफ होगा। यदि संघर्ष सफल होगा तो उसका सुफल जितना कांग्रेसको प्राप्त होगा उतना ही कांग्रेस-विरोधी बहुमतको भी। लेकिन यहाँ बीचमें मैं इतना बता दूँ कि मैंने सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेकी जो शर्तें रखी हैं, वे जब तक पूरी नहीं होतीं तब तक तो यह आन्दोलन आरम्भ नहीं ही किया जा सकता। प्रस्तुत प्रसंगमें साम्राज्यके सत्ताधारियोंको ऐसी स्पष्ट घोषणा करनेसे रोकनेवाली कोई बात दिखाई नहीं देती कि अबसे भारतका शासन, जैसा अब तक होता आया है, शासकोंकी मर्जीसे नहीं, बल्कि स्वयं भारतकी अपनी मर्जीसे चलाया जायेगा। ऐसी घोषणाका

१. मार्चमें उसके लाहौर अधिवेशनमें; देखिए परिशिष्ट ८।

विरोध न मुस्लिम लीग कर सकती है और न कोई दल। कारण, मुसलमानोंको तब भी अपनी शर्तें मनवानेका पूरा अधिकार होगा। अगर मुसलमानोंको छोड़कर शेष भारत घरेलू कलह और भ्रातृ-हत्यामें कूदनेको तैयार न हो और यदि मुसलमान अपने मनकी ही चलानेपर आमादा हो जायें तो भी शेष भारतको उनकी बात माननी पड़ेगी। मुझे तो ऐसा कोई भी अहिंसात्मक तरीका मालूम नहीं है जिसके बलपर शेष भारत –– चाहे उसका जितना प्रबल बहुमत हो –– आठ करोड़ मुसलमानोंको अपनी इच्छा स्वीकार करनेपर मजबूर कर सकता हो। मुसलमानोंको भी आत्म-निर्णयका वही अधिकार होगा जो शेष भारतको होगा। आज हम एक संयुक्त परिवारके सदस्य हैं। इसका कोई भी सदस्य विभाजनकी माँग कर सकता है।

इसलिए जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा यह सिद्धान्त कि साम्प्रदायिक एकता के बिना स्वराज्य नहीं हो सकता, आज भी उतना ही सही है जितना कि १९१९ में, जब कि मैंने पहले-पहल इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था।

लेकिन सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें बात भिन्न है। अगर किसी एक आदमीको भी सविनय अवज्ञा करनेकी प्रेरणा महसूस होती है तो वह भी वैसा कर सकता है। सविनय अवज्ञा केवल कांग्रेसकी ओरसे ही या केवल किसी खास समूहकी ओर से नहीं की जायेगी। इससे जो-कुछ भी लाभ प्राप्त होगा उसका हिस्सेदार सारा भारत होगा। और जो नुकसान होगा उसे तो केवल सविनय अवज्ञा करनेवाले लोग ही उठायेंगे।

लेकिन मैं नहीं मानता कि जब सचमुच निर्णयकी घड़ी आयेगी तब मुसलमान देशका विभाजन चाहेंगे। उनकी सद्बुद्धि उन्हें ऐसा करनेसे रोकेगी, उनका अपना स्वार्थ उन्हें ऐसा नहीं करने देगा। उनका धर्म उन्हें इस आत्मघातरूप विभाजनकी इजाजत नहीं देगा। 'दो राष्ट्रों'का सिद्धान्त एक झूठ है। भारतके अधिकांश मुसलमान या तो ऐसे हैं जिन्होंने अपना पुराना धर्म छोड़कर इस्लाम ग्रहण किया है या वे इस तरह धर्मान्तरण करनेवाले लोगोंके वंशज हैं। इस्लाम स्वीकार करते ही वे अलग राष्ट्रके लोग तो नहीं हो गये। बंगाली मुसलमान वही भाषा बोलता है जो बंगाली हिन्दू बोलते हैं, वही खाना खाता है जो उसके हिन्दू पड़ोसी खाते हैं और उसके मनोरंजनके साधन भी वही हैं जो बंगाली हिन्दुओंके हैं। वहाँके हिन्दू और मुसलमान कपड़े भी एक ही तरहके पहनते हैं। पहनावा-ओढ़ावा और बोल-चालके आधारपर बंगाली हिन्दू और बंगाली मुसलमानके बीच भेद कर सकना मैंने अक्सर मुश्किल पाया है। दक्षिणके गरीब लोगोंमें भी कमोबेश यही बात देखनेको मिलती है और भारतके जनसामान्यमें तो ऐसे गरीब लोग ही हैं। जब मैं स्वर्गीय सर अली इमामसे पहले-पहल मिला तो मैं नहीं जान पाया कि वे हिन्दू नहीं हैं। उनकी बोल-चाल पहनावा-ओढ़ावा, तौर-तरीके, खान-पान सब वैसे ही थे जैसे उन अधिकांश हिन्दुओंके, जिनके बीच कि मैंने उन्हें देखा। मुझे तो उनके नामसे ही मालूम हो पाया कि वे मुसलमान हैं। और कायदे-आजम जिन्नामें तो

पहचानका यह उपाय भी नहीं है। उनका नाम किसी भी हिन्दूका नाम हो सकता है। जब मैं पहले-पहल उनसे मिला, मुझे नहीं मालूम था कि वे मुसलमान हैं। उनका धर्म मुझे उनका पूरा नाम जाननेके बाद ही मालूम हुआ। उनकी राष्ट्रीयता उनके चेहरे और उनके तौर-तरीकेसे झलकती थी। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अगर महीनों नहीं तो कम-से-कम कई दिन तक तो मैं स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेलको मुसलमान समझता रहा, क्योंकि वे दाढ़ी रखते थे और तुर्की टोपी पहनते थे। हिन्दू उत्तराधिकार कानून कई मुस्लिम समुदायोंके बीच प्रचलित है। सर मुहम्मद इकबाल अपने ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होनेका उल्लेख बड़े गर्वके साथ करते थे। इकबाल और किचलू, ये दोनों नाम मुसलमानोंके भी होते हैं और हिन्दुओंके भी। भारतके हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्रोंके लोग नहीं है। जिन्हें ईश्वरने ही एक बनाया है उन्हें मनुष्य एक-दूसरेसे कभी भी अलग नहीं कर पायेगा।

और क्या इस्लाम वैसा संकीर्ण धर्म है जैसा उसे कायदे-आजम बनाना चाहते हैं? क्या इस्लाम और हिन्दू-धर्म अथवा किसी अन्य धर्ममें कोई समानता नहीं है? या इस्लाम हिन्दू-धर्मका शत्रु-मात्र है? अली-बन्धुओं तथा उनके साथी-सहयोगियोंने जब हिन्दुओंको सगे भाइयोंकी तरह गले लगाया और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच बहुत-कुछ समानता देखी, तब क्या वे गलतीपर थे? यहाँ मैं उन इक्के-दुक्के हिन्दुओंकी बात नहीं कर रहा हूँ जिन्होंने शायद मुसलमानोंको निराश किया हो। लेकिन कायदे आजमने तो एक बुनियादी सवाल उठाया है। यह है उनका सिद्धान्त[१]:

> हमारे हिन्दू मित्र इस्लाम और हिन्दू धर्मके असली स्वरूपको क्यों नहीं पहचान पाते, यह समझ पाना बड़ा मुश्किल है। सही अर्थोंमें यह दोनों धर्म नहीं हैं। ये तो दरअसल अलग-अलग समाज-व्यवस्थाएँ हैं और यह एक स्वप्न-मात्र है कि हिन्दू और मुसलमान कभी भी एक साझे-राष्ट्रकी रचना कर सकते हैं। एक भारतीय राष्ट्रकी यह भ्रामक कल्पना हदसे अधिक आगे बढ़ गई है। हमारी अधिकांश कठिनाइयोंका कारण यही भ्रामक कल्पना है और अगर हम समय रहते अपनी धारणा बदल नहीं लेते तो यह भारतके विनाशका हेतु बनेगी।
>
> हिन्दुओं और मुसलमानोंके दो अलग-अलग धर्म-दर्शन, अलग सामाजिक रीति-रिवाज और अलग-अलग साहित्य हैं। वे न आपसमें विवाह-सम्बन्ध करते हैं, न एक-दूसरेसे खान-पानका सम्बन्ध रखते हैं। सच तो यह है कि वे दो ऐसी अलग-अलग सभ्यताओंके लोग हैं जो परस्पर-विरोधी विचारों और धारणाओंकी नींव पर खड़ी हैं। जीवनके प्रति दोनोंके दृष्टिकोण और रुख भिन्न हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि हिन्दू और मुसलमान इतिहासके दो भिन्न स्रोतोंसे प्रेरणा ग्रहण

१. जिसका प्रतिपादन उन्होंने लाहौरमें अपने अध्यक्षीय भाषण में किया था

करते हैं। उनके महाकाव्य और उनके वीर नायक अलग-अलग हैं, उनके उपाख्यान भी एक-दूसरेसे भिन्न हैं। प्राय: एकके वीर नायकको दूसरा शत्रु मानता है, और इसी तरह एक की विजय दूसरेकी पराजय मानी जाती है। ऐसे दो राष्ट्रोंको, जिनमें से एक अल्पसंख्यक और दूसरा बहुसंख्यक है, एक ही राज्य-चक्रमें जोत देनेका परिणाम निश्चय ही बढ़ते हुए असन्तोष और अन्तमें उस ढाँचेके विनाशके रूपमें सामने आयेगा जो उस राज्यके शासनके लिए खड़ा किया गया होगा।

कायदे-आजम यह नहीं कहते कि कुछ हिन्दू बुरे हैं; उनका कहना तो यह है कि हिन्दू-मात्रमें मुसलमानोंसे कोई समानता नहीं है। मैं यह कहनेकी धृष्टता करूँगा कि वे और उनकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोग इस्लामकी सेवा नहीं कर रहे हैं। वे उस सन्देशका गलत अर्थ लगा रहे हैं जो स्वयं इस्लाम शब्दमें निहित है। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि आज मुस्लिम लीगके नामपर जो-कुछ हो रहा है उससे मुझे गहरी व्यथा पहुँचती है। यदि मैं भारतके मुसलमानोंको उनके बीच आज जिस झूठका प्रचार किया जा रहा है, उसके खिलाफ सावधान न करूँ तो मैं अपने कर्तव्यसे च्युत होऊँगा। यह चेतावनी देना मेरा कर्तव्य इसलिए है कि उनकी मुसीबतकी घड़ीमें मैंने निष्ठापूर्वक उनकी सेवा की है और इसलिए भी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता मेरे जीवनका लक्ष्य रहा है और है।

सेवाग्राम, १ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-४-१९४०

३७२. एक न्याय-विरुद्ध सिद्धान्त[1]

एक पत्र-लेखक ने मुझे एक अखबारकी कतरन भेजी है, जिसमें इलाहाबाद न्यायालयकी अपील अदालतके दो अंग्रेज न्यायाधीशोंके एक निर्णयका विवरण दिया गया है। इस विवरणके अनुसार अपील की अनुमति देनेका निर्णय सुनाते हुए न्यायाधीशोंने कहा :

> मामला असन्तोषजनक है, क्योंकि इसमें कम-से-कम पाँच ऐसे लोगोंकी गवाहियाँ हैं जिनपर विश्वास किया जाये तो मानना पड़ेगा कि वे मामलेके चश्मदीद गवाह थे। फिर भी, इस देशमें सत्यको जितना कम महत्त्व दिया जाता है उसका ध्यान रखते हुए हमें इस बातपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना है कि उनकी गवाहियोंपर विश्वास किया जाये या नहीं।

१. यद्यपि यह टिप्पणी २ अप्रैलको ही लिखी गई थी, लेकिन इसका प्रकाशन ४ मईको हुआ; देखिए "पत्र: श्रीप्रकाशको", ११-४-१९४०।

यह न्याय-पीठसे की गई एक विचित्र घोषणा है। एक समूचे राष्ट्रके चरित्रके विषयमें ऐसी अमर्यादित बात कहनेके लिए इन दो न्यायाधीशोंके पास क्या कानूनी आधार था? उनकी बातसे निष्कर्ष यही निकलता है कि अन्य देशोंमें सत्यको अधिक महत्त्व दिया जाता है। अगर यह एक सर्वमान्य बात होती तब तो शायद इन न्यायाधीशों द्वारा कानूनी दृष्टिसे इसका उल्लेख करना उचित माना जाता। लेकिन सचाई यह है कि न केवल यह कोई सर्वमान्य बात नही है, बल्कि अनुभवी प्रेक्षकोंने कुल मिलाकर इस बातकी साक्षी दी है कि भारतमें अन्य देशोंकी अपेक्षा सत्यको अधिक महत्त्व दिया जाता है। लेकिन जिनका न्यायिक दृष्टिसे कोई महत्त्व नही है, ऐसे साक्ष्योंके आधारपर किसी भी न्यायाधीशको अनुकूल या प्रतिकूल राय कायम नहीं करनी चाहिए। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि ऐसी बातें किसी जिम्मेदार आदमीको राजनीतिक मंचसे भी नही कहनी चाहिए। उन्हें कभी भी सिद्ध नही किया जा सकता। लेकिन जब ऐसी बातें न्यायाधीश कहें तो इनसे उनके निर्णय दूषित हो सकते हैं और अन्याय भी हो सकता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि इलाहाबाद न्यायालयके इन न्यायाधीशोंने अपने निर्णयपर पहुँचनेमें पूर्वग्रह से काम लिया है और इस प्रकार वे इन दायित्वपूर्ण पदोंपर आसीन रहनेके अयोग्य साबित हुए हैं। जिस मामलेमें ऐसी बात कही गई उसका सम्बन्ध गरीब लोगोंसे था। लेकिन इस मामलेसे चूँकि केवल गरीब लोगोंका सम्बन्ध था, इसलिए न्यायाधीशोंकी इस निन्दात्मक टिप्पणीकी सार्वजनिक चर्चा करना और भी जरूरी हो गया है। कौन जाने, कितने मामलोंमें उनके इस पूर्वग्रहके फलस्वरूप न्यायकी पराजय हुई होगी।

सेवाग्राम, २ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-५-१९४०

३७३. तार: एगथा हैरिसनको

वर्धागंज

२ अप्रैल, १९४०

हैरिसन

२ क्रैनबोर्न कोर्ट

अलबर्ट ब्रिज रोड, लन्दन

रविवारको सफल ऑपरेशन।[1]

गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२५१) से; सौजन्य: विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

१. सी० एफ० एन्ड्रयूजका ऑपरेशन रविवार, ३१ मार्चको डॉ० रायडॅनके नर्सिंग होममें हुआ था।

३७४. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
४ अप्रैल, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मौलाना अबुल कलाम आजादने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा है। उसमें से प्रासंगिक अंश मैं यहाँ संलग्न कर रहा हूँ।[1]

यदि आप मौलाना साहबको मिली रिपोर्टकी पुष्टि कर सकते हैं तो मुझे दुःखद आश्चर्य होगा। मैंने तो महज एक साधारण-सी पूछताछ की थी। हम दोनों एक-दूसरेके इतने निकट आ गये थे कि हमारे बीच किसी भी प्रकारका मानसिक दुराव रह ही नहीं गया था। और यदि कोई बात अस्पष्ट रह गई थी तो सीधे उस मुद्दे तक पहुँचने और अस्पष्टताको दूर करनेमें कोई अड़चन नहीं थी। औपनिवेशिक

१. ३० मार्च, १९४० के उस पत्रमें अन्य बातोंके साथ-साथ यह कहा गया था: "दिल्लीसे एक मित्रने, जो प्रायः वाइसरायसे मिलते रहते हैं, मुझे एक पत्र भेजा है। उन्होंने लिखा है कि आपकी गत मुलाकातसे लिनलिथगोको ऐसा लगा कि आप पहले तो उन्हें किसी बातपर राजी करना चाहते थे, लेकिन जब उन्होंने उसे सहानुभूतिसे समझने और अपने मनको उसके लिए तैयार करनेकी कोशिश की तो आपने उनका साथ छोड़ दिया। वे आगे लिखते हैं कि यदि आपने शुरूमें ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी होती कि आपको वेस्टमिन्स्टरकी तरहकी औपनिवेशिक स्वतन्त्रताकी स्थिति कतई स्वीकार्य नहीं तो वाइसरायको स्थितिकी सही जानकारी हो गई होती। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। आप इस प्रश्नका उत्तर पर जोर देते रहे कि भारतको दी जानेवाली औपनिवेशिक स्वतन्त्रता वेस्टमिन्स्टरकी तरहकी होगी अथवा नहीं। लिनलिथगोने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि वे इस प्रश्नको स्पष्ट करवा लें तो आगेकी बातचीतके लिए रास्ता खुल जायेगा। उन्होंने पूरे आग्रहके साथ ब्रिटिश सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया और उसे विश्वास दिलाया कि यदि उन्हें इस प्रकारका वक्तव्य देनेकी अनुमति मिल जाये तो उनकी स्थिति अधिक सुदृढ़ हो जायेगी। उन्होंने इस बातपर भी जोर दिया कि जहाँ तक इस घोषणाका सम्बन्ध है इसे साम्प्रदायिक समस्याके साथ नहीं मिलाना चाहिए। लीग इसका विरोध चाहे जिस हद तक करे, भारतकी राजनैतिक नियतिको अब बदला नहीं जा सकता है। लेकिन जब बातचीतका आधार स्पष्ट कर दिया गया, और उसमें आपकी सहमति मिलनेकी पूर्ण आशासे उन्होंने (वाइसरायने) अपनी ओरसे आवश्यक घोषणा भी कर दी तो आपने एकाएक अपना रुख बदल दिया और स्पष्ट घोषणा कर दी कि भारत इसे स्वीकार नहीं कर सकता। इससे लिनलिथगोकी स्थिति कमजोर हो गई और ब्रिटिश सरकारने यह मान लिया कि वे भारतीय स्थितिको समझने और उससे जूझनेमें असमर्थ हैं। संक्षेपमें, लिनलिथगोको आपके रुखसे गहरी शिकायत है।

"पत्र यहाँपर समाप्त होता है। जब मैं पिछली बार दिल्लीमें था तो मुझे अन्य सूत्रोंसे भी कुछ इसी तरहकी जानकारी मिली थी। . . ."

स्वतन्त्रताकी स्थिति कांग्रेसको ग्राह्य नहीं है, यह बात हमारी उस मुलाकात[1] के समय ही स्पष्ट कर दी गई थी जिसके फलस्वरूप यह जिज्ञासा थी। उसमें यही जाननेका उद्देश्य था कि दोनों पक्षोंकी वास्तविक स्थिति क्या है? वास्तवमें मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख होगा कि मैंने आपके मनपर ऐसा प्रभाव छोड़ा कि यदि औपनिवेशिक स्वतन्त्रताकी स्थितिका अभिप्राय वेस्टमिन्स्टर प्रकारके विधानसे है तो कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेगी।

मैं यह बात विश्वास-योग्य नही मानता कि मुझसे धोखा खा जानेके कारण ब्रिटिश मन्त्रि-परिषद्के बीच आपकी साख गिर गई, जैसा कि रिपोर्टमें कहा गया है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इतनी आसानीसे अपना रुख बदल सकते हैं, जैसा मौलाना साहबका पत्रलेखक कहता है, यह मेरा अनुभव नहीं है; और मैं आशा करूँगा कि आप मुझे आपको धोखा देनेका दोषी कभी भी नहीं मानेंगे।

आपको पत्र लिखते हुए मैं अपने मनका एक और भी बोझ हलका कर लेना चाहता हूँ। मै आपको पहले ही बता चुका हूँ कि मेरा लड़का देवदास आपका बड़ा उत्साही पक्षधर है। वह मुझे लम्बे पत्र लिख-लिखकर इस बातका कायल करनेकी कोशिश करता रहा है कि मैंने पिछली बातचीत अचानक समाप्त करके आपके साथ बड़ा अन्याय किया। वह मेरी इस बातको माननेको तैयार नही है कि बातचीत इसलिए खत्म हो गई क्योंकि हम दोनोंने देख लिया कि हमारे बीच इतनी चौड़ी खाई है जिसे उस बातचीतको जारी रखकर पाटा नही जा सकता था। सच तो यह है कि जिस दिन हमने बातचीत शुरू की उसी दिन स्वयं आपने कहा था कि बातचीत समाप्त करके सार्वजनिक रूपसे अपनी असफलता स्वीकार कर लेना हम दोनोंके लिए अधिक बहादुरीका काम होगा। आपने स्थिति-को जैसा समझा था वह बिलकुल सही था, यह बात मैंने तत्काल स्वीकार कर ली थी। देवदासका कहना है कि यह बात तो आपने अंग्रेजोंके उपयुक्त अभिमानवश नहीं तो सौजन्यवश कही थी और वास्तवमें आप बातचीत जारी रखनेको उत्सुक थे। इस प्रकार वह बहुत निराश है और मानता है कि आपके रुखको जैसा मैंने समझा वह गलत था। इस घरेलू विवादको निबटानेमें तो आप ही मेरी मदद कर सकते हैं।[2]

मो० क० गां०

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८४३) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१. यह मुलाकात ५ फरवरी, १९४० को हुई थी।
२. लॉर्ड लिनलिथगोके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ९।

३७५. पत्र : अबुल कलाम आजादको

सेवाग्राम, वर्धा
४ अप्रैल, १९४०

प्रिय मौलाना साहब,

आप मेरे लिए चाहे जिस सम्बोधनका प्रयोग कीजिए।[1] मुझे याद नहीं कि पहले आप किसी और सम्बोधनका प्रयोग करते थे।

आपके सुझावके मुताबिक लॉर्ड लिनलिथगोको पत्र लिख दिया है।[2]

पट्टाभि काण्डके बारेमें मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ।

मुझे ऐसा लगता है कि आपकी ओरसे खूब सोच-विचारकर लाहौर-प्रस्ताव[3] का उत्तर दिया जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८४२ ए) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३७६. तार : एगथा हैरिसनको

वर्धागंज
५ अप्रैल, १९४०

हैरिसन
२ क्रैनबोर्न कोर्ट
अल्बर्ट ब्रिज रोड, लन्दन

एन्ड्रयूजका देहान्त शान्तिपूर्वक हुआ।[4] आशा है तुम और लिलियन हिम्मतसे काम लोगी। महादेव रविवारसे कलकत्तामें। स्नेह।

गांधी

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०२५२) से; सौजन्य : विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

१. अपने ३० मार्च, १९४० के पत्रमें मौलाना साहबने गांधीजी के लिए "माई डियर महात्माजी" सम्बोधनका प्रयोग किया था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. मुस्लिम लीगका; देखिए परिशिष्ट ८।

४. सी० एफ० एन्ड्रयूजका देहावसान रातमें १ बजकर ४० मिनटपर हुआ था।

३७७. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

सेवाग्राम
५ अप्रैल, १९४०

सी० एफ० एन्ड्र्यूजके देहावसानसे न केवल इंग्लैंडने और न ही केवल भारतने, बल्कि मानवताने एक सच्चा सपूत और सेवक खो दिया है। तथापि मृत्युने उन्हें उनके कष्टोंसे मुक्ति दिलाई है और इस धरतीपर उन्हें जो-कुछ करना था उसे पूर्णता प्रदान की है। जिन हजारों लोगोंने उनके व्यक्तिगत सान्निध्यसे अथवा उनके लिखित विचारोंके सम्पर्कसे अपने-आपको समृद्ध किया है उनके माध्यमसे वे सदा जीवित रहेंगे। मेरी दृष्टिमें चार्ली एन्ड्र्यूज महानतम और श्रेष्ठतम अंग्रेजोंमें से थे। और चूंकि वे इंग्लैंडके एक अच्छे सपूत थे, इसलिए वे भारतके भी सपूत बन सके। और यह सब उन्होंने मानवताके हित और अपने प्रभु ईसा मसीहकी खातिर किया। मेरी दृष्टिमें आज तक उनसे कोई श्रेष्ठतर मनुष्य या अधिक अच्छा ईसाई नहीं आया है। भारतने उन्हें दीनबन्धुकी उपाधिसे विभूषित किया। सभी देशोंके दीनों और दलितोंके सच्चे मित्रके नाते वे इस उपाधिके योग्य पात्र थे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-४-१९४०, और हिन्दू, ५-४-१९४०

३७८. पत्र : सर्वपल्ली राधाकृष्णनको

सेवाग्राम, वर्धा
५ अप्रैल, १९४०

प्रिय सर राधाकृष्णन,

मैं लौटती डाकसे जवाब नहीं दे पाया। सामूहिक सविनय अवज्ञा आ भी सकती है और नहीं भी। इस सम्बन्धमें दो या शायद अधिक मतोंके लिए भी गुंजाइश है। हाँ, मैं उतावली नहीं करूँगा। लेकिन जहाँ तक राष्ट्रीय माँगका सम्बन्ध है, उसमें कोई कमी नहीं की जा सकती। मन मिल जाने पर समझौतेकी काफी गुंजाइश है। जब तक ब्रिटिश सरकार ऐसा मानती रहेगी कि उसकी राय निर्णायक होनी चाहिए तब तक तो कांग्रेसको उसका विरोध ही करते रहना होगा।

१. यह हरिजन में "नोट्स" शीर्षक के अन्तर्गत "ए ट्रू फ्रेंड ऑफ द पुअर" उप-शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

मैं जानता हूँ कि चुनाव दो ही चीजोंमें से करना है -- विरोधमें खड़े रहना अथवा आज जो-कुछ मिल सकता है उसे ले लेना। मेरा सारा जीवन पहलेवाले साँचेमें ढला हुआ है -- अर्थात् चाहे कितनी ही कमजोरीका एहसास हो रहा हो, लेकिन जो मूलभूत बातें हैं उनके सम्बन्धमें कभी भी अपनी टेक नहीं छोड़ना। अब तक तो यह रुख अपनानेके लिए मुझे कभी पछताना नहीं पड़ा है। ब्रिटेनका यह हठ-भरा रुख देखकर मुझे दुःख होता है। बल्कि मैं तो 'चिढ़' शब्दका प्रयोग करने जा रहा था। लेकिन अहिंसाके कोशमें इस शब्दके लिए कोई स्थान नहीं है। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि देशी नरेशोंके पास हमसे बातचीत करनेका अधिकार ही नहीं है? आपसे मैं यही कहूँगा कि आप धैर्य और दृढ़तासे काम लें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८४४) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३७९. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम
५ अप्रैल, १९४०

प्रिय मलकानी,

नये कालेज[1] के लिए वर्धाको तुम्हारी बड़ी जरूरत है। अगर तुम वहाँ पक्की तरह न जम पाये हो, तो मैं तुम्हारी सहायता चाहूँगा। अगर तुम्हें निश्चित रूपसे लगता है कि तुम्हारा वहाँ रहना जरूरी है तो वर्धाकी पुकार जरूर अनसुनी कर दो। उस स्थितिमें क्या तुम और किसी योग्य व्यक्तिका नाम सुझा सकते हो?

मैंने जानबूझकर तुम्हारी अपीलका जवाब नहीं दिया। सिंधकी घटनाओंसे मेरा मन खिन्न है।[2] इसलिए मैंने सोचा, मेरी चुप्पी ही ठीक रहेगी और तुम्हें अकेले जो कर सकते हो, करने दूँ।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३७) से

१. सेक्सरिया कालेज ऑफ कॉमर्स
२. देखिए "सिन्धकी दुःखद घटना", पृ० ८३-८६।

३८०. पत्र : कुँवरजी खे० पारेखको

सेवाग्राम
५ अप्रैल, १९४०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। गर्मी असह्य नहीं हो जानी चाहिए। सुशीलाबहन कहती है कि तुम कुछ ज्यादा कसरत करते हो। शरीरमें कहीं दर्द नहीं होना चाहिए। तुम्हारी-जैसी बीमारीमें बहुत थोड़ी कसरत करनेसे भी काम चल सकता है। सीमाके बाहर कभी नहीं जाना चाहिए।

रामीके पत्र बा के पास आते रहते हैं। तुम्हें भी मिलते होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३५) से। सी० डब्ल्यू० ७१५ से भी; सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

३८१. पत्र : कंचन मु० शाहको

सेवाग्राम
५ अप्रैल, १९४०

चि० कंचन,

तुझे मैंने एकाधिक पत्र लिखे हैं। तेरा कामकाज सब ठीक हो रहा है। तू सेविका बननेके योग्य हुई जा रही है। जो-कुछ पढ़ सके, वह सब अवश्य पढ़ना। यहाँ तो बहुत गर्मी शुरू हो गई है। महादेव अभी कलकत्तेमें ही है। दीनबन्धु एन्ड्रयूज नहीं रहे। आज अंतिम-संस्कार होगा। [महादेव] बादमें आयेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८४) से। सी० डब्ल्यू० ७०७९ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

३८२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

सेवाग्राम
५ अप्रैल, १९४०

मैं तुझे वधाई नहीं देता।[1] तूने वड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। उसे निभानेकी शक्ति भगवान तुझे दे। आज तक तू [औरोंको] महापौर बनाता आया था। उसमें मजा बहुत था, जिम्मेदारी कम थी। अब मजा तो गया, रह गई फकत जिम्मेदारी। देखना, इस वजनके नीचे कहीं तू दब न जाये। यदि तू यह समझे कि सब-कुछ 'ईश्वरप्रीत्यर्थ' है, तो वजन बिलकुल नहीं लगेगा।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृ० १७५

३८३. पत्र : आनन्द तो० हिंगोरानीको

सेवाग्राम, वर्धा
५ अप्रैल, १९४०

चि० आनन्द,

इंग्रेजी क्यों? मैं तो समजा था कोई एक पुस्तकके लिये दो लकीर चाहीये। सारी सीरीझके वारेमें मैं क्या कहूं? मेरे ही लेखोंके संग्रहकी मैं स्तुती करुं? तुमारे साथ मेरे आशीर्वाद तो हमेशा है ही। इससे संतोष क्यों नहीं?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी माइक्रोफिल्मसे; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार और आनन्द तो० हिंगोरानी

१. मथुरादास त्रिकमजी बम्बईके महापौर चुने गये थे।

३८४. बातचीत: एक चीनी अभ्यागतके साथ

सेवाग्राम
[७ अप्रैल, १९४० से पूर्व][1]

प्र०: अंग्रेजोंको आप अच्छी तरह जानते हैं। क्या आप मानते हैं कि वे आपको बिना लड़ाईके ही स्वराज्य दे देंगे?

उ०: दे भी सकते हैं और नहीं भी। मैं नही समझता कि अगर उन्हें इस बातकी खबर हो कि हममें शक्ति है तो वे हमसे लड़ना चाहेंगे। लेकिन आज उन्हें हममें शक्ति नहीं दीखती।

क्या आपके पास अपनी इच्छा कार्यान्वित करवानेके लिए सविनय अवज्ञाके अतिरिक्त भी कोई साधन है?

हाँ है। अगर हममें आपसी झगड़े न हों तो ब्रिटिश सरकार हमारा प्रतिरोध नही कर पायेगी।

आप तो जानते ही हैं कि हम चीनियोंने एकताके लिए भारी कीमत चुकाई है। हमें २५ वर्षों तक गृह-युद्धकी आगमें से गुजरना पड़ा। अंग्रेजोंके चले जानेके बाद क्या भारतको भी वैसी ही भीषण स्थितिका सामना नहीं करना पड़ सकता है?

उस हालतमें क्या होगा, यह अभी निश्चयपूर्वक कहना असम्भव है। फिर भी, यह आवश्यक नही कि आन्तरिक युद्ध हो ही। मैं समझता हूँ कि चीनकी परिस्थितियाँ भिन्न थीं। वहाँकी पूरी जनतामें विद्रोहकी भावना प्रबल हो गई थी। यहाँ हमारे ७ लाख गाँवोंके वासी एक-दूसरेके खूनके प्यासे नहीं हैं। हम लोगोंमें कोई गहरे आन्तरिक मतभेद नही हैं। लेकिन बहुत बड़े जन-समुदाय द्वारा अहिंसा का प्रयोग करवाना विश्व-इतिहासमें एक नया परीक्षण है। इसकी क्षमतामें अपनी निष्ठासे मैं प्रफुल्लित होता हूँ। सम्भव है, लाखों लोगोंमें यह निष्ठा न आ पाये। और हो सकता है कि हमें अपनी स्वतन्त्रताके लिए गृह-युद्धके रूपमें कीमत चुकानी पड़े। लेकिन यदि हम अंग्रेजोंको सच्ची अहिंसासे हराते हैं तो मेरा यह विश्वास है कि यहाँ कोई भी गृह-युद्ध नहीं होगा।

चीनमें २५ वर्षोंके गृह-युद्धके बाद अब हमें अपने जनरलिस्मो[2] के रूपमें उचित प्रतिनिधि मिला है। क्या यह सम्भव नहीं कि भारतीय जनताको आप-जैसे आध्यात्मिक वृत्तिवाले नेताके बजाय किसी अधिक लड़ाकू नेताकी आवश्यकता पड़े?

१. अमृत कौर द्वारा तैयार किये गये बातचीतके इस विवरणपर तिथि-पंक्ति "सेवाग्राम, ७ अप्रैल, १९४०" दी गई है।

२. च्यांग काई-शेक

यदि गृह-युद्ध हुआ तो उससे मेरा दिवालियापन साबित हो जायेगा। तब किसी सैन्यवादी नेताकी आवश्यकता होगी।

स्वतन्त्रताके बाद क्या भारत गणतन्त्रके रास्तेपर चलेगा? क्या प्रजातन्त्र भारतीय जनताके स्वभावके अनुकूल है?

ये पेचीदा सवाल है और निश्चयपूर्वक इनका कोई उत्तर देना कठिन है। यदि हम अहिंसाके मार्गपर अपना विकास करते है तो प्रजातन्त्र न केवल हमारे अनुकूल होगा, वरन् हमारा प्रजातन्त्र विश्वका सबसे अच्छा प्रजातन्त्र होगा।

यदि अंग्रेज चले जायें तो क्या आप आत्मरक्षा कर सकते हैं?

अवश्य, बशर्ते कि हिन्दू और मुसलमान दोनों अहिंसाके मार्गपर चलकर अपना विकास करे।

क्या यह कहना उचित है कि बहुसंख्य उच्चवर्गीय भारतीय ऊपरसे तो राष्ट्रीयताकी दुहाई देते हैं परन्तु हृदयसे अंग्रेजी हुकूमत ही चाहते हैं?

मेरा विचार है कि ऐसे लोग बहुत बड़े बहुमतमें है जो अंग्रेजी हुकूमत नही चाहते। वे विदेशी प्रभुत्वसे मुक्त होना चाहते है।

यदि अंग्रेजी शासन चला जाये तो क्या आप कुछ अंग्रेजोंको यहाँ रखेंगे?

अवश्य, बशर्ते उनकी निष्ठा भारतमें हो जाये और वे अपनी अद्भुत योग्यता, तकनीकी ज्ञान और अनुसन्धानकी शक्तिसे भारतकी सेवा करें।

क्या आप दासतासे मुक्तिके लिए किसी तीसरी शक्तिकी सहायता स्वीकार करेंगे?

कभी नही, हमें अपनी आन्तरिक शक्तिसे ही अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, अन्यथा हमें परतन्त्र ही रहना है। बाहरी मददसे बनाया गया कोई भी ढाँचा अवश्य ही कमजोर होगा।

अंग्रेज तो सौदेबाज हैं; आप मानते है न? क्या आपके पास उनसे सौदा करनेके लिए कुछ है?

कुछ नहीं। और मै किसी भी परिस्थितिमें आजादीके लिए सौदेबाजी नही करूँगा।

क्या आपको विश्वास है कि अन्तःकरण आदमीको ऊँचा उठाता है?

अवश्य। परन्तु यह आदमीको डरपोक भी बना सकता है।

क्या धर्म आदमीको नैतिक बना सकता है?

हाँ, परन्तु वह सच्चा धर्म होना चाहिए, ऐसा धर्म जो आदमीमें प्यार और सेवाकी भावना उत्पन्न कर सके।

हम ऐसा सोचते थे कि चीनमें साम्यवादकी जड़ कभी नहीं जम पायेगी, परन्तु अब तो वहाँ उसने अपना एक निश्चित स्थान बना लिया है। क्या यही बात भारतके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है?

मैं ऐसा कह सकता हूँ कि साम्यवादियोंने अभी तक भारतमें कोई खास प्रगति नहीं की है, और मुझे किसी कारण ऐसा लगता है कि भारतीयोंकी प्रकृति कुछ ऐसी है कि वे सहज ही साम्यवादकी राह नही पकड़ेंगे।

क्या यह सच है कि भारतीय पहले हिन्दू या मुसलमान हैं और उसके बाद ही भारतीय हैं?

सामान्य तौरपर यह सच नही है, हालाँकि उनमें से कोई भी देशके लिए अपने धर्मका बलिदान नही करेगा।

हमारे राजनैतिक जीवनमें धर्मका कोई स्थान नहीं है, और यह बात चीनी मुसलमानोंपर भी लागू होती है। क्या भारत एक पूर्वी देशकी तरह विकास करेगा अथवा इसके लिए अंग्रेजोंसे सम्बन्ध-विच्छेद मुश्किल है? मुझे ऐसा लगता है कि इस देशमें अंग्रेजी रहन-सहन और विचार-पद्धतिकी जड़ें मजबूत हो गई हैं।

जहाँ तक शहरोंका सम्बन्ध है, आपका विचार सही है। परन्तु यदि गाँवोंमें, जहाँ वास्तविक भारत निवास करता है, आप जायें तो देखेंगे कि वे इस हवासे बिलकुल अछूते हैं। फिर भी, अंग्रेजी रहन-सहन, रस्म-रिवाजों, प्रशासन-पद्धति, भाषा और विचारोंने तथाकथित शिक्षित भारतीयोंपर विनाशकारी प्रभाव डाला है। और हो सकता है इस सांस्कृतिक पराजयसे पूर्ण रूपसे छुटकारा पाना हमारे लिए कभी भी सम्भव न हो।

भारतमें अनेक जातियाँ हैं। क्या आप समझते हैं कि इससे एकतामें विघ्न पड़ेगा?

बिलकुल नही।

यह कितने आश्चर्यकी बात है कि हमारी और आपकी सामाजिक तथा अन्य समस्याएँ समान हैं।

हाँ, और यही कारण है कि हम एक-दूसरेके इतने निकट हैं — हम संकटके मित्र हैं।

और यहाँपर गांधीजी ने बताया कि . . . वे दक्षिण आफ्रिकामें चीनी बस्तीको कितनी अच्छी तरहसे जानते थे, किस तरह वे वहाँ उनके वकील बने, उनके साथ कितने निकटके सम्बन्ध थे, किस तरह वे पूर्वी लोगोंके अधिकारोंकी रक्षाकी लड़ाईमें उनके साथी बने। गांधीजी ने चीनी मित्रकी मीठी चुटकी लेते हुए चीनी और जापानी लोगोंकी लोक प्रसिद्ध रहस्यमयताका उल्लेख किया। उन्होंने उनको बताया कि यह सेवाग्राम आश्रमका सौभाग्य है कि इस समय यहाँ एक जापानी साधु भी रह रहे हैं।

वे बड़े शान्त, संयत और दयालु हैं, परन्तु उनकी स्वाभाविक संकोचशीलताके कारण हममें से कोई भी उनके आन्तरिक विचारोंको समझनेमें सफल नहीं हो सका है। यह एक अच्छी बात हो सकती है, इससे उनका गौरव बढ़ता है, इससे उन्हें

मानसिक शान्ति तो मिलती ही है। इसका एक लाभ यह भी है कि यहाँ वे घरेलू कठिनाइयो और झगड़ोसे अप्रभावित और अक्षुब्ध रह सकते हैं। दक्षिण आफ्रिकामें चीनी मित्रोके साथ भी मेरा ऐसा ही अनुभव रहा। मैंने उनके समक्ष सैकड़ों बार भाषण दिया। उनमें और भारतीयोंमें मैंने कोई भेदभाव नहीं किया। परन्तु मुझे हमेशा ऐसा लगा कि आपके लोगोंने अपने चारों तरफ एक चारदीवारी बना ली है। आप लोग बहुत अधिक सुसंस्कृत हैं और शायद इसीलिए आपमें कुछ कृत्रिमता भी है।

गांधीजी ने हाथकते रेशमपर बनी, शीशेमें जड़ी और दीवारपर टँगी एक सुन्दर तस्वीरकी ओर, जिसे चीनी सद्भाव मिशनने हाल ही में उन्हें भेंट किया था, इंगित करते हुए कहा :

अपनी कलाको ही लीजिए। यह सुन्दरतम और आनन्ददायक है। लेकिन यह मेरी समझसे परे है। परन्तु यह मैं किसी बुरे अर्थमें नही कह रहा हूँ। मैंने अपने चीनी सह-कार्यकर्ताओपर विश्वास किया है और वे मेरे प्रति वफादार थे और मैं चीन और चीनी लोगोकी ओर बहुत आकृष्ट हूँ।

जानेके पहले क्या मैं एकाध महत्त्वपूर्ण प्रश्न और पूछ सकता हूँ? क्या आप अपने जीवनकालमें भारतको स्वतन्त्र देखनेकी आशा रखते हैं?

बेशक। मैं अपने जीवनकालमें भारतको स्वतन्त्र देखना चाहता हूँ। परन्तु हो सकता है कि भगवान मुझे अपने जीवनके स्वप्नको पूरा होते देखनेके योग्य न समझे। तब मुझे भगवानसे नही, अपितु अपने-आपसे ही शिकायत होगी।

लेकिन बिना सेनाके आप किस प्रकार सफल हो सकते हैं?

अभी तक तो हम बिना सेनाके ही काम चलाते रहे हैं। बिना एक भी गोली चलाये हम अपने लक्ष्यके समीप पहुँचते जा रहे हैं। यदि हम सफल होते हैं तो यह एक चमत्कार ही होगा। लेकिन अहिंसारूपी हथियारकी शक्तिमें सन्देह करनेके लिए मेरे पास कोई कारण नही है। किन्तु हम पूर्णरूपेण अहिंसावादी हैं, यह अभी हमें प्रमाणित करना है।

क्या अंग्रेजोंके प्रति आप लोगोंमें कोई घृणा है?

दुर्भाग्यवश है। परन्तु यदि हम अहिंसावादी बने रहे तो घृणा समाप्त हो जायेगी; क्योंकि किसी भी वस्तुको प्रयोगमें न लाया जाये तो वह स्वयमेव नष्ट हो जाती है।

हमारे लिए तो जापानियोके प्रति घृणा-रहित होना कठिन है।

हाँ, आपको घृणा-रहित होनेमें पीढ़ियाँ लग जायेंगी, क्योकि आप उनके विरुद्ध हिंसाका प्रयोग कर रहे हैं। मैं यह नही कहता कि आपको हिंसासे आत्म-रक्षा नही करनी चाहिए थी, परन्तु उन परिस्थितियोमें घृणाका नाश नहीं हो सकता।

क्या अन्य किसी जातिकी अपेक्षा अंग्रेजोंसे निपटना आसान है?

अहिंसाकी दृष्टिसे तो उनसे निबटना उतना ही आसान है जितना किसी अन्य जातिसे। लेकिन चूँकि अंग्रेजोंको छोड़कर मेरा अन्य किसी भी जातिसे पाला नहीं पड़ा है, इसलिए मैं ऐसा किसी व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर नहीं कह सकता। भारतीय संस्कृतिकी श्रेष्ठताकी छाप मुसलमानों सहित इसके सभी विजेताओंपर पड़ी है। मुझे विश्वास है कि जर्मन लोगोंपर भी इसका कुछ ऐसा ही असर हुआ होता। यह भी सम्भव है कि अंग्रेजोंमें जो अपने-आपमें सिमटे रहनेकी वृत्ति और रंग-भेदकी भावना है उसके कारण उनपर इसकी छाप उतनी नहीं पड़ी हो जितनी अन्य विजेता जातियोंपर पड़ी है।

कारमें बैठनेके पूर्व भेंटकर्ताने कहा, "एक लम्बी अवधिसे संजोकर रखा हुआ मेरा सपना इस आध घंटेमें पूरा हो गया। मैं इसे कभी नहीं भूलूँगा।"

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-४-१९४०

३८५. प्रश्नोत्तर

एक घरेलू समस्या

प्र० : आपने ठीक ही कहा है कि ऐसा कोई भी व्यक्ति, जिसने छुआछूतको हर रूपमें त्याग नहीं दिया है, सत्याग्रहमें भाग नहीं ले सकता। मान लीजिए किसी कांग्रेसीकी पत्नी पतिकी मान्यतासे सहमत नहीं है और हरिजनोंको अपने घरमें प्रवेश नहीं करने देती तो वह क्या करे — अपने विचारोंको मनवानेके लिए उसे बाध्य करे, उसका त्याग करे, या फिर सत्याग्रह-संघर्ष ही छोड़ दे?

उ० : पत्नीको मजबूर करनेका तो प्रश्न ही नहीं है। उसे अपने मनकी करने दें और आप अपनी राह चलें। इसका मतलब यह हुआ कि पत्नी अपने लिए रसोई बनानेका प्रबन्ध अलग करे और यदि वह चाहे तो अलग कमरेमें भी रह सकती है। इस तरह संघर्ष छोड़नेका सवाल ही नहीं उठता।

शिक्षक और सत्याग्रह

प्र० : ऐसे शिक्षकका, जिसका आपके रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास है, आने वाले संघर्षमें क्या योगदान हो सकता है? उसे सक्रिय सत्याग्रही बनना चाहिए या केवल निष्क्रिय सत्याग्रही?

उ० : जो जानकारी आपने दी है वह अपर्याप्त है। लेकिन उसीके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि आपको निष्क्रिय सत्याग्रही ही बनना चाहिए।

देशी राज्योंके प्रजा-मण्डल

प्र० : सविनय अवज्ञाके दौरान देशी राज्योंके प्रजा-मण्डलोंके सदस्योंका और देशी राज्योंके निवासियोंका क्या कर्तव्य है?

उ० : कांग्रेस अगर सविनय अवज्ञा शुरू करेगी तो वह ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध ही होगी। देशी राज्योंके निवासियोंको राज्योंमें सविनय अवज्ञा नही करनी चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि प्रजा-मण्डल कांग्रेसकी सविनय अवज्ञासे प्रभावित नही होंगे। लेकिन देशी राज्योंके लोग अगर चाहें तो व्यक्तिगत हैसियतसे ब्रिटिश भारतमें सविनय अवज्ञा कर सकते हैं। इस उद्देश्यसे वे अपने राज्यके बाहरकी निकटतम कांग्रेस कमेटीमें अपना नाम दर्ज करवा सकते हैं।

अधिक आवश्यक

प्र० : आपके विचारसे सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेके लिए अधिक बड़ी आवश्यकता कौन-सी है — आपकी अन्तरात्माकी आवाज, जिसकी प्रेरणापर आप अकेले भी लड़ सकते हैं या कांग्रेसियों द्वारा आपकी सभी शर्तोंका पालन? यदि लोग तैयार हैं और आपको अपनी अन्तरात्मासे सविनय अवज्ञाकी प्रेरणा नहीं मिलती तो एसी परिस्थितिमें क्या होगा?

उ० : जब तक मेरी शर्तें पूरी नही होती तब तक अन्तरात्माकी प्रेरणा मिलनेका सवाल ही नही उठता। सम्भव है कि शर्तोंका पालन ऊपरी रूपसे होने लगे, फिर भी मुझे अन्त.प्रेरणाका आभास न हो। ऐसी स्थितिमें मैं सविनय अवज्ञाकी घोषणा नहीं कर सकता। लेकिन काग्रेस चाहे तो मेरा त्याग करके स्वतन्त्र रूपसे सविनय अवज्ञाकी घोषणा कर सकती है।

गैर-कांग्रेसी

प्र० : क्या ऐसे लोगोंसे, जो अभी न तो कांग्रेसके सदस्य हैं और न सक्रिय सत्याग्रही, आन्दोलनमें शामिल होनेको कहा जायेगा? अगर कहा जायेगा तो किस रूपमें?

उ० : उन्हें काग्रेसका सदस्य बनना चाहिए और सत्याग्रहियोंमें अपने नाम दर्ज करवा लेने चाहिए।

ए० बी० सी० श्रेणियाँ

प्र० : सभी सत्याग्रहीसे सिर्फ सी० श्रेणीमें ही शामिल किये जानेकी माँग क्यों नहीं करते?

उ० : आपके सुझावके पक्षमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

गोपनीयता

प्र० : गोपनीयताके बारेमें आपको अपने विचार स्पष्ट रूपसे बताने चाहिए। पिछले संघर्षके दौरान सत्ताधारियोंको झाँसा देनेके लिए बहुत गोपनीयता बरती गई थी।

उ० : मुझे इस बातमें जरा भी सन्देह नही है कि गोपनीयतासे हमारे उद्देश्यको कोई लाभ नही हो सकता। यह बिलकुल ठीक है कि जो पुलिसको झाँसा देनेमें समर्थ हो जाते थे, उन्हें इसमें बड़ा मजा आता था। उनकी चतुराईके बारेमें किसीको

शक नही है। किन्तु सत्याग्रह चतुराईसे बड़ी चीज है। गोपनीयता उसके गौरवको नष्ट करती है। कोई कारण ही नही है कि सत्याग्रही गुप्त कोश और गुप्त बही-खाते रखें। मै मानता हूँ कि मेरी राय बहुत-से सहयोगियोंको पसन्द नही आई है। लेकिन मै इसे बदलनेका कोई कारण नही देखता। मै स्वीकार करता हूँ कि पहले इस विषयमें मेरा विचार जितना चाहिए उतना दृढ़ नही था। अनुभवने बता दिया है कि मुझे दृढ़ रहना चाहिए था।

सम्पत्तिकी तोड़-फोड़

प्र० : आप तो जानते ही है कि बहुत-से कांग्रेसियोंने खुलेआम ऐसी सलाह दी है कि सम्पत्तिकी तोड़-फोड़—जैसे, रेलोंको नष्ट करना, जब थाने खाली हों तो उन्हें जलाना, तारके खम्भोंको काटना, डाकखानोंको जलाना आदि — हिंसा नहीं है।

उ० : इस दलीलको मै कभी नही समझ पाया हूँ। यह शुद्ध हिंसा है। सत्याग्रहका मतलब दूसरोंको कष्ट पहुँचाना नही, स्वयं कष्ट सहना है। किसीको शारीरिक चोट पहुँचानेकी अपेक्षा उसकी सम्पत्तिको क्षति पहुँचानेमें अक्सर अधिक हिंसा होती है। क्या तथाकथित सत्याग्रहियोंने जुर्माने या सम्पत्तिकी जब्तीकी अपेक्षा कारावासको अधिक पसन्द नही किया है? मेरे एक आलोचकने ठीक ही कहा है कि मैंने लोगोंको विध्वंसात्मक अवज्ञा इस हद तक सिखा दी है कि वह खुद मुझे ही भारी पड़ रही है। लेकिन लोगोको अहिंसाकी कठिन कला सिखानेमें मै सर्वथा विफल रहा हूँ। उस आलोचकने यह भी कहा है कि जल्दबाजीमें मैंने घोड़ेके सामने गाड़ी लगा दी है और इसलिए मेरी सविनय अवज्ञाकी सारी बातें यदि अधिक बुरी नही तो मूर्खतापूर्ण तो है ही। इस आलोचनाका मै कोई सन्तोषजनक उत्तर नही दे पा रहा हूँ। मै तो साधारण मर्त्यजन हूँ। अपने प्रयोग और उस प्रयोगके प्रति अपनी सम्पूर्ण ईमानदारीमें मेरा विश्वास है। लेकिन हो सकता है कि मेरी मृत्युके बाद मेरे लिए यही स्मृतिलेख योग्य हो: "उसने प्रयत्न तो किया, किन्तु सर्वथा विफल रहा।"

सेवाग्राम, ७ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-४-१९४०

३८६. पत्र : नरेन्द्र देवको

सेवाग्राम
७ अप्रैल, १९४०

भाई नरेन्द्र देव,

मुझे पता नहीं आपको व० कमीटीके लिए निमंत्रण मिला है या नही। अगर नही मिला है तो मेरी एक उलझन पत्र द्वारा सुलझाइए। आपको याद होगा, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इत्यादिसे कांग्रेसके लोग हट जायें ऐसा प्रस्ताव आप, जयप्रकाश और लोहियाने कहा था। मैंने प्रस्तावको पसंद किया था लेकिन व० क० में सिवाय जवाहर और मौलानाके किसीके पास कोई . . .[1] दलील नही थी। मेरे पास तो सिवाय निजी रायके कुछ मसाला नही था। मुझे इस बारेमें अनुभव नही है। जयप्रकाशने लिया है। मुझे इस प्रश्नको छोडना नही चाहिए। आप कुछ मदद देंगे? डॉ० लोहिया और और भाईयोको भी यह खत बता सकते है।

आपका,
मो० क० गांधी

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

३८७. सभी कसौटीपर

. . . लाहौरमें जो-कुछ हुआ है, आप अच्छी तरह जानते हैं।[2] खाकसार आन्दोलनको गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है। अल्लामा मशरिकी[3] के लेखों और व्याख्यानोंका सारांश साथमें भेज रहा हूँ। . . . आशंका है कि प्रतिबन्ध हटा लिया जायेगा। यदि वैसा होता है तो हम मानेंगे कि कांग्रेसने ग्यारहमें से सात प्रान्तोंमें गतिरोध उत्पन्न करके जो रवैया अपनाया है, और जिसे हम एक असम्भव रवैया समझते हैं, उसीके कारण यह हुआ। . . . धारा ५२ (१) के अधीन खाकसार-जैसे हिंसक आन्दोलनको दबाना गवर्नरके विशेष दायित्वोंका अंग है। . . . यदि प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है तो खाकसारोंके

१. शब्द स्पष्ट नहीं है।

२. १९ मार्चको ३२ खाकसार और दो सिपाही एक संघर्षमें मारे गये थे। बादमें चार और आहत खाकसारोंकी मृत्यु हो गई थी।

३. खाकसार आन्दोलनका जनक, इनायतुल्ला

ही संगठनके ढंगपर हिन्दू और सिख भी अपने संगठन बनायेंगे। कुछ दिन पूर्व अटारीमें अकालियोंका एक सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने अपने 'दल' में एक लाख लोगोंको भरती करनेका निश्चय किया। यदि इसे कार्य-रूप दिया जाता है तो अवश्य ही देशमें खून-खराबी मचेगी। . . . ऐसे अनर्थ रोकनेके लिए आप क्या करनेका इरादा रखते हैं?

यह एक जाने-माने पंजाबी भाईके पत्रका सारांश[1] है। उनका यह अनुमान ठीक है कि खाकसार-साहित्य मुझे अवश्य ही मिला होगा। मेरे पत्र-लेखकने जो-कुछ भेजा है, उसे मैं प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ।

मैं उन लेखोंको पढ़ रहा हूँ और आशा करता हूँ कि जितना साहित्य मेरे पास है उसका सारांश यथासम्भव शीघ्र ही प्रस्तुत करूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक फौजी और लड़ाकू संगठन है। जन-शान्तिको खतरेमें डाले बिना कोई भी सरकार इस प्रकारके फौजी संगठनको कायम नहीं रहने दे सकती। मुझे पूरा विश्वास है कि पंजाब सरकार खाकसार संगठनको उसके मूलरूपमें फिरसे प्रतिष्ठित नहीं होने देगी। मैं पत्र-लेखकसे पूर्णतः सहमत हूँ कि यदि खाकसारोंको पहलेकी ही तरह अपना काम करते रहनेकी अनुमति दी गई तो सिख और अन्य दलोंको भी वैसी ही अनुमति देनी पड़ेगी। इससे झगड़ा हुए बिना नहीं रह सकता।

फिर भी मेरे पत्र-लेखक भाईका कहना है कि यदि प्रतिबन्ध हटा लिया जाता है, तो "हम मानेंगे कि कांग्रेसने ग्यारहमेंसे सात प्रान्तोंमें गतिरोध उत्पन्न करके जो रवैया अपनाया है, और जिसे हम एक असम्भव रवैया समझते हैं, उसीके कारण यह हुआ।" उनके इस अभिप्रायसे सहमत होनेमें मैं असमर्थ हूँ। कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलोंके त्यागपत्र देनेका साम्प्रदायिक तनावसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका त्यागपत्र देना तो ब्रिटिश सरकारने स्वशासित माने जानेवाले ग्यारह प्रान्तोंके शासन-तन्त्रोंके जिम्मेवार प्रधानोंसे कुछ भी पूछे-ताछे बिना भारतको जिस रीतिसे युद्धरत देश घोषित कर दिया और युद्धके सम्बन्धमें जो अन्य अनेक मनमाने कार्य किये उसके खिलाफ ईमानदारीसे जाहिर किया गया विरोध था। त्यागपत्र देना तो कांग्रेस द्वारा उठाया गया एक छोटे-से-छोटा और हलके-से-हलका कदम था। लेकिन कांग्रेस द्वारा उठाये गये इस कदमका औचित्य बादकी घटनाओंसे अन्य प्रकारसे भी सिद्ध होता है। यदि कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल बने रहते तो इससे साम्प्रदायिक तनावमें वृद्धि ही हुई होती। जब तक कांग्रेस अपनी अहिंसक नीति अपनाये हुए है तबतक वह जनताके बहुत बड़े हिस्सेकी स्वैच्छिक सहमतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी तरीकेसे देशका शासन नहीं चला सकती। महज मतपेटियोंके बहुमतका कोई मूल्य नहीं है। यदि कांग्रेसमें मेरी चले तो मैं इसे ब्रिटिश संगीनोंके सहारे सत्तारूढ न रहने दूँ। जन-हिंसाको दबानेके लिए जब कांग्रेसी मन्त्री पुलिस और सेनाका सहारा लेनेको बाध्य हुए थे, उस समय भी मैं इसके विरुद्ध सरेआम अपने विचार प्रकट करनेमें नहीं

१. यहाँ इसके केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

सकुचाया था।[1] यदि उन्हें सत्तारूढ रहना था, तो वे पुलिस और सेनाका सहयोग लेनेके लिए बाध्य थे। मेरा अभिप्राय यह था कि हिंसाको दबा चुकनेपर, जिसके लिए कि वे बाध्य थे, कांग्रेसको इस आशयकी सार्वजनिक घोषणा कर देनी चाहिए थी कि वह जनतापर अहिंसक नियन्त्रण नही प्राप्त कर सकी है और इसीलिए अपनी नीतिके अनुसार उसे पदत्याग कर देना चाहिए।

लेकिन मुझे डर है कि इस प्रकारका दृष्टिकोण रखनेवाला मैं अकेला ही हूँ। मेरी अहिंसा ब्रिटिश सरकारको अपदस्थ करनेके प्रयत्न तक ही सीमित नही है। ऐसी अहिंसा तो निर्बल वस्तु ही होगी; उसे शायद ही अहिंसाकी संज्ञा दी जा सके। इसलिए यदि मेरा वस चले तो जबतक वास्तविक साम्प्रदायिक समाधान नही प्राप्त कर लिया जाता तब तक मैं कोई कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल न बनने दूँ। मेरा दृढ विश्वास है कि एक सुसगत अहिंसक कार्य-पद्धतिके बिना वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करना असम्भव है। मेरा यह भी दृढ विश्वास है कि यदि कांग्रेस इस सम्बन्धमें सिद्धान्तो और मूल्योंकी कीमतपर समझौता करनेसे इनकार कर देती है और जो अहिंसा-नीति उसने अपनाई है उसपर दृढतापूर्वक आरूढ रहती है और इसके फल-स्वरूप अधिकारच्युत रहनेको तैयार रहती है तो निश्चय ही भारतके वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी आशा है।

खाकसार खतरा अपने-आपमें कोई खतरा नही है। पर यह एक गहरी व्याधिका दुर्लक्षण है। इसके विरोधी सगठन स्थापित करना सरल है, लेकिन ऐसा करना इसका उपचार नही है। इससे तो बुराई बहुगुणित ही होगी। यदि मेरी चले तो मैं लोगोंसे कहूँ कि खाकसारोंकी हिंसाका सामना अहिंसासे करो। लेकिन अपने सामने पडे समाचारपत्रो और पत्रोंसे मुझे ऐसा लगता है कि लोग वास्तविक अथवा कल्पित खतरेके विरुद्ध बाह्य सरक्षण खोजते है। इससे शासन-तन्त्रको ही बल मिलेगा, जिसमें आत्मरक्षाकी निजी तैयारियाँ शायद पूरकका काम करेंगी। मेरी रुचि इन दो में से किसीमें नही है।

खुद खाकसारोको जितनी जानोसे अपनी करनीकी कीमत चुकानी पड़ी, उसकी चर्चा मैंने यहाँ नही की है। मेरी हमदर्दी पूरी तरह मृतकोंके परिवारोंके साथ है। गोली चलाये जानेके बारेमें मुझे कुछ नही कहना है। एक विशेष अदालत द्वारा इसकी जाँच की जा रही है। जाँच-समितिके निष्कर्ष चाहे जो हों, यदि इस दुष्काण्डसे लोगोको अपने दिलोको टटोलनेकी प्रेरणा मिलती है तो माना जायेगा कि यह व्यर्थ नही गया।

सेवाग्राम, ८ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-४-१९४०

1. देखिए खण्ड ६६, पृ० ४५०-५२, और खण्ड ६७, पृ० ८०।

३८८. अमेरिकासे दो प्रश्न

अमेरिकासे पत्र लिखनेवाले एक मित्रने निम्न दो प्रश्न प्रस्तुत किये हैं :[1]

> १. माना कि सत्याग्रहमें भारतको स्वतन्त्रता दिलानेकी शक्ति है, फिर भी स्वतन्त्र भारतकी राज्य-नीतिके सिद्धान्तके रूपमें इसे स्वीकार करना कहाँ तक सम्भव होगा? . . . क्या केवल कठिन लड़ाईके ही अवसरपर सत्याग्रह अपनाये जानेकी सम्भावना है, जब कि प्राणोत्सर्गकी क्रिया पूर्णतः प्रभावकारी होती है — अथवा यह प्रभुसत्ताका भी हथियार होगा जिसे शहादतके सिद्धान्तपर चलनेकी न तो आवश्यकता है और न गुन्जाइश ही?
>
> २. मान लीजिए कि स्वतन्त्र भारत सत्याग्रहको अपनी राज्य-नीतिके एक साधनके रूपमें स्वीकार करता है, तो किसी अन्य प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य द्वारा आक्रमण कर दिये जानेपर वह अपनी रक्षा कैसे करेगा? . . . अपनी सीमापर चढ़ आई आक्रमणकारी फौजका सामना करनेके लिए उसकी सत्याग्रही क्रियाका क्या रूप होगा? . . .

ये प्रश्न स्पष्टतया काल्पनिक हैं। इसके अलावा, ये असामयिक भी हैं, क्योंकि मैंने अभी तक सत्याग्रहकी सम्पूर्ण कार्यविधिमें पूरी निपुणता हासिल नहीं की है। अभी तो प्रयोग चल ही रहा है। यह अभी बहुत आगे भी नहीं बढ़ा है। इस प्रयोगमें एक बारमें एक कदम आगे बढ़कर ही सन्तोष करना पड़ता है। इसके दूरके दृश्यको देखना हमारे बसकी बात नहीं है। इसलिए मेरे उत्तर अनुमानके ढंगके ही हो सकते हैं।

सच तो यह है, जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, कि हम अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्तिकी लड़ाईमें भी शुद्ध अहिंसाका प्रयोग नहीं कर रहे हैं।

पहले प्रश्नके सम्बन्धमें, जहाँ तक मैं आज देख सकता हूँ, मैं कहूँगा कि अहिंसाके राज्य-नीतिके सिद्धान्तके रूपमें स्वीकार किये जानेकी सम्भावना बहुत कम ही है। यदि भारत स्वतन्त्र होनेके पश्चात् अहिंसाको अपनी नीतिके रूपमें स्वीकार नहीं करता तो दूसरा प्रश्न अप्रासंगिक हो जाता है।

परन्तु अहिंसाकी शक्तिके सम्बन्धमें मैं अपनी व्यक्तिगत राय दे सकता हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि किसी राज्यके लोगोंकी बहुत बड़ी संख्या अहिंसक हो तो उस राज्यका प्रशासन अहिंसात्मक तरीकोंसे चलाया जा सकता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, भारत ही एक ऐसा देश है जिसके इस तरहका राज्य हो सकनेकी सम्भावना है। इसी विश्वासपर मैं अपना प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए

१. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

यदि हम मान ले कि भारत शुद्ध अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेता है, तो वह इसीके बलपर इस स्वतन्त्रताको बनाये भी रख सकता है। अहिंसक व्यक्ति अथवा समाज न तो किसी बाह्य आक्रमणकी पहलेसे कल्पना करता है और न ही आक्रमणसे बचावकी पहलेसे तैयारी करता है। इसके विपरीत ऐसा व्यक्ति अथवा समाज दृढतासे विश्वास करता है कि उसे कोई भी परेशान नही करेगा। जिसे वह अनहोनी मानता है वह अगर हो'ही जाये तो अहिंसाके दो मार्ग खुले रहते हैं। प्रथम तो यह कि वह आक्रामकको अधिकार जमा लेने दे, लेकिन उससे सभी बातोंमें असहयोग करे। जैसे, उदाहरणके लिए मान लीजिए, कोई आधुनिक नीरो भारतपर आक्रमण करता है तो राज्यके प्रतिनिधि उसे अधिकार तो जमा लेने देंगे, लेकिन साथ ही उसे यह भी सूचित कर देंगे कि वह लोगोंसे किसी भी प्रकारकी सहायता नही प्राप्त कर सकेगा। वे उसकी अधीनता माननेकी अपेक्षा मौत स्वीकार करेंगे। दूसरा मार्ग है, लोगों द्वारा — जो अहिंसात्मक ढंगसे प्रशिक्षित किये गये होंगे — सक्रिय अहिंसक प्रतिरोध करना। वे नि शस्त्र सामने आकर स्वयंको आक्रमणकारीकी तोपोंको समर्पित कर देंगे। इन दोनों काल्पनिक उदाहरणोंके मूलमें यह श्रद्धा काम करेगी कि नीरो-जैसा व्यक्ति भी हृदयहीन नही होता। आक्रमणकारीकी इच्छाके आगे झुकनेके बजाय सहज रूपसे मरनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी एकके-बाद-एक असंख्य पंक्तियाँ अन्तमें आक्रमणकारी और उसके सैनिकोंका दिल पिघलाये बिना नही रह सकती। व्यावहारिक दृष्टिसे देखें तो इस प्रकारके प्रतिरोधमें होनेवाली प्राण-हानि उनका हिंसक सामना करनेसे होनेवाली प्राण-हानिसे अधिक नही होगी; और साथ ही ऐसा करनेसे शस्त्रास्त्रों तथा किलेबन्दी इत्यादिमें भी कुछ खर्च नही होगा। इस प्रकारके अहिंसक प्रशिक्षणसे लोगोंका नैतिक स्तर कल्पनातीत रूपसे ऊपर उठेगा। ऐसे स्त्री-पुरुषो द्वारा दिखाई गई व्यक्तिगत वीरता शस्त्र-युद्धमें दिखाई जानेवाली वीरतासे श्रेष्ठ होगी। इन दोनों ही पद्धतियोंमें वीरता तो मरनेमें ही निहित है, न कि मारनेमें। अन्तमें, अहिंसक प्रतिरोधमें हार जैसी कोई चीज नही होती। मेरी कल्पनाका यह कोई उत्तर नही है कि ऐसा पहले कभी हुआ ही नही। मैंने कोई असम्भव बात नही कही है। जिस प्रकारकी व्यक्तिगत अहिंसाकी बात मैंने की है, उसके उदाहरणोंसे इतिहास भरा पडा है। अहिंसक व्यवहार करनेकी पर्याप्त शिक्षा देनेपर भी स्त्री-पुरुष दल या राष्ट्रके रूपमें वैसा व्यवहार नही कर सकते, ऐसा कहने या माननेका कोई कारण नही है। वास्तवमें देखा जाये तो मानव-जातिका कुल अनुभव यही है कि मनुष्य किसी-न-किसी तरीकेसे जीता ही आ रहा है। इससे मै यही अनुमान लगाता हूँ कि प्रेमका सिद्धान्त ही मानव-जातिपर शासन करता है। यदि इसके बदलेमें हमपर हिंसा अर्थात् द्वेषका राज्य होता तो बहुत पहले ही मानव-जातिका अस्तित्व मिट गया होता। घोर दु खकी बात है कि इसपर भी तथाकथित सभ्य मनुष्य और राष्ट्र ऐसा व्यवहार करते हैं, मानो मानव-समाजकी रचनाका आधार हिंसा ही हो। यह दिखानेके लिए प्रयोग करनेमें कि द्वेष नही बल्कि प्रेम ही जीवन का सर्वोपरि एवं

एकमात्र नियम है, मुझे अकथनीय आनन्द प्राप्त होता है। इसके विरुद्ध अनेक प्रमाण प्रस्तुत करनेपर भी मेरा यह विश्वास डिगाया नहीं जा सकता। यहाँ तक कि भारतकी वर्तमान अधकचरी अहिंसासे भी मेरे इस विश्वासको बल मिला है। यह अश्रद्धालुके हृदयमें श्रद्धा जगानेमें भले ही सक्षम न हो, लेकिन मित्रतापूर्ण आलोचकमें अपने प्रति सद्भावनापूर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न करनेके लिए तो पर्याप्त है।

सेवाग्राम, ८ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-४-१९४०

३८९. पत्र: जे० सी० कुमारप्पाको

८ अप्रैल, १९४०

प्रिय कु०,

डॉ० मेहतासे तुम्हारे भारी अनाचारका हाल मिला। तुम्हें अपना रक्तचाप कम करना ही है। मेरी सलाह है कि तुम कुछ दिन यहाँ आकर ठीक देखभालमें रहो। गरमीके मौसममें कही पहाड़ीपर जाकर आराम करो। शरीरसे अधिक चैन दिमागको चाहिए। चाहो तो आज ही आ सकते हो।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१५१) से

३९०. टिप्पणियाँ

एन्ड्र्यूजकी विरासत

चार्ली एन्ड्र्यूजको जितनी अच्छी तरह मैं जानता था उतनी अच्छी तरह शायद ही कोई जानता रहा हो। गुरुदेव उनके गुरु थे। दक्षिण आफ्रिकामें जब हमारी मुलाकात हुई, हम दोनो भाई-भाईकी तरह मिले और अंततक भाई ही बने रहे। हम दोनोंमें कोई दूरी नहीं थी। वह एक अंग्रेज और एक भारतीयके बीचकी मैत्री नही थी। वह तो दो सत्यान्वेषियों और सेवकोंके बीचका अटूट बन्धन था। लेकिन मैं यहाँ एन्ड्र्यूजके अपने संस्मरण नहीं लिख रहा हूँ, यद्यपि वे मेरे लिए बड़े पवित्र हैं। मैं तो यह चाहता हूँ कि आज, जब कि इंग्लैंड और भारतके इस सेवकके निधनकी स्मृति सबके मनमें ताजी है, अंग्रेज और भारतीय तनिक उस विरासतके बारेमें सोचें जो वे हमारे लिए छोड़ गये है। इंग्लैंडके प्रति उनका प्रेम बड़े-से-बड़े अंग्रेजके देशप्रेमसे भी कम नहीं था, इस बातमें किसी तरहके सन्देहकी गुंजाइश

नहीं है। इसी तरह यह बात भी असन्दिग्ध है कि उनका भारत-प्रेम बड़े-से-बड़े भारतीयके स्वदेश-प्रेमसे कम नही था। अपनी मृत्यु-शय्यापर उन्होंने मुझसे कहा था, "मोहन, स्वराज्य आ रहा है।" अगर चाहें तो अंग्रेज और भारतीय दोनों स्वराज्यके आगमनमें सहायक हो सकते हैं। वर्तमान शासको और जिन अंग्रेजोंकी रायका कोई वजन है, उनमें से अधिकाश के लिए वे अजनवी नही थे। राजनीतिक दृष्टिसे जागरूक हर भारतीय उनको जानता था। अभी मैं अंग्रेजोंके दुष्कर्मोंके वारेमें नही सोचना चाहता। उन्हे तो भुला दिया जायेगा, किन्तु जब तक इग्लैण्ड और भारत का अस्तित्व कायम है तव तक एन्ड्रयूज द्वारा किये एक भी महत् कार्यको भुलाया नही जा सकेगा। यदि हमें एन्ड्रयूजकी स्मृतिसे सचमुच प्रेम है, तो हममें अंग्रेजोके प्रति घृणाका कोई भाव नही होना चाहिए, क्योंकि एन्ड्रयूज श्रेष्ठतम और उदारतम अंग्रेजो के ही एक उदाहरण थे। यह बात सम्भव — सर्वथा सम्भव — है कि श्रेष्ठतम अंग्रेज और श्रेष्ठतम भारतीय एक साथ मिलकर बैठें और दोनोको स्वीकार्य कोई समझौता-सूत्र तैयार करके ही अलग हों। जो विरासत एन्ड्रयूज छोड़ गये हैं उसको फलित करनेका प्रयत्न एक योग्य प्रयत्न है। एन्ड्रयूजकी सौम्य मुखाकृतिका और विश्वके राष्ट्रोंके बीच भारत अपना स्वतन्त्र स्थान ग्रहण कर सके इस दृष्टिसे उनके द्वारा किये असंख्य प्रेम-कार्योका स्मरण करते हुए मेरे मनमें सबसे ऊपर उनकी इस विरासतका ही खयाल है।

इससे कैसे बचें

प्रो० रंगा[1] मेरे एक साथी कार्यकर्ता हैं। उन्हे मैं बहुत दिनोसे जानता हूँ। वे बड़े बहादुर और नेक स्वभावके आदमी हैं, लेकिन उनमें एक खासियत है कि वे अक्सर ऐसी बातें कह जाते हैं जो नही कहनी चाहिए और गलत समयपर गलत काम कर जाते हैं। उनपर नजरबन्दीका आदेश जारी किया गया था। जब उन्होंने उसे तोड़नेका फैसला किया, तो मुझे एक तार भेजा। वे जानते थे कि वे अनु-शासनमें बँधे है। अगर उन्होंने मुझे समय दिया होता तो मैं उनसे अपने स्थान निडु-ब्रोलमें ही बने रहनेके आदेशका पालन करनेको कहता। उसे मानकर वे अनुशासन-की उच्च भावनाका परिचय देते और आज अपनी जगहमें रचनात्मक कार्य करके सत्याग्रह-सेनामें शामिल होनेकी पात्रता प्राप्त कर रहे होते। लेकिन उन्होंने जो-कुछ किया है, उससे, मेरी रायमें, हमारे उद्देश्यको हानि पहुँचाई है और लाभ तो न अपना किया है और न किसी और का। उन्होंने उद्देश्यको हानि इस तरह पहुँचाई है कि जो लोग मार्ग-दर्शनके लिए उनके मुखापेक्षी हैं उनके सामने उन्होने एक बुरा उदाहरण पेश किया है। अगर मैं उन्हे समझा सकूँ तो मैं यही सलाह दूँगा कि वे अधिकारियोंको सूचित करें कि उन्होंने आन्तरिक अनुशासन भंग किया है, जिसका उन्हें दु.ख है और अब अगर उन्हें रिहा कर दिया जाये तो वे सहर्ष निडुब्रोल चले जायेंगे और जब तक नजरबन्दीका आदेश वापस नही लिया जायेगा, वहीं रहेंगे। मैं

१. एन० जी० रंगा

यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि मेरी सलाह मानकर वे मेरी भी सहायता करेंगे और देशके सामने जो उद्देश्य है, उसकी भी।

सेवाग्राम, ९ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-४-१९४०

३९१. चरखा-स्वराज्य-अहिंसा

एक पत्र-लेखकका कहना है कि अब चूंकि देशमें सविनय अवज्ञाका वातावरण बन चुका है, इसलिए मुझे पुनरुक्तिका खतरा उठाकर भी एक बार फिर एक लेखमें अपनी वे सब दलीलें पेश करनी चाहिए जिनके अनुसार चरखा, स्वराज्य और अहिंसा एक-दूसरेके अभिन्न अंग हैं। मै खुशीसे इसे करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

मेरी दृष्टिमें चरखा जन-साधारणकी आशाका प्रतिनिधित्व करता है। जन-साधारणको जैसी और जो भी स्वतन्त्रता प्राप्त थी, उसे उन्होंने चरखा खोनेके साथ-साथ खोया। चरखा ग्रामीण लोगोंकी खेती-बाड़ीका पूरक था और उनके उस मूल धन्धेको गरिमा प्रदान करता था। विधवाके लिए तो वह सान्त्वना देनेवाला मित्र ही था। वह ग्रामीणोंको निठल्लेपनसे बचाता था, क्योंकि चरखा ओटाई, धुनाई, ताना-बाना तैयार करना, रंगाई और बुनाई-जैसे सभी पूर्ववर्ती और परवर्ती उद्योगोंका मूल स्रोत था। और इनकी बदौलत गाँवके बढ़ई और लोहार काममें लगे रहते थे। चरखेके बलपर सात लाख गाँव निर्भर हो सके थे। चरखेके उठ जानेके फलस्वरूप दूसरे ग्रामोद्योगोंका — जैसेकि कोल्हूका — भी अन्त हो गया। दूसरा कोई उद्योग इनकी जगह नही ले पाया। इस तरह गाँववाले, अपने विभिन्न उद्योगों तथा अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा और इनसे होने वाली थोड़ी-बहुत आयसे भी वंचित हो गये।

जिन अन्य देशोंमें ग्रामोद्योगोंको खत्म कर दिया गया, उनसे अपने देशकी तुलना करनेसे हमारा अर्थ सिद्ध नही होगा। वहाँके गाँववालोंके पास क्षतिपूर्तिके लिए कुछ और साधन थे, किन्तु भारतीय ग्रामवासियोंके पास ऐसा कुछ नही था। पश्चिमके औद्योगिक देश दूसरे राष्ट्रोंका शोषण कर रहे थे। भारत खुद ही शोषित देशोंमें से है। इसलिए यदि गाँववालोंको फिरसे अपना स्वत्व प्राप्त करना है तो सबसे स्वाभाविक उपाय यही है कि चरखा और सभी आनुषंगिक उद्योगोंका और सम्बन्धित साधनोंका पुनरुद्धार किया जाये।

गाँवोंमें नवजीवनका संचार करनेके लिए आज आवश्यकता ऐसे आत्मत्यागी, बुद्धिमान और देशप्रेमी कार्यकर्ताओंके दलकी है जो अनन्य सेवाभावसे गाँवोंमें चरखेका सन्देश फैलाये और इस तरह ग्रामीण लोगोंके निस्तेज नेत्रोंमें आशाकी ज्योति जलायें। यह सहयोगका एक महान प्रयास और सही वयस्क-शिक्षा है। इस प्रवृत्तिसे चरखेकी मूक किन्तु निश्चित और जीवनदायी चक्रगतिकी तरह मूक और निश्चित क्रान्ति आयेगी।

चरखा-कार्यका वीस वर्षका अनुभव मुझे वताता है कि यहाँ मैंने जो दलील दी है, वह सत्य है। चरखेने गरीब मुसलमानो और हिन्दुओंकी लगभग समान रूपसे सेवा की है। इस प्रवृत्तिके फलस्वरूप विना किसी शोर-गुल या आडम्बर-प्रदर्शनके इन लाखों ग्रामीण कारीगरोंकी जेबोंमें लगभग पाँच करोड़ रुपया पहुँचाया जा चुका है।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि चरखा निश्चय ही हमें वह स्वराज्य दिलायेगा जो सर्वसाधारणके लिए होगा, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो। चरखा गाँवोंको अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करता है और ऊँच-नीचका भेद-भाव मिटाता है।

लेकिन जव तक देशका अहिंसामें विश्वास नही होगा तब तक चरखा स्वराज्य नही दिला सकता, वल्कि सच तो यह है कि तब तक वह गतिमान ही नही हो सकता। यह वहुत उत्तेजक प्रवृत्ति नही है। स्वतन्त्रताके लिए तरसते देशभक्त इसे तिरस्कार-भावसे देख सकते हैं। इतिहास-ग्रन्थोमें उन्हें इसका विवरण नही मिलेगा। स्वतन्त्रताके पुजारी लड़कर विदेशी शासकोको देशसे निकाल वाहर करनेके उत्साहसे भरे हुए हैं। वे सभी दोष विदेशी शासकोंपर ही आरोपित करते हैं और स्वयं अपने अन्दर उन्हें कोई दोष दिखाई नही देता। वे खूनकी नदियाँ बहाकर स्वतन्त्र होनेवाले देशोंके उदाहरण देते हैं। हिंसारहित चरखा उन्हें सर्वथा प्रभावहीन लगता है।

१९१९ में स्वराज्य-प्राप्तिके एकमात्र और निश्चित साधनके रूपमें अहिंसासे और अहिंसाके प्रतीकके रूपमें चरखेसे भारतके स्वतन्त्रता-प्रेमियोका परिचय हुआ। १९२१ में चरखेको राष्ट्रध्वजमें प्रतिष्ठित किया गया। लेकिन अहिंसाको देशने हृदयंगम नही किया था, इसलिए चरखेको अपना उचित स्थान प्राप्त नही हो सका। जव तक कांग्रेसियोंके विशाल समूहमें चरखेके प्रति जीवन्त आस्था नही जगती तब तक उसे वह स्थान प्राप्त भी नही हो सकता। और जव उनमें ऐसी आस्था जग जायेगी तव विना किसी दलीलके ही वे समझ जायेंगे कि सिवाय चरखेके अहिंसाका कोई और प्रतीक नही है, और उसे सार्वत्रिक बनाये विना अहिंसाकी ऐसी अभिव्यक्ति नही हो सकती जो स्पष्ट दिखाई पडे। यह तो सभी मानेंगे कि अहिंसाके बिना अहिंसात्मक अवज्ञा नही हो सकती। मेरी दलीलमें और आधार सामग्रीमें दोष हो सकते हैं। लेकिन मेरे जो विचार हैं उनके रहते मैं तो यही कहूँगा कि जो शर्तें मैंने रखी हैं वे जव तक पूरी नही की जाती तब तक मैं सविनय अवज्ञाकी घोषणा नही कर सकता।

सेवाग्राम, ९ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-४-१९४०

३९२. मेरी स्थिति

कायदे आजमको दिये गये मेरे जवाव[1] की आलोचना[2] करते हुए नवावजादा लियाकत अलीखाँने कुछ प्रश्न रखे है, जिनका मैं खुशीसे जवाव दे रहा हूँ। मैं अपने इस कथनपर दृढ़ हूँ कि मैंने कभी भी किसीसे साम्प्रदायिक प्रश्न पर एक हिन्दूके नाते वातचीत नही की। मुझे यह अधिकार है ही नही। इस सिलसिलेमें मैंने जव भी चर्चा की है तो एक काग्रेसीके नाते, लेकिन अक्सर एक व्यक्तिके रूपमें ही की है। कोई भी काग्रेसी, यहाँ तक कि अध्यक्ष भी, हर समय प्रतिनिधिकी हैसियतसे ही नही वोल सकता। पृथ्वीपर वड़े कार्योंका सम्पादन हमेशा विभिन्न संस्थाओंके लोग तभी कर पाये है जव उन्होंने अपनी प्रतिनिधिकी हैसियत छोडकर अनौपचारिक ढंगसे आपसमें मिल-वैठकर वातचीत की है। और मेरा विचार है कि अभी मैं जवावमें जो-कुछ कहूँगा वह भी किसीके प्रतिनिधिकी वात नही, वल्कि खुद मेरी वात मानी जाये। प्रस्तुत प्रसगमें तो मेरे पास कदाचित् यह कहनेका भी कारण है कि मैं कार्य-समितिके किसी भी सदस्यकी ओरसे नही वोल रहा हूँ। जो जवाव मैं दे रहा हूँ वह एक सुलह-समझौता करानेवाले और मुसलमानोंके एक मित्र (और इजाजत हो तो कहूँ भाई) के नाते दे रहा हूँ।

यदि भारतीय मुसलमान सचमुच ही विभाजनका आग्रह करे तो एक अहिंसकके नाते मैं प्रस्तावित विभाजनको जवरदस्ती नही रोक सकता। लेकिन साथ ही इस विभाजनके लिए मै खुशीसे सहमति भी नही दे सकता। उसे रोकनेके लिए जो भी अहिंसक उपाय हो सकते है, मै उन सवका सहारा लूँगा। अन्यथा तो सदियोंसे असंख्य हिन्दू-मुसलमानों द्वारा एक राष्ट्रकी तरह मिल-जुलकर रहनेके लिए किये गये प्रयत्न मिट्टीमें मिल जायेंगे। विभाजनका मतलव है एक स्पष्ट असत्य। मेरी आत्मा यह कतई स्वीकार नही कर सकती कि हिन्दू-धर्म और इस्लाम दो विरोधी संस्कृतियों और धर्म-सिद्धान्तोंका प्रतिनिधित्व करते है। इस तरहके सिद्धान्तसे सहमत होना मेरे विचारसे ईश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार करना है। क्योंकि, मैं प्राणपणसे विश्वास करता हूँ कि 'कुरान' का खुदा वही है जो 'गीता' का ईश्वर है, और हम सव चाहे किसी भी नामसे पुकारे जायें, उसी ईश्वरकी सन्तान है। मैं इस धारणाका विरोध किये विना कदापि नही रह सकता कि वे लाखों भारतीय, जो कभी हिन्दू थे, इस्लामको अपना धर्म माननेके कारण भिन्न राष्ट्रके लोग हो गये।

किन्तु यह तो मेरा विश्वास है। यह वात मैं उन मुसलमानोंके गले जवरदस्ती नहीं उतार सकता जो अपनेको अलग राष्ट्र मानते है। किन्तु मै यह नही मान सकता

१. देखिए पृ० ४१८-१९।

२. लियाकत अलीके ववतव्यके कुछ अंशोंके लिए देखिए परिशिष्ट १०।

कि आठ करोड़ मुसलमान यह कहेंगे कि हिन्दू तथा उनके दूसरे भाइयोंसे उनका किसी भी बातमें मेल नही है। इस विषयमें उनके मनकी बात तो इसी प्रश्नपर विधिवत जनमत-संग्रह करवाकर ही जानी जा सकती है। प्रस्तावित संविधान-सभा आसानीसे इस समस्याको सुलझा सकती है। स्वभावतः इस प्रकारकी समस्या-में मध्यस्थता नही हो सकती। यह तो विशुद्ध रूपसे आत्मनिर्णयका विषय है। आठ करोड़ मुसलमानोंके मनकी बात जाननेका कोई दूसरा अचूक उपाय मैं नही जानता।

लेकिन संविधान-सभाका मुख्य कार्य संविधानकी रचना होगा। जब तक साम्प्रदायिक प्रश्न हल नही हो जाता, वह यह काम नही कर सकती।

मेरा अभी भी दृढ़ विश्वास है कि साम्प्रदायिक एकताके बिना अहिंसक प्रयत्नोंसे स्वराज्य प्राप्त नही हो सकता। आठ करोड़ मुसलमान चाहे तो आजादीके शान्तिपूर्ण आगमनको रोक सकते है।

इसके बाद भी यदि मैं सविनय अवज्ञाकी चर्चा करता हूँ तो इस विश्वासके कारण कि आम मुसलमान समुदाय भी स्वतन्त्रताका उतना ही इच्छुक है जितने कि देशके अन्य समुदाय। और अगर मान भी लें कि वे स्वतन्त्रताके इच्छुक नही हैं तो भी सविनय अवज्ञा जनताको — चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू या और किसी समुदायकी — वास्तविकताका बोध कराने, उसे सही दिशा देनेवाला प्रबल साधन सिद्ध होगी। इससे विश्व-जनमत भी जाग्रत होगा। लेकिन जब तक मुझे यथासम्भव यह भरोसा नही हो जाता कि शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियोसे अहिंसाका पालन किया जायेगा, तब तक मैं सविनय अवज्ञा आरम्भ नही करूँगा। मैं आशा करता हूँ कि नवाबजादाको यह माननेमें कोई कठिनाई नही होगी कि सविनय अवज्ञासे जो-कुछ भी मिलेगा वह सभीको मिलेगा। जब भारतको अपना संविधान बनानेका हक मिलेगा तब निश्चय ही मुसलमानोको अपने भविष्यका फैसला करनेका पूरा अधिकार प्राप्त होगा। बहुमतसे इसका फैसला नही किया जायेगा, और न ही किया जा सकता है।

अन्तमें, नवाबजादासे मेरा निवेदन है कि कांग्रेस-अध्यक्षके बारेमें उन्होने जो-कुछ लिखा, वह जल्दबाजीमें लिखा है। वह हमारे युगके इतिहासके विपरीत है। इसी तरह यह बात भी वे जल्दबाजीमें कह गये है कि "श्री गाधीके नेतृत्वमें कांग्रेसका एकमात्र उद्देश्य हिन्दू-धर्मका पुनरुद्धार और हिन्दू सस्कृतिको सबपर थोपना है।" इस भयंकर आरोपमें स्वयं मेरा उद्देश्य कोई विशेष महत्त्व नही रखता, और कांग्रेसका उद्देश्य तो पूर्णतया राजनीतिक है। जो प्रमाणपूर्वक सिद्ध नही की जा सकती, ऐसी बातोंको कहनेसे कुछ हासिल होनेवाला नही है। जहाँ तक मेरे उद्देश्यका प्रश्न है, मेरा जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसकी कोई बात किसीसे छिपी हुई नही है। मैं सारी संस्कृतियोंका प्रतिनिधि होनेका दावा करता हूँ, क्योंकि मेरा धर्म तो — चाहे उसे जो संज्ञा दी जाये — सारी संस्कृतियोकी पूर्णता चाहता है। मैं जहाँ भी जाता हूँ वहीं मुझे घर-जैसा लगता है, क्योंकि मैं दूसरे धर्मोंका भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने धर्मका करता हूँ।

सेवाग्राम, ९ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-४-१९४०

३९३. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम, वर्धा
१० अप्रैल, १९४०

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिलनेसे पहले ही मैं तुम्हें लिख चुका था।[1] सिन्धमें तुम्हारे निरन्तर बढ़ते हुए दायित्वोंको देखते हुए तुम्हें अभी वहीं चिपके रहना चाहिए। सत्याग्रह समितिमें शामिल होनेकी जल्दी मत करो। उसके सदस्य हुए बिना भी तुम उसमें हो ही। अभी संघर्ष दूर है। चुपचाप काम करो, इसीसे मुझे बल मिलेगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३६) से

३९४. पत्र : कुँवरजी खे० पारेखको

सेवाग्राम
१० अप्रैल, १९४०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे लगता है कि तुम पंचगनी जाओ तो सभी जाओ, यह शायद ज्यादा ठीक होगा। मैं पंचगनीसे पूछताछ करता हूँ। अगर पंचगनीमें ठीक व्यवस्था न हो सके, तो फिर गर्मी तुम जहाँ हो वहीं बिता लेना ठीक होगा। तापमान १०२ से ऊपर न जाये तो कोई हर्ज नहीं होगा। लेकिन अगर तबीयत बिगड़ गई, तो किसी भी तरह कोई दूसरा रास्ता अख्तियार करना पड़ेगा। बालकृष्ण और कंचनबहनको मैं अलगसे पत्र नहीं लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३६) से। सी० डब्ल्यू० ७१६ से भी; सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

१. देखिए पृ० ४४५।

३९५. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
१० अप्रैल, १९४०

चि० पृथ्वीसिंह,

तुम्हारा पत्र मिला। अंग्रेजीमें क्यों लिखा? मेरे पास गुन्टूरके लोगोका तार आया था, वही मैंने भेजा था। मेरी ओरसे जानेका कोई सुझाव नही था। लेकिन अब तो बात खत्म हो गई।

मै जो लिखता हूँ यदि उसका कोई अनर्थ करे, तो इससे सोच-विचारमे पड़नेकी जरूरत नही है। मुझे तुम्हें प्रमाणपत्र देनेकी क्या जरूरत है? क्या मुझे महादेवको [प्रमाण-पत्र] देनेकी जरूरत है? मेरी कुछ भी लिखनेकी इच्छा नही है। तुम अपने काममें लग जाओ, तो सब ठीक हो जायेगा। बहुत चलना-फिरना नही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६३७)से। सी० डब्ल्यू० २९४८ से भी; सौजन्य · पृथ्वीसिंह

३९६. पत्र : एगथा हैरिसनको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

प्रिय एगथा,

क्या कहूँ तुमसे, कैसे दिलासा दिलाऊँ तुम्हे? एन्ड्रयूज की मृत्युसे शायद सबसे गहरा आघात तुम्हीको लगा है। लेकिन तुम तो बहादुर स्त्री हो। अब हम उनकी मृत्युको भूलकर, वे अपने पीछे जो विरासत छोड गये है उसको सँभालते हुए उन्हींकी भावनासे काम करके उन्हें अमरत्व प्रदान करें। इस सम्बन्धमें लिखी टिप्पणी[1] की प्रति साथमें भेज रहा हूँ। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि एन्ड्रयूज नही रहे। वे एक संस्था थे। वे प्रेमकी साक्षात प्रतिमूर्ति थे।

उनकी बहनकी आवश्यकताओ आदिके बारेमें मुझे बताती रहना। जब मैं अन्तिम बार उनसे मिला था तब मैंने उनको आश्वस्त किया था कि अपने इस

१. देखिए पृ० ४६०-६१।

दायित्वकी ओरसे वे निश्चिन्त रहें। उनके कॉपीराइटका क्या होगा? एड्रचूज से सम्बन्धित सभी कारोबारी मामलोंके बारेमें तुम्हींको मेरा मार्ग-दर्शन करना है।

मैं चाहता हूँ तुम भारतकी स्थितिके बारेमें चिन्ता न करो। जाहिरा तौरपर वह इतनी खराब है जितनी हो सकती है। फिर भी इसको लेकर मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मेरा भरोसा केवल ईश्वरपर है। अगर हम उसे अवसर देंगे तो वह हमारा सही मार्ग-दर्शन अवश्य करेगा। जरा यह तो सोचो कि उसने हमारे सामने आज भी चुनाव करनेकी गुंजाइश रख छोड़ी है। कैसा लोकतन्त्रवादी है वह! हमें जो करना सबसे ठीक लगे वह हम करते जायें और इससे आगे यह सोचकर प्रसन्न रहें कि परिणाम तो उसके हाथोंमें है।

कोई विशेष बात मुझे अभी नहीं कहनी है। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, सविनय अवज्ञाकी सम्भावना अभी नहीं है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५१५) से

३९७. पत्र : एन० एस० हर्डीकरको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

प्रिय डॉ० हर्डीकर,

आपका पत्र मिला। एकबार टूटा हुआ धागा आसानीसे नहीं जुड़ता। एक समय था जब मैंने यह समझा था कि हमारे मन मिल गये हैं। परन्तु मनका मिलना या टूटना दोनों ही कोई यान्त्रिक रूपसे होनेवाली क्रियाएँ नहीं हैं। मेरी कामना और मेरे प्रयत्न यही होंगे कि अधिकाधिक लोगोंको अपना सहकर्मी बना सकूँ और ऐसे सहकर्मी जिनपर मेरा *आत्यन्तिक विश्वास हो*। मुझे नहीं मालूम कि ऐसा विश्वास कैसे बन सकता है। मैं आशा करता हूँ कि आप इस बातको समझ लेंगे कि आपको अपना एक आदरणीय सहकर्मी माननेमें इस भेदके कारण जरा भी फर्क नहीं आयेगा। यदि कोई कठिनाई है तो वह व्यवहारिकसे अधिक नैतिक है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे : एन० एस० हर्डीकर पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३९८. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। तेरा मन वहाँ लग गया है, यह अच्छा हुआ। अपनी तबीयतका ध्यान रखना। राजेन्द्रबाबू अच्छे हो गये हैं। मैं तो अच्छा ही हूँ।

जयप्रकाशको लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३९) से

३९९. पत्र : विजयाबहन एम० पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला था। पिताजीके बारेमें जो लिखा है सो मैं समझ गया। मनुभाईने उपवास क्यों किया था? तेरे पत्र अधूरे क्यों होते हैं?

अमृतलाल किसी कामसे यहाँ आनेवाला है। तेरा पत्र उसे भेज रहा हूँ। यहाँ सब मजेमें हैं। मेहमानोंकी भीड़ रहती है। गर्मी अच्छी पड रही है।

दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२६) से। सी० डब्ल्यू० ४६१८ से भी; सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

४००. पत्र : दिनेशसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

चि० दिनेश,

तुमारा खत मिला था। दादूका खत मेरे पर कुछ दिनोंके पहले था कि उसका दिल मांके पास रहनेका है। मैंने मां पर खत लिखकर भी भेज दिया था। बादमें क्या हुआ मुझे पता नहिं है। यों तो दादुको कोई जल्दी हटायगा नही। मुझे लिखा करो क्या होता है। दादूकी इच्छा मां के पास रहनेकी हुई है क्या?

बापुके आशीर्वाद

श्री दिनेशसिंह कालाकांकर
दून स्कूल,
देहरादून (सं० प्रा०)

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६७४) से

४०१. पत्र : श्रीप्रकाशको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अप्रैल, १९४०

भाई श्रीप्रकाश,

तुमारे लिखने पर वह जजमेंट पर मैंने टीका[1] 'हरिजन' में भेजी थी। बादमें पता चला कि जजोंने ऐसा नहीं कहा था और तुमने अपनी टीका खींच ली थी। यह सब मैंने देखा तो नही है। लेकिन मैंने मेरी टीका रोक ली है। क्या कुछ 'लीडर' की गलती थी?

बापुके आशीर्वाद

श्रीप्रकाश
सेवाश्रम
बनारस

मूल हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ९७५९) से; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए "एक न्याय-विरुद्ध सिद्धान्त", पृ० ४३९-४०।

४०२. तार : जमनालाल बजाजको

वर्धा
१२ अप्रैल, १९४०

जमनालाल बजाज
जयपुर
बधाई ।[1] जब तक जरूरत हो वहाँ रहो ।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २३३

४०३. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

वर्धा
१२ अप्रैल, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

इस महीनेकी ४ तारीखके मेरे पत्रके तत्काल और स्पष्ट उत्तर[2] की प्राप्ति-सूचना मैं फौरन सधन्यवाद भेज रहा हूँ। इससे मेरी चिन्ता दूर हो गई है और घरेलू विवाद भी निपट जाना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (नं० १०९)से : लिनलिथगो पेपर्स; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. जयपुर रियासत और जयपुर राज्य प्रजा-मण्डल के बीच समझौते के लिए; देखिए पृ० ४७९ ।
२. देखिए परिशिष्ट ९।

४०४. पत्र : अतुलानन्द चक्रवर्तीको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ अप्रैल, १९४०

प्रिय अतुलानन्द,

तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। आज तुम्हारी पुस्तक समाप्त कर दी। कुल मिला-कर अच्छी लगी। मेरे मनमें कही यह आशंका समा गई है कि तुम बराबर सत्य पर कायम नही रहे हो। क्योंकि किसी भी मान्यताको सिद्ध करनेके लिए सत्यसे हटनेका परिणाम अन्ततः उस मान्यताके लिए हानिप्रद ही होता है।

कुछ तो बहुत बडी भूलें भी हैं। पृष्ठ १३५ पर दूसरा अनुच्छेद देखो: "अकेले बादशाह जहाँगीरका उदाहरण ही इस बातको बिलकुल स्पष्ट रूपसे सिद्ध करता है।" किसी एक उदाहरणसे कोई सामान्य सिद्धान्त कैसे सिद्ध हो सकता है?

पृष्ठ १५१ पर तुमने कहा है, "भारत हजारों मील चौड़ा है।" क्या ऐसी बात है? सचाई तो यह है कि वह १५०० मीलसे अधिक चौड़ा नहीं है।

फिर, परिशिष्टमें तुमने उद्धरणोंकी तिथियाँ नहीं दी हैं। इसका केवल एक अपवाद है।

अध्येताके लिए आवश्यक सन्दर्भ-सूची नही दी गई है। जितना तुमने दिया है उतना काफी नही है।

और जरा वर्तनीकी भूलोंकी तो सोचो। वे तो अक्षम्य हैं।

लेकिन अगर तुम सत्य पर कायम रहे हो तो इन दोषोंके बावजूद पुस्तकसे एक सत्प्रयोजन सिद्ध होना चाहिए।

तुम्हें इसी तरह लोकमत तैयार करनेके काममें जुटे रहना चाहिए। मैं 'हरिजन' में तुम्हारी पुस्तककी चर्चा करनेकी आशा रखता हूँ?[1]

जल्दबाजी मत करो। क्यों न कायदे आजम जिन्नासे भी सम्पर्क करो?

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १४८२) से; सौजन्य: ए० के० सेन

१. देखिए खण्ड ७२, "हिन्दू-मुस्लिम विवाद", २९-४-१९४०।

४०५. पत्र : देवचन्द यू० पारेखको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ अप्रैल, १९४०

चि० देवचन्दभाई,

चन्द्राबहन इस महीनेके अन्तमें जब चाहे आ जाये। हाँ, गर्मी यहाँ खूब पड़ रही है, इतना समझ ले।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७०३) से

४०६. पत्र : विट्ठलभाई एम० पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ अप्रैल, १९४०

चि० विट्ठलभाई,

आपका पत्र मिला। मैं उसे आज ही पढ़ सका। दूसरोंकी आलोचना की ओर ध्यान दिये बिना जो हरिजन-सेवा हो सके करते चले जायें।

मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८३)से

४०७. पत्र : डॉ० गोपीचन्द भार्गवको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ अप्रैल, १९४०

प्रिय डॉ० गोपीचन्द[1],

इसके बारेमें आपका क्या कहना है?[2]

आपका,
बापू

मूल अंग्रेजीसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

४०८. पत्र : एस० सत्यमूर्तिको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ अप्रैल, १९४०

प्रिय सत्यमूर्ति,

आपका पत्र मिला। मेरे खयालमें हम दोनोंका आशय एक ही है। आपका पत्र ध्यानमें रखूंगा।

आपको बीमार नहीं होना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री सत्यमूर्ति, मेयर
रिपन बिल्डिंग
मद्रास

मूल अंग्रेजीसे : एस० सत्यमूर्ति पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. पंजाब विधान सभामें विरोधी दलके नेता

२. १९ मार्च, १९४० को लाहौरमें खाकसारों और पुलिसके बीच हुए संघर्षके सम्बन्धमें विधान-सभामें एक काम-रोको प्रस्ताव आया था, जिसपर डॉ० गोपीचन्दने सरकारके विरुद्ध मतदान किया था। इसपर ताराचन्द झींगनने डॉ० गोपीचन्द भार्गवके विरुद्ध खाकसारोंका पक्ष-समर्थन करनेकी शिकायत करते हुए गांधीजीको एक पत्र लिखा था। यहाँ अभिप्राय उसी पत्रसे है।

४०९. पत्र : जंगबहादुर सिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ अप्रैल, १९४०

भाई जंगबहादुर सिंह,

तुमारा खत मिला। ठीक कहते हो कि सिर्फ रेटीये [चरखे] से काम नहि होगा। उसमें जो चीजें भरी हुई है सब होनी चाहीये।

कृष्णा अच्छी होगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १३३७) से

४१०. जयप्रकाश द्वारा प्रस्तुत चित्र

श्री जयप्रकाश नारायणने मुझे निम्न प्रस्तावका मसौदा भेजा था। उन्होंने मुझसे कहा कि जो चित्र यहाँ उन्होंने पेश किया है वह यदि मुझे स्वीकार हो तो मैं इसे रामगढ़में होनेवाली कार्यकारिणी समितिकी बैठकके सामने प्रस्तुत करूँ।

> कांग्रेस और देश आज एक बड़ी उथल-पुथलके कगारपर खड़े हैं। स्वतन्त्रताकी अन्तिम लड़ाई शीघ्र ही लड़ी जानेवाली है। यह ऐसी घड़ीमें होगी जब समस्त विश्व परिवर्तनकी प्रचण्ड हवासे प्रकम्पित है। संसारके सभी विचारशील लोग यूरोपकी भीषण लड़ाईके पश्चात् एक नये संसारका निर्माण करनेके लिए उत्सुक हैं — एक ऐसे संसारका जो विभिन्न देशों एवं लोगोंकी पारस्परिक सद्भावना और सहयोगकी आधारशिलापर खड़ा होगा। ऐसे समयमें कांग्रेस यह आवश्यक समझती है कि वह स्वतन्त्रताके अपने उन आदर्शोंको स्पष्ट कर दे जिनको उसने अपनाया है और जिनकी पूर्तिके लिए वह शीघ्र ही देशके लोगोंको बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी देनेके लिए आह्वान करनेवाली है।
>
> स्वतन्त्र भारत विभिन्न देशोंके बीच शान्तिकी स्थापनाके लिए और पूर्ण रूपसे शस्त्रोंके त्यागके लिए तथा राष्ट्रीय झगड़ोंका निपटारा स्वेच्छासे स्थापित किसी अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताके द्वारा शांतिपूर्वक करानेके लिए कार्य करेगा। विशेषकर यह अपने पड़ोसी राष्ट्रोंके साथ, चाहे वे छोटे हों अथवा बड़े, बहुत ही मैत्रीपूर्वक रहनेका प्रयास करेगा तथा दूसरे देशकी भूमि हथियानेकी कोई आकांक्षा नहीं रखेगा।
>
> देशका कानून जनता द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त की गई इच्छापर आधारित होगा। देशमें व्यवस्था बनाये रखनेका मूल आधार जनताका समर्थन और सहमति ही होगी।

स्वतन्त्र भारतमें व्यक्तिको व्यक्तिगत और नागरिक, तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। हाँ, किसीको भी संविधान-सभा द्वारा निर्मित संविधानको हिंसात्मक रीतिसे भंग करनेकी स्वतन्त्रता नहीं होगी।

राज्य अपने नागरिकोंके बीच किसी भी तरहका भेदभाव नहीं करेगा। प्रत्येक नागरिकको समान अधिकार दिये जायेंगे। जन्म और विशेषाधिकारोंके सभी भेद समाप्त कर दिये जायेंगे। वंश-परम्परागत सामाजिक दर्जेके कारण प्राप्त अथवा राज्यसे प्राप्त किसी भी खिताबको मान्य नहीं किया जायेगा।

राज्यकी राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था पूर्णरूपेण सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंपर आधारित होगी। उस व्यवस्थाका उद्देश्य समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी राष्ट्रीय आवश्यकताओंको पूरा करना होगा। परन्तु भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति उसका एकमात्र लक्ष्य नहीं होगा। उसका उद्देश्य व्यक्तिका स्वस्थ रहन-सहन तथा नैतिक और बौद्धिक विकास करना होगा। इस सामाजिक न्यायकी प्राप्तिके लिए राज्य व्यक्तिगत अथवा सहकारी प्रयत्नोंसे स्थापित किये गये लघु उद्योगोंको इस बातको ध्यानमें रखकर प्रोत्साहन देगा कि उनसे सभी सम्बन्धित लोगोंको समान लाभ हो। बड़े पैमानेके सभी सामूहिक उत्पादनोंको अन्ततोगत्वा सामूहिक स्वामित्व तथा नियन्त्रणके अन्तर्गत लाया जायेगा। और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए राज्य भारी यातायात, जहाजरानी, खानों और भारी उद्योगोंके राष्ट्रीयकरणसे शुरुआत करेगा। कपड़ा-उद्योगका क्रमिक विकेन्द्रीकरण किया जायेगा।

ग्राम्य जीवनका पुनर्गठन किया जायेगा और जहाँ तक सम्भव होगा गाँवोंको स्वशासित और आत्मनिर्भर इकाइयाँ बनाया जायेगा। देशके भूमि-सम्बन्धी कानूनोंमें आमूल सुधार इस सिद्धान्तके आधारपर किया जायेगा कि भूमिको जोतनेवाला ही उसका असली स्वामी हो, तथा कोई भी किसान परिवारके सन्तोषजनक भरण-पोषणके लिए जितनी आवश्यक है, उससे अधिक भूमि न रखे। इससे जहाँ एक ओर अनेक प्रकारकी जमींदारी प्रथाओंका अन्त होगा वहाँ दूसरी ओर कृषि-दासता भी खत्म हो जायेगी।

राज्य सभी वर्गोंके हितोंकी रक्षा करेगा, परन्तु यदि इन हितोंसे निर्धनों और पददलितोंके हितोंकी हानि होगी तो राज्य गरीबों और पददलितोंको ही संरक्षण देगा, ताकि ठीक सामाजिक न्याय कायम हो सके।

सरकारके स्वामित्व और प्रबन्धमें चलनेवाले सभी उद्योगोंके प्रबन्धमें श्रमिकोंका प्रतिनिधित्व उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करेंगे और उसमें इन प्रतिनिधियों तथा सरकारी प्रतिनिधियोंके समान हक होंगे।

देशी राज्योंमें पूरी तरहसे प्रजातान्त्रिक सरकारोंकी स्थापना की जायेगी तथा सामाजिक भेदभावकी समाप्ति और नागरिकोंमें समताके सिद्धान्तके

अनुसार राजा अथवा नवाबके रूपमें किसी व्यक्तिको राज्यका नामधारी प्रधान नहीं बनाया जायेगा।

कांग्रेसने इसी व्यवस्थाकी कल्पना की है और वह इसकी स्थापनाके लिए प्रयास करेगी। कांग्रेसका यह दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकारकी व्यवस्था भारतकी सभी जातियों और धर्मोके लोगोंको सुख-समृद्धि और स्वतन्त्रता प्रदान करेगी तथा ये सभी लोग मिलकर इन्हीं बुनियादोंपर एक महान तथा गौरवशाली राष्ट्रका निर्माण करेंगे।

यह प्रस्ताव मुझे अच्छा लगा और मैंने श्री जयप्रकाश नारायणका पत्र और प्रस्ताव दोनों ही कार्य-समितिके समक्ष पढ़ दिये।[1] किन्तु कार्य-समितिका विचार था कि रामगढ़ कांग्रेसमें केवल एक ही प्रस्ताव रखनेके विचारका दृढ़तासे पालन किया जाये और पटनामें तैयार किये गये मूल प्रस्ताव[2] में कोई परिवर्तन न किया जाये। कार्य-समितिकी दलील आपत्तिजनक नही थी, इसलिए यह मसौदा बिना इसके गुण-दोषपर विचार किये ही खारिज कर दिया गया। मैंने अपने तत्सम्बन्धी प्रयत्नके परिणामकी सूचना श्री जयप्रकाश नारायणको दे दी। इसके उत्तरमें उन्होंने मुझे लिखा कि इसके बाद सबसे अच्छा यह हो सकता है कि मैं इसकी पूरी तरह या जिस हद तक मैं कर सकूँ उस हद तक ताईद करते हुए इसे प्रकाशित कर दूँ, इससे वे सतुष्ट हो जायेंगे।[3]

श्री जयप्रकाशकी यह इच्छा पूरी करनेमें मुझे कोई दिक्कत नही है। श्री जयप्रकाशने जो सुझाव रखे है, उनमें से एकको छोड़कर मैं सबकी ताईद करता हूँ और मानता हूँ कि ये ऐसे आदर्श है जिनपर भारतके स्वन्तत्र होते ही अमल शुरू हो जाना चाहिए।

मैंने दावा किया है कि भारतमें जिन लोगोंने समाजवादको अपना सिद्धान्त स्वीकार किया है उनसे बहुत पहलेसे ही मैं समाजवादी हूँ। लेकिन मेरा समाजवाद मुझमें स्वाभाविक रूपसे पनपा है, मैंने इसे किसी किताबसे ग्रहण नही किया है। यह अहिंसामें मेरी अटल आस्थासे ही उत्पन्न हुआ है। कोई भी सक्रिय अहिंसक व्यक्ति किसी सामाजिक अन्यायको, वह चाहे कही भी क्यो न हो, कभी बर्दाश्त नही कर सकता। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दुर्भाग्यसे पाश्चात्य समाजवादियोंने समाजवादी सिद्धान्तोकी स्थापनाके लिए हिंसाको आवश्यक माना है।

मैंने सदैव यह माना है कि छोटे-से-छोटे और नीचे-से-नीचे लोगों तकको सामाजिक न्याय जोर-जबर्दस्तीसे नही दिलाया जा सकता। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि सबसे नीचेके तबकेके लोगोको भी अहिंसाका समुचित प्रशिक्षण दिया जाये तो वे भी अहिंसक साधनसे अन्यायोसे छुटकारा पा सकते है। वह साधन है अहिंसक

१. १५ मार्चको; देखिए पृ० ३८०।

२. १ मार्च, १९४० को; देखिए परिशिष्ट ६।

३. देखिए पृ० ४२८।

असहयोग। एक ऐसा भी समय आता है जबकि असहयोग करना सहयोग करने-जैसा ही कर्तव्य बन जाता है। कोई भी व्यक्ति अपनी ही तबाही और गुलामीमें सहयोग करनेके लिए बाध्य नहीं है। अन्य लोगोंके, चाहे वे कितने ही उदार और परहितकामी क्यों न हों. प्रयत्नोंसे प्राप्त की गई स्वतन्त्रताको ऐसे प्रयत्नके समाप्त हो जानेपर कायम नहीं रखा जा सकता। दूसरे शब्दोंमें, ऐसी स्वतन्त्रता वास्तवमें सच्ची स्वतन्त्रता नहीं होती। लेकिन अदना-से-अदना व्यक्ति भी ज्यों ही इसे अहिंसक असहयोगसे प्राप्त करनेकी कला सीख लेगा, त्यों ही वह इसकी आभाका अनुभव करने लगेगा।

इसलिए मुझे यह पढ़कर प्रसन्नता होती है कि श्री जयप्रकाशने अपनी परि-कल्पित व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए अहिंसाको स्वीकार किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो कार्य हिंसासे कदापि नहीं हो सकता, वह अहिंसक असहयोग द्वारा अंततः अन्यायीका हृदय-परिवर्तन करके किया जा सकता है। हमने भारतमें अहिंसाको जैसी चाहिए वैसी परीक्षाका अवसर कभी नहीं दिया है। आश्चर्य तो यह है कि हमने अपनी अधकचरी अहिंसा द्वारा ही इतना अधिक प्राप्त कर लिया है।

श्री जयप्रकाश द्वारा दी गई भूमि-सम्बन्धी योजनाएँ भयानक लग सकती हैं। परन्तु वास्तवमें वे वैसी हैं नहीं। किसी भी व्यक्तिके पास सम्मानित जीवन व्यतीत करनेके लिए आवश्यक भूमिसे अधिक भूमि नहीं होनी चाहिए। इस तथ्यसे कौन इनकार कर सकता है कि जनताकी भयंकर गरीबीका कारण उसके पास ऐसी भूमि का न होना ही है जिसे वह अपनी कह सके?

लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि यह सुधार एक दिनमें नहीं लाया जा सकता। यदि इसे अहिंसक साधनोंसे लाना है तो यह कार्य गरीबों और अमीरोंके शिक्षण द्वारा ही किया जा सकता है। अमीरोंको यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उनके विरुद्ध कभी शक्तिका प्रयोग नहीं किया जायेगा। गरीबोंको यह बता देना चाहिए कि उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य करनेके लिए वस्तुतः उन्हें कोई बाध्य नहीं कर सकता, और कि अहिंसाकी कला अर्थात् कष्ट-सहन द्वारा ही वे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस उद्देश्यको पूरा करना है तो मेरे द्वारा बताया गया शिक्षण अभीसे प्रारम्भ कर देना चाहिए। इसके आरम्भिक चरणके रूपमें एक-दूसरेके प्रति विश्वास और आदरका वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए। फिर उच्च वर्ग और आम जनताके बीच हिंसक झगड़े हो ही नहीं सकते।

अतः जहाँ श्री जयप्रकाशकी अहिंसक योजनापर सामान्य रूपसे सहमति प्रकट करना मेरे लिए कठिन नहीं है, वहाँ मैं देशी राजाओं-सम्बन्धी उनकी योजनासे सहमत नहीं हो सकता। कानूनन वे स्वतन्त्र हैं। यह सत्य है कि उनकी स्वतन्त्रताका कोई अधिक मूल्य नहीं है, क्योंकि यह एक अन्य शक्तिशाली पक्षपर निर्भर है। लेकिन हमारे विरुद्ध वे अपनी स्वतन्त्रता कायम रखनेमें समर्थ हैं। यदि हम अहिंसक साधनों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेते हैं — जैसा कि श्री जयप्रकाशके मसौदेसे

ध्वनित होता है — तो मैं किसी ऐसे समझौतेकी कल्पना नही करता जिससे राजा अपनेको खत्म कर देंगे। समझौता चाहे जैसा हो, राष्ट्रको उसका पूरी तरहसे पालन करना ही होगा। इसलिए मैं तो ऐसे समझौतेकी ही कल्पना कर सकता हूँ जिसमें बड़े देशी राज्य अपने दर्जेको बनाये रखेंगे। एक प्रकारसे यह स्थिति आजकी उनकी स्थितिसे कही बढ़-चढ़कर होगी। लेकिन दूसरी ओर यह सीमित भी होगी, क्योकि इन राज्योंकी जनताको भी अपने राज्योंमें भारतके अन्य भागोंकी जनताके समान ही स्वशासनके अधिकार प्राप्त होंगे। उन्हें बोलनेकी स्वतन्त्रता, प्रेसकी स्वतन्त्रता तथा पूर्ण न्याय प्राप्त होंगे। शायद श्री जय-प्रकाशको यह विश्वास नही है कि राजा लोग स्वयं ही अपनी निरकुश सत्ताका त्याग कर देंगे। मुझे इसका विश्वास है। प्रथम तो इस कारण कि वे उतने ही अच्छे इन्सान हैं जितने कि हम लोग, और दूसरे इस कारण कि सच्ची अहिंसाकी शक्तिमें मेरा अटूट विश्वास है। इसलिए अन्तमें निष्कर्ष रूपमें मैं कहूँगा कि जब हम स्वयंके प्रति, अपने धर्मके प्रति — अगर हम कोई धर्म मानते हों तो — और अपने राष्ट्रके प्रति सच्चे बन जायेंगे तब राजा और अन्य सभी लोग भी सच्चे और हमारे अनुकूल बन जायेंगे। अभी तो हममें अधकचरी श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धासे स्वराज्यका उदय कभी नही हो सकेगा। अहिंसाका आदि और अन्त आत्म-परीक्षण और आत्मशोधमें ही निहित है।

सेवाग्राम, १४ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-४-१९४०

४११. जयपुर रियासत और प्रजा-मण्डल

आखिरकार जयपुरमें रियासत और प्रजा-मण्डलके बीच समझौता हो ही गया। इस सुखद परिणतिका श्रेय प्रशासन और सेठ जमनालालजी दोनोंको है। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि इस समझौतेसे प्रशासन और प्रजा-मण्डलके बीच हार्दिक सम्बन्ध स्थापित होंगे और इस सहयोगसे राज्यकी प्रजाकी अवस्थामें हर दृष्टिसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुधार होता रहेगा। मगर इसके लिए रियासतको उदारता और मण्डलको वचन और कर्ममें सयम बरतना पडेगा।

सेवाग्राम, १४ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-४-१९४०

४१२. पत्र : अकबर हैदरीको

१४ अप्रैल, १९४०

प्रिय सर अकबर,

आपसे मैंने रोटी माँगी थी, मगर पत्थर मिला।[1]

सीधे-सादे वचन-पालन और साम्प्रदायिक एकताके बड़े प्रश्नके बीच कोई भी सम्बन्ध मुझे तो दिखाई नहीं देता। अगर हम अखबारोंकी बातपर भरोसा करें तो बीदरमें[2] जो घटनाएँ हुई हैं उनको देखते हुए एकता कैसे कायम की जा सकती है? आप जानते हैं कि मैंने हैदराबादके मामलेमें चुप्पी साध रखी है, किन्तु मुझे लगता है कि अगर हैदराबादके लोगोंके प्रति मुझे अपना कर्तव्य पूरा करना है तो अब मुझे चुप्पी तोड़नी ही चाहिए। राज्य कांग्रेसके प्रति किये गये इस व्यवहार और बीदरकी घटनाओंकी खबरोंसे मेरा मन आशंकाओंसे भर गया है।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०२५३) से

४१३. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
१४ अप्रैल, १९४०

चि० नारणदास,

इस पत्रमें[3] जो लिखा है, उसके बारेमें सत्य क्या है? बेचरभाई कहते थे, गोकीबहनको पैसा मिलता रहता है। उसमें कोई रद्दोबदल हुई हो, तो मुझे बताना।

१. गांधीजी के २१ मार्चके पत्रके उत्तरमें सर अकबर हैदरी ने लिखा था : "हम सबके सामने साम्प्रदायिक तनावको दूर करना ही एकमात्र समस्या है। हम यहाँ हैदराबादमें परस्पर-विरोधी पक्षोंको बड़ी बाधाओंके बीच इस बातपर राजी करनेकी कोशिश कर रहे हैं कि वे सच्चे राष्ट्रीय हित की दिशा में साथ-साथ काम करें। राष्ट्रीय परिषद् के प्रति हमने जो रुख अपनाया है, उसमें किसी दूसरी बातके मुकाबले इसीका ज्यादा खयाल रखा गया है।"

२. देखिए खण्ड ७२, "बीदरमें मनमानी बरबादी", ३०-४-१९४०।

३. यहाँ आशय उस पत्रसे है, जो मनुबहन मशरूवालाने गांधीजी की बहन, रलियातबहन उर्फ गोकीबहन, के कहनेसे गांधीजी को लिखा था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पैसे उन्हें भेजने चाहिए। यह पत्र उन्हें पढ़कर सुना देना। कितने अरसे से पैसे नहीं मिले?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४१४. प्रश्नोत्तर

विलम्बमें खतरा

प्र० : आपका कहना है कि जब तक कांग्रेसी पूरी तरहसे अहिंसा और अनुशासन नहीं सीख लेते तब तक आप सविनय अवज्ञाकी घोषणा नहीं करेंगे। यह ठीक भी है। लेकिन इस बीच देशको बुरी तरह चूसा जा रहा है। रेलके किरायेमें वृद्धि, चीनीपर उत्पादन-कर, गन्नेकी कीमतमें गिरावट आदि इसके कुछ-एक उदाहरण हैं। ऐसी स्थितिमें देर करनेका तो अर्थ होगा हमारे सर्वोत्तम कार्यकर्ताओंका एक-एक करके पकड़े जाना, और इस तरह बिना 'कोई प्रहार किये' ही संघर्षमें हार जाना। यह कहाँ तक उचित होगा?

उ० : मैं सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेका औचित्य बतानेके लिए आपके द्वारा दिये गये उदाहरणोंसे भी अधिक जोरदार उदाहरण दे सकता हूँ। लेकिन सविनय अवज्ञाको शुरू करनेमें देर औचित्यकी कमीके कारण नहीं की जा रही है। इस देरका कारण है समुचित तैयारीका अभाव। अपने साधनोंकी कमजोरीको जानते हुए भी संघर्ष शुरू करनेसे मैं एक मूर्ख सेनापति ही साबित होऊँगा। यदि सरकार नेताओंको बिना उचित कारणके गिरफ्तार करती है तो इसका अर्थ होगा कांग्रेसको संघर्षके लिए निमन्त्रित करना। अधूरी तैयारीकी स्थितिमें मैं इस निमन्त्रणको स्वीकार नहीं करूँगा। नेताओंकी गिरफ्तारीसे देशको कोई हानि नहीं पहुँचेगी, क्योंकि हम जानते हैं कि अनुशासित जेल-यात्रा अपने-आपमें संघर्षका एक हिस्सा है। इसके अलावा, नेताओंकी गिरफ्तारीसे तो हमारी संगठन-शक्तिकी परीक्षा होगी। अहिंसक संगठनका अर्थ उसके सभी घटकोंका एक-सा शिक्षण और इसलिए सभी घटकोंमें एक-सी क्षमताका होना है। हमारा इस स्थिति तक न पहुँच पाना अहिंसाकी कार्य-पद्धतिसे हमारी अनभिज्ञताका द्योतक है।

अधिकृत और अनधिकृत हड़तालें

प्र० : ३० मार्चके अपने अग्रलेख[1] में आपने यह आशा प्रकट की है कि निष्क्रिय सत्याग्रही "समयसे पूर्व मजदूरोंसे हड़तालें करवाकर" संघर्षमें दखल

१. देखिए "प्रत्येक कांग्रेस कमेटी एक सत्याग्रह समिति है", पृ० ४१५-१७।

नहीं देंगे। लेखमें "समयसे पूर्व करवाकर," यही शब्द गूढ़ अर्थ रखते हैं। जब मैंने उसे पहली बार पढ़ा तो उनपर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु बादमें इसे समझनेका बहुत उपक्रम करना पड़ा। ऐसा कोई भी पाठक जो बहुत सावधान नहीं है या आपके विचारों और विचारोंको व्यक्त करनेके तरीकेसे अनभिज्ञ है, आसानीसे भूल कर सकता है। इसमें छिपे अर्थकी ओर उसका ध्यान नहीं जायेगा और वह समझेगा कि आप मजदूरों द्वारा की जानेवाली सभी हड़तालोंके विरोधी हैं।

हालमें ही युद्ध-भत्तेके लिए अहमदाबादमें मजदूरोंकी ओरसे जो लड़ाई चलाई गई उसको देखते हुए आपको मजदूरोंकी हड़तालका विरोधी नहीं माना जा सकता। यद्यपि वास्तवमें अहमदाबादकी हड़ताल टल गई, लेकिन आप इसके पक्षमें थे और मजदूरोंकी माँग पूरी की गई। अहमदाबादमें यह काम बड़े ही सुव्यवस्थित ढंगसे किया गया। श्रमिकोंकी माँगें ठीक तरह तैयार की गई व पेश की गई, मध्यस्थताकी औपचारिकता पूरी की गई, हड़तालकी यथेष्ट पूर्व-सूचना दी गई और हड़तालके प्रश्नपर एक लाखसे अधिक मजदूरोंने मतदान किया। मुझे विश्वास है कि यदि ऐसे सुव्यवस्थित ढंगसे काम करने पर भी कोई हड़ताल न टल सके और आपको विश्वास हो कि हड़तालके दौरान कोई हिंसा नहीं होगी तो आप हड़तालका समर्थन अवश्य करेंगे।

उ० : आप ठीक कहते हैं। मै अपनेको सुव्यवस्थित हड़तालका विशेषज्ञ मानता हूँ। बहुत ही प्रतिकूल परिस्थितियोंमे मैंने दक्षिण आफ्रिकामें ऐसा पहला सफल प्रयास किया था। अहमदाबादमे मैंने हड़ताल आयोजनके तरीकेमे और सुधार किया। लेकिन अभी भी मै इसमें पूर्णता प्राप्त कर लेनेका दावा नही कर सकता। मैं जानता हूँ कि ऐसी हड़तालोका आयोजन किया जा सकता है जिनकी गति दुर्निवार हो। मैंने केवल अनधिकृत हड़तालोंसे ही असम्मति प्रकट की है। कांग्रेस मजदूरोंपर नियन्त्रण कायम नही कर सकी है। कुछ-एक कांग्रेसी ही ऐसा कर सके हैं। लगभग प्रत्येक हड़ताल-आयोजक नेताका अपना अलग तरीका है। नेताओंमें सभी अहिंसक नही है। कुछके मनमें व्यक्तिगत स्वार्थ होते है। कुछ अन्य लोग उचित-अनुचितका खयाल करने वाले नही होते। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि लोग सक्रिय न सही तो कम-से-कम निष्क्रिय सहयोग ही दें। संघर्षके लिए मुझे हड़तालोंकी आवश्यकता नही पड़ेगी। यदि कभी सामूहिक सविनय अवज्ञा शुरू हुई ही तो उसका स्वरूप क्या होगा, मेरे लिए कहना कठिन है। लेकिन यदि मेरा उससे कोई सरोकार रहा तो मैं यह बता सकता हूँ कि उसमे क्या कदापि नही होगा। मै यह जानता हूँ कि यदि भारतमें कांग्रेसका मजदूरोपर अहिंसक नियन्त्रण होता तो काग्रेस आजसे कहीं अधिक शक्तिशाली संगठन होती। यह तभी सम्भव होगा जब काग्रेस मजदूरोंके बारेमें एक नीति बना लेगी और उस नीतिको कार्यरूप देनेके लिए उसके पास पर्याप्त कार्यकर्ता होंगे।

अस्पृश्यता और धर्म-परिवर्तन

प्र० : यदि अस्पृश्यता-निवारणमें कांग्रेसका उद्देश्य हरिजनोंको बाकी लोगोंके समान दर्जा दिलवाना है तो क्या यह उद्देश्य उनके इस्लाम धर्म कबूल कर लेनेसे पूरा नहीं हो जाता? स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञामें अस्पृश्यता-निवारणके कार्यक्रमकी व्यवस्था केवल हिन्दुओंके ही लिए क्यों है? क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि कांग्रेस हिन्दू बहुमतको बनाये रखनेके लिए उत्सुक है और इसलिए मुसलमानोंको धर्म परिवर्तन करानेके उनके अधिकारसे वंचित रखना चाहती है?

उ० : अस्पृश्यता-निवारण अस्पृश्योंके इस्लाम या और कोई धर्म अपनानेसे नही हो सकता। क्योंकि अस्पृश्यताके पापसे अपनेको मुक्त तो तथाकथित सवर्ण हिन्दुओंको करना है। वे अछूतोंके प्रति न्याय करके ही — चाहे वह कितनी ही देरसे हो — इस पाससे छुटकारा पा सकते हैं। अब आप समझ गये होंगे कि कांग्रेसने हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंको भी यह दायित्व अपने सिर लेनेके लिए आमन्त्रित क्यों नही किया। मुसलमानोने अस्पृश्योंके प्रति कोई अन्याय नही किया है। मैं आपको इस सहज परन्तु आवश्यक सामाजिक सुधारको [हिन्दू] बहुमत बनाये रखने की एक राजनैतिक पैंतरावाजी समझनेसे रोक नही सकता। प्रायश्चित्तके कार्यमें लगे हजारो हिन्दुओंके दिमागमें वहुमत-जैसी कोई बात आई ही नही हैं। उनके मनमें तो सिर्फ एक ही बात हैं — उन लोगोंको न्याय देनेकी बात जिन्हें धर्मकी आड़में सवर्ण हिन्दुओंने दासत्वसे भी बुरी हालतमें पहुँचा दिया है। अन्तमें, आपका यह कहना कि कांग्रेस मुसलमानोंको 'अस्पृश्यो' का धर्म-परिवर्तन करानेका अधिकार देनेको तैयार नही है, एकदम गलत है। कांग्रेस किसीको भी धर्म-परिवर्तनका कार्य करनेसे रोक नही सकती। आप धर्म-परिवर्तनके अपने अधिकारका सदुपयोग करेंगे या दुरुपयोग, यह स्वयं आपको सोचना है।

सेवाग्राम, १५ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-४-१९४०

४१५. तार: एच० जी० वेल्स[1]को

[१६ अप्रैल, १९४० से पूर्व]

आपका तार मिला।[2] आपके पाचों लेख[3] ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। धृष्टता न मानें तो कहूँ कि आपके सोचनेका तरीका गलत है। मुझे पूरा विश्वास है कि जैसा आपने तैयार किया है उससे कहीं बेहतर अधिकार-पत्र मैं तैयार कर सकता हूँ। लेकिन उससे लाभ क्या होगा? उसका संरक्षक कौन होगा? अगर आपका मतलब प्रचार या लोक-शिक्षणसे है तो कहना पड़ेगा कि आपने उलटी दिशासे आरम्भ किया है। मैं सही रास्ता सुझाता हूँ। आरम्भ मनुष्य-के कर्तव्यों (मनुष्य और कर्तव्य, दोनों पर मैं पूरा जोर देकर कह रहा हूँ) से कीजिए। फिर विश्वास रखिए कि जिस प्रकार शिशिरके पीछे-पीछे वसन्त आता है उसी प्रकार कर्तव्योंके पीछे-पीछे अधिकार भी अपने-आप चले आयेंगे। मैं यह सब अनुभवके आधार पर कह रहा हूँ। जब मैं युवा था तो मैंने अपने जीवनका आरम्भ अपने अधिकारों पर आग्रह करनेसे किया था। लेकिन तुरन्त पता चल गया कि वास्तवमें मुझे कोई अधिकार नही है — यहाँ तक कि अपनी पत्नी पर भी नहीं है। फलतः मैंने शुरुआत अपनी पत्नी, अपने बच्चों, मित्रों, साथियों और समाजके प्रति अपने कर्तव्यका पता लगाने और उसे पूरा करनेसे की। आज मैं देखता हूँ कि मुझे जितने अधिकार प्राप्त हैं उतने शायद ही किसी जीवित मनुष्यको हों। अगर यह बहुत बड़ा दावा हो तो मैं कहूँगा कि मैं किसी ऐसे व्यक्तिको नहीं जानता जिसको मुझसे अधिक अधिकार प्राप्त हों।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, १६-४-१९४०

१. हरबर्ट जॉर्ज वेल्स (१८६६-१९४६); अंग्रेज उपन्यासकार, समाजशास्त्रीय लेखक और इतिहासकार; **द टाइम मशीन, द वार ऑफ द वर्ल्डस, द शेप ऑफ थिंग्स टु कम, द आउटलाइन ऑफ हिस्ट्री, द इंविजिबिल मैन** तथा कई अन्य कृतियोंके लेखक।

२. उन दिनों ब्रिटेन और भारतके पत्रोंमें एच० जी० वेल्स द्वारा प्रस्तुत "मनुष्यके अधिकारों" के सम्बन्ध में जोरदार चर्चा चल रही थी, और उन्होंने इसपर गांधीजी की राय माँगी थी।

३. **हिन्दुस्तान टाइम्स** में प्रकाशित

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

स्वतन्त्रता-दिवसकी प्रतिज्ञापर प्रस्ताव[1]

कार्य-समिति सभी कांग्रेस-समितियों, कांग्रेसियों तथा देशवासियोंका ध्यान इस बातकी आवश्यकताकी ओर आकर्षित करती है कि २६ जनवरी, १९४० को स्वतन्त्रता-दिवस समुचित रूपसे और पूरी निष्ठाके साथ मनाया जाना चाहिए। १९३० से हर साल यह दिन सारे भारतमें नियमित रूपसे मनाया जाता रहा है और यह हमारे स्वतन्त्रता-संग्रामका एक महत्वपूर्ण मोड़ बन गया है। संकटकी जिस घड़ीसे आज भारत और सारी दुनिया गुजर रही है तथा हमारे स्वतन्त्रता-संग्रामको पहलेसे भी अधिक तेजीसे जारी रखनेकी जो सम्भावना पैदा हो गई है, उन्हें देखते हुए आगामी स्वतन्त्रता-दिवस समारोहका महत्त्व विशेष रूपसे बढ़ गया है। इसलिए यह आवश्यक है कि यह दिवस केवल स्वतन्त्रताके लिए राष्ट्रीय संकल्पकी घोषणा करनेके लिए न मनाया जाये, बल्कि संघर्षके लिए तैयारी और अनुशासित होकर कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिए मनाया जाये।

अतः कार्य-समिति सभी कांग्रेस कमेटियों व कांग्रेसियोंसे अनुरोध करती है कि वे प्रतिज्ञा लेनेके निमित्त जगह-जगह आयोजित सभाओंमें शामिल होकर नीचे निर्धारित प्रतिज्ञा ग्रहण करें। जो कांग्रेसी अस्वस्थता अथवा अन्य शारीरिक असमर्थताके कारण, या फिर कहीं बहुत दूर होनेके कारण सार्वजनिक सभामें शामिल होकर प्रतिज्ञा ग्रहण करनेमें असमर्थ हों, उन्हें अपने घरोंमें व्यक्तिगत या सामूहिक रूपसे प्रतिज्ञा ग्रहण करनी चाहिए। सभी कांग्रेसी संगठनों और कांग्रेसियोंको समिति यह सलाह देती है कि वे आयोजित सभाओं और निजी अथवा सामूहिक तौरपर की गई प्रतिज्ञाओंके बारेमें अपने प्रान्तकी कांग्रेस कमेटीको सूचना दें। समिति यह आशा रखती है कि जिस किसीका भी प्रतिज्ञामें निहित बातोंमें विश्वास नहीं है, वह मात्र रस्मके लिए प्रतिज्ञा ग्रहण नहीं करेगा। जिन लोगोंका इस प्रतिज्ञामें विश्वास नहीं है, वे अविश्वासका कारण बताते हुए, अपना नाम व पता लिखकर अपनी अस्वीकृति प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके पास भेज दें। इस प्रकारकी सूचना किसी तरहकी अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेके लिए नहीं माँगी जा रही है, बल्कि इसका उद्देश्य यह पता लगाना है कि प्रतिज्ञामें निहित किसी बातको कितने लोगोंने अस्वीकृत किया है। जो कांग्रेसी प्रतिज्ञा ग्रहण करनेके इच्छुक नहीं हैं उनपर कार्य-समिति इसे थोपना नहीं चाहती। एक अहिंसात्मक संगठनमें जोर-जबरदस्तीकी गुंजाइश हो ही

१. देखिए पृ० ५८, ८०, ९५।

नहीं सकती। सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करनेके लिए अनुशासित रूपसे आवश्यक शर्तोंका पालन जरूरी है।

प्रतिज्ञा

हमारा विश्वास है कि भारतकी जनताका, अन्य किसी भी देशकी जनताके समान, यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह स्वतन्त्र रहे, अपनी मेहनतके फलका उपभोग करे, और उसकी जीवन-सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी हों, ताकि उसे उन्नति करनेका पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके। हमारा यह भी विश्वास है कि यदि कोई सरकार जनताके इन अधिकारोंको छीनती है और उसपर अत्याचार करती है, तो जनताको इस बातका भी पूरा अधिकार है कि वह उस सरकारको बदल दे या समाप्त कर दे। ब्रिटिश सरकारने न केवल भारतीय जनतासे स्वतन्त्रता ही छीनी है, बल्कि अपने शासनकी नीव जनताके शोषणके आधारपर खड़ी करके भारतको आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूपसे नष्ट कर डाला है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतको ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध विच्छेद करना चाहिए और 'पूर्ण स्वराज्य' हासिल करना चाहिए।

हम मानते हैं कि हमारे लिए स्वतन्त्रता-प्राप्तिका सबसे कारगर रास्ता हिंसाका रास्ता नहीं है। भारतने शान्तिपूर्ण और वैध तरीकोंको अपनाकर शक्ति तथा आत्मनिर्भरता हासिल की है तथा स्वराज्य-प्राप्तिकी दिशामें एक लम्बा रास्ता तय कर लिया है, और इन तरीकोंपर अडिग रहकर ही हमारा देश आजादी हासिल करेगा।

हम भारतकी आजादीके लिए पुनः प्रतिज्ञा करते हैं, और पूर्ण स्वराज्य प्राप्त होने तक अहिंसापूर्वक स्वतन्त्रता-संघर्ष जारी रखनेका निष्ठापूर्वक संकल्प करते हैं।

हमारा विश्वास है कि सामान्यतः सभी अहिंसात्मक कार्रवाईके लिए और खासकर प्रत्यक्ष अहिंसात्मक कार्रवाईके लिए यह जरूरी है कि खादी, साम्प्रदायिक एकता और अस्पृश्यता-निवारणके रचनात्मक कार्यक्रमको सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जाये। हम जाति या धर्मका भेदभाव किये बिना मानव मात्रमें सद्भावका प्रसार करनेका हर सम्भव प्रयास करेंगे। हम कोशिश करेंगे कि जो लोग आज तक उपेक्षित रहे हैं, उन्हें अशिक्षा और दरिद्रताके अन्धकारसे उबारा जाये, और जिन्हें पिछड़ी और दलित जातियोंका समझा जाता रहा है, उनके हितोंको हर प्रकारसे आगे बढ़ाया जाये। हमें मालूम है कि यद्यपि हमारा ध्येय साम्राज्यवादी व्यवस्थाको नष्ट करना है, तथापि हमारा झगड़ा अंग्रेजोंसे नहीं है, फिर चाहे वे अधिकारी हों अथवा सामान्य जन। हम जानते हैं कि सवर्ण हिन्दू और हरिजनोंके बीचके भेदभाव समाप्त होने चाहिए और हिन्दुओंको अपने रोजमर्राके आचरणमें इन भेदभावोंको भूल जाना चाहिए। ऐसे भेदभाव अहिंसात्मक आचरणके मार्गमें बाधा है। हमारी धार्मिक आस्थाएँ भले ही भिन्न हों, किन्तु अपने आपसी सम्बन्धोंमें हम समान राष्ट्रीयता और समान राजनीतिक तथा आर्थिक हितके सूत्रसे आबद्ध भारतमाताकी सन्तानके रूपमें कार्य करेंगे।

भारतके सात लाख गाँवोंको फिरसे नया जीवन देनेके लिए और जन-साधारणकी कष्टपूर्ण गरीबी समाप्त करनेके लिए हमारा जो रचनात्मक कार्यक्रम है, चरखा और खादी उसके अभिन्न अंग हैं। अतः हम नियमपूर्वक चरखा कातेंगे और निजी आवश्यकताओंके लिए केवल खादीका और जहाँ तक सम्भव होगा ग्रामीण हस्तकलाकी वस्तुओंका ही इस्तेमाल करेंगे, साथ ही यह भी प्रयत्न करेंगे कि अन्य लोग भी ऐसा ही करें।

हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अनुशासनबद्ध होकर कांग्रेसके आदर्शों और नीतियोंका पालन करेंगे और भारतका स्वाधीनता-संग्राम जारी रखनेके लिए जब भी कांग्रेस आह्वान करेगी, हम संघर्षमें कूद पड़नेके लिए तैयार रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-१२-१९३९

परिशिष्ट २

वाइसरायका भाषण[1]

बम्बई
१० जनवरी, १९४०

जैसा कि आप जानते हैं, महामहिमकी सरकारसे अपने उद्देश्यों और भारतके प्रति अपने मंसूबोंको स्पष्ट करनेका जो अनुरोध किया गया था, उसके जवाबमें महामहिमकी सरकार मेरे और संसदमें जारी किये गये वक्तव्योंके जरिये यह स्पष्ट कर चुकी है कि सरकारका उद्देश्य भारतको पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा प्रदान करनेका है और यह औपनिवेशिक दर्जा वेस्टमिन्स्टर किस्मका होगा। यह दर्जा प्राप्त होने तक बीचकी अवधिका जहाँ तक सवाल है (इस अवधिको सरकार जहाँ तक सम्भव होगा कम-से कम करना चाहती है), सरकार इस बातपर विचार करनेके लिए तैयार है कि युद्ध समाप्त होते ही जितनी जल्दी सम्भव हो भारतीय जनमतकी मददसे १९३५के अधिनियमको फिरसे लागू कर दिया जाये। सरकार यह भी स्पष्ट कर चुकी है कि यदि बड़ी जातियोंके नेताओंके बीच ऐसे स्थानीय समझौते सम्पन्न हो जाते हैं जो सौहार्दपूर्वक काम करनेके लिए जरूरी हों, तो इस बीचकी अवधिमें, अपने इरादोंकी सचाईके प्रमाण-स्वरूपमें, सरकार कुछ थोड़े-से राजनीतिक नेताओंको गवर्नर जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्में शामिल करके उसका विस्तार करनेको तैयार है। और यह भी कि सरकार हमारे सम्मुख और भारतके सम्मुख प्रस्तुत कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए जो-कुछ मदद कर सकती है, वह सब करनेको उद्यत और उत्सुक है। लेकिन मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि इन आश्वासनोंके बावजूद उन सन्देहों और अनिश्चितताओंका निराकरण नहीं हुआ है और

१. देखिए पृ० १२६, १३५, १३९ और २१९।

उनके कारण कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलोंको त्याग-पत्र देना पड़ा है तथा सात प्रान्तोंमें अधिनियमके अन्तर्गत आपात्कालीन व्यवस्थाका प्रयोग करना आवश्यक हो गया है।

महामहिमकी सरकारकी ओरसे युद्ध प्रारम्भ होनेके समयसे जो घोषणाएँ की गई हैं, मेरे विचारसे, उनसे सरकारके इरादे और मदद करनेकी उत्सुकता असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट हो जाती है। अधिनियमकी संघीय व्यवस्था भी औपनिवेशिक दर्जेके रास्तेमें एक चरणके रूपमें तैयार की गई थी। और मैं आपको स्मरण करा दूँ कि, युद्धका सवाल पैदा होनेके बहुत पहले ही, उस व्यवस्थाके अन्तर्गत भारतीय रियासतों तथा ब्रिटिश भारतका प्रतिनिधित्व करनेवाली तथा सचमुच ही एक विस्तृत आधारपर गठित केन्द्रीय सरकारको बहुत व्यापक अधिकार प्रदान किये जाने थे। भारतके संवैधानिक भविष्यके संदर्भमें महामहिमकी सरकार द्वारा किये गये प्रयत्नोंकी नेकनीयती तथा ईमानदारी शंकासे परे है। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि कई लोग हमारे सामने प्रस्तुत समस्याओंका अधिक तेज गतिसे तथा अधिक उग्र समाधान निकालनेके लिए जोर डाल रहे हैं। जो लोग ऐसा सोचते हैं उनकी ईमानदारी तथा नेकनीयतीपर मुझे शक नहीं है। लेकिन हम सब लोग, जिन्हें ऐसी विशाल समस्याओंसे निपटना पड़ता है, यह बात भली-भाँति जानते हैं कि कितनी ही बार हम लोग सरल प्रतीत होनेवाले समाधानकी ओर आकर्षित हो जाते हैं, और चाहे हम सभी छोटे-से-छोटा रास्ता अपनानेके लिए कितने ही उत्सुक क्यों न हों, लेकिन जब उन सरल लगनेवाले उपायोंकी अधिक अच्छी तरह जाँच-पड़ताल की जाती है तो उनमें अप्रत्याशित कठिनाइयाँ नजर आती हैं, जो अप्रत्याशित रूपसे महत्त्वपूर्ण भी होती हैं।

हममें से बहुतोंको इस बातका दुःखद अनुभव है कि छोटा रास्ता अपनानेसे प्रायः समयकी बहुत बर्बादी होती है। मेरे खयालसे यह बात भारतकी राजनीतिक समस्याके मामलेमें सबसे अधिक लागू होती है, क्योंकि कई ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनकी हम सभीको जानकारी है तथा जिनका हम सभीको दुःख है। लेकिन इनको अनदेखी करने मात्रसे ये समस्याएँ समाप्त नहीं हो जायेंगी या निपट नहीं जायेंगी। बुद्धिमत्ता तो इसीमें है कि इन कठिनाइयोंका सामना किया जाये और उनका कोई ऐसा हल निकालनेकी कोशिश की जाये जिससे आगे चलकर सभी दलों तथा सम्बन्धित हितोंका सहयोग प्राप्त हो जाये। हमारे सामने आखिर एक नहीं बल्कि कई राजनैतिक दल हैं; न हमें यह भूलना चाहिए कि भारतकी एकताके हितकी दृष्टिसे कोई भी संवैधानिक योजना बनाते समय उसमें देशी रियासतोंका शामिल किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इधर अल्पसंख्यक जातियोंके पुरजोर दावे हैं। इनमें से केवल दो का उल्लेख करना ही मैं आवश्यक समझता हूँ। ये हैं — मुसलमान अल्पसंख्यकोंका विशाल समुदाय तथा अनुसूचित जातियाँ। अल्पसंख्यक जातियोंको अतीतमें कुछ गारंटियाँ दी गई थीं। उनकी स्थिति सुरक्षित रहनी चाहिए तथा उनको दी गई गारंटियाँ पूरी की जानी चाहिए।

सज्जनो, मुझे मालूम है कि वाइसरायके सामने जो दिक्कते हैं तथा महामहिमकी सरकारके सामने जो दिक्कतें हैं, उनको आप समझते हैं। उन्हें ऐसे दलों तथा हितोंके जोरदार व परस्पर-विरोधी दावोंका सामना करना पड़ रहा है जिनके विचारो पर पूरी तरह ध्यान देना निहायत जरूरी है तथा जिनकी स्थितिपर पूर्णतया सोच-विचार होना चाहिए। विभिन्न दलोंके साथ न्याय होना ही चाहिए और महामहिमकी सरकार इन्हे न्याय दिलानेके लिए कृतसंकल्प है। लेकिन मैं विभिन्न दलोंके अपने मित्रोंसे इस बातपर विचार करनेके लिए कहूँगा कि क्या वे भारतके संवैधानिक विकासके इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नको निपटानेके लिए आपसमें किसी समझौते पर पहुँचकर मेरे तथा महामहिमकी सरकारके कार्यको आसान नही बना सकते? मैं पुनः इस बातकी आवश्यकतापर जोर देना चाहूँगा कि कोई आपसी समझौता हो जाये तथा आज हम जिस प्रकारकी समस्याओंसे जूझ रहे हैं उनसे निपटनेमें बहुत अधिक कड़ा रुख अपनानेसे बचा जाये।

उद्देश्यको लेकर किसी प्रकारका विवाद नही है। मैं किसी भी ऐसे व्यावहारिक सुझावपर विचार करनेके लिए तैयार हूँ जिसे सबका समर्थन प्राप्त हो, और समय आनेपर मैं स्वयं अपनी ओरसे जो-कुछ मदद कर सकता हूँ, करनेके लिए तैयार हूँ। मौजूदा संवैधानिक स्थितिसे एकदम औपनिवेशिक दर्जेवाली संवैधानिक स्थिति में पहुँचनेके रास्तेमें जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं उनकी ओरसे न तो महामहिमकी सरकारकी आँखें बन्द हैं और न ही यहाँ हम उन्हें अनदेखा कर सकते हैं। लेकिन मैं आपको पुनः यह आश्वासन दे सकता हूँ कि सरकार तथा मैं, इस बातके लिए उत्सुक है कि मौजूदा स्थिति तथा औपनिवेशिक दर्जेकी प्राप्तिके बीचकी अवधि कम-से-कम करनेके प्रयासमें कोई कसर न छोड़ी जाये।

प्रस्ताव आपके सामने है। बड़े-बड़े राजनीतिक दलों और उनके नेताओंपर जो जिम्मेदारी आ पड़ी हैं वह बहुत भारी हैं। और मैं समझता हूँ कि उसके प्रति वे पूर्णतया सचेत हैं। पहले भी उन्होंने मेरी मदद की है। आज मैं उनसे एक बार फिर मेरी तथा भारतकी सहायता करनेको कहता हूँ। उनसे मेरा निवेदन है कि वे अपना सहयोग तथा सहायता प्रदान करें, ताकि एक ऐसी स्थितिको जल्दी-से-जल्दी समाप्त किया जा सके जिसकी भर्त्सना संवैधानिक विकासकी अच्छाइयोंमें आस्था रखनेवाले सभी लोग करते हैं। आजकी इस स्थितिसे हर भारत-प्रेमीको — हर उस व्यक्तिको जो भारतका हितैषी है — कटु निराशा होनी ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४०, खण्ड १, पृ० ३७४-७५

परिशिष्ट ३

लॉर्ड लिनलिथगोके साथ क० मा० मुन्शीकी भेंट-वार्ता[1]

१२ जनवरी, १९४०

लिनलिथगो: हम आजसे भिन्न परिस्थितियोंमें मिल चुके हैं। मैं आपको आम स्थितिके विषयमें वताना चाहूँगा। भारतकी समस्या निपटानेके लिए मैं युद्धकी समाप्ति तक रुकनेवाला नहीं हूँ। युद्धकी समाप्ति सम्भवतः जून, १९४१ तक नहीं होने-वाली है, और यहाँ हम युद्धसे इतनी दूर हैं कि फ्रांसमें हो रही लड़ाईकी चिन्ता किये विना अपनी समस्या परस्पर निपटा सकते हैं।

एक अन्य वात है जिसमें आपको भी उतनी ही दिलचस्पी है जितनी कि मुझे है। इस युद्धमें विजयी होनेके लिए इंग्लैंड भगीरथ प्रयत्न कर रहा है। और, जैसाकि पिछले युद्धके वाद हुआ था, युद्ध समाप्त होने तक इंग्लैंड विलकुल पस्त हो चुका होगा। उस समय साम्राज्यकी संस्थाओंको उदार वनानेकी प्रवृत्ति दिखाई देगी। उस समय ऐसा नहीं होना चाहिए कि भारत उसके लिए तैयार न मिले और उसमें एकता न हो।

आपने मेरा हालका वक्तव्य देखा होगा। वेस्टमिन्स्टर किस्मके औपनिवेशिक दर्जे तथा स्वतन्त्रताके वीच नाम-मात्रका ही भेद है। आपके लिए जो-कुछ कार्य निर्वारित किया जायेगा, उसके लिए भी भारतकी क्षमताका विकास करनेमें काफी समय लगेगा।

१९३५ के अधिनियमको ही लीजिए। 'संघ' शब्दमें हर किसीको सूखी मछलीकी -सी दुर्गन्ध आने लगी है। लेकिन इसपर जो खास-खास आपत्तियाँ हैं, उन्हें ही लीजिए।

सवसे पहली आपत्ति प्रतिरक्षाके वारेमें है। आप मानेंगे कि सैन्यतन्त्र अब एक देशका मामला नहीं रह गया है। सेनाके प्रशिक्षण और संगठनका आज जो प्रवन्ध है उसपर समान नियन्त्रण रहना चाहिए। और जब तक उसका पूरा इन्तजाम अपने हाथमें लेनेकी क्षमता भारतमें नहीं आ जाती तब तक उसे इन्तजार करनेको तैयार रहना चाहिए। दूसरी आपत्ति वैदेशिक मामलोंके सम्वन्धमें है। इनके वारेमें भी वही स्थिति है। तीसरी आपत्ति व्यापारिक संरक्षणपर है, जिसे कि आप भेदभावकी संज्ञा देते हैं। इनमें तालमेल वैठाया जा सकता है। लेकिन संसार-की आज जैसी हालत है, उसमें भारत इस स्थितिमें नहीं है कि वह स्वतन्त्र व्यापार-की नीति अपना सके। तथापि, मैं ऐसा नहीं मानता कि इस प्रश्नका हम कोई पर-

१. देखिए पृ० १३९।

स्पर-स्वीकृत उपाय नही निकाल सकेंगे। चौथी आपत्ति, विधान-सभाके लिए प्रत्यक्ष चुनावके प्रश्नपर है।

क० मा० मुन्शी: मै निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि विधान-सभाके लिए प्रत्यक्ष चुनाव करवानेपर गांधीजी का विशेष आग्रह है या नही।

लिनलिथगो. अब अगला प्रश्न रियासतोका है। जब तक रियासतोको किसी रूपमें साथ शामिल नही कर लिया जाता, तब तक आप औपनिवेशिक दर्जा हासिल नही कर सकते। यदि समुचित रूपसे प्रयास किया जाये और आप अपनी माँग वहुत ऊँची न रखें तो मै आशा करता हूँ कि किसी-न-किसी तरह उनका सवाल निपटा सकूँगा।

अगला प्रश्न केन्द्रीय विधान-सभाका है। अगर लोग किसी चीजकी माँग यह कहकर करे कि वह उनका नैतिक अधिकार है तो मै बहसमें पड़ना पसन्द नही करूँगा। लेकिन यदि दोनो पक्ष सद्भावनासे काम ले तो एक ऐसी सभाका गठन करनेका रास्ता निकल आयेगा जिससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा।

क० मा० मुन्शी: गांधीजी पहले ही कह चुके है कि यदि आपसी समझौतेसे कोई दूसरा विकल्प तय हो जाये तो उससे वे सन्तुष्ट हो जायेंगे। शायद सभी विधान-सभाओंका सम्मेलन एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

लिनलिथगो: अब अल्पसंख्यकोंका प्रश्न रह जाता है। मै यह मानता हूँ कि अल्पसंख्यकोंको प्रगतिमें बाधक बननेका कोई हक नही है।

क० मा० मुन्शी: लेकिन आप जिस प्रकार बात करते है, उससे तो आप उन्हे ऊँची-से-ऊँची माँग पेश करनेका साधन प्रदान करते है। इससे हमारा कार्य कठिन हो जाता है। ब्रिटिश राजनेताओंके बारेमें हमारा पिछला अनुभव यही रहा है। उन्होने अल्पसंख्यकोंको इतना ज्यादा महत्त्व दिया कि वे मनमाने दावे करने लगे। १९१६ में कांग्रेसने यह सोचकर जिन्नाकी माँगें स्वीकार कर ली थी कि उससे साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित हो जायेगी। लखनऊ समझौता छिन्न-भिन्न कर दिया गया और मैक्डॉनल्ड-फैसला पेश किया गया। हिन्दुओंकी इच्छाके विपरीत, गांधीजी ने कांग्रेसको इस बातके लिए राजी कर लिया कि वह साम्प्रदायिक-निर्णयको अस्वीकृत करनेके बजाय उसे अमलमें लाये। फिर भी जब आप गांधीजी को बात-चीतके लिए बुलाते है तो पलड़ा बराबर करनेके लिए आपको जिन्ना तथा अन्य पचास भद्रजनोको निमन्त्रित करनेकी आवश्यकता महसूस होती है। और अब आप अपने भाषणोंमें उनके [जिन्नाके] साथ निपटनेकी जिम्मेदारी हमारे सिरपर डाल रहे है। हमसे वैसा किस प्रकार करनेकी उम्मीद की जाती है?

लिनलिथगो: मुझे करना पड़ता है। मुझे सिर्फ भारतकी जनतासे ही बात नही करनी पड़ती है, बल्कि मेरे सामने इंग्लैंडकी जनता भी है। और आपकी तथा मेरी, दोनों ही की दृष्टिसे इंग्लैंडकी जनताकी राय महत्त्वपूर्ण है। वहाँकी जनताका विचार है कि हिन्दू समुदाय अंग्रेजोंके हितके खिलाफ है।

क० मा० मुन्शी : लेकिन इसका परिणाम आप देख रहे हैं। हम लोगों द्वारा मन्त्रिपद त्याग दिये जाने तक गांधीजी के साथ आपके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे। अब आप ऐसी घोषणाएँ कर रहे है, मानो आप दुनियाको यह दिखानेमें लगे हैं कि जब हमने आपसे सम्बन्ध-विच्छेद किया उस समय आपका ही पक्ष सही था। मैं देखता हूँ कि इसकी हमारे ऊपर प्रतिक्रिया हुई है। गांधीजी के हालके बयानोंसे ऐसा लगता है कि जन-आन्दोलन शुरू करने तक वे अपनी ऐसी राजनैतिक स्थिति बना लेना चाहते हैं जिसपर कोई आक्षेप न कर सके। मुझे लगता है कि आप दोनों परस्पर निकट आनेके बजाय दूर होते जा रहे हैं, और यदि आप दोनों एक-दूसरेसे दूर होते गये तो कोई हल निकल पाना सम्भव नहीं होगा।

लिनलिथगो : आपका मतलब है कि हम अपने इर्द-गिर्द दीवारें खड़ी कर रहे हैं ?

क० मा० मुन्शी : बेशक ! आप गांधीजी की बहुत इज्जत करते हैं। शिमलामें आपने मुझसे कहा था कि आप दक्षिण-पंथी कांग्रेसके साथ समझौता करना चाहते हैं। यदि सचमुच ही आप ऐसा चाहते हैं तो इस समझौतेमें आप मदद क्यों नहीं करते ?

लिनलिथगो : क्या मैं हर क्षण यही नही कर रहा हूँ ?

क० मा० मुन्शी : तब आप जिन्नाको इतने रोड़े क्यों अटकाने दे रहे हैं ? आगा खाँ है, आपके मित्र सर सिकन्दर भी हैं। आपकी कार्रवाइयोंकी वहजसे ही जिन्नाका महत्त्व बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप, वे हमारे खिलाफ बेहूदे आरोप लगाते रहते है। आप उनके आरोपोंका जवाब तक नही देते। अब वे इतने जिद्दी बन गये हैं कि उनकी ओर मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ाना असम्भव बन गया है।

लिनलिथगो : मैं जानता हूँ कि वे बहुत जिद्दी व्यक्ति बन गये है, लेकिन ऐसा निकट दृष्टिसे देखनेपर ही लगता है। इस समय जिन्नाने स्वयंको अल्पसंख्यकोंको एकजुट करनेवाला केन्द्र-बिन्दु बना लिया है। इस स्थितिसे उन्हें समय ही हटा सकेगा। लेकिन जरा आगे तक देखें तो यह नही लगता कि जिन्ना सफल होंगे। जल्दी ही लोग जान जायेंगे कि जिन्ना प्रगतिके मार्गमें अड़ंगा है।

क० मा० मुन्शी : यदि आपका यही विचार है तो आप गांधीजी के साथ इन मामलोंपर विचार-विमर्श क्यों नही शुरू करते ? इस प्रकार, जैसाकि सर मॉरिस ग्वायरने कहा है, 'चाँदमारी' करनेसे शायद ही कोई लाभ हो।

लिनलिथगो : इसके लिए तैयार होते ही मैं वैसा करूँगा।

क० मा० मुन्शी : लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकेगी। उदाहरणके तौर पर, २६ जनवरीको हमारे अन्दर कुछ-कुछ 'युद्धकी मनोवृत्ति' आ जायेगी।

लिनलिथगो : मेरे खयालसे कोई गड़बड़ तो नही होगी, लेकिन लोगोंमें काफी उत्साह होगा।

क० मा० मुन्शी : हाँ, लोग कांग्रेसका अनुसरण करेंगे। सामान्य कांग्रेसजनोंमें भीतर-ही-भीतर जो ज्वाला भड़क रही है उसका मुझे एहसास है। मैं नही जानता कि गांधीजी कब तक उन लोगोंको काबूमें रख पायेंगे। इस वक्त तो गांधीजी उन लोगोंको सख्तीसे काबूमें रखे हुए हैं।

लिनलिथगो: हाँ, वे काफी प्रभावशाली हो गये हैं। लेकिन क्या वाकई आपका खयाल है कि वे जवाहरलालको साथ लेकर चल सकेंगे?

क० मा० मुन्शी: जवाहरलाल एक महान आदर्शवादी व्यक्ति है और इसीलिए जनताके लाड़ले हैं। लेकिन प्रेरणा, संगठन तथा कार्य-प्रणाली सब गांधीजी की है और गांधीजी का साथ जवाहरलाल नही छोड़ेंगे।

लिनलिथगो: मेरे खयालसे मन्त्रिपद त्यागना एक भूल थी। सम्भवतः आपके पास कुछ ऐसे कारण थे जिन्हें मैं सही रूपसे समझ नही पाता हूँ।

क० मा० मुन्शी: हाँ। जब तक हमें केन्द्रीय शासनमें ऐसा हिस्सा, जिससे कि हमारा उसमें शामिल होना उचित सिद्ध हो सकता, नही मिल जाता तब तक हम अधिक समय तक मन्त्रिपदपर रहकर युद्धमें आपकी मदद नही कर सकते थे। अन्यथा तो यह गुनाह बेलज्जत होता। मिसालके तौरपर, सुभाष ही हमारा कार्य अत्यन्त कठिन बना देते।

लिनलिथगो: आप सुभाषको बहुत शक्तिशाली समझते हैं। मैं ऐसा नही समझता।

क० मा० मुन्शी: उस मानेमें नही। लेकिन यदि हम सत्तामें रहते तो वे हमारी स्थिति कठिन बनानेके लिए स्वयको गिरफ्तार करवा देते। इस समय स्थिति हर दृष्टिसे बेहतर है और ऐसे में जल्दी ही काम निपटा देना चाहिए।

लिनलिथगो: ऐसी आशा है कि मैं जल्दी ही कोई कदम उठाऊँगा।

क० मा० मुन्शी: आप गांधीजी की बहुत इज्जत करते है और मुझे विश्वास है कि गांधीजी भी उसी प्रकार आपकी बहुत इज्जत करते हैं। फिर अगर आप दोनों मिलकर मसलेको नही निपटा सकते तो राष्ट्रवादी तत्त्व सहज ही गुमराह हो जायेंगे।

लिनलिथगो: आप मुझपर जो दायित्व डाल रहे हैं वह प्रशंसात्मक होते हुए भी बहुत भारी है।

क० मा० मुन्शी: यदि राष्ट्रवादी भारत तथा ब्रिटेनके बीच कोई समझौता नही होता तो हो सकता है कि हम राष्ट्रवादी लोग [जेलोंमें] चले जायें, सम्भवतः लम्बे अर्सेके लिए चले जायें। लेकिन तब जिन्ना और सावरकर लड़कर निपट लेंगे।

लिनलिथगो: यह भारी अनर्थ होगा।

[अंग्रेजीसे]

पिलिग्रमेज टु फ्रीडम, पृ० ३९०-९३

परिशिष्ट ४
सरकारी विज्ञप्ति[1]

नई दिल्ली
५ फरवरी, १९४०

महामान्य वाइसरायके निमन्त्रणपर आज श्री गांधी उनसे भेंट करने आये। उनमें काफी लम्बी और अत्यन्त मैत्रीपूर्ण वातचीत हुई, जिसमे पूरी स्थितिके बारेमे विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श किया गया। बातचीतके प्रारम्भमे ही श्री गांधीने यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें कांग्रेस कार्य-समितिकी ओरसे कोई आदेश नहीं मिला है, और न ही कार्य-समितिकी तरफसे वे किसी प्रकारका वचन दे सकते हैं। और वे जो-कुछ कहेंगे सिर्फ अपनी ओरसे ही कह सकेंगे।

वाइसराय महोदयने महामहिमकी सरकारके इरादोंको और उसके प्रस्तावको विस्तारके साथ प्रस्तुत किया। उन्होंने सबसे पहले इस बातपर जोर दिया कि सरकारकी यह उत्कट इच्छा है कि जितनी जल्दी सम्भव हो सके भारतको औपनिवेशिक दर्जा मिल जाना चाहिए और इसे आसानीसे हासिल करवानेके लिए सरकार हर तरहसे मदद करना चाहती है। उन्होंने इस सम्बन्धमे कुछ मामलोंमें आनेवाली कठिनाइयों और पेचीदगियोंकी ओर ध्यान दिलाया जिन्हें दूर करना जरूरी है — विशेषकर औपनिवेशिक दर्जेके अन्तर्गत प्रतिरक्षाका सवाल। उन्होंने यह बात स्पष्ट की कि महामहिमकी सरकार इस बातके लिए बिलकुल तैयार है कि समय आनेपर वह भारतके सभी दलों और वर्गोंके लोगोंके प्रतिनिधियोंके साथ मिलकर पूरे मामलेपर विचार-विमर्श करेगी। वाइसराय महोदयने यह भी स्पष्ट कहा कि महामहिम की सरकार इस बातके लिए उत्सुक है कि भारतको औपनिवेशिक दर्जा जल्द-से-जल्द मिल जाये, तथा इस लक्ष्य तक पहुँचनेके लिए कोई कारगर रास्ता अपनाया जाये। वाइसराय महोदयने हाल ही में बड़ौदामें कही गई अपनी इस बातकी[2] ओर भी ध्यान दिलाया कि अधिनियमकी संघीय योजना, जोकि इस समय अनिश्चयकी स्थितिमें पड़ी है, जल्द-से-जल्द औपनिवेशिक दर्जा दिलानेमें सहायक हो सकती है। इस योजनाको सभी सम्बन्धित पक्षोंकी स्वीकृतिसे कार्यान्वित करनेसे उस सम्बन्धमें आनेवाली बहुत-सी समस्याओंको निपटाना आसान हो जायेगा। उन्होंने आगे कहा कि मैंने पिछले नवम्बरमे गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्का निर्दिष्ट आधार व नीतिके अनुसार विस्तार करनेका जो प्रस्ताव पेश किया था, वह आज भी बरकरार है, और महामहिमकी सरकार उस प्रस्तावपर

१. देखिए पृ० २१३, २१४ और २१८।
२. १७ जनवरी, १९४० को

तत्काल अमल करनेके लिए तैयार है, वशर्ते कि सम्बन्वित पक्ष इसके लिए अपनी स्वीकृति दे दें। महामहिमकी सरकार सघीय योजनाके वारेमें भी फिरसे कदम उठानेके लिए तैयार है ताकि जल्दी ही औपनिवेशिक दर्जा हासिल किया जा सके और युद्धके पश्चात् उन प्रश्नोंको निपटाना आसान हो जाये, जो इसके कारण पैदा हो गये है।

ये प्रस्ताव जिस भावनाके साथ पेश किये गये, उसकी श्री गाधीने सराहना की। लेकिन उन्होने स्पष्ट रूपसे कहा कि उनके विचारसे ये प्रस्ताव वर्तमान स्थितिमें काग्रेस पार्टीकी सम्पूर्ण माँगको पूरा नहीं करते। उन्होंने यह सुझाव दिया, और वाइसराय इससे सहमत भी हो गये, कि जो कठिनाइयाँ पैदा हो गई है, उनके समाधानके लिए आगे और वातचीत वर्तमान परिस्थितियोमें फिलहाल स्थगित कर देना ही वेहतर होगा।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १०-२-१९४०

परिशिष्ट ५

गांधी-सेवा-संघकी बैठकमें पारित प्रस्ताव[1]

१२ फरवरी, १९४०

चूँकि पिछले अनुभव वता चुके है कि गाधी सेवा-सघके सदस्यो का राजनीतिक सगठनोंमें जिम्मेदारीके पद ग्रहण करना अवाछनीय है, अत. सघकी यह बैठक फैसला करती है कि संघके जो सदस्य ऐसे सगठनोकी किसी निर्वाचित समितियोमें शामिल है और उनमें काम करते रहना चाहते है उन्हे संघकी सदस्यता त्याग देनी चाहिए। इसका मतलब इन सदस्योकी या राजनीतिक कार्यकी किसी प्रकारसे प्रतिष्ठा कम करना कदापि नही है। वास्तवमें यह फैसला इस कारण करना पड़ा है कि सघके सदस्योके राजनीतिमें सक्रिय रूपसे भाग लेनेकी वजहसे कडुवाहट पैदा होन लगी है जो इस वातका प्रमाण है कि उनका अहिंसाका आचरण अधूरा रहा है। शुद्ध अहिंसाकी प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें हिंसाके विरुद्ध प्रतिक्रियाकी कोई गुजाइश नही है।

संघका हमेशासे यह दृढ़ विश्वास रहा है कि रचनात्मक कार्यके विना भारतके लाखो-करोड़ों लोगोंकी उन्नति असम्भव है। सिर्फ रचनात्मक कार्योमें ही जनता प्रत्यक्ष रूपसे भाग ले सकती है। अत भविष्यमें सघकी गतिविधि रचनात्मक कार्य करने तक ही सीमित रहेगी और वह अपनेको रचनात्मक कार्यक्रमके उन कार्योमें लगायेगा जो अभी अ० भा० चरखा सघ तथा अ० भा० ग्रामोद्योग संघ आदिके कार्यक्षेत्रमें नही आते, जैसेकि रचनात्मक कार्यका अहिंसासे क्या सम्बन्ध है, तथा रचनात्मक कार्यका समाज व व्यक्तिपर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अवलोकन, अध्ययन और शोध। और आज चूँकि इस विशेष कार्यको सम्पादित करनेके लिए पर्याप्त कार्यकर्ता

१. देखिए पृ० २९१, ३१२ और ३३०।

उपलब्ध नहीं है, अतएव संघकी कार्रवाई तब तकके लिए स्थगित रहेगी जब तक कि उपरोक्त विषयमें अध्ययन और शोधके निमित्त यथेष्ट व्यक्ति नहीं मिल जाते। तब तक संघका काम केवल संघकी निधिका संचालन तथा अपने वेतन भोगी कार्यकर्ताओं आदिको वेतनका भुगतान करने और 'सर्वोदय' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन करने तक सीमित रहेगा।

आजसे निम्नलिखित लोग ही संघके सदस्य होंगे और ये ही लोग इसकी कार्यकारिणी समितिके भी सदस्य होंगे:

श्री श्रीकृष्णदास जाजू — अध्यक्ष और न्यासी
,, आर० एस० धोत्रे — सचिव और न्यासी
,, किशोरलाल मशरूवाला — सदस्य और न्यासी
,, गोपबन्धु चौधरी — सदस्य
,, अभयदेवजी — सदस्य
,, सतीशचन्द्र दासगुप्त — सदस्य
,, दिलखुश दीवानजी — सदस्य
,, सीताराम पी० पटवर्धन — सदस्य
,, कृष्णदास गांधी — सदस्य

अन्य सभी सदस्यों द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया माना जायेगा। यह भी निश्चित किया गया है कि इस कार्यकारिणी समितिको संघके संविधानमें संशोधन अथवा परिवर्तन करनेके सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे तथा वह संघके अन्य सभी अधिकारोंका प्रयोग करेगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-३-१९४०

परिशिष्ट ६

रामगढ़ कांग्रेसके लिए प्रस्ताव[1]

पटना
१ मार्च, १९४०

यूरोपमें युद्धके कारण जो गम्भीर तथा चिन्ताजनक स्थिति पैदा हो गई है तथा ब्रिटिश सरकारने उसके बारेमें जो नीति अख्तियार की है, उसपर सोच-विचार करनेके बाद यह कांग्रेस अ० भा० कां० कमेटी और कार्य-समिति द्वारा युद्ध-स्थितिके बारेमें पारित प्रस्ताव तथा तत्सम्बन्धी कार्रवाईको अपना अनुमोदन और समर्थन प्रदान

१. कार्य-समिति ने इसे रामगढ़में होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनके लिए स्वीकार कर लिया था और २० मार्च, १९४० को यह उस अधिवेशन में पास कर दिया था। देखिए पृ० ३३४, ३४४, ३५२, ३६४, ३९३, और ४७७।

करती है। भारतकी ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जनताकी राय लिये बिना भारतको एक युद्धरत देश घोषित किये जाने तथा इस युद्धमें भारतीय साधनोंके शोषणको कांग्रेस भारतीय जनताका एक ऐसा अपमान समझती है जिसे किसी भी देशकी स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता स्वीकार या बर्दाश्त नहीं कर सकती। हाल ही में ब्रिटिश सरकारकी ओरसे भारतके सम्बन्धमें की गई घोषणाओंसे यह जाहिर होता है कि ब्रिटेन यह युद्ध मूल रूपसे अपने साम्राज्यवादी उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए और अपने उस साम्राज्यको कायम रखने और मजबूत बनानेके लिए कर रहा है जो भारतकी जनता तथा एशियाई व आफ्रिकी जनताके शोषणकी बुनियादपर खड़ा है। इन परिस्थितियोंमें यह स्पष्ट है कि कांग्रेस प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें किसी भी तरह इस युद्धमें हिस्सा नहीं ले सकती, जिसका मतलब इस शोषणको स्थायी रूपसे जारी रखना है। अतः कांग्रेस युद्धमें भारतीय सैनिकोंको ब्रिटेनकी ओरसे लड़नेके लिए मजबूर किये जानेकी तथा युद्धके लिए भारतके धन-जनके अपव्ययकी सख्त निन्दा करती है। न तो भारतमें होनेवाली फौजी भर्तीको और न ही एकत्रित किये गये धनको युद्धके लिए स्वेच्छासे दिया गया योगदान माना जा सकता है। कांग्रेसजन तथा कांग्रेसमें आस्था रखनेवाले अन्य लोग धन, जन और सामग्री देकर युद्ध जारी रखनेमें मदद नहीं दे सकते।

कांग्रेस पुनः घोषणा करती है कि भारतकी जनता पूर्ण स्वराज्यसे कम कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकती। साम्राज्यवादके अन्तर्गत भारतीय स्वतन्त्रताका अस्तित्व सम्भव नहीं है। और साम्राज्यवादी ढाँचेके अन्तर्गत औपनिवेशिक दर्जा या इसी प्रकारका अन्य कोई दर्जा प्रदान करनेकी बात भारतके मामलेमें बिलकुल लागू नहीं होती। इस प्रकारका दर्जा भारत जैसे महान राष्ट्रकी गरिमाके अनुकूल नहीं है और इससे भारत कई प्रकारसे ब्रिटिश नीतियों तथा ब्रिटिश आर्थिक ढाँचेमें जकड़ा रहेगा। केवल भारतके लोग ही स्वयं, वयस्क मताधिकारके आधारपर निर्वाचित संविधान-सभाके जरिये, अपने देशका संविधान सही तौरसे तैयार कर सकते हैं तथा अन्य देशोंके साथ अपने भावी सम्बन्धोंको निर्धारित कर सकते हैं।

कांग्रेसका यह भी मत है कि यद्यपि कांग्रेस साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखनेकी हर मुमकिन कोशिश करनेमें सदा तत्पर रहेगी, जैसाकि वह हमेशा रही है, तथापि इस समस्याका स्थायी समाधान एक ऐसी संविधान-सभा द्वारा ही हो सकता है जिसमें सभी मान्यताप्राप्त अल्पसंख्यक वर्गोंके अधिकार, जहाँ तक सम्भव होगा, विभिन्न बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक वर्गोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंके आपसी समझौते द्वारा, या यदि किसी मुद्देपर समझौता न हो सके तो, पंच-फैसले द्वारा पूरी तरह सुरक्षित होंगे। कोई भी अन्य विकल्प इस समस्याका स्थायी समाधान नहीं होगा। भारतके संविधानका निर्माण स्वाधीनता, प्रजातन्त्र तथा राष्ट्रीय एकतापर आधारित होना चाहिए। भारतको विभाजित करने या उसकी राष्ट्रीयताको खण्डित करनेका हर प्रयास कांग्रेसको अस्वीकार्य है। कांग्रेसका लक्ष्य हमेशा एक ऐसा संविधान तैयार करनेका रहा है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ग तथा व्यक्तिको अपने विकासकी पूरी स्वतन्त्रता

और अवसर प्राप्त हों तथा सामाजिक अन्यायके स्थानपर न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम हो सके।

कांग्रेस यह नहीं मान सकती कि देशी रियासतोंके शासकोंको अथवा विदेशी निहित-स्वार्थोको भारतीय-स्वतन्त्रताके मार्गमें बाधा उत्पन्न करनेका अधिकार प्राप्त है। चाहे रियासतें हों अथवा प्रान्त, देशकी प्रभुसत्ता जनताके हाथमें रहनी चाहिए, तथा अन्य सभी हितोंको जनताके महत्त्वपूर्ण हितोंके अधीन रखा जाना चाहिए। कांग्रेस मानती है कि रियासतोंके मामलेको लेकर जो कठिनाई खड़ी की गई है, वह अंग्रेजोंके दिमागकी उपज है और उसका तब तक कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं हो सकता जब तक कि भारतको विदेशी शासनसे मुक्त कर देनेकी घोषणा स्पष्ट रूपसे नहीं कर दी जाती। तब जिन विदेशी हितोंका भारतीय जनताके हितोंके साथ टकराव नही है, उनकी रक्षा की जायेगी।

जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसको बहुमत प्राप्त था, वहाँसे उसने अपने मन्त्रि-मण्डलोंको हटा लिया ताकि भारतको युद्धसे पृथक् रखा जा सके और विदेशी प्रभुत्वसे भारतको मुक्त करनेके कांग्रेसके संकल्पपर अमल किया जा सके। यह प्रारम्भिक कदम उठानेके पश्चात् स्वाभाविक रूपसे सविनय अवज्ञाकी कार्रवाई की जायेगी। कांग्रेस जैसे ही अपने संगठनको सविनय अवज्ञा करनेके लिए पूरी तरह तैयार समझेगी वैसे ही, अथवा परिस्थितिवश संकटकी घड़ी पैदा हो जानेपर, बिना किसी हिचकिचाहटके सविनय अवज्ञाका सहारा लेगी। कांग्रेस गांधीजी की इस घोषणाकी ओर कांग्रेसजनोंका ध्यान आकर्षित करना चाहती है कि गांधीजी सविनय अवज्ञा घोषित करने की जिम्मेदारी तभी ले सकते है जब वे इस बातसे सन्तुष्ट हो जायें कि कांग्रेसजन अनुशासनका ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं और स्वाधीनताकी प्रतिज्ञामें निर्धारित रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल कर रहे हैं।

कांग्रेस बिना जाति और धर्मका भेद किये सभी वर्गों और जातियोंके लोगोंका प्रतिनिधित्व करने तथा उनकी सेवा करनेका प्रयास करती है, और भारतीय स्वाधीनता संग्राम पूरे राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिए किया जा रहा है। इसलिए कांग्रेस आशा करती है कि इस संघर्षमें सभी वर्ग और जातियोंके लोग हिस्सा लेंगे। सविनय अवज्ञा करनेका उद्देश्य सारे देशके लोगोंमें त्यागकी भावनाको जाग्रत करना है।

कांग्रेस इस प्रस्तावके द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको, और आवश्यकता पड़नेपर कार्य-समितिको, इस बातका अधिकार प्रदान करती है कि इस प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिए जो भी कदम उठाना जरूरी समझे, उठा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-३-१९४०

परिशिष्ट ७

जयप्रकाश नारायणका वक्तव्य[1]

मुझपर आरोप लगाया गया है कि युद्धके कारगर सचालनके लिए जो गोला-बारूद तथा अन्य सामग्री आवश्यक है, मैं उसके उत्पादनमें बाधा डालनेका प्रयास कर रहा हूँ, तथा जनताके रुख और आचरणको इस तरह प्रभावित करनेका प्रयास कर रहा हूँ कि ब्रिटिश भारतकी सुरक्षाको तथा युद्धके कारगर सचालनको हानि पहुँचे। मैं इन आरोपोंको स्वीकार करता हूँ।

तथापि ये आरोप मेरी नजरमें अपराध नहीं, बल्कि एक ऐसा कर्तव्य है जिसका मैं नतीजेकी परवाह किये बिना पालन कर रहा हूँ। ये आरोप इस देशमें ताकतके बलपर स्थापित विदेशी हुकूमतके कुछ कानूनोंके अन्तर्गत एक अपराध भी बन जाते हैं, इस बातकी मुझे चिन्ता नहीं है। इन कानूनोका उद्देश्य उस राष्ट्रवादी भारतके उद्देश्योंके बिलकुल विपरीत है जिसका मैं मात्र एक तुच्छ प्रतिनिधि हूँ। इन कानूनोंके साथ हमारा टकराव होना स्वाभाविक ही है।

इस युद्धमें मेरा देश किसी भी तरहसे शामिल नहीं है, क्योंकि वह जर्मन नाजीवाद तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद, दोनोंको ही बुरा तथा अपना शत्रु समझता है। मेरा देश समझता है कि युद्धमें भाग लेनेवाले दोनों ही पक्ष दूसरे देशोंपर अपना आधिपत्य और प्रभुत्व स्थापित करने और उनका शोषण तथा दमन करनेके स्वार्थपूर्ण उद्देश्योंसे प्रेरित है। ब्रिटेन युद्ध इसलिए नहीं लड़ रहा है कि वह नाजीवादको, जिसका वह अब तक पोषण करता आया है, अब समाप्त करना चाहता है, बल्कि उसका उद्देश्य अपने प्रतिद्वन्द्वीकी ताकतको काबूमें लाना है जिसे निर्बाध रूपसे और अधिक बढ़ने नहीं दिया जा सकता। वह विश्वमें अपनी प्रमुखता बनाये रखने और अपनी साम्राज्यवादी शक्ति तथा वैभवको कायम रखनेके लिए लड़ाई कर रहा है। जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है, ब्रिटेन अपने भारतीय साम्राज्यको कायम रखनेके लिए ही युद्ध कर रहा है।

साफ है कि ऐसे युद्धसे भारत अपना कोई वास्ता नहीं रख सकता। कोई भारतीय इस बातकी इजाजत नहीं दे सकता कि साम्राज्यवादको सहारा देनेके लिए उसके देशके साधनोंका इस्तेमाल होता रहे और युद्धकी इन कार्रवाइयोंके जरिये उन्हीं साधनोको उसके देशको दासतामें जकड़ रखनेवाली जंजीरोकी शक्ल दी जाती रहे। कांग्रेसने, जो राष्ट्रवादी भारतकी एकमात्र प्रतिनिधि आवाज है, इस देशकी जनताको उसके इस पुनीत कर्तव्यका पहले ही स्मरण करा दिया

१. देखिए पृ० ४१९-२०।

है। कांग्रेसके एक विनम्र सेवकके नाते मैंने यह कर्तव्य पूरा करनेका प्रयास मात्र किया है।

दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनमतकी पूरी तरह अवहेलना करके भारतको एक युद्धरत देश घोषित कर दिया है। वह भारतीय धन-जन और सामग्रीका इस्तेमाल एक ऐसे युद्धके लिए कर रही है जिसका पूरी तरह विरोध करनेके लिए हम वचनबद्ध हैं। यह कारंवाई एक प्रकारसे भारतपर आक्रमण है और वर्तमान स्थितिमें पोलैंडपर हुए जर्मन आक्रमणसे कम गम्भीर नहीं है। भारत इस आक्रमणका प्रतिरोध किये विना नही रह सकता। अतः प्रत्येक देशभक्त भारतीयका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ब्रिटिश सरकारकी अपने साम्राज्यवादी उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए इस देशके साधनोंको इस्तेमाल करनेकी कोशिशका विरोध करे। युद्धके कारगर संचालनमें अड़ंगा लगानेका जो आरोप मुझपर लगाया गया है, वह देशके प्रति कर्तव्यका पालन मात्र है। देशभक्त भारतीयोंका जो कर्तव्य है, उसे यदि ब्रिटिश सरकार एक अपराध समझती है, तो इससे उसका साम्राज्यवादी स्वरूप और अधिक सिद्ध हो जाता है।

जिस भाषणके कारण मुझपर मुकदमा चलाया जा रहा है, मैं नही कह सकता कि वह अपना उद्देश्य पूरा करनेमें कहाँ तक सफल हुआ है। लेकिन यदि मुझे पता चले कि मेरे भाषणके कारण युद्धके कारगर संचालनमें कुछ भी विघ्न पड़ा है तो मेरे लिए इससे बड़ी खुशीकी बात और कोई नही होगी। यदि इस उद्देश्यमें मैं सफल समझा गया तो इसके लिए मिलनेवाली कड़ी-से-कड़ी सजाको भी मैं पुरस्कार समझूँगा।

ब्रिटिश भारतकी सुरक्षाके लिए खतरा पैदा करनेके आरोपका जहाँ तक सवाल है, मेरे खयालसे इसकी विडम्बना हमसे छिपी नहीं है। एक गुलामका यह कतई दायित्व नहीं है कि वह अपनी गुलामीकी रक्षा करे; उसका कर्तव्य तो अपने बन्धनको तोड़ना है। मुझे आशा है कि जब हमें आजादी हासिल हो जायेगी, तब हमें यह भी मालूम हो जायेगा कि स्वयं अपनी रक्षा कैसे की जाती है।

मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि मुझपर जमशेदपुरमें दिये गये मेरे भाषणके कारण मुकदमा चलाया गया है। इस औद्योगिक क्षेत्रको मैं देशका सबसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र मानता हूँ। यह क्षेत्र राजनैतिक रूपसे और श्रमिक आन्दोलनकी दृष्टिसे विशेष रूपसे पिछड़ा हुआ क्षेत्र है। जेलमें — जहाँ मेरा पहुँचना अवश्यम्भावी लगता है — मुझे इस विचारसे कुछ सन्तोष प्राप्त होता रहेगा कि इस क्षेत्रमें दिये गये मेरे भाषणके कारण मेरी गिरफ्तारी होने और जेल जानेसे मेरे देशके राजनैतिक तथा श्रमिक नेताओंका ध्यान इस शहरकी ओर गया है। मुझे यह कलंककी बात लगती है कि देशकी सबसे अधिक उपयोगी साधन-सामग्री इस तरह एक ऐसे युद्धमें बर्बाद हो जिसके हम सख्त खिलाफ हैं। यह भी कुछ कम लज्जाजनक बात नही है कि जहाँ सारे देशके श्रमिक युद्धजनित स्थितिके प्रति जोरदार प्रतिक्रिया दिखा रहे हों, वही जमशेदपुरके श्रमिक इस प्रकार चुपचाप कार्य करते रहें, मानो कोई

खास बात हुई ही न हो। मेरी कामना है कि इस मुकदमेके परिणामस्वरूप कम-से-कम युद्ध-घोषसकी माँग तो जोर पकड़े।

अपना वक्तव्य समाप्त करनेसे पूर्व मैं यह भी कहना चाहूँगा कि एक अंग्रेज होनेके नाते कहीं आप मुझे गलत न समझें इसलिए मैं यह बात स्पष्ट कर दूँ कि युद्धके संचालनमें बाधा पहुँचाकर मैं जर्मनीकी मदद नही करना चाहता और न जर्मनीको विजयी होते देखना चाहता हूँ। मैं न तो साम्राज्यवादकी विजय चाहता हूँ और न नाजीवादकी ही। फिर भी, एक कांग्रेसजन और समाजवादी होनेके नाते, मेरे मनमें अंग्रेजों और जर्मन लोगोंके प्रति सद्‌भावके सिवाय और कुछ नही है। यदि ब्रिटेनके साम्राज्यवादी युद्धका भारत द्वारा विरोध किये जानेसे नाजियोंकी विजय सुनिश्चित होती हो, तो ब्रिटेनके लोगोंकी यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वे इस बातका फैसला करें कि वे नाजी एकाधिपत्यको स्वीकार करेंगे अथवा वे अपने देशमें तथा भारतमें वास्तविक प्रजातन्त्रकी स्थापनाके साथ विजय प्राप्त करना चाहेंगे। यदि ब्रिटेनकी जनता इस देशपर अपना शासन हटा दे और पूँजीवादी शासकों सहित साम्राज्यवादको समाप्त कर दे, तो न केवल भारत, बल्कि सारी दुनियाकी स्वातन्त्र्य-प्रिय जनता नाजीवादकी हार तथा स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रकी विजयके लिए अपनी पूरी ताकत लगा देगी। किन्तु वर्तमान स्थितिमें भारतके सामने ब्रिटिश साम्राज्यवादसे टक्कर लेकर उसे समाप्त करनेके सिवाय अन्य कोई चारा नहीं है। केवल इसी तरीकेसे भारत विश्वकी शान्ति तथा समृद्धिमें अपना योगदान कर सकता है।

महोदय, मैं जानता हूँ कि अपने इस वक्तव्यसे मैंने आपका कार्य सरल बना दिया है। मुझे इसका कोई दुःख नही है।

अन्तमें, मुकदमेके दौरान आपने जो सौजन्य तथा सद्‌भाव दिखाया, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३०-३-१९४०

परिशिष्ट ८

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा पारित प्रस्ताव[1]

२३ मार्च, १९४०

१. अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी परिषद् तथा कार्य-समिति द्वारा की गई कार्रवाईको, जिसका उल्लेख संवैधानिक प्रश्नके विषयमें पारित किये गये उनके २७ अगस्त, १७ तथा १८ सितम्बर और २२ अक्तूबर, १९३९ के तथा ३ फरवरी, १९४० के प्रस्तावोंमें है, अपनी स्वीकृति और समर्थन प्रदान करते हुए अखिल भारतीय

१. देखिए पृ० ४३६ और ४४३।

मुस्लिम लीगका यह अधिवेशन जोर देकर इस बातको पुनः दोहराता है कि १९३५ के भारत सरकार अधिनियममें प्रस्तुत संघीय योजना इस देशकी विशिष्ट स्थितिको देखते हुए पूर्णतया अनुपयुक्त तथा अव्यवहार्य है और मुस्लिम भारतको सर्वथा अस्वीकार्य है।

२. इसके अलावा इस अधिवेशनकी यह जोरदार राय है कि महामहिमकी सरकारकी ओरसे वाइसराय द्वारा की गई १८ अक्तूबर, १९३९ की घोषणामें कही गई यह बात तो तसल्लीबख्श है कि १९३५ का भारत सरकार अधिनियम जिस नीति तथा योजनापर आधारित है, उसके बारेमें भारतके विभिन्न दलों, जातियों और हितोंके साथ सलाह-मशविरा करके पुनर्विचार किया जायेगा, किन्तु मुस्लिम भारतको तब तक सन्तोष नहीं होगा जब तक कि पूरी संवैधानिक योजनापर नये सिरेसे विचार नहीं कर लिया जायेगा। और मुसलमानोंको कोई भी संशोधित योजना तब तक ग्राह्य नहीं होगी, जब तक कि उस योजनाकी रूपरेखा उनकी स्वीकृति और सहमतिसे तैयार नहीं की जायेगी।

३. यह निश्चय किया जाता है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके इस अधिवेशनकी यह सुविचारित राय है कि कोई भी संवैधानिक योजना इस देशमें तब तक व्यवहार्य नहीं होगी और मुसलमानोंको स्वीकार्य नहीं होगी जब तक कि उसकी रूपरेखा निम्नलिखित मूलभूत सिद्धान्तपर तैयार नहीं की जायेगी — अर्थात् भौगोलिक रूपसे सटे हुए घटकोंका सीमांकन किया जाये और उनको आवश्यक हेरफेरके बाद ऐसे क्षेत्रोंके रूपमें इस प्रकार पुनर्गठित किया जाये कि जिन इलाकोंमें मुसलमानोंकी जनसंख्या अधिक है — जैसा कि भारतके उत्तर-पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रोंमें है — उनके "स्वतन्त्र राज्य" बनें और इन राज्योंमें शामिल सभी घटक स्वायत्तशासी और प्रभुतासम्पन्न हों।

क्षेत्रों तथा घटकोंमें अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासकीय और अन्य अधिकारों और हितोंकी रक्षाके लिए उनकी सलाहसे संविधानमें अनिवार्य रूपसे पर्याप्त कारगर संरक्षणोंका स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए। और भारतके उन भागोंमें जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यामें हैं, उनके तथा अन्य अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासकीय तथा अन्य अधिकारोंकी रक्षाके लिए उनकी सलाहसे संविधानमें अनिवार्य रूपसे पर्याप्त कारगर संरक्षणोंका स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए।

इसके अलावा यह अधिवेशन कार्य-समितिको इस बातका अधिकार प्रदान करता है कि वह इन मूल सिद्धान्तोंके अनुरूप संविधान-सम्बन्धी योजनाकी एक ऐसी रूपरेखा तैयार करे जिसमें यह प्रावधान हो कि प्रत्येक क्षेत्र अन्ततः सुरक्षा, वैदेशिक मामले, संचार, सीमा-शुल्क तथा अन्य आवश्यक मामलोंमें सभी अधिकार अपने हाथमें ले लेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, जनवरी-जून, १९४०, खण्ड १, पृ० ३११-१२

परिशिष्ट ९

लॉर्ड लिनलिथगोका पत्र[1]

वाइसराय हाउस
नई दिल्ली
९ अप्रैल, १९४०

प्रिय श्री गांधी,

४ अप्रैलके आपके पत्र तथा उसके साथ मौलाना अबुल कलाम आजादसे प्राप्त पत्रके उद्धरण भेजनेकी कृपाके लिए आपको अनेक धन्यवाद।

२. स्पष्ट रूपसे उक्त उद्धरणसे कुछ गलतफहमी प्रकट होती है। ४ नवम्बर को जब हमारी मुलाकात हुई थी, आपने खास तौरसे यह पूछा था — जैसा आपने अपने पत्रमें जिक्र भी किया है — कि महामहिमकी सरकार भारतको जिस प्रकारका औपनिवेशिक दर्जा देनेका इरादा कर रही है, क्या वह वैसा होगा जैसा वेस्टमिन्स्टर कानूनमें है। मैंने स्थिति स्पष्ट की और तुरन्त ही भारत-मन्त्रीसे भी यह अनुरोध किया कि लॉर्ड सभामें इस स्थितिको निर्विवाद रूपसे स्पष्ट कर दें (जैसा कि उन्होंने ७ नवम्बर, १९३९ का किया भी)। ५ फरवरीकी हमारी मुलाकातके समय मैंने महामहिमकी सरकारके प्रस्तावका पुनः स्पष्टीकरण किया और समझौता-वार्ता करनेमें मेरी अपनी मर्यादाएँ क्या हैं, यह भी बताया। आपने भी अपनी स्थिति स्पष्ट की और मुझे यह शिकायत बिलकुल नहीं है कि वैसा करनेमें आप असफल रहे। यह बात मेरी तरह आप भी जानते हैं कि ओरिएन्ट क्लबमें दिये गये अपने भाषण और उसपर व्यक्त आपकी प्रथम प्रतिक्रियाको देखते हुए मुझे इससे निराशा हुई कि ५ फरवरीकी मुलाकातके समय हमारे विचारोंके बीच इतनी बड़ी खाई थी। लेकिन गलतफहमी होनेका तो कोई सवाल नहीं है।

३. हमारे बीच जो-कुछ बातचीत हुई, उससे मैंने महामहिमकी सरकारको पूरी तरह अवगत न रखा हो ऐसा कभी नहीं हुआ, और मुझे भरोसा है कि सरकारको किसी प्रकारकी गलतफहमी नहीं है। काश, कि हमारी कई बारकी बातचीतके फल-स्वरूप मैं सरकारको यह सूचित करनेकी स्थितिमें होता कि मैत्रीपूर्ण समझौता हो जाने की आशाएँ — विश्वाससे ओत-प्रोत वे आशाएँ — जिन्हें जब-तब मैंने अपने दिलमें सँजोया है और जिन्हें अपने कर्तव्यके मुताबिक मैंने सरकारसे गुप्त नहीं रखा — साकार हो गई हैं।

१. देखिए पृ० ४४२ और ४७१।

४. मुझे इस बातका भी खेद है कि बिलकुल अनजाने ही मैंने आपको, आपके ही शब्दोंमें, आपके पुत्रके साथ इस घरेलू विवादमें उलझा दिया है। कोई समझौता करवानेमें उनकी सौहार्दपूर्ण दिलचस्पी है, इसके लिए मैं सचमुच आभारी हूँ। लेकिन आपने यह कहकर स्थिति स्पष्ट कर दी है, जैसा आपने अपने पत्रमें लिखा है, कि वह प्रस्ताव जिसे महामहिमकी सरकारकी ओरसे पेश करनेका मुझे अधिकार दिया गया था, और आपकी सम्पूर्ण माँग, जो आपने मेरे सम्मुख प्रस्तुतकी थी, इन दोनोंके बीच हम दोनों ने ही इतना बड़ा अन्तर देखा था कि हमें लगा कि उस समय बातचीत आगे जारी रखनेसे कोई फायदा नहीं था। इसकी वजहसे हालाँकि मुझे स्पष्ट रूपसे निराशा हुई, तथापि मेरे खयालसे हम दोनोंका यह सोचना सही था कि हमारे सामने जो स्थिति पैदा हो गई थी, उसमें सीधा और साहसिक कदम यही था कि बातचीतको और लम्बा खींचनेके बजाय वहीं समाप्त कर दिया जाये, जैसाकि हमने किया भी।

हृदयसे आपका,
लिनलिथगो

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म सं० १०९ से : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

परिशिष्ट १०

लियाकत अली खाँके वक्तव्यके अंश[1]

नई दिल्ली
४ अप्रैल, १९४०

. . . अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके मानद मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ ने समाचारपत्रोंको दिये अपने बयानमें . . . गांधीजी के 'हरिजन' में प्रकाशित "कायदे आजमको मेरा जवाब" शीर्षक लेखका जिक्र किया है और वे कहते हैं:

श्री गांधीके समान दोहरी भूमिका निभानेवाले राजनीतिज्ञ, जो कि कांग्रेसके चवन्निया सदस्य न होते हुए भी दलके वास्तविक तानाशाह बने हुए हैं, आम इन्सानों की बजाय हमेशा ही अधिक लाभजनक स्थितिमें होते हैं। उन्होंने पहली बार कहा है कि "कायदे आजम या और किन्हींसे भी मैंने जो बातचीत की, वह कांग्रेसकी तरफसे की है। . . ."

तथापि श्री गांधी ने ८ मार्च, १९३८ को श्री जिन्नाको लिखे अपने पत्रमें निम्नलिखित बातें कही थीं :

"आप आशा रखते हैं कि मैं कांग्रेस तथा देश-भरके अन्य हिन्दुओंकी ओरसे बोल सकूंगा। किन्तु मुझे लगता है कि मै इस कसौटीपर पूरा नही उतर सकूंगा।

१. देखिए "मेरी स्थिति", पृ० ४६४-६५।

आप जो अर्थ लेते हैं, उस अर्थमें मैं न तो कांग्रेसका प्रतिनिधित्व कर सकता हूँ और न हिन्दुओंका। किन्तु एक सम्मानजनक समझौता करानेके लिए उनके ऊपर मेरा जितना भी नैतिक प्रभाव हो सकता है, उस सबका मैं इस्तेमाल करूँगा।"

वास्तवमें यह जानना बहुत मुश्किल है कि श्री गांधी कब अपनी ओरसे बात करते हैं और कब कांग्रेसकी ओरसे। . . .

श्री गांधी अपने लेखमें आगे कहते हैं कि कांग्रेस कोई हिन्दू संस्था नहीं है और इसके समर्थनमें वे निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं: "क्या किसी हिन्दू-संस्थाका अध्यक्ष कोई मौलाना बन सकता है . . . ?"

वे दुनियाको इस बातका भरोसा दिलाना चाहते हैं कि चूंकि मौलाना अबुल कलाम आजाद कांग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं, अतः उस संस्थाका असली हिन्दू स्वरूप बदल गया है। लेकिन मैं श्री गांधीको ध्यान दिला दूं कि एक मुर्गेके बोलनेसे सवेरा नहीं हो जाता और दुनियाको इतनी आसानीसे मूर्ख नहीं बनाया जा सकता।

मौलाना अबुल कलाम आजादको इस समय कांग्रेसके अध्यक्षके रूपमें निर्वाचित करना भोले तथा अनजान लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी एक चाल है। और 'मौलाना' खुद अपने चुनावके विषयमें क्या सोचते हैं? कहा जाता है कि कांग्रेसके अध्यक्ष पदपर चुन लिये जानेपर मौलाना आजादने कहा कि "मैं मानता हूँ कि मेरे चुनावके द्वारा श्री गांधीके नेतृत्वमें आस्था व्यक्त की गई है तथा उनके कार्यक्रमको देशके लोगोंने अपनी स्वीकृति प्रदान की है।"

श्री गांधी आगे कहते हैं कि "मेरी अभी भी यही राय है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बगैर स्वराज नहीं मिल सकता। मैं मुसलमानों या और किसी दूसरी अल्पसंख्यक जातिको दबानेके काममें हरगिज शरीक नहीं हो सकता। मैंने जिस संविधान-सभाकी कल्पना की है, उससे किसीको दबानेका इरादा नहीं है। उसका एकमात्र उद्देश्य साम्प्रदायिक प्रश्नोंको मिल-जुलकर हल करना होगा। अगर आपसमें समझौता न हुआ तो संविधान-सभा अपने-आप भंग हो जायेगी।"

आगे वे कहते हैं कि "अगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके भारी बहुमतको यह लगे कि वे अपने हिन्दू और दूसरे भाइयों सहित एक राष्ट्र नहीं हैं तो उन्हें कौन रोक सकेगा?"

श्री गांधीके उपरोक्त बयानसे कुछ प्रासंगिक प्रश्न उठते हैं। पिछले २० वर्षोंसे श्री गांधी कहते चले आ रहे हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज सम्भव नहीं है। तथापि श्री गांधीकी छत्रछायामें कांग्रेस अब तक जो नीति अपनाती रही है और जिसका मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्मका पुनरुद्धार और हिन्दू संस्कृतिको सबपर थोपना है, उसके कारण हिन्दू और मुसलमान आज एक-दूसरेसे जितने दूर हो गये हैं, उतने पहले कभी नहीं थे।

श्री गांधीने अपनी कल्पनाकी संविधान-सभाका जैसा चित्रण किया है, उसके बारेमें बहुत-कुछ स्पष्टीकरण तथा व्याख्याकी आवश्यकता है। हम जानना चाहेंगे

कि संविधान-सभाके बारेमें श्री गांधीकी जो धारणा है, क्या कांग्रेसकी भी वही है, क्योंकि श्री गांधीने अपने लेखमें जो-कुछ लिखा है, कांग्रेसका प्रस्ताव उससे भिन्न भाषामें तैयार किया गया है।

अब श्री गांधी यह कह रहे हैं कि "यदि आपसमें समझौता नहीं हुआ तो संविधान-सभा अपने-आप भंग हो जायेगी"। लेकिन कुछ ही समय पहले उन्होंने कहा था कि समझौता न होनेकी स्थितिमें यह मसला, जिस ऊँचे-से-ऊँचे और अत्यन्त निष्पक्ष न्यायाधिकरणकी कल्पना दुनिया कर सकती है, उसके समक्ष ले जाया जायेगा। श्री गांधीका यह वक्तव्य कुछ दिलचस्प है कि "अगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके भारी बहुमतको यह लगे कि वे अपने हिन्दू और दूसरे भाइयों सहित एक राष्ट्र नहीं हैं तो उन्हें कौन रोक सकेगा ?"

क्या वे इस बातके लिए तैयार हैं कि यदि मुसलमानोंका बहुमत, लाहौर-अधिवेशनमें पारित प्रस्तावमें निर्धारित किये गये मुस्लिम लीगके सुझावोंके पक्षमें होनेकी घोषणा करता है, तो श्री गांधी और कांग्रेस उनको पूरे दिलसे अपना समर्थन देंगे ?

यदि ऐसा है तो उन्हें तथा कांग्रेसको साफ तौरसे स्पष्ट भाषामें इस बातकी घोषणा कर देनी चाहिए। यदि संविधान-सभा बनानेका उद्देश्य मात्र यह पता लगाना है कि मुसलमान मुस्लिम-लीगके प्रस्तावके पक्षमें हैं या नहीं, तो ब्रिटिश सरकारसे संविधान-सभा हासिल करनेके लिए सारे देशमें उथल-पुथल करनेकी झंझट क्यों की जाये, जैसाकि श्री गांधी सविनय अवज्ञाका सहारा लेनेकी धमकी देकर कर रहे हैं।

हमें इसमें जरा भी शक नहीं है . . . कि लाहौर-अधिवेशनमें पारित प्रस्तावको मुसलमानोंके भारी बहुमतका पूर्ण समर्थन प्राप्त है। तथापि श्री गांधी और कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकारको चाहिए कि वे इस बातकी स्पष्ट रूपसे घोषणा कर दें कि मुसलमानोंका बहुमत यदि लाहौर-प्रस्तावके पक्षमें अपनी राय जाहिर करता है तो वे लोग प्रस्तावमें प्रस्तुत माँगको मान लेंगे तथा उसपर अमल करेंगे। साथ ही मुझे इस बारेमें जरा भी शक नहीं है कि मुस्लिम लीग अपने दावेको साबित करनेके लिए किसी भी उचित कसौटीको माननेके लिए तैयार होगी; और ऐसा करनेके लिए संविधान-सभा की जरूरत नहीं है।

श्री गांधीसे मेरा अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक अनुरोध है कि वे ऐसी कसौटी निर्धारित कर दें जिससे वे स्वयं सन्तुष्ट हो सकें और जिसमें एक ऐसी कार्य-विधिका स्पष्ट वर्णन हो जिसके द्वारा मुसलमान इस बातको निर्विवाद रूपसे सिद्ध कर सकें कि लाहौर-प्रस्ताव देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक फैले मुसलमानोंकी आवाज है।

लेकिन यदि श्री गांधी यह चाहते हैं कि हम उनका तथा कांग्रेसका हित साधनेके लिए अपनेको परेशानीमें डालें और किसी किस्मकी संविधान-सभा बनाकर उनकी आबरू रख लें, तो वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-४-१९४०

सामग्रीके साधन-सूत्र

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और गांधीजी से सम्बन्धित कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली।

भारत कला भवन, बनारस।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

विश्वभारती पुस्तकालय, कलकत्ता।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद : गांधीजी से सम्बन्धित पुस्तकों और कागजातका पुस्तकालय तथा अभिलेखागार।

'अमृतबाजार पत्रिका' : कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'कांग्रेस बुलेटिन' : अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा इलाहाबादसे प्रकाशित।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' (१९३३-५६) : हरिजन सेवक संघके तत्वावधानमें प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। इसका प्रथम अंक ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था; इसके बाद २७ अक्तूबर, १९३३ से मद्राससे प्रकाशित होने लगा; १३ अप्रैल, १९३५ से पुनः पूनासे प्रकाशित होने लगा; तदनन्तर अहमदाबादसे प्रकाशित होता रहा।

'हरिजनबन्धु' (१९३३-५६) : हरिजन सेवक संघके तत्वावधानमें प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक जो १२ मार्च, १९३३ को पहली बार पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हितवाद' : नागपुरसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' : नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४०', खण्ड १ : सम्पादक : नृपेन्द्रनाथ मित्रा, ऐनुअल रजिस्टर ऑफिस, कलकत्ता।

प्यारेलाल पेपर्स : नई दिल्लीमें श्री प्यारेलालके पास सुरक्षित कागजात।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी : स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

'गांधीजी और राजस्थान' : सम्पादक : शोभालाल गुप्ता, राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, भीलवाड़ा, राजस्थान, १९६९।

'गांधी सेवा संघके छठे अधिवेशन (मलिकन्दा-बंगाल) का विवरण' : प्रकाशक : आर० एस० धोत्रे, वर्धा।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' : सम्पादक : काकासाहब कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) : सम्पादक : मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५२।

'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) : सम्पादक : मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष' : हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम मुद्रणालय, प्रयाग, १९५७।

'बापूज लेटर्स टु मीरा' (अंग्रेजी): सम्पादक: मीराबहन, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४९।

'बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा?' : रामनारायण चौधरी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५४।

'महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', खण्ड ५ (अंग्रेजी) : डी० जी० तेन्दुलकर, विट्ठलभाई के० झवेरी और डी० जी० तेन्दुलकर, बम्बई, १९५२।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : सम्पादक : एलिस एम० बार्न्स; नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९५६।

'माई पॉलिटिकल मेमोयर्ज ऑर ऑटोबायग्राफी' (अंग्रेजी): डॉ० एन० बी० खरे; प्रकाशक : जे० आर० जोशी, नागपुर।

'रवीन्द्रनाथ ओ सुभाषचन्द्र' ,(बंगाली) : नेपाल मजमूदार, सारस्वत पुस्तकालय, कलकत्ता।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ दिसम्बर, १९३९–१५ अप्रैल, १९४०)

१ दिसम्बर : गांधीजी सेगाँवमें।

२ दिसम्बर : एगथा हैरिसनको दिये गये तारमें बताया कि "स्वतन्त्रताकी स्पष्ट घोषणाके बिना कोई प्रगति सम्भव नहीं"।

३ दिसम्बर : 'हिन्दू' को उसकी हीरक जयन्तीके अवसरपर शुभकामना-सन्देश भेजा। च० राजगोपालाचारीसे विचार-विनिमय किया।

४ दिसम्बर : 'न्यूज क्रॉनिकल' को यह स्पष्ट करते हुए तार भेजा कि भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश नीतिकी घोषणा एक विशुद्ध नैतिक प्रश्न है।

६ दिसम्बर : कांग्रेसी सरकारोंके समाप्त होनेसे मिली राहतपर खुशी जाहिर करने के लिए मु० अ० जिन्नाने भारत-भरके मुसलमानोंसे २२ दिसम्बर 'मुक्ति दिवस' और कृतज्ञता-ज्ञापन दिवसकी तरह मनानेका आग्रह करते हुए एक वक्तव्य जारी किया।

७ दिसम्बर : सर स्टैफर्ड क्रिप्स कराची पहुँचे।

८ दिसम्बर : गांधीजी ने हृदयनाथ कुंजरूसे मुलाकात की।

९ दिसम्बर : समाचारपत्रोंको एक वक्तव्य जारी किया जिसमें मु० अ० जिन्नाको राष्ट्रीय एकताका ध्यान रखते हुए तब तक मुक्ति-दिवस न मनाये जानेपर जोर दिया जब तक वाइसराय महोदय और गवर्नर कांग्रेसके खिलाफ लगाये गये मुस्लिम लीगके आरोपों पर अपनी राय न दे दें।

सर डैनियल हैमिल्टनका स्काटलैंडमें देहावसान।

१० दिसम्बरसे पूर्व : गांधीजी ने जबलपुर जिला राजनीतिक परिषद्को सन्देश भेजा।

१० दिसम्बर : लेडी हैमिल्टनको संवेदना-सन्देश भेजा।

१७ दिसम्बर : 'हरिजन' के जरिये पत्र-लेखकों और सन्देश चाहनेवालोंसे अनुरोध किया कि वे उन्हें बख्श दें।

१८ दिसम्बर : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

१९ दिसम्बर : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक जारी रही।

सर स्टैफर्ड क्रिप्सने गांधीजी से भेंट की।

२० दिसम्बर : गांधीजी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्ससे बातचीत जारी रखी।

२२ दिसम्बरसे पूर्व : कांग्रेस कार्य-समितिने स्वतन्त्रता-दिवसकी प्रतिज्ञा-सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया।

२२ दिसम्बर : गांधीजी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुरको तार भेजकर कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा सुभाषचन्द्र बोस पर लगे प्रतिबन्धको हटा लेनेमें असमर्थता सूचित की।

कांग्रेस कार्य-समितिका अधिवेशन समाप्त हुआ।

मुस्लिम लीगने 'मुक्ति दिवस' मनाया।

२७ दिसम्बर : गांधीजी ने वर्धामें नागपुर प्रान्तीय कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंके साथ बातचीत की।

१९४०

२ जनवरी या उससे पूर्व : इस्मत इनोनूको भेजे तारमें तुर्कीमें भूकम्प-ग्रस्त लोगोंके प्रति सहानुभूति प्रकट की।

६ जनवरीसे पूर्व : ईसाई मिशनरियोंके साथ बातचीत की।

७ जनवरीसे पूर्व : एक अंग्रेज संवाददाताको भेंट दी।

८ जनवरी या उससे पूर्व : लाला शामलालके देहान्त पर उनके परिवारको संवेदना-सन्देश भेजा।

वेंकटसुब्बैयाकी मृत्यु पर हृदयनाथ कुंजरूको संवेदना-सन्देश भेजा।

८ जनवरी : 'हरिजन' में वेंकटसुब्बैयाको श्रद्धांजलि अर्पित की।

९ और १० जनवरी : भाई परमानन्दके साथ बातचीत की।

१३ जनवरी : च० राजगोपालाचारीसे भेंट की।

१४ जनवरी : लॉर्ड लिनलिथगोको उनके बम्बईमें दिये भाषणके सम्बन्धमें पत्र भेजा तथा उनसे मिलनेकी इच्छा जाहिर की।

१५ जनवरीसे पूर्व : अंग्रेज शान्तिवादियोंके साथ बातचीत की।

१५ जनवरी : राजेन्द्रप्रसाद और च० राजगोपालाचारीके साथ विचार-विनिमय किया। दूसरे राजनीतिक दलोंके साथ समझौता करनेके लिए 'हरिजन' के माध्यमसे मु० अ० जिन्नाके प्रति आभार प्रकट किया।

१७ जनवरी : लॉर्ड लिनलिथगोको लिखे पत्रमें सर्वश्री भूलाभाई देसाई, क० मा० मुन्शी और बी० जी० खेरको दी गई वाइसरायकी मुलाकातोंको देखते हुए यह शंका व्यक्त की कि "हमारी मुलाकातका ठीक वक्त" अभी नहीं आया है।

१९ जनवरी : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

२० जनवरी : बंगालके नेताओंके साथ बातचीत की।

कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक जारी रही।

२१ जनवरी : कांग्रेस कार्य-समितिका अधिवेशन समाप्त।

२२ जनवरी : गांधीजी की सुभाषचन्द्र बोसके साथ बातचीत।

२३ जनवरी : लॉर्ड लिनलिथगोको लिखा कि "मैं ४ फरवरीके बाद किसी भी दिन दिल्ली पहुँच सकता हूँ"।

२५ जनवरी : समाचारपत्रोंको दिये वक्तव्यमें अप्रमाणित खादीके क्रय-विक्रयके खिलाफ कांग्रेसजनोंको सचेत किया।

२६ जनवरी : स्वतन्त्रता-दिवस मनाया गया।

२७ जनवरीसे पूर्व : गांधीजी ने अखिल भारतीय महिला-सम्मेलनको सन्देश भेजा।

३१ जनवरी : होम्स स्मिथको भेंट दी।

३ फरवरी : वर्धासे दिल्लीके लिए रवाना।
दिल्ली जाते हुए नागपुरमें एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको भेंट दी।

४ फरवरी : दिल्ली पहुँचे।
सर सिकन्दर हयात खाँसे भेंट की।

५ फरवरी : सुबह ११ बजे वाइसरायसे भेंट की।
शामको इस भेंट-वार्ताके सम्बन्धमें सरकारी विज्ञप्ति जारी की गई।

६ फरवरी : कांग्रेसकी माँग और वाइसरायके प्रस्तावके बीच महत्त्वपूर्ण अन्तरके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।
दिल्लीसे वर्धाके लिए रवाना।
वर्धा जाते हुए झाँसीमें पत्र-प्रतिनिधियोंको भेंट दी।

७ फरवरी : 'न्यूज क्रॉनिकल' को तार भेजा।
लन्दनके 'डेली हेरल्ड' को तार द्वारा वक्तव्य भेजा।
अहमदाबादके मिल-मजदूरोंको सन्देश भेजा।

८ फरवरी : गुलजारीलाल नन्दाके साथ बातचीत की।

९ फरवरी : हरबंस सिंहसे भेंट की।

१४ फरवरी : 'सन्डे टाइम्स' को दी गई लॉर्ड जेटलैंडकी भेंटके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।

१५ फरवरी : शामको वर्धासे रवाना।

१७ फरवरी : सुबह कलकत्ता पहुँचे; बादमें शान्तिनिकेतनके लिए प्रस्थान किया।
दोपहर बाद अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें शान्तिनिकेतनमें भाषण दिया।

१८ फरवरी : श्रीनिकेतन पहुँचे।
रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे विचार-विनिमय किया।
'चण्डालिका' नृत्य-नाटिका देखी।

१९ फरवरी या उससे पूर्व : शान्तिवादियोंके साथ बातचीत की।

१९ फरवरी : शान्तिनिकेतनसे रवाना।
प्रेसीडेंसी जनरल अस्पतालमें सी० एफ एन्ड्रयूजको देखने गये।
एन० आर० सरकारसे भेंट की।
रातको कलकत्तासे रवाना।

२० फरवरी : मलिकन्दा पहुँचे।
खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीका उद्घाटन किया; अस्पतालमें आहत स्वयंसेवकोंसे मिलने गये।
अपने लेखों तथा पुस्तकोंके कापीराइटके अधिकार आदिके सम्बन्धमें नवजीवन संस्थाको वारिस नियुक्त किया।

२१ फरवरी : गांधी सेवा संघमें भाषण दिया और उसे राजनीतिसे अलग होनेकी सलाह दी।

२२ फरवरी : गांधी सेवा संघकी सभामें भाषण दिया।
गांधी सेवा संघने राजनीतिसे अलग रहने तथा अपनी गतिविधियाँ रचनात्मक कार्य तक ही सीमित रखनेके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास किया।

२४ फरवरी : बंगाल कार्यकर्ता सम्मेलनमें भाषण दिया।
बंगालकी कार्यकर्त्रियोंके समक्ष भाषण दिया।
२५ फरवरी : सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।
मलिकन्दासे रवाना।
२६ फरवरी : कलकत्ता पहुँचे।
२७ फरवरीसे पूर्व : मणिपुरके लोगोंको सन्देश भेजा।
२७ फरवरी : अखबारोंके रिपोर्टरोंको बंगालके नाम विदाई-सन्देश दिया।
पटनासे रवाना।
२८ फरवरी : पटना पहुँचे।
कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।
समाजवादियोंके साथ बातचीत की।
२९ फरवरी : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक जारी रही।
बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी भंग कर दी गई।
१ मार्च : गांधीजी कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।
अनुसूचित जातिके प्रतिनिधियोंसे भेंट की।
कांग्रेस कार्य-समितिने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि "कांग्रेस जैसे ही अपने संगठनको सविनय अवज्ञा करनेके लिए पूरी तरह तैयार समझेगी, वैसे ही, अथवा परिस्थितिवश संकटकी घड़ी पैदा हो जाने पर" सविनय अवज्ञाका सहारा लेगी, तथा रामगढ़में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशनके लिए इसकी सिफारिश की।
२ मार्च : गांधीजी कलकत्ता पहुँचे।
पटना-प्रस्तावके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको वक्तव्य देते हुए यह स्पष्ट किया कि कांग्रेसने बातचीतका दरवाजा बन्द नहीं किया है, किन्तु बातचीत लॉर्ड जेटलैंड की शर्तों पर नहीं हो सकती।
३ मार्च : सेगाँव पहुँचे।
५ मार्च : 'हरिजन' में 'सेगाँव' का नाम 'सेवाग्राम' होनेकी सूचना दी।
७ मार्च : जयप्रकाश नारायण गिरफ्तार।
१२ मार्चसे पूर्व : एक मिशनरीके साथ गांधीजी की बातचीत।
१२ मार्च : ईसाई मिशनरियोंके साथ बातचीत की।
शामको रामगढ़के लिए रवाना।
१३ मार्च : लन्दनमें सर माइकेल ओ'डायर की हत्या तथा लॉर्ड जेटलैंड, लॉर्ड लैमिंग्टन और सर लुइस डेनको चोटें।
१४ मार्च : रामगढ़में गांधीजी ने खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनीका उद्घाटन किया।
माइकेल ओ'डायरकी हत्याकी निन्दा करते हुए समाचारपत्रोंको वक्तव्य दिया।
माइकेल ओ'डायरके परिवारके प्रति संवेदना प्रकट की।
१५ और १६ मार्च : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।
१७ मार्च : विषय-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

१८ मार्च : विषय-समितिकी बैठकमें भाषण दिया।
प्रदर्शनीमें भाषण दिया।

१९ मार्च : राँचीमें सुबह ठक्कर भवन और हरिजनों तथा आदिवासी जातियोंके लिए औद्योगिक गृहका उद्घाटन किया।
रामगढ़ लौटे।
एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको भेंट दी।

२० मार्च : कांग्रेस-अधिवेशनमें भाषण दिया।
सिलोनीज नेशनल कांग्रेसके प्रतिनिधि-मण्डलको भेंट दी।
पटना-प्रस्ताव पास हो गया।

२१ मार्च : वर्धाकी ओर रवाना।

२२ मार्च : सुबह वर्धा पहुँचे।
अ० भा० मुस्लिम लीगके लाहौर-अधिवेशनमें मु० अ० जिन्नाने भारतको "स्वायत्त राष्ट्रीय राज्यों" में विभाजित करनेका सुझाव दिया।

२६ मार्च : 'हरिजन' में गांधीजी ने मु० अ० जिन्नाके आरोपका उत्तर देते हुए कहा कि कांग्रेस हिन्दू संस्था नहीं है।

३० मार्च : खादी-यात्रामें भाषण दिया।

३१ मार्च : खादी-यात्रामें आये प्रतिनिधियोंके साथ चर्चा की।

१ अप्रैल : गांधी सेवा संघ समितिके साथ बातचीत की।

३ अप्रैल : घनश्यामसिंह गुप्तासे भेंट की।

५ अप्रैल : सी० एफ० एन्ड्रयूजका निधन।
समाचारपत्रोंको दिये वक्तव्यमें गांधीजी ने सी० एफ० एन्ड्रयूजको श्रद्धांजलि भेंट की।

७ अप्रैलसे पूर्व : एक चीनी अभ्यागतके साथ बातचीत की।

१२ अप्रैल : जयपुर राज्य और जयपुर राज्य प्रजामण्डलके बीच समझौता होनेके सम्बन्धमें जमनालाल बजाजको तार द्वारा बधाई दी।

१५ अप्रैल : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ऊ

ए

ओ

औ

क

ख

ग

घ

च

झ

ट

ठ

फ

ब

म

ल

व

श

स